GYANODAYA JAN-MAR 1955 G.K.U

Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

078002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

RT-055

078002

STOCK VERIFICATION
Central Library
2024-25 G.K.D.U., Hdr.

STOCK VERIFICATION
Central Library
2024-25 G.K.D.U., Hdr.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

● देश के नौ राज्यों द्वारा मान्यता प्राप्त

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानोदय

जीवन जागरण का सजग सजीव
सरस परिचायक मासिक

●

६ : अंक ७ : जनवरी १९५५
८) वार्षिक : ।।।) प्रति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

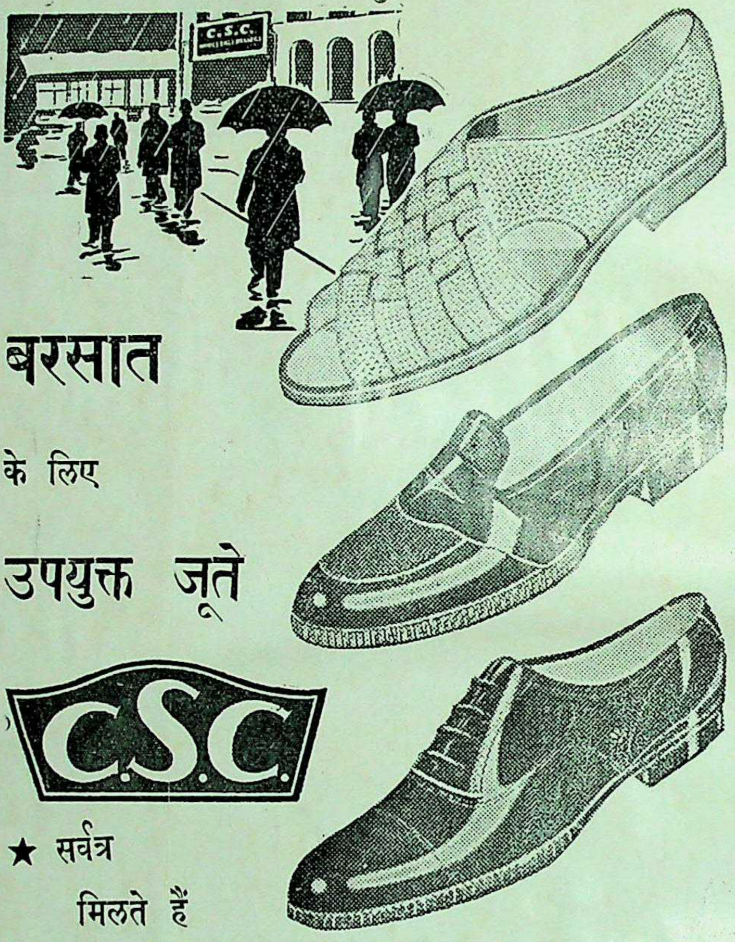

करोना साहू कम्पनी लि० बम्बई १

डिपो : कानपुर, आगरा, गाज़ियाबाद, नागपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

वसुधैव कुटुम्बकम्

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानोदय

जीवन जागरण का सजग सजीव सरस परिचायक

वर्ष ६ : अंक ७ देश के नौ राज्यों द्वारा 'मान्यता' प्राप्त जनवरी १९५५

इस अङ्क में

आलोक—

१. इसमें तेरा महत्त्व क्या? .. .. शिवप्रसाद सिंह, एम० ए० .. ३

विश्व-शान्ति का निर्माण—

२. एई महामानवेर सागर तीरे .. .. रामधारी सिंह 'दिनकर' .. ४

सामयिक राजनीति—

३. भारत और लंका के अन्तराल में .. परदेशी साहित्यालंकार .. २६

साहित्यिक तथ्य—

४. हिन्दी में गीति काव्य .. .. प्रो० कमलधारी सिंह .. १३

५. खड़ी बोली गद्य की पूर्व-पीठिका .. शिवदान सिंह चौहान .. १६

साहित्य परिचय—

६. अमरबेल .. .. .. विश्वनाथ वैशम्पायन .. ४२

प्रतिभा परिचय—

७. शिवली जी .. .. .. प्रो० रंजन .. ३२

कहानियाँ—

८. एक प्रश्न .. .. .. आनन्द प्रकाश जैन .. ८

९. क़ब्र के पत्थर .. .. .. मोपासाँ - श्रीकृष्ण .. ४५

कविताएँ—

१०. चार गीत .. .. .. वासुदेव .. १२

११. मालूम नहीं .. .. .. नीरज .. १८

१२. प्राण और पाषाण .. .. .. कु० राज शिवपुरी, श्रीहरि, सुरेन्द्र कुमार .. २८

१३. जागरण के बोल .. .. .. रमाकान्त श्रीवास्तव, भारत भूषण अग्रवाल .. ३४

एकांकी—

१४. गुरु दक्षिणा .. .. .. प्रो० इन्दु शेखर .. २४

हास्यकथा—

१५. तीन विधाता .. .. .. परशुराम-हंसकुमार तिवारी .. ३५

साहित्य निर्माण के पूर्व—

१६. भूमिका .. .. .. प्रो० नामवर सिंह .. १६

वैज्ञानिक कल्पना—

१७. धरती से १००५७ मील ऊपर .. .. ओमप्रकाश, एम्. एस्-सी. .. ३८

स्तम्भ—

१८. हमारे प्रवासी .. .. प्रेमनारायण अग्रवाल, एम्. ए. .. ४७

१९. इतिहास बन रहा है .. .. पूरनचन्द्र जोशी .. ५१

२०. युग-पथ-दिशा .. .. कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर .. ५३

२१. प्रकाशन सत्कार .. .. अनेक .. ६५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मनुष्य के अन्दर ऐसी भी एक जगह है जहाँ अपमान का उपशम होता है और वह दुर्भाग्य की दासता से बचकर जरा दम लेकर आराम कर सकता है। किसी समय मनुष्य को इस प्रकार की तृप्ति देने के लिए समस्त समाज ने बहुत बड़ा आयोजन किया था। उसका कारण यह था कि समाज ने विपुल जन साधारण को अपना समझ कर स्वीकार कर लिया था। वह जानता था कि उनके नीचे उतर जाने पर सारा देश ही नीचे उतर जायगा। आज जनता का मानसिक उपवास दूर करने के लिए कोई भी उसकी कुछ भी सहायता नहीं करता। उनके कोई आत्मीय या अपने जन नहीं हैं। बेचारे अपने आप ही पहले जमाने की तलछट से ही किसी तरह थोड़ी सी सान्त्वना पाने की कोशिश करते रहते हैं। और कुछ दिन बाद यह भी ख़त्म हो जायगा; सारे दिन के दुःख-धन्धों के रीते तट पर निरानन्द घरों में दीआ भी न जलेगा, और न गीत ही सुनाई देंगे। वहाँ झाड़ों में झींगुर झनकारेंगे, झाड़ियों में से पहर-पहर पर सियारों की बोली सुनाई देगी और उसी समय शहरों में शिक्षा और संस्कृति के अभिमानियों के झुण्ड बिजली की जगमगाहट में सिनेमा देखने के लिए भीड़ लगाये रहेंगे!"

यह कल्पना या कविता नहीं, बल्कि सत्य है जो एक दिन साकार हो उठने के लिए समय और समाज को बार-बार ललकार रहा है। ज्ञानोदय अपने विनम्र रूप और भाव में इसी ललकार का सबल-सतेज उत्तर है। उसका एकमात्र लक्ष्य यही है कि उस 'विपुल जन साधारण' का अपना बने, उसे जीवन और जागरण का परिचय देकर नित नूतन गति से प्रगति के पथ पर बढ़ने का बल और साधन सुझाये।

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

सम्पादक
कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', जगदीश एम० ए०

व्यवस्थापक
कोमल कोठारी एम० ए०

कार्यालय
११ क्लाइव रो कलकत्ता

फ़ोन : बैंक ४३८६ तार : ज्ञानोदय

८) वार्षिक : ।।।) प्रति

आवरण चित्र : अनुरक्ति और विरक्ति ; शिल्पी : मुरारी दत्त
अन्तरङ्ग सज्जाकार : कमल बोस

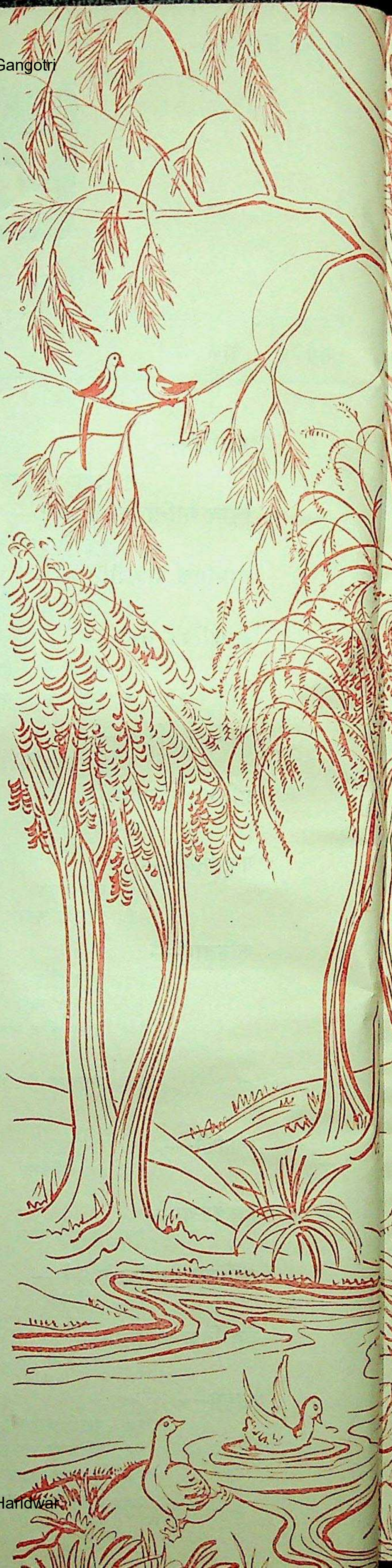

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें तेरा महत्त्व क्या ?

शिव प्रसाद सिंह, एम० ए०

बीते दिनों की बात है। भगवान् बुद्ध के अवतार में कोई डेढ़ हज़ार वर्ष की देर थी, और कार्ल मार्क्स के जन्म में चार हज़ार वर्ष की। तब दुनिया इतनी उलझी न थी, जीवन इतना मुश्किल न था। और आज जहाँ लाहौर है, उस समय वहाँ आर्यों के एक कबीले का राज था : राजा था जानश्रुति। उसने इस आशय से कि देश के सब जन उसका ही दिया हुआ अन्न खायें, एक-एक राह-बाट पर पान्थशालाएँ बनवादी थीं, जहाँ आते-जातों को भोजन की भरपूर सुविधा थी।

एक बार जानश्रुति गढ़ के बुर्ज पर खड़ा था कि सामने राजपथ से जाते दो जनों की ओर उसका ध्यान गया। एक कह रहा था, "अरे रे, दुर्ग से दूर हटकर चल। राजा जानश्रुति का तेज द्युलोक की तरह प्रदीप्त है। उसके स्पर्श से कहीं भस्म न हो जाय।" दूसरा बोला, "पागल तो नहीं हो गया है। इस राजा का तेज क्या गाड़ीवान रैक्व से अधिक है!"

वे दोनों तो बातें करते आगे निकल गये, किन्तु राजा का मन विक्षोभ में उबलता-खौलता रह गया। तमतमाया हुआ नीचे उतरा। बन्दीजन यशगान कर रहे थे। बोला, "बन्द करो यह सब। उस गाड़ीवान रैक्व की प्रशंसा क्यों नहीं करते जो मुझसे अधिक कीर्तिवान है?"

सारी सभा स्तब्ध। राजा फिर उत्तेजित-उत्तप्त स्वर में बोला, "जाओ, खोजकर लाओ उसे। मैं उसी से इसका रहस्य पूछूंगा।"

दौड़ गये अनेक सेवक-कर्मचारी। किन्तु रैक्व का पता न चला। वह राजा थोड़े था जो दुर्ग में बैठा रहता, वह तो गाड़ीवान था! दिन भर सामान लादकर यहाँ से वहाँ पहुँचाना या हारे-थके बटोहियों को उनके ठिकाने उतारना। यही उसका काम था। वह कहीं भी कैसे ठहरता!

एक दिन एक सेवक ने देखा : धूप में एक गाड़ी खड़ी है और उसके नीचे छाया में कोई लेटा खाज खुजला रहा है। सोचा : हो न हो, यही गाड़ीवान रैक्व है। भागा उलटे पाँव राजा के पास। राजा ने मन्त्री को बुलाया; और छह सौ गऊएँ, एक हीरे का हार और एक सुन्दर रथ लेकर रैक्व के पास पहुँचा।

रैक्व उसी तरह लेटा खाज खुजला रहा था। राजा ने आगे बढ़ कर विनीत भाव से कहा, "भगवन्, ये गौएँ, हार और रथ आदि स्वीकार करें और कृपा कर मुझे उस देवता का नाम बतावें जिसकी आप उपासना करते हैं!" रैक्व ने अलसभरी आँखें उठायीं; और अन्यमनस्क भाव से उत्तर दिया, "रे शूद्र, मुझे प्रलोभन दिखाता है। जा, चला जा।"

जानश्रुति लौट आया। सोचा, शायद भेंट कम थी। और एक हज़ार गौएँ, हार, रथ और कन्या लेकर फिर उपस्थित हुआ। रैक्व की उपेक्षा बनी रही, किन्तु राज-कन्या का दीन भाव देखते ही बोला, "राजन्, इन प्रलोभनों का प्रभाव न होगा। परन्तु तेरी कन्या को विद्याद्वार मान कर तुझे रहस्य बताता हूँ। तुझे अभिमान है कि तू सबको अन्न देता है। यह मिथ्या है। देख, मनुष्य ऐसा मदान्ध है कि अनेक रूपों से समस्त जीवों में निवास करते हुए उस एक देव को नहीं पहचानता। इस सत्य को, हे राजन्, तू पहचान। विश्व में जो अन्न है, सब उसी विराट् का है : जिसकी वस्तु है उसे ही देने में तेरा महत्त्व क्या?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एई महामानवेर सागर तीरे

रामधारी सिंह 'दिनकर'

भारत की स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद से प्रत्यक्ष ही अनेक विदेशी तक यह सोचते दिखाई पड़ते हैं कि शायद भारत के पास सचमुच ही कोई सन्देश है जिससे अखिल भूमण्डल का कल्याण हो सकता है। है क्या सचमुच ही कोई ऐसा सन्देश? उत्तर है: हाँ

कोई पचास वर्ष पूर्व की कवि-गुरु रवीन्द्र की एक कविता है: एई महामानवेर सागर-तीरे। उसका आशय है कि—

भारत देश महामानवता का पारावार है। ओ मेरे हृदय, इस पवित्र तीर्थ में श्रद्धा से आँखें खोलो। कोई नहीं जानता कि किसके आह्वान पर मनुष्यता की कितनी धाराएँ दुर्वार वेग से बहती हुई कहाँ-कहाँ से आयीं और इस महासागर में मिलकर खो गयीं। यहाँ आर्य हैं, अनार्य हैं, द्राविड़ और चीनी वंश के भी लोग हैं। शक, हूण, पटान और मोगल, न जानें कितनी जातियों के लोग इस देश में आये और सब एक ही शरीर में समाकर एक हो गये। समय-समय पर जो लोग रण की धारा वहाते हुए एवं उन्माद और उत्साह में विजय के गीत गाते हुए रेगिस्तान को पार कर और पर्वतों को लाँघकर इस देश में आये थे, उनमें से किसी का भी अब अलग अस्तित्व नहीं है। वे सब के सब मेरे भीतर विराजमान हैं, मुझ से कोई भी दूर नहीं है। मेरे रक्त में सब का सुर ध्वनित हो रहा है।

यह भारतीय एकता की अद्भुत अनुभूति की कविता है। यह भारत में बसने वाली सभी जातियों के साथ एकात्म होने का भाव है। भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से जो रक्त-मिश्रण होता आया है, यह कविता उसकी स्मृति और अनुभूति को ताजा बनाती है। सत्य ही, भारतीय आर्यों, द्राविड़ों, मंगोलों, शकों, हूणों और तुर्कों की नृवंशीय विशेषताएँ विलुप्त हो चुकी हैं। अब तो प्रत्येक भारतवासी कुछ आर्य भी हैं कुछ द्राविड़ भी, कुछ मंगोल भी हैं और कुछ शक या हूण भी।

यह जिस महामानवता की अनुभूति रवीन्द्रनाथ को हुई थी वह काल्पनिक नहीं, अस्तित्वपूर्ण है। जो भी भारतवासी निश्छलता के साथ अपनी आँखें मूँद कर इस बात का ध्यान करेगा कि वह कौन है—आर्य या अनार्य, द्राविड़ या मंगोल, शक या हूण—वह निश्चयपूर्वक केवल इतना ही जान सकेगा कि इस जिज्ञासा का कटा-छँटा कोई एक समाधान नहीं।

जो देश अनेक जातियों एवं अनेक वंशों की मिलन-भूमि रहा हो उसका कोई निवासी यह दावा नहीं कर सकता कि उसके रक्त में किसी अन्य जाति का रक्त नहीं। इसी प्रकार, हम जिस धर्म में विश्वास करते हैं, जिस संस्कृति को मानते हैं तथा जिन विचारों को हम राष्ट्रीय अथवा जातीय कहकर ज़ोर से अपनाये हुए हैं, उनके उत्स का भी कोई एक नाम नहीं। यह आग्रह निस्सार है कि हिन्दुओं का सारा धर्म और सारी संस्कृति वेदों से निकली है। यह अभिमान व्यर्थ है कि जो जातियाँ आज वनों में रहती हैं अथवा जो सवर्ण समाज के जूतों के पास बैठी हुई हैं, उनके बाप-दादों से आर्यों ने कोई भी ज्ञान अथवा धर्म का कोई भी उपकरण उधार नहीं लिया। आर्यों के आने के पूर्व भारत असभ्य था तथा धर्म और सभ्यता यहाँ आर्यों ने फैलायी, यह भी मिथ्या अहंकार है, क्योंकि सभ्यता में द्रविड़ जाति के लोग आर्यों से बढ़े-चढ़े थे और शरीर से हारकर भी संस्कारों द्वारा उन्होंने आर्यों को जीत लिया था।

और आर्य ही इस देश के अन्तिम विजेता अथवा आगन्तुक रहे हों, यह बात तो है ही नहीं। बुद्ध देव से कुछ पहिले ईशान कोण से यहाँ मंगोल जाति के लोगों का आना आरम्भ हुआ जो संस्कृत-साहित्य में किरात नाम से अभिहित किये गये हैं। मौर्य वंश के पतन (ई० पू० १८०) के बाद वायव्य कोण से भारत में यूनानियों का आना शुरू हुआ। फिर उसी मार्ग से झुण्ड के झुण्ड यूची, शक और आभीर जातियों के लोग आने लगे जिन्होंने सिन्ध, पंजाब और मथुरा में अपने-अपने राज्य स्थापित किये। शक और कुषाण राज्यों के टूटने के बाद वायव्य दिशा का द्वार एक बार फिर खुल गया और गर्दभिल्ल, यवन, वाह्लीक जातियों के लोगों से पश्चिमोत्तर भारत खचाखच पट गया। गुप्त राजाओं के समय और उनसे पूर्व यहाँ हूणों का आगमन हुआ एवं हूणों के बाद इस देश में कुछ तुर्क भी आये जो तब तक मुसलमान नहीं हुए थे। आज इन जातियों में से किसी का भी पता नहीं है। 'जो लोग रण-धारा वहाते तथा विजय-गान गाते' एक समय यहाँ उत्साह में झूमते हुए आये थे; वे इस देश के विशाल मानव-समुद्र में विलीन हो गये। अब उनके कोई निशान बाक़ी नहीं हैं।

उनमें से प्रत्येक की कोई न कोई भाषा रही होगी, कुछ न कुछ धर्म रहा होगा एवं कुछ अपनी आदतें रही होंगी, अपने भाव, विचार, रीति, रिवाज, मनोविनोद आदि रहे होंगे। किन्तु, इनमें से किसी भी वस्तु या विचार का अब कोई अलग अस्तित्व नहीं है। मुसलमानों के आगमन के पूर्व तक इस देश में जितनी भी जातियों के लोग आये, सब हिन्दू हो गये, सब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के सब भारतीय हो गये। भारतीय जनता न तो शुद्ध आर्य-वंश की है और न द्रविड़-वंश की। वह उन सभी जातियों की सन्तति का समुदाय है जो समय-समय पर इस देश में आयीं और बस गयीं। इसी प्रकार, जिसे हम भारतीय संस्कृति कहते हैं वह आदि से अन्त तक न तो आर्यों की रचना है और न द्राविड़ों की, बल्कि उसके भीतर अनेक जातियों का अंशदान है। यह संस्कृति रसायन की प्रक्रिया से तैयार हुई है एवं उसके भीतर अनेक औषधियों का रस समाहित है। जिस प्रकार मधुमक्खियाँ अनेक फूलों से रस जमा करके उसे ऐसा रूप दे देती हैं कि कोई एक फूल वहाँ सबसे ऊपर नहीं बोलता, भारतीय संस्कृति भी अनेक संस्कृतियों के योग से बना हुआ मधु है और यद्यपि उसके ऊपर आर्यों का लेबुल बहुत स्पष्ट है किन्तु आर्यों का महत्त्व उतना ही है जितना मधु-निर्माण में मधुमक्खियों का महत्त्व समझा जा सकता है।

भारतवासियों में परम्परा से एक विश्वास चला आता है कि भारत परमात्मा का सबसे प्यारा देश है और सभ्यता का आरम्भ पहिले पहल यहीं हुआ; किन्तु इतिहास वाले कहते हैं कि सभ्यता का आरम्भ यहाँ भले ही हुआ हो, किन्तु सभ्यता रचनेवाले यहाँ बाहर से आकर बसे थे। सबसे पहिले यहाँ नीग्रो जाति के लोग आये जो असभ्य थे। फिर आग्नेय आये जो उनसे अधिक उन्नत अवस्था में थे। इन दोनों के बाद द्रविड़ आये जिन्होंने यहाँ नगर-सभ्यता की नींव डाली और बाद में आर्य आये जिनके नेतृत्व में आर्य, भारतीय अथवा हिन्दू संस्कृति की नींव पड़ी। आर्यों के बाद भी विदेशी जातियों का आना रुका नहीं, किन्तु जो जातियाँ आयीं वे सभी आर्यों के समाज में मिलती चली गयीं।

अंग्रेजी में जिसे 'रेस थियॅरी' या नृवंश सिद्धान्त कहते हैं, वह भारतवासियों की आँखों को कभी दिखायी ही नहीं पड़ा था। 'यह हमारे वंश (रेस) का होने के कारण हमारा अपना है और वह अन्य नृवंश का होने के कारण पराया', यह भाव भारत में कभी पनपा ही नहीं। भारतवासियों की दृष्टि सदैव सांस्कृतिक एकता पर ही रही। जिसने भी भारतीय संस्कृति को अपनी संस्कृति और भारत को अपना देश मान लिया वह विदेशी होते हुए भी भारतीयों के द्वारा सादर स्वीकृत किया गया। आज की दृष्टि से देखें तो भारतीय जनता अनेक नृवंशों से निकली हुई नाना जातियों का पुंज दीखेगी; किन्तु नृवंशीय प्रभेदों से होनेवाली क्षति को यहाँ सांस्कृतिक एकता ने पूर्ण कर रखा है। इसीलिए, कहा जाता है कि भारत नाम किसी जाति का नहीं, प्रत्युत् एक विशाल संस्कृति का है। भारत के लोग इसलिए एक नहीं हैं कि वे एक ही नृवंश की सन्तान हैं, बल्कि इसलिए कि उनकी संस्कृति एक है, जीवन को देखने की उनकी दृष्टि एक है एवं प्रश्नों और समस्याओं पर विचार करने का उनका ढंग भी एक है।

भारत की यह सांस्कृतिक एकता, मुख्यतः दो कारणों से उत्पन्न हुई। पहला कारण तो भारत का भूगोल है जिसने उत्तर और पूरब की ओर पहाड़ों से तथा दक्षिण और पश्चिम की ओर समुद्रों से घेरकर भारत को स्वतन्त्र भू-भाग का रूप दे दिया। दूसरे, इस एकता का एक प्रमुख कारण हिन्दू-धर्म भी है जो किसी भी विश्वास-विशेष के लिए दुराग्रह नहीं करता, जो सहिष्णुता, स्वाधीन चिन्तन एवं वैयक्तिक स्वतन्त्रता का संसार में सबसे बड़ा हामी रहा और जिसने अपने अनुयायियों को इतनी स्वतन्त्रता दी जितनी संसार के किसी भी धर्म ने नहीं दी। एक यह भी कारण हुआ कि जो भी विदेशी हिन्दू होना चाहते थे, वे आसानी से हिन्दू हो गये। साथ ही, उनके अपने विश्वास और रीति-रिवाज भी धीरे-धीरे सभी हिन्दुओं के विश्वासों और रीति-रिवाजों में समा गये, जिससे आगन्तुकों को कभी यह अनुभव ही नहीं हुआ कि उन्होंने अपना धर्म और समाज छोड़कर किसी अन्य धर्म या समाज में प्रवेश किया है। इसका एक अन्य परिणाम यह हुआ कि ज्यों-ज्यों विदेशी जातियाँ हिन्दू-समाज में प्रवेश करती गयीं, हिन्दू-संस्कृति का रूप अधिक से अधिक समृद्ध होता गया, यहाँ तक कि आज समस्त संसार में केवल भारतीय संस्कृति ही ऐसी है जिसमें अधिक से अधिक संस्कृतियों का रंग मिला हुआ है, जो अधिक से अधिक भिन्न जातियों की मानसिक एवं आत्मिक एकता का प्रतिनिधित्व कर सकती है।

उन्नीसवीं शताब्दी में होनेवाले हिन्दुत्व के सांस्कृतिक महाजागरण के समय से ही भारतवासियों में एक प्रकार का रहस्यात्मक विश्वास सुगबुगा रहा है कि, हो न हो, संसार का आध्यात्मिक नेतृत्व फिर से भारत के हाथ आनेवाला है। और स्वतन्त्रता के बाद से तो विदेशी लोग भी यह सोचते दिखायी देने लगे हैं कि, शायद, भारत के पास सचमुच ही कोई सन्देश है जिससे अखिल भूमण्डल का कल्याण हो सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु सोचने की बात है कि यह दुर्बल दरिद्र और अशिक्षित देश आज की दुनिया को कौन-सा नेतृत्व दे सकता है। ले दे कर हमारे पास कुछ प्राचीन ज्ञान की बातें हैं। सो, ज्ञान से मनुष्य का कल्याण नहीं होता। कल्याण उसके आचरण की शुद्धता से होता है और अपार ज्ञानराशि के उत्तराधिकारी होते हुए भी भारतवासियों ने अपने आचरण बिगाड़ रखे हैं। दुख की बात है कि नवीन भारत नवीन विश्व को कुछ भी देने के योग्य नहीं रहा। नवीन विश्व को भी यदि कुछ पाना है, तो वह उसे प्राचीन भारत से ही प्राप्त हो सकता है। सच तो यह है कि भारतीय ज्ञान की गौरव-शिखाएँ, गीता और उपनिषद् नये संसार को मिल चुकी हैं और नया विश्व उन्हें समझने और साधने की चेष्टा भी कर रहा है। किन्तु, इससे भी एक बड़ी वस्तु है जो भारत नये संसार को दे सकता है।

संसार की पीड़ाओं का आध्यात्मिक निदान यह है कि अभिनव मनुष्य अति भोगवादी हो गया है। वह अपनी रोटी दूसरों के साथ बाँटकर नहीं खाना चाहता। उसे पूरी रोटी केवल अपने लिए चाहिए, बल्कि बस चले तो वह दूसरों की भी रोटियाँ छीन लेगा। बुद्ध से पहले, उपनिषदों के आलोकपूर्ण काल में, भारत को अतिभोगवाद की यन्त्रणाओं का कहीं न कहीं आभास मिला था और इसी कारण ऋषि ने चेतावनी देते हुए घोषणा की थी, 'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः' भोग भी त्याग के साथ करो।

किन्तु, संसार की पीड़ा का कारण इतना ही नहीं है। विश्व की एकता की बाधा, केवल इसी बात को लेकर नहीं है कि दुनिया में त्यागी कम और स्वार्थमय भोगवाले अधिक हैं। प्रत्युत, विश्वैकता की मुख्य बाधा तो यह है कि संसार में अनेक नृवंशों के लोग हैं जो आपस में एक-दूसरे से नहीं मिलते, जिनके धर्म अलग-अलग हैं, जिनके दर्शन और आचार-विचार भिन्न-भिन्न हैं, और जो विभिन्न वादों के फेर में पड़कर एक-दूसरे का मस्तक फोड़ रहे हैं। इतनी विभिन्नता वाली दुनिया किसी एक संस्कृति के अनुशासन में कैसे लायी जा सकती है? कौन है जो अपने आचार-विचार और मतवादों को छोड़कर सिर्फ इसलिए दूसरों के विचारों को स्वीकार कर लेगा कि दुनिया में शान्ति और सद्भावना का साम्राज्य हो?

प्रश्न बहुत जटिल है, किन्तु, यही वह क्षेत्र है जहाँ भारत का उदाहरण संसार का सहायक हो सकता है। भारत में जितनी जनताएँ मिलीं, एक मत की नहीं थीं। जितने विचारों में यहाँ समन्वय हुआ, सभी परस्पर समान ही न थे और जितनी संस्कृतियों के मिश्रण से राष्ट्रीय या सामाजिक संस्कृति यहाँ उद्भूत हुई, वे संस्कृतियाँ भी परस्पर अविरोधिनी नहीं थीं। किन्तु, फिर भी भारत ने इन विभिन्न विचारों, मतों, धर्मों और संस्कृतियों के बीच पूरा सामंजस्य बिठा दिया और इन्हीं विभिन्नताओं का समन्वित रूप हमारा सबसे बड़ा उत्तराधिकार है।

विश्व की भावी एकता की भूमिका भारत की सामाजिक संस्कृति में है। जैसे भारत ने किसी भी धर्म का दलन किये बिना अपने यहाँ धार्मिक एकता स्थापित की, किसी भी जाति की विशेषता को नष्ट किये बिना सभी जातियों को एक सांस्कृतिक सूत्र में बाँधा, कुछ उसी प्रकार, हम संसार के सभी देशों, जातियों एवं विचारों के बीच एकता स्थापित कर सकते हैं। बड़े पैमाने पर जैसी समस्या आज विश्ववादियों के सामने खड़ी है, छोटे पैमाने पर कुछ वैसी ही समस्या थी जिसका समाधान भारतवर्ष ने निकाला।

किन्तु, क्या कारण है कि जिस समस्या का समाधान भारत में सुगमता से प्राप्त हो गया, उसे ही सुलझाने में सारा संसार पराजित हो रहा है? इस प्रश्न का निदान हमें भारतीय संस्कृति के मूल में मिलेगा। वैदिक काल से लेकर महात्मा गान्धी के समय तक दृष्टि दौड़ा जाइये, भारतीय संस्कृति की जो एक विशेषता हमेशा उसके साथ मिलेगी, वह उसकी अहिंसा-प्रियता है। वस्तुतः संस्कृतियों के बीच सात्विक समन्वय का काम अहिंसा के बिना चल ही नहीं सकता। तलवार से हम मनुष्य को पराजित कर सकते हैं, उसे जीत नहीं सकते। मनुष्य को जीतना, असल में, उसके हृदय पर अधिकार पाना है और हृदय की राह समरभूमि की लाल कीच नहीं, सहिष्णुता का शीतल प्रदेश है, उदारता का उज्ज्वल क्षीर-समुद्र है। अनन्त काल से भारत अहिंसा की साधना में लीन रहा है। यह साधना कभी-कभी आत्मघातिनी भी सिद्ध हुई, किन्तु, भारत तब भी अपने परम धर्म से नहीं डिगा। और भारतीय अहिंसा का अर्थ केवल रक्तपात से बचना ही नहीं, बल्कि उन सभी बातों से बचना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा है जिनसे किसी को भी क्लेश पहुँचता हो। रक्तपात यदि आत्मरक्षा के लिए किया जाय, किसी ऐसे युद्ध में किया जाय जो हम पर जबर्दस्ती थोपा जाता है, तो भारतीय संस्कृति उसे हिंसा नहीं मानती। किन्तु समस्त भारतीय साहित्य में कहीं भी वह पाप क्षम्य नहीं बताया गया जो कटु वचन कहकर दूसरों को कष्ट पहुँचाने से होता है, जो वाणी में तर्क ही नहीं, आँखों में अंगारे भरकर शास्त्रार्थ करने से होता है; संक्षेप में जो उस मनुष्य का पाप है, जिसका विश्वास है कि मैं जो कहता हूँ वह ठीक है, बाकी सभी लोग झूठ बोलते हैं।

भारत की अहिंसा-साधना जैन-धर्म में अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँची और जैन धर्म में भी अहिंसा का उच्चतम शिखर अनेकान्तवाद या स्याद्वाद हुआ। कितने बड़े थे वे लोग जिन्हें यह दिखलाई पड़ा कि केवल रक्तपात करना, कटु वचन कहना अथवा दूसरों का अनिष्ट सोचना ही हिंसा नहीं है, प्रत्युत् जब हम यह आग्रह कर बैठते हैं कि जो कुछ हम कर रहे हैं वही सत्य है, तब भी हम हिंसा ही करते हैं। इसलिए अनेकान्त-वादियों ने यह धर्म निकाला कि सत्य के पहलू अनेक हैं। जिसे जो पहलू दिखायी देता है वह उस पहलू की बात कहता है। इसलिए यह कहना हिंसा है कि 'केवल यही ठीक है।' सच्चा अहिंसक मनुष्य इतना ही कह सकता है कि 'शायद, यह ठीक हो।' क्योंकि सत्य के सभी पक्ष सभी मनुष्यों को एक साथ दिखायी नहीं देते।

अनेकान्तवाद नाम, यद्यपि जैनों का दिया हुआ है, किन्तु जिस दृष्टिकोण की ओर यह सिद्धान्त इंगित करता है, वह दृष्टिकोण भारत में आरम्भ से ही विद्यमान था। यह विद्यमान न रहता तो यहाँ इतनी विभिन्न जातियाँ एक मानवता के अंग बनकर एकता की छाया में शान्ति से नहीं जीतीं। तब, शायद भारत का भी वही हाल होता जो यूरोप का रहा है।

वर्तमान विश्व की कठिनाई यह नहीं है कि उसके कई देशों ने अणु और उद्जन बम निकाल रखे हैं, बल्कि यह कि ये देश जब आपस में विचार-विनिमय करने बैठते हैं, तो उनकी वाणी में तर्क हो या न हो, किन्तु आँखों में गुस्से की मशाल अवश्य होती है। संसार अपने जलते हुए देश को क्षीरोदक से शीतल करने को बेचैन है, किन्तु तन को शीतल करने से पहिले उसे मन को शीतल करना चाहिए; और मन की शीतलता की राह दुराग्रह के त्याग में है। सत्य की राह पर आये बिना शान्ति नहीं मिलती, और सत्य की राह पर आये हुए आदमी की सबसे बड़ी पहचान यह है कि वह किसी भी अवस्था में दुराग्रह या हठ नहीं करता। गांधीजी हठी प्रह्लाद को अपना आदर्श मानते थे, किन्तु सच्ची बात यह है कि स्याद्वाद और अनेकान्त-वाद के वे मूर्तिमान अवतार थे। सन् १९४२ में श्री लुई-फ़िशर ने उनसे कहा कि "अमेरिका इस लड़ाई में अपना धन-जन झोंके जा रहा है, किन्तु आन्दोलन छेड़कर आप युद्धोद्योग में बाधा पहुँचाना चाहते हैं। क्या ऐसी स्थिति में यह सम्भव है कि अमेरिका वाले आपके काम की प्रशंसा करें?" गांधीजी चौंककर बोले, "फ़िशर, तुम अपने प्रेसिडेण्ट से कहो कि वे मुझे आन्दोलन छेड़ने से रोक दें। मैं, मूलतः, समझौतावादी मनुष्य हूँ क्योंकि मुझे कभी भी यह नहीं लगता कि मैं ठीक हूँ।" अपने मतों पर भी एक तरह का हलका सन्देह और दूसरों के मतों पर भी विरल श्रद्धा, अनेकान्तवादी की यह मामूली पहचान है।

सहिष्णुता, उदारता, सामाजिक संस्कृति, अनेकान्तवाद, स्याद्वाद और अहिंसा, ये एक ही सत्य के अलग-अलग नाम हैं। असल में, यह भारतवर्ष की सबसे बड़ी विलक्षणता का नाम है जिसके अधीन यह देश एक हुआ है और जिसे अपनाकर सारा संसार एक हो सकता है; किन्तु पूर्व इसके कि हम विश्व का नेतृत्व करने का मनसूबा बाँधें, आवश्यक यह है कि हम अपने आपको पहचान लें, अपने आप से यह पूछ लें कि कहीं आँखें लाल करके बहस करने का रोग हमें भी तो नहीं पकड़ रहा है। ऐसा हम इसलिए कहते हैं कि भारत की सामाजिक संस्कृति का सारा दारोमदार अहिंसा पर है, स्याद्वाद और अनेकान्तवाद की कोमल भावना पर है। यदि अहिंसा नीचे दबी और असहिष्णुता एवं दुराग्रह का विस्फोट हुआ तो वे सारे ताने-बाने टूट जायँगे जिन्हें इस देश में आनेवाली बीसों जातियों ने हजारों वर्ष तक मिलकर बुना है।

कूपमण्डूकता अहंकार की वस्तु नहीं हो सकती। शोभा उदार बनकर जीने में है और ऐसी कोई बात नहीं कहने या

(शेषांश पृष्ठ २७ पर)

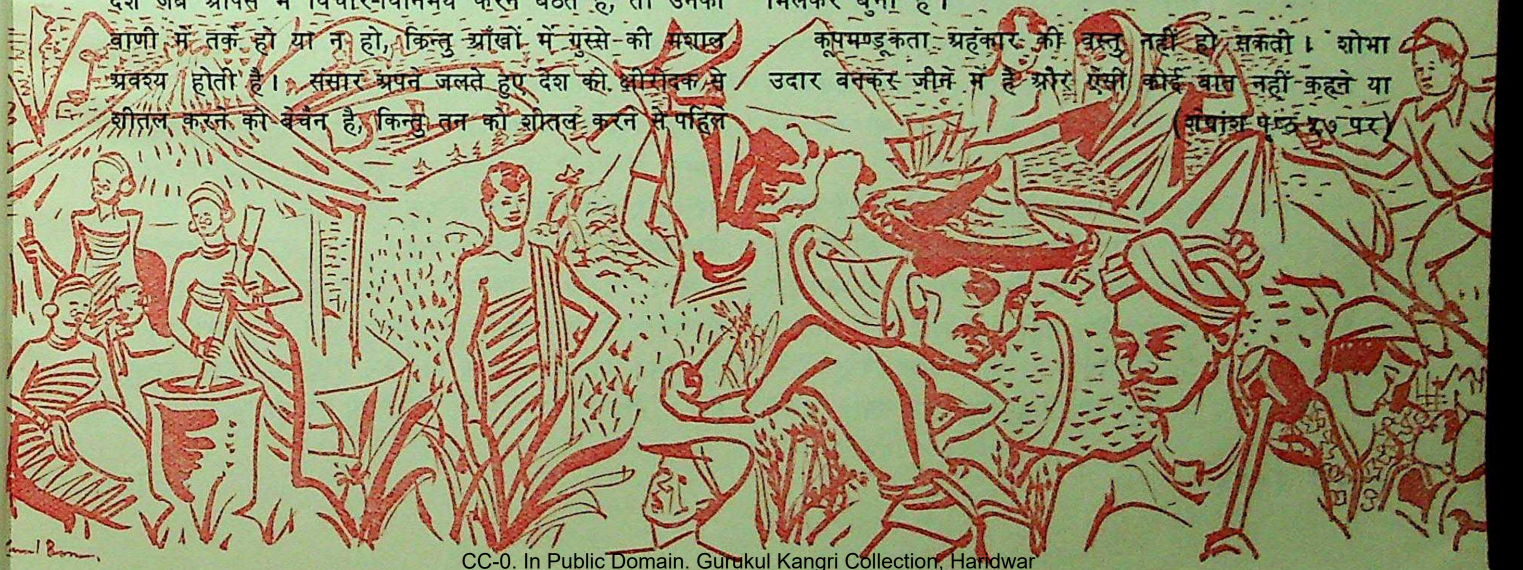

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब तुमने ये सब प्रपंच रचे हैं तो तुम्हीं इस स्नेह-बन्धन को तोड़ने का उपाय बताओ। क्या तुम मेरे भाई बनना पसन्द करोगे?

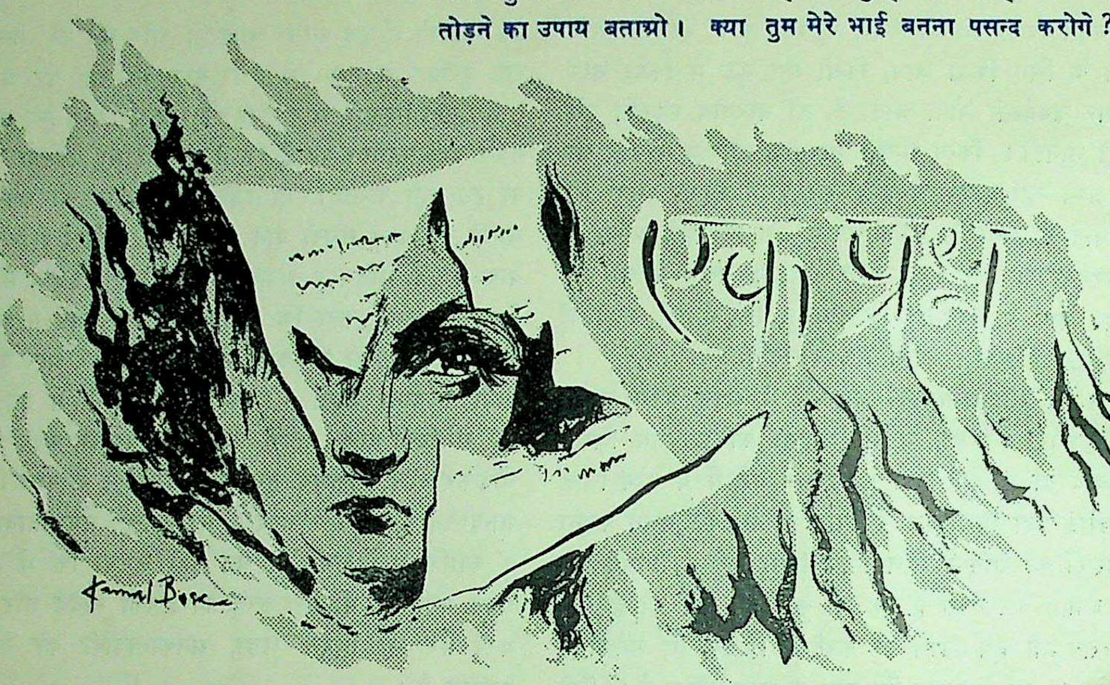

आनन्दप्रकाश जैन

शुरू-शुरू में विमला से मेरी जान-पहचान मेरी दुष्टता का नतीजा था। रेखा मैके गयी हुई थी। उसके पीछे उसके नाम आये पत्रों को सुरक्षित रखना मेरा कर्त्तव्य था। इनमें स्त्रियोपयोगी पत्र-पत्रिकाएँ होती थीं या किसी नये-नये छोकरे का पत्र। किसी पत्रिका के पत्र-मित्र कॉलम में विमला ने अपना नाम और पता छपवाया था और 'केवल स्त्रियों से' लिखना भूल गयी थी। अतः रेखा के नाम पत्र प्रायः ही आते थे, और उसने हँसते-हँसते कितनी ही बार उन्हें मुझे दिखाया भी था। अधिकांश पत्रों में फ़ोटो की माँग अनिवार्य रूप से होती ही थी। वास्तव में जब हू-ब-हू फ़ोटो खींचने के इतने स्टूडियो खुल गये हैं और फ़ोटो सामग्री बनानेवाली कम्पनियाँ धड़ाधड़ एक से बढ़िया एक माल निकाल रही हैं, तो बिना फ़ोटो के मित्रता का पहिया आगे चलना भी नहीं चाहिए। जहाँ तक मेरा प्रश्न है, यह बात विश्वास करने की है कि मैंने स्वयं कभी इन पत्रों को खोलकर देखने की चेष्टा नहीं की। अब भी ऐसे पत्र बिला-नाग़ा उसे 'रीडाइरेक्ट' किये जा रहे थे।

लेकिन जब लिफ़ाफ़े के नीचे वाले बायें कोने पर बड़े सुन्दर अक्षरों में एक छोटा-सा नाम 'विमला' लिखा हुआ हो तो उसे खोलकर यह देखने की जिज्ञासा कि स्त्रियाँ स्त्रियों को क्या-क्या लिखा करती हैं कुछ अस्वाभाविक नहीं, बेजा चाहे हो! इसलिए शीशे की आलमारी में रखा सर्जरी का छोटा चाकू मेरे हाथों से विमला के लिफ़ाफ़े पर बहुत सफ़ाई के साथ चल गया। इसके भीतर जिज्ञासा से अधिक कोई भावना थी, यह कहना ग़लत होगा। यों पति-पत्नी के एक-दूसरे के प्रति अधिकारों की सीमा भी आज तक कभी निश्चित नहीं हुई।

मैंने विमला का पत्र पढ़ा। अक्षरों की गठन लिफ़ाफ़े के ऊपर की लिखावट की गठन से पूरी तरह मिलती थी। पत्र बड़े 'जॉली मूड' में लिखा गया था। एक दूसरे के कुशल समाचार जानने की उत्सुकता प्रकट नहीं की गयी थी। बातें थीं दुनिया भर की। कॉपी साइज़ के चार पन्नों पर मोती-से अक्षर टँके थे। साथ ही पत्र से यह भी पता चला कि मित्रता जोड़ने के प्रयत्न में यह पहला पत्र था। अपना परिचय देते हुए उसने यह भी लिखा था कि वह अभी तक अविवाहित थी और आशा करती थी कि रेखा ने भी अभी तक यह अनर्थ न किया होगा।

मेरी दुष्टता इतने पर ही समाप्त नहीं हो गयी। मैंने रेखा की अनुपस्थिति का लाभ उठाया। कॉलेज में सुलेख पर मैं कई पुरस्कार पा चुका था। वह कला इस समय काम आयी। विमला के अक्षरों से स्पर्द्धा करते हुए, रेखा की ओर से लिखे, मेरे अक्षर बड़ी खूबसूरती से एक सादे लिफ़ाफ़े में बन्द हो गये और पत्र डाक में डाल दिया गया। पत्र में काम की बात कोई न थी। सिनेमा के निर्देशकों से लेकर आइज़नहॉवर तक की आलोचना मैंने कर डाली थी। लिखने वाले की जगह रेखा का नाम था। पत्र को डाक में डाल कर मैं अपनी शैतानी पर खूब हँसा। मेडिकल साइंस और फ़िलॉसफ़ी की मोटी-मोटी पोथियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में सिर खपाये रखने के कारण जो होंठ मुद्दत हुए सिकुड़कर रह गये थे, उन्हें आज विस्तार का अवसर मिला।

तीसरे दिन जवाब हाज़िर था। साथ में विमला का एक बहुत सुन्दर चित्र था। लिखा था कि उसका स्वभाव मेरे स्वभाव से पूरी तरह मेल खा गया है। कामना प्रकट की गयी थी कि मैं आजीवन उसकी सबसे अच्छी सहेली बनी रहूँ और इस सम्बन्ध में कभी बाधा न आये। अपनी तरफ़ से मैं इस पत्र-व्यवहार को कभी न तोड़ूँ, इसकी क़समें दी गयी थीं और भी बहुत सी मज़ाक़िया बातें थीं....वे ही कॉपी साइज़ के चार पन्ने।

इस प्रकार जब तक रेखा मैके से वापस आयी, मेरे पास विमला के ११ पत्र जमा हो चुके थे। निश्चय ही इसी अनुपात से मेरी ओर से भी जा चुके थे। कई बार विमला की बात रेखा से बताने को जी चाहा, लेकिन ११ की संख्या कुछ खटकी। इसी उधेड़बुन में एक दिन एक मरीज़ देखकर दवाखाने वापस लौटा तो असिस्टेंट ने बताया कि रेखा पीछे दवाखाने में आयी थी और मुझे वहाँ न पाकर, डाक देखभाल कर वापस चली गयी थी।

डाक! कहीं विमला का पत्र उसमें न हो! सारा दिन सिर खुजाते बीता। लेकिन शाम आनी ही थी और मुझे घर जाना ही था।

घर पहुँचा, तो मूड बदला हुआ था। वह कुछ इस तरह बार-बार मेरी ओर देखकर हँसी दबाने की चेष्टा कर रही थी, जैसे मैं कहीं से चार्ली-चैपलिन का ऐक्टिंग करके चला आ रहा हूँ। मैंने पूछा, "क्या बात है, कोई ख़ज़ाना हाथ लग गया क्या?"

"जी नहीं," विमला ने उसी हँसी में कहा, "ख़ज़ाना तो आपके पास होगा, मेरे हाथ तो पूँछ भर लगी है।"

मैंने ख़ूब ज़ोर से हँसते हुए कहा, "अच्छा, विमला का पत्र आया होगा।" और इस हँसी की प्रतिक्रिया देखने के लिए मैंने अपनी हँसी रोकी।

"हूँ!" रेखा ने संक्षिप्त स्वर में कहा। "आया होगा? कितने भोले बनते हैं। आना था और आया है।" उसने 'आना था' पर स्त्रियोचित बल दिया।

अपराध की भी एक कला होती है। मैं यद्यपि उस श्रेणी का कलाकार नहीं हूँ, फिर भी दुनिया की फ़िलॉसफ़ी जिस तरह हर पति को समझनी पड़ती है, मैंने भी समझी तो है ही। मैंने कहा, "हाँ, आना तो था, क्या लिखा है?"

किन्तु रेखा ने मेरे पत्नीत्व में ७ साल बिताये थे। वह हँसती-हँसती सहसा ही गम्भीर हो गयी। वहाँ से उठ कर वह रसोईघर में चली गयी और थोड़ी देर बाद थाली लाकर मेज़ पर रखदी। हाथ धुलाने के लिए लोटा आगे बढ़ाया और मैंने चुपचाप हाथ धो लिये। लेकिन फिर हाथ पर हाथ रखकर बैठ गया।

यह वह जगह थी, जहाँ उसके लिए बोलना अनिवार्य था। "खाइए!" उसने कहा।

"अभी नहीं," मैंने कहा। "पहले मैं जानना चाहता हूँ कि तुम्हारे ऊपर मेरी इस हरकत का क्या असर पड़ा है।"

रेखा बराबर के सोफ़े पर गिर गयी। "अरे, तो क्या आप इसके लिए हाथ रोककर बैठ जायेंगे? खाना भी नहीं खायेंगे?"

"बड़ों ने कहा है, खाना शान्त चित्त होकर खाना चाहिए।"

"अच्छी बात है," उसने कहा। "मैं बताती हूँ....मुझे तो केवल विस्मय होता है कि आपको इतना समय मिल कैसे गया। और मुझ पर क्या असर होगा? पिछले ७ साल से मैं आपको जानती हूँ। सबसे अधिक निकट से मैंने आपको देखा है। आप दुनिया में कहीं भी चले जाइये, कैसे भी व्यक्तियों से मिलिए-जुलिए, फिर चाहे वे स्त्रियाँ हों या पुरुष। मैं तो केवल इतना जानती हूँ कि आप लौटकर मेरे ही पास आयेंगे....मेरे लिए यही सन्तोष बहुत है।"

उसने मेरे प्रति अपने विश्वास की बात नहीं की। वह तो उसे सदा से रहा है। उसने केवल अपने सन्तोष की बात कही। इस सन्तोष पर कितने ही साम्राज्य निछावर हो सकते हैं।

दुनिया की सभी पार्लमिण्टों पर नज़र डालें तो सबसे अधिक चहलपहल फ्रान्स की पार्लमिण्ट में ही मिलती है। सन् १९५१ में वहाँ की विभिन्न पार्टियों ने एक-दूसरे को किस-किस सम्बोधन और विशेषण से आभूषित किया उसके कुछ आँकड़े देखिए––

सबसे शरीफ़ और शाइस्तः समाजवादी थे। उन्होंने दोनों ओर के दलों को महज़ ९७ बार 'झूठा' कहा था।

ठीक दूसरे सिरे पर कम्यूनिस्ट थे जिन्होंने दाहिनी ओर के दोनों दलों को १०० बार 'बदमाश' कहा, १७९ बार 'ख़ूनी' कहा, २०४ बार 'सूअर' कहा, २७२ बार 'फ़ाशिस्ट' कहा, १८ बार 'जनता की क़ब्र खोदनेवाले' कहा, ८ बार 'ग़द्दार' कहा, और ३११ बार वह कहा जो छापना ही असभ्यता होगी।

इधर पैसा-परस्त दल ने उन दोनों को ३२ बार 'स्टैलिन के ग़ुलाम' कहा, २१ बार 'सिड़ी' कहा, १९ बार 'देशद्रोही' कहा, १२० बार 'लुच्चे-झगड़ालू' कहा, और १२८ बार 'दग़ाबाज़ फ़रेबी' कहा।

पर इन सबसे बड़ा आँकड़ा यह है कि कम्यूनिस्टों और उनके विपक्षियों में ३७ बार लत्तामुक्की भी हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगले दिन सुबह दवाखाने जाते समय एक निष्पक्ष पर्यवेक्षक की भाँति विमला का वह पत्र रेखा ने मुझे दे दिया। लेकिन उस दिन शाम तक मुझे मरीज़ों के अलावा कुछ और सोचने का अवसर ही नहीं मिल सका। कई ऑपरेशन निबटाये। यह सब करने-कराने के बाद मन और मस्तिष्क में इतनी थकान इकट्ठी हो गयी कि विमला जैसी लड़की को उस समय पत्र लिखना कोरी हिमाक़त थी।

दूसरे दिन दो बड़े ऑपरेशन थे। एक केस जीर्ण प्लुरिसी का था। वह एक १६ साल की लड़की थी। घराना काफ़ी बड़ा था। लड़की बिलकुल सूख गयी थी और बाँई ओर का छाती का हिस्सा बहुत सूज गया था। एक बार उसका ऑपरेशन सिविल सर्जन के यहाँ हो चुका था, लेकिन अब भी बहुत-सा अवांछित द्रव्य के फेफड़े में शेष था। ऐसी जगह जहाँ पहले एक बार ऑपरेशन हो चुका हो, दुबारा ऑपरेशन करना एक हिम्मत का काम था, और उससे ज़्यादा रोगिणी के अभिभावकों का विश्वास प्राप्त करने का काम था।

इस ऑपरेशन के ऊपर मेरी ख्याति और भविष्य निर्भर थे। सारा दिन उसकी तैयारी में गया। मैंने ऑपरेशन सैकड़ों किये थे और उनमें फेफड़ों के भी थे, लेकिन यह ऑपरेशन करने से पहले मैंने फिर एक बार ऊँची किताबों को उलटा-पलटा। इस सबका परिणाम निकला मेरी सफलता में। वह दिन मेरे लिए असीम हर्ष का दिन था।

इस तरह लगभग एक सप्ताह बाद में विमला को पत्र लिखने का अवसर पा सका। न जाने क्यों, उस दिन नारी के छद्म वेष में नारी को पत्र लिखना बड़ा अरुचिकर लगा। दिमाग़ में अचानक यह बात आयी कि आखिर इसमें क्या तुक है। इतने दिनों तक जो पत्र-व्यवहार हो चुका था, वह केवल एक आकस्मिक उत्तेजना और नारी के बारे में पुरुष की असीम जिज्ञासा का परिणाम था। सिवा इस बात के कि विमला एक सुसंस्कृत लड़की थी, नारी का कोई अन्य ऊँचा गुण विमला के सम्बन्ध में मेरे सामने नहीं आया था। सुसंस्कृता होने के साथ-साथ विमला में जो आधुनिक विचारों का पुट था, उसका आनन्द छद्म वेष में मुझे कुछ नहीं मिल रहा था। पुरुष नारी से और नारी पुरुष से बातचीत करके जिस रस का स्वाद लेते हैं, वह मेरे लिए एक प्रकार से वर्जित था। ग़पशप इतनी की जा चुकी थी कि सिवा डाक्टरी और सर्जरी के कोई और विषय उससे बातचीत करने के योग्य मुझे नज़र नहीं आ रहा था।

मैंने साहस करके एक नया अध्याय खोला। मैंने उस पत्र में लिखा कि हर एक चीज़ के दो पहलू होते हैं: एक गम्भीर और एक हास्यजनक। जब कोई गम्भीर आलोचक किसी बड़े राजनीतिक नेता के बारे में लिखता है तो उसे उसकी सूझबूझ और सफलताओं से आँकता है; जब एक कार्टूनिस्ट उसे चित्रित करना चाहता है तो उसे वह नेता एक विदूषक मात्र दिखाई देता है। मैंने विमला को लिखा कि यदि वह कृपा करके मुझे इस दूसरे रूप में ही देख सके तो पुरुष के रूप में अपनी एक अभिन्नतम सहेली को पाकर वह कम से कम आसमान से नहीं गिर पड़ेगी। मैंने उसे साफ़ लिख दिया कि मैं रेखा का पति हूँ, डाक्टर हूँ, सर्जन हूँ, और पुरुष हूँ। इस बात का एहसान भी मैंने उस पर लाद दिया कि मेरी अनूठी सर्जरी के द्वारा उसे कुछ समय के लिए एक अव्वल दरजे की सखी मिल गयी थी।

उसकी ओर से सर्वथा मौन अथवा लम्बी-चौड़ी सुसंस्कृत गालियाँ सुनने के लिए तैयार होकर मैंने पत्र डाक में छोड़ दिया।

एक सप्ताह बाद विमला के पत्र को लेकर एक जाना-पहचाना लिफ़ाफ़ा मेरी डाक में उपस्थित था। देखकर बदन में झुरझुरी आ गयी। न जाने कम्बख़्त ने क्या-क्या लिखा होगा! जल्दी-जल्दी उसे खोला। वह पत्र आज तक मेरी फ़ाइल की शोभा बढ़ा रहा है, इसलिए मैं उसे यहाँ रखने में समर्थ हूँ:

प्रिय डॉक्टर साहब,

तुम क्या जानो तुम्हारा पत्र पढ़कर हम कितना रोये। शायद आपको यह नहीं पता कि किसी के नन्हे-से दिल को इससे कितनी ठेस लगी होगी। उफ़! कितना बड़ा धोखा हुआ है। मैं दुनिया से अनजान हूँ। इन चालों को क्या समझूँ। मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है। इधर कुआँ उधर खाई। आप कभी न समझ सकेंगे कि इस समय मेरी मनोदशा क्या है। आपने तो अभिनय किया और छुट्टी पाली। अब परदा गिर जाने पर उस अभिनय में खो जानेवाली बेचारी अपने जी को सँभाले फिर रही है। आपसे यह नाटक खेलने को कहा किसने

प्रजा-समाजवादी

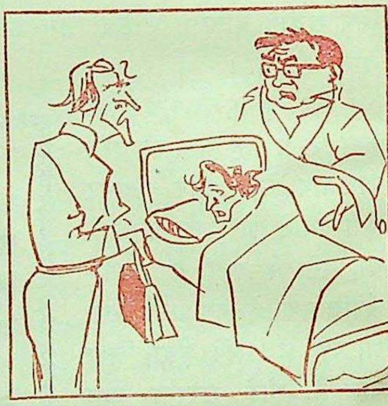

दो डॉक्टर आये : डॉ० लोहिया और आचार्य कृपलानी

परिणाम :.......!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था ? इतना बड़ा गड़बड़-घोटाला करके आप कहते हैं कि मैं इसमें से निकल जाऊँ। अब मैं निकलूँ कैसे ? क्या आप मेरे दिल की हालत को समझ सकते हैं ? मेरे पास आपके ११ पत्र रखे हैं। उन सब में से एक ऐसी सहेली झाँकती है, जिसका जोड़ मुझे नहीं मिल रहा है। यदि आपने अपने दिल की सर्जरी भी नहीं कर डाली है, तो उसे टटोल कर देखिए मेरी अवस्था क्या है। जब तुमने ये सब प्रपंच रचे हैं, तो तुम ही इस स्नेह बन्धन को तोड़ने का उपाय बताओ। क्या तुम मेरे भाई बनना पसन्द नहीं करोगे ?

वही पुरानी सहेली
विमला

पत्र में मज़मून कम था, समाप्त देर में हुआ। पढ़ चुकने के बाद महसूस हुआ कि माथे में पीड़ा हो रही है। उसी अवस्था में मैं विमला को पत्र लिखने बैठा। वह भी यदि यहाँ नहीं दिया जायगा तो इस आख्यायिका की बात अधूरी ही रह जायगी :

प्रिय विमला जी,

पत्र मिला। गालियाँ सुनना चाहता था, लेकिन वे नहीं मिलीं, यह देखकर बड़ा खेद हुआ। जीवन में जटिलताएँ और असंगतियाँ बड़े विचित्र रूप में आती हैं, और उनमें बड़ी-बड़ी करुणाएँ होती हैं। लेकिन उनमें खो जाना नहीं चाहिए। हल्के-फुल्के रह कर ही जीवन को चलाते जाना सही रास्ता है। मुझे धर्म-बहनों के रिश्ते में कोई आस्था नहीं है। यदि मैं और कोई रास्ता न देखकर तुम्हारा भाई बन बैठूँ तो यह अपने और तुम्हारे दोनों के प्रति छल होगा। मेरे और तुम्हारे सभी रिश्ते केवल छल की सूरत में रह सकते हैं। आज नहीं तो कल तुम्हारी शादी हो जायगी और कोई ईर्ष्यालु युवक तुम्हें अपनी वधू बनाकर ले जायगा। सिवा इसके कि मैं इस भावी जोड़े की मंगलकामना इतनी दूर बैठा अपने मौन से करता रहूँ, मेरा स्थान कहीं भी नहीं है, न होना चाहिए। हो सकता है कि तुम्हें तब पत्र-व्यवहार की उतनी स्वतन्त्रता न रहे। आगे की सारी दुनिया तुम्हारे सामने पड़ी है। उसमें एक पूरा संसार होगा और एक से बढ़कर एक स्नेह करने वाले मिलेंगे। सबका अपना-अपना निश्चित स्थान होगा। उन्हीं के बीच में एक छली मित्र की स्मृति भी सँजोकर रख सको तो मुझे मेरे छल की सज़ा मिल जायगी।

तुम्हारा एक छली मित्र

मैं आज भी इस बात का भेद नहीं पा सका कि वह मेरे पत्र किस प्रकार अपने घरवालों से छिपाकर पा लेती थी। शायद सब पत्र उसकी पहलेवाली सहेली के ही समझे जाते रहे हों; लेकिन यह एक वास्तविकता थी कि ऊपर के दोनों पत्र ही अन्तिम पत्र नहीं थे। शायद ऐसा हो रहा था कि मेरा पत्र जाता तो उससे उत्तर दिये बिना न रहा जाता और उसका पत्र आता तो मेरे लिए उत्तर देना अनिवार्य हो जाता। ऊपर से तारीफ़ की बात यह थी कि रेखा उन पत्रों का उपन्यास की घटनाओं की तरह मनोयोग से अध्ययन करती थी। मैं इस बात को स्वीकार करता हूँ कि नारी के हृदय पर मैंने नश्तर ज़रूर चलाये हैं, लेकिन उस कम्बख़्त की गहराई का पता मुझे आज तक न चल सका—क्योंकि रेखा जो पहिले थी, वही अब भी थी।

मैंने एक पत्र में अपनी चिकित्सा और सर्जरी सम्बन्धी सफलताओं का विवरण दिया। बदले में केवल प्रशंसा पाना चाहता था जिसे मित्र के मुँह से सुनकर मित्र को सुख होता है। अपने हाल ही के बड़े ऑपरेशनों की चर्चा की। लेकिन उसने उत्तर में जो तारीफ़ के पुल तोड़े तो मुझे स्वयं अपने ऊपर लज्जा आने लगी। प्लुरिसी के ऑपरेशन की चर्चा करते हुए उसने लिखा कि यदि आपकी उन्नति का यही हाल रहा, तो स्वयं मुझे ही किसी दिन बीमार होना पड़ेगा।

और, इस पत्र के अन्त में एक सूचना थी। मेरे शहर से बहुत दूर के किसी शहर में उसकी शादी तय हो गयी थी। लड़के का फ़ोटो देखने में अच्छा था। पत्र के साथ में 'रेखा दीदी' के नाम बाल-बच्चों सहित विवाह में उसके घर आने का एक छपा हुआ निमन्त्रण-पत्र था जिसकी पीठ पर हाथ से भी लिखकर अनुरोध किया गया था।

पढ़ कर मैं कुरसी पर निढाल होकर बैठ गया। मुझे लगा कि जैसे कोई मेरी ही

(शेषांश पृष्ठ ५७ पर)

दल की बीमारी में

अब आये हैं नये डॉक्टर : आचार्य नरेन्द्रदेव

ओह, मगर ये चूनी पिचकारी !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चार गीत

वासुदेव

(१)

मार्ग मंगलमय तुम्हारा हो
जाओ

मगर देखो
उधर
फुनगी हिल रही है
अभी गौरैया उसे तजकर उड़ी है
वह
वही जो पंख के बल
तुल रही है
इस हृदय को छुओ
हाथ वहीं रखो, देखो
हृदय की फुनगी ?
बराबर हिल रही है

और मत बिलमो
जाओ
मार्ग मंगलमय तुम्हारा हो !

(२)

कल तुम्हारे मार्ग पर मैं चल पड़ा था
दूर तक फैली हुई थी राह
तुम्हें देखूँ जगी सहसा चाह
यह दुराशा थी
अकेले पेड़-सा मैं ही खड़ा था

और फिर खोजे वही पद अंक
जो पड़े थे म्लान, चुप, निश्शंक
धूलि झुक कर ली
रमाई वक्ष से—कितना कड़ा था !

(३)

काग कल खपरैल पर आया, टिका,
बोला
अँ हा ऽ अँ हा ऽ अँ हा ऽ
कहा मैंने
उचर जाओ काग
उन्हें साथ ले आओ
उचर जाओ
उन्हें साथ ले आओ
तुम्हें दूँगी
दूध-भात
चोंच सोने से मढ़ा दूँगी।

* * *

प्रार्थना आराधना अनुराग से
मैंने तुम्हें चाहा, तुम्हें चाहा।

(४)

मौन मेरा मन

सामने के विगत-वल्कल ठूँठ पर
चुपचाप बैठा एक शुक
दूर तक बंजर
क्षितिज के छोर पर
निष्किरण रवि का बिम्ब
ठहरा पवन
नीरव भूमि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी में गीति-काव्य

प्रो० कमलधारी सिंह

संगीत को जब भाषा चाहिए और भाव को संगीत—तो कवि का मन गीत में गुनगुना उठता है। स्वरों का संबल पाकर काव्य मन के रहस्य तक पहुँच जाता है। हिन्दी कवियों के इसी प्रयत्न की कहानी—

सुख-दुख, जीवन और मृत्यु, विनाश और सृजन—ये सृष्टि के अनादि काल से चले आते हुए नियम हैं। कभी सुख, कभी दुख, मनुष्य सर्वदा ही इन्हें सहन करता चला आया है। सृष्टि का यह चक्र अनवरत गति से घूमता रहता है। इसकी गति महाताण्डव नृत्य करने वाले भगवान शंकर के चरणों की गति के समान है, जिसे रुद्ध करने में कोई समर्थ नहीं है। इन्हीं सुख और दुख रूपी दो चक्रों से संसार में सदैव नवीन उद्भावनाएँ होती चली आयी हैं। सुख के अवसर पर मनुष्य हँसता है और दुख के आगमन पर बिलखता हुआ पाया जाता है। यह सभी मनुष्यों की दशा है। पर इसी मनुष्य जाति के भीतर कुछ प्राणी ऐसे भी होते हैं, जो इन लौकिक सुखों व दुखों की कुछ भी चिन्ता न कर कल्पना के एक दूसरे ही लोक में पहुँच कर सूर्य की रश्मियों से खिलवाड़ करते हैं, चन्द्रमा की चाँदनी से अपने चित्रों में रंग भरते हैं, झरनों के कलकल में अपने प्रियतम का संगीत सुनते हैं एवं ऊषा की लाली देखकर अपनी प्रियतमा के कपोलों पर उसकी छाया फूंक देते हैं। ये कवि कहलाते हैं।

कवि, मानव होते हुए भी असाधारण है। वह यह नहीं जानता कि दुख क्या है और सुख क्या है। वह सारे विश्व में समा जाना चाहता है। वह चाहता है कि इस संसार-रूपी सागर में अन्तर से वे रत्न ले आये, जिनसे वह अपनी कविता श्री का शृंगार करे। उसके मन में यही आकांक्षा होती है कि वह विश्व के अन्तःकरण में प्रवेश करके उसकी आत्मा का संगीत सुने।

एक सच्चा कवि ही, जिसके हृदय में विश्व बन्धुत्व की भावना लहरें ले रही हो, जो 'अहम्' से ऊँचे उठकर, उससे निकल कर 'इदम्' में समा गया हो, ऐसा कर सकता है। और जब वह मनोरथ में सफल हो जाता है, तो उसे ऐसा प्रतीत होता है कि आज वह संसार का सबसे भाग्यशाली मानव है—जैसे वह संसार के कोलाहल से दूर एक ऐसे लोक में आ गया है, जहाँ देवकन्याएँ उसकी आरती उतार रही हों! इस प्रकार वह कल्पना के एक विचित्र लोक में पहुँच जाता है और जब वह विश्व के अन्तःकरण में प्रवेश कर उसका संगीत सुनता है, तो उसके मन में यह इच्छा होती है कि वह अपनी भावनाओं को व्यक्त करे। इस प्रकार की भावनाओं का व्यक्तिकरण ही गीत के रूप में उसके हृदय से बहिर्गत होता है।

इसी कारण प्रसिद्ध विद्वान् हीगल ने गीत की परिभाषा यों दी है—'जब मनुष्य विश्व के अन्तःकरण में प्रवेश कर उसकी आत्मा का संगीत सुनता है और उसको व्यक्त करना चाहता है, तो वह व्यक्तीकरण गीत रूप में ही होता है।'

यही गीत की उत्पत्ति का इतिहास है। जीवन के सुखी व दुखी क्षणों में मानव हृदय जो भी कुछ गुनगुनाता चला आया है वह गीत के रूप में ही प्रकट होता रहा है। सूर की अंधी आँखों ने भी अपने कन्हैया के अन्तःकरण में घुस कर उसकी झाँकी ले ली और उसी अन्धे सूर की लेखनी से वे गीत निकले, जिन्हें आज तक यमुना की लहरें गा रही हैं, गोकुल की लताएँ गुनगुना रही हैं और जो आज भी ब्रज प्रदेश में चारों ओर व्याप्त हो रहे हैं।

इन्हीं गीतों को गाते हुए विद्यापति भी अमर हो गये। और इन्हीं गीतों को अपने आँसुओं से सींचती हुई मीरा अपने नागर-नटवर में विलीन हो गयी। आज सूर नहीं हैं, विद्यापति नहीं हैं, मीरा नहीं हैं, पर उनके हृदय से निकले हुए गीत और उनकी आत्मा से निकला हुआ संगीत आज भी सारे भारतवर्ष में गूंज रहा है। उन गीतों में वह करुणा है, कि पत्थर तक को पिघला सकती है, सागर की लहरियों में भी आग फूट सकती है और इसी कारण से परिप्लुत होकर जीवन के संघर्षों से ऊबी हुई अंग्रेज कवि शैली की आत्मा, रोम के जंगलों में भटकती हुई परिचय से आती हुई हवा को सम्बोधन करके पुकार उठी थी—

"O lift me as a wave, as a cloud, as a leaf,
I fall upon the thorns of life I bleed" ?

इस प्रकार कवियों द्वारा गाये गये इन गीतों का एक पृथक् साहित्य ही बन गया, जिनमें आत्मा के तारों को छूनेवाली गहरी संवेदना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीत-काव्य की प्रमुख विशेषता—जो कि उसको दूसरे काव्यों से पृथक् करती है, वह है, **'संगीत से पूर्ण भावाभिव्यक्ति'** ; कवि द्वारा गाये गये वे ही गान गीत कहे जाते हैं, जिनके अन्दर संगीत की धारा बह निकली हो। और उसकी वे ही भावनाएँ गीत का रूप ले सकती हैं, जो संगीत के साँचे में ढलकर बिखर आयी हों। इस कारण गीतों में गयता होना अत्यन्त आवश्यक है।

दूसरी विशेषता है गीतों की **'संक्षिप्तता'**—गीत अत्यन्त छोटे होते हैं। इस का कारण है कि कवि विश्व के अन्तःकरण में तभी प्रवेश कर सकता है, जब उसका हृदय भावना के उस लोक में पहुँच जाये, जहाँ भावावेश में वह कुछ कह ही न सके। उस दशा में जो वाणी उसके हृदय से निकलती है, वह इतनी संक्षिप्त होती है कि कवि के हृदय से निकलकर गीत के रूप में जम जाती है। अतः इसी संक्षिप्तता के कारण गीत का प्रभाव सौ गुना हो जाता है।

गीत-काव्य की तीसरी विशेषता है **'कवि का आत्म-निवेदन'**—जब कवि इतना संतप्त हो जाता है कि उसका हृदय पीड़ा से कराह उठता है, तो वह इस संसार से कुछ निवेदन करना चाहता है और उसका वह करुण निवेदन ही सारे संसार को उसके दुख से दुखी बना देता है। इसलिए हर्ष और विषाद किसी भी अवसर में यदि कवि आत्म-निवेदन करना चाहेगा तो वह गीत द्वारा ही अपनी वाणी दूसरों तक पहुँचा पायेगा।

गीत-काव्य की चौथी विशेषता है उसके **'सहज स्फुरित उद्गार'**—वह अपने इन उद्गारों को ऐसी कोमल-कांत-पदावली में गूँथता है कि वे सदा नवीन बने रहें, उन्हें छूकर लोग सन्तोष का अनुभव कर सकें।

गीत-काव्य की पाँचवीं विशेषता है **'उसकी अभिव्यंजना की प्रणाली'**—अत्यन्त कोमल-कांत-पदावली, माधुर्य गुण से युक्त भाषा, सुन्दर छोटे-छोटे शब्द ही सुन्दर गीत के कलेवर का आधार है। क्योंकि इस प्रकार से भाव पक्ष और कला पक्ष का इतना सुन्दर समन्वय हो जाता है कि गीत में प्रवल आकर्षण आ जाता है।

यह तो रही गीत-काव्य और उसकी विशेषता की बात। अब हमें यह देखना है कि आज गीत-काव्य का स्वरूप हिन्दी कविता में कैसा है ? हमारा हिन्दी साहित्य गीत-काव्यों से कुछ कम समृद्ध नहीं है। हिन्दी साहित्य के प्रारम्भ से ही कवियों ने सुन्दर सुन्दर गीतों का निर्माण किया और हमारे साहित्य की श्री वृद्धि की। सर्वप्रथम गीत-परम्परा का प्रारम्भ करनेवाले कवि जयदेव हैं। उनका 'गीत गोविन्द' काव्यत्व के साथ स्वतः स्वरों से सम्बद्ध है। तत्पश्चात् गीत-रचना करनेवालों में विद्यापति आते हैं। उनकी सरस वाणी की एक झाँकी निम्न गीत में देखिए—

सखि हे ! हमर दुखक नहिं ओर।
दूभर बादर माँह भादर सून मन्दिर मोर ॥
झंपि घन गरजंति संतत भुवन भर बरसंतिया।
कंत पाहुन काम दारुन सघन खर शर दंतिया ॥
तिमिर दिग भरि घोर जामिनि अछिर बिजुरिक पाँतियाँ।
विद्यापति कह कैसे गयाउब हरि बिना दिन रतियाँ ॥

भक्ति भावनाओं की बाँसुरी बजी। इस बाँसुरी का प्रत्येक स्वर आत्म-विभोरता से प्रस्फुटित हुआ। काव्य के रंगमंच पर सूर, तुलसी, मीरा आदि के नूपुर झंकृत हुए। सूर की वात्सल्य, तुलसी की विनय तथा मीरा की प्रेम भावना गीत-काव्य के रूप में फूट पड़ी। सूरदास में तो वात्सल्य ही प्रत्यक्ष हो गया है। निम्न पद देखिए—

जसोदा हरि पालनै झुलावै।
हलरावै, दुलराइ, मल्हावै, जोइ सोइ कछु गावै ॥

बदलू काका

किसी तरह भीतर तो घुसूं ! हाँ, गठरी लटकाने के लिए भी जगह ठीक रही ! हैं : यह गाड़ी कैसे रुक गयी ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे लाल को आउ निंदरिया काहे न आइ सुवावै।
तू काहे नहिं बेगिहि आवै तोको कान्ह बुलावै।।
कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत हैं, कबहुँ अधर फरकावै।।

तुलसी की 'गीतावली' और 'विनयपत्रिका' विनय की निधि हैं, श्रद्धा की मंजूषा हैं और हैं सहज स्फुरित उद्गारों का भाण्डार। उनके प्रस्तुत गीत में—

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज-हारी।।
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसों?
मो समान आरत नहिं, आरति-हर तोसों।।

कितनी विनीत भावनाएँ मुखरित हुई हैं। इनके साथ ही मीरा की प्रेम भावना भी द्रष्टव्य है—

बसौ मोरे नैनन में नंदलाल।
मोहनी मूरति साँवरी सूरति, नैना बने बिसाल।।
अधर सुधा रस मुरली राजति, उर बैजन्ती माल।
क्षुद्र घंटिका कटि-तट सोभित, नूपुर शब्द रसाल।
मीरा प्रभु संतन सुखदाई, भक्तवछल गोपाल।।

सच्ची लगन का सच्चा अमृत इन्हीं भक्त गीतकारों के हृदय से प्रस्फुटित हुआ है। अनुभूतियों का नैसर्गिक आनन्द नेत्रों से छलक कर गीत-काव्य की संज्ञा पाने लगा। मीरा की अभिव्यक्ति, अनुभूति, भक्ति और आनन्द से ओतप्रोत है। भक्ति-काव्य की कोमल भावनाएँ गीत प्रधान हैं।

गीत-काव्य भक्तिकाल में भव्य रहा, रीतिकाल में अंतरंग और बहिरंग दोनों दृष्टियों से इसका ह्रास हो गया। अधिकांश कवि रीति-ग्रन्थों के निर्माण और अपने आश्रय-दाताओं की चाटुकारिता में ही तल्लीन रहे। गीत लिखने के लिए जिस पृष्ठभूमि की आवश्यकता होती है, उससे वे सर्वथा अछूते थे। इसके बाद युग ने करवट बदला। युग की अँगड़ाई के साथ भाषा ने भी अँगड़ाई ली। खड़ी बोली का प्रभुत्व प्रदीप्त हुआ। ब्रजभाषा को ममता-भरी दृष्टि से देखती हुई खड़ी बोली सिंहासनारूढ़ हुई। सौन्दर्यमयी भावनाओं का अद्भुत काव्य मुखरित हुआ। आधुनिक युग को यदि हम गीतों का युग कहें, तो कोई अत्युक्ति नहीं। आज का कवि आत्म-विभोर होकर गीत लिखने लगा है। उसकी भावनाएँ रहस्यपूर्ण हो गयी हैं। शान्त तथा वात्सल्य प्रायः लुप्त हो गये हैं। करुण और विप्रलम्भ शृंगार ही प्रधान रस हैं। गीतों के विषयों में भी बाढ़ आ गयी है। छन्द के बन्धन से काव्य मुक्त हो गया है। आज तुकान्त-अतुकान्त गीत लिखे जाते हैं। निराला और पन्त ने लय के आधार पर मुक्त छन्दों की रचना की है। प्रसाद के गीतों में जहाँ एक ओर रहस्यमय भावनाएँ पायी जाती हैं, वहीं दार्शनिकता भी। प्रसादजी की कल्पना का उदाहरण :—

बीती विभावरी जाग री!
अम्बर पनघट में डुबो रही तारा-घट ऊषा नागरी।
खगकुल कुलकुल-सा बोल रहा, किसलय का अंचल डोल रहा।।
लो यह लतिका भी भर लाई, यह नवल मुकुल रस-गागरी।।बीती०।।

आधुनिक काव्य की मीरा महादेवीजी ने भी पीड़ा की गहराई लेकर अनेक गीतों की रचना की है। यथा—

मेरे गीले पलक छुओ मत, जग की आँसू लड़ियाँ देखो।
मेरे हँसते अधर नहीं, जग की मुरझाई कलियाँ देखो।।

गीत-काव्य के रूप में महादेवीजी की अभिव्यक्ति बहुत अधिक हृदयग्राही बन पड़ी है। 'बच्चन' के गीत भी भाषा की सरसता और सरलता के कारण बहुत प्रिय बन गये हैं। केवल एक उदाहरण देखिए—

आज संगिनि प्रीति के तुम गीत गाओ।
सिसकियाँ बीता समय लेता रहेगा,
धमकियाँ संसार तो देता रहेगा,
आज तुम रसवाद में रसना डुबाओ।

(शेषांश पृष्ठ ३३ पर)

यात्रा पर

किसने खींची जंजीर यहाँ ?

ओह, यह गठरी किसकी है ?

मैं कुछ नहीं जानता, रुपए लाइए पचास !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

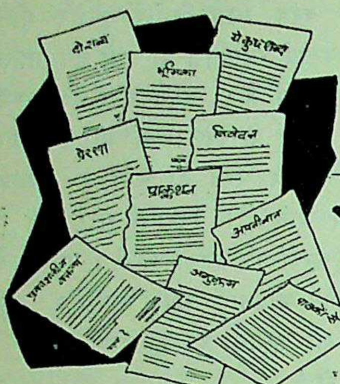

भूमिका

प्रो० नामवर सिंह, एम० ए०

मैं नहीं चाहता कि पुस्तक की खाली क़नात के बाहर खड़ी होकर भूमिका विचित्र अंग-भंगियों के साथ भीतरी तमाशे की महिमा गा-गाकर टिकट बेचे। मगर प्रकाशक महोदय हैं कि अड़े हैं: भूमिका होनी ही चाहिये. . . .

सारी पुस्तक छप चुकी तो प्रकाशक महोदय ने पूछा—"भमिका ?"

उनके स्वर से अधिक ध्वनि उनकी आँखों में थी। लेकिन मैंने कानों में रुई डालते हुए कहा—"ऐसे ही जाने दीजिए। समूची पुस्तक ही मेरे भावी जीवन की भूमिका है।"

उन्हें अपनी पड़ी थी। अब आये अपने शुद्ध रूप में। बोले—"स्वयं न लिखना हो तो किसी से. . . .पहली पुस्तक है न!" फिर उन्होंने दो-एक नाम सुझाये और समझाते हुए कहा—उनकी "मुहर लगने से आपकी साख एकदम जम जाएगी।"

मैंने कहा—"वे महासागर हैं। उनके यहाँ जाकर पुस्तकें अंचल समाधि ले लेती हैं। मेरे पास कोई ऐसा काँटा भी नहीं जो निकाल सकूँ।"

ज़िद देखकर वे बोले—"तब आप स्वयं लिखिए।" मैंने कहा—"उसके लिए तो बहुत पढ़ना पड़ेगा, क्योंकि कोई भी लेखक अपनी भूमिका हल्की नहीं लिखना चाहता।" मुझे 'गणदेवता' और 'जीवन के गान' याद आये। कहा, "पुस्तक में चाहे कुछ न हो परन्तु भूमिका में वह सब रहता है जो स्वयं पुस्तक में नहीं रहता। अब ऐसी तैयारी के लिए आठ-दस महीने का मौक़ा चाहिए क्योंकि मुझे मालूम नहीं था कि पुस्तक इतनी जल्दी छप जाएगी और उसके साथ भूमिका ज़रूरी होगी।"

प्रकाशक जी कुछ सोचकर बोले—इस बार उनका स्वर बहुत पतला था: बिल्कुल सारस की गर्दन-सा।

"तब एक काम कीजिए! देखिए आपके ही भले के लिए कह रहा हूँ। 'भूमिका' की जगह 'प्रकाशकीय' ही जाने दीजिए। लेकिन उसे भी लिखना पड़ेगा आपको ही। जैसा जी चाहे अपनी प्रशंसा में सब कुछ लिख डालिए। इस पर आपको तनिक भी आपत्ति नहीं होनी चाहिए। देखिए, अनेक प्रोफ़ेसर ऐसे हैं कि उनसे जब छात्र 'प्रमाण-पत्र' माँगते हैं तो कहते हैं कि स्वयं लिखकर ले आइए, मैं हस्ताक्षर कर दूँगा। आप यही समझिए।"

मैंने पूछा—"क्या पहले फ़ार्म के कुछ पृष्ठ बेकार जा रहे हैं ?"

बोले—"दो।"

मैंने कहा—"तो लिख दीजिए कि भूमिका अभी तैयार नहीं है और जिन महानुभाव ने भूमिका लिखने का वादा किया था अथवा जिनसे निवेदन किया गया था वे स्वर्ग सिधार गये, इधर उनके रिक्त स्थान पर कोई उपयुक्त व्यक्ति नहीं दिखाई पड़ता, इसलिए तब तक के लिए भूमिका स्थगित।"

बोले—"ऐसा भी कभी हुआ है ?"

"क्यों नहीं ? जब निराला जी 'कुल्ली भाट' का समर्पण स्थगित कर सकते हैं तो आप इसकी भूमिका स्थगित नहीं कर सकते ?" मेरा तर्क था। प्रकाशक जी बोले—"अगर ऐसी बात है तो क्यों नहीं आप उन्हीं दिवंगत महापुरुष के नाम से अपनी पुस्तक के लिए एक आशीर्वाद स्वयं लिख लेते ? इसका खण्डन करने के लिए किसके पास प्रमाण मिलेगा ?"

मैंने अब उनकी पोशाक की ओर देखा—गांधी आश्रम की शुद्ध खादी जिस पर अपने निजी हाथों से 'बापू के आशीर्वाद' लिखा था। मैंने इतना ही कहा—"यह साहित्य है।"

वे ताकते रहे। मैंने कहा—"विश्वस्त सूत्र से पता चला है कि गुरुदेव ने एक 'ब्लेड' कम्पनी को आशीर्वाद दिया था, यद्यपि 'ब्लेड' का स्पर्श भी उनकी दाढ़ी ने कभी नहीं किया।"

जाते-जाते वह कह गये—"आप यही सब लिख दीजिए।"

उन्होंने जब यह कहा तो मुझे कुछ सोचने के लिए मजबूर होना पड़ा।

इस समय वह यहाँ नहीं हैं। कल इसके लिए उनका तक़ाज़ा होगा। इच्छा नहीं होती कि यह प्रसंग आगे बढ़ाऊँ।

याद आ रही है अभी इसी हफ़्ते में मिले अपने एक कहानीकार मित्र की बातें। बातों ही बातों में मुझे वह उस बिन्दु की ओर ले गये जहाँ पहुँचकर सहज ही उनकी पुस्तक के विषय में पूछा जाता। पुस्तक का नाम लेना था कि वह मेंढ़क की तरह अपने आप उनके झोले से निकलकर मेरी हथेली पर आ गयी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखा तो सबसे ऊपर बड़े टाइप में छपा था, 'आचार्य. . . .।"

मैंने धीरे से पूछा, "अच्छा, अब कहानी भी लिखने लगे?"

"नहीं जी," झेंपते हुए वे बोले, "वे तो केवल भूमिका लेखक हैं। जरा आँख खोलकर पढ़ो।"

मैंने कहना चाहा कि आंख खोलकर मत पढ़वाओ, नहीं पुस्तक बन्द हो जाएगी। परन्तु मेरा मुँह न खुला और वे न जाने क्या समझकर खुल गये गाड़ी की तरह। मैं देखता रह गया कि बड़े लोगों का नाम जुड़ने से पुस्तक कितनी तेज़ चल सकती है और लेखक भी। गोया भूमिका न हुई इंजिन हुआ। फिर तो उनमें दौड़-धूप और चलता-पुर्जापन इतना आया कि उस भूमिका ने सोने के कई अंडे दिये। एक ओर पुरस्कार और दूसरी ओर नौकरी। मेरी आँखों में सिक्के कौंध गये और उसमें सारी पुस्तक झुलसती दिखी।

फिर सोचा क्यों न प्रकाशक जी को यही सब समझाकर एक पत्र लिख दूं और वे मान जायँ। और पत्र शुरू कर दिया—

काशी,
१ जनवरी १९५१

भाई,

'शेष प्रश्न' की 'कमल' एक स्थान पर कहती है कि स्पष्ट कहने का लोभ जिन्हें बहुत ज्यादा होता है, वे अगर लेखक हुए तो अपने ग्रन्थ की भूमिका लिखते हैं और अगर नाटककार हुए तो वे खुद ही अपने नाटक के नायक बनकर अभिनय करते हैं। लेकिन मुझे स्पष्ट कहने का लोभ नहीं। जो कुछ कहना था, पुस्तक में कह चुका। अब कोई सफ़ाई देने की ज़रूरत नहीं। यों, सफ़ाई बड़ी अच्छी चीज़ है, लेकिन जब 'दी' जाती है तो कूड़ा हो जाती है। अगर इसमें कोई भाव स्पष्ट नहीं हुआ है तो किसी अगली में होगा।

जानता हूँ कि तुलसी जैसे महान् कवि ने भी मानस में मामूली नहीं महान् भूमिका बाँधी है। लेकिन वह अपने बूते की बात नहीं। न तो कहे बिना मेरा पेट फूल रहा है जो 'दो शब्द' के नाम पर 'बीस पृष्ठ' भरूँ और न 'दो बात' के बहाने दो सौ दुलत्तियाँ झाड़नी हैं। न तो मुझे 'अपनी बात' के बुर्के से दूसरों को आड़े हाथों लेना है और न 'कृतज्ञता' के सिर चढ़कर 'विज्ञता' प्रदर्शित करनी है। न तो मुझे 'आमुख' लिख कर किसी को विमुख करना है और न 'प्रस्तावना' के मुख से 'संस्तवना'। शीर्षक देना 'भूमिका' और कहना 'आकाश का' मुझे नहीं सोहता। यह भी क्या धोखा कि लिखना अन्त में और कहना 'प्राक्कथन'!

'भूमिका' के पर्याय इन विविध नामों और रूपों में यह विरोध देखकर मैं सकुच रहा हूँ। मेरी पुस्तक उस लोक-कथा का 'बित्तन' नहीं है जो स्वयं तो हो केवल बित्ता-भर की लेकिन उसमें लटक रही हो भूमिका की ढाई हाथ वाली दाढ़ी! कैसे चलेगी बेचारी! सुनते हैं—

'बित्ता भर के बितनू अढ़ाई हाथ के दाढ़ी
चले लगलें बितनू त हिलै लगल दाढ़ी।'

समस्या-नाटकों में बीस पृष्ठ का नाटक चालीस पृष्ठ की भूमिका पीठ पर लादकर भले ढो ले जाय; परन्तु मेरी पुस्तक यह भार न सह सकेगी।

मैं नहीं चाहता कि पुस्तक की खाली क़नात के बाहर खड़ी होकर भूमिका विचित्र अंग-भंगी के साथ भीतरी तमाशे की महिमा गा-गाकर टिकट बेचे।

भूमिका की ही छोटी बहिन है सम्मति। बड़ी बहिन के न रहने पर कहीं आप छोटी की ही ओर न लपकें, इसलिए उसके लिए भी आगाह करदूं। अनेक समालोचकों को देखा है जो भूमिका अथवा सम्मति लिखने के लिए स्वयं ही बहुत आकुल रहते हैं; परन्तु दूसरों के सामने रौब ग़ालिब करने के लिए कहते हैं कि फ़लाँ फ़लाँ लोगों ने जब सौ बार नाक रगड़ी तो दो पंक्तियाँ लिख दीं। लेकिन यह तो 'सम्मति' छापने वाले ही जानते हैं कि कभी-कभी 'सम्मति' माँगने पर भी ये महानुभाव चार पृष्ठ का लेख भेज देते हैं ताकि अगली बार से लेखक उन्हीं के पास भूमिका के लिए आये। कुछ लोगों का जैसे सभाओं का सभापतित्व करना ही काम रह गया है, उसी तरह कुछ का यह हो गया है कि वे दूसरों की पुस्तकों में भूमिका लिखें।

लेखक भी कम चालाक नहीं। मँगाते हैं सम्मति और दे देते हैं भूमिका नाम से। कुछ मँगाते हैं भूमिका और उसे अनुकूल न पाकर प्रशंसावाला अंश सम्मति के रूप में दे देते हैं अथवा भूमिका ही दबा जाते हैं और बाद में लिख देते हैं कि स्थानाभाव के कारण न दी जा सकी।

'शेष स्मृतियाँ' के लेखक जैसा भी नहीं होना चाहिए जो आचार्य शुक्ल जैसे विद्वान् लेखक की भूमिका से लाभ उठाकर 'रॉयल्टी' तो पाऊँ परन्तु पाठक खो दूँ। अपनी पुस्तक के भीतर इस तरह दूसरे की पुस्तक बेचना बहुत-कुछ आम के ऊपर पीपल जमाना है।

(शेषांश पृष्ठ ६४ पर)

काम करना जीवन का लक्षण है।

पर कभी-कभी कुछ न करने में और फिर भी आराम चाहने में कैसा-कितना जीवन होता है!

परेशानियाँ डुबा देना अच्छा होता है।

पर क्या जाने कुछ लोग क्यों उन्हें समेटे फिरते हैं और फिर ऊपर-ऊपर सतह पर ही तैराया भी करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

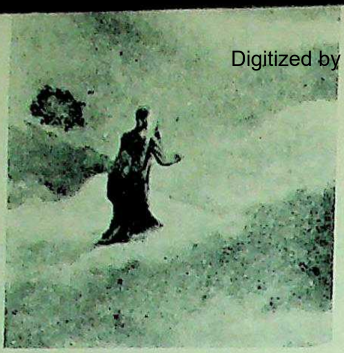

मालूम नहीं

नीरज

(१)

उसकी अनगिन बूँदों में स्वाती बूँद कौन ?
यह बात स्वयं बादल को भी मालूम नहीं।

किस एक साँस से गाँठ जुड़ी है जीवन की ?
हर जीवन से ज्यादा यह प्रश्न पुराना है,
कौन-सी जलन जलकर सूरज बन जाती है
बुझकर भी दीपक ने यह भेद न जाना है,
परिचय करना तो है बस मिट्टी का स्वभाव,
चेतना रही है सदा अपरिचित ही बन कर,
इसलिए हुआ है अक्सर ही ऐसा जग में
जब चला गया मेहमान, गया पहिचाना है
खिल-खिल कर, हँस-हँस कर, झर-झर कर काँटों में
उपवन का ऋण तो भर देता हर फूल, मगर
मन की पीड़ा कैसे ख़ुशबू बन जाती है ?
यह बात स्वयं पाटल को भी मालूम नहीं

उसकी अनगिन बूँदों में स्वाती बूँद कौन ?
यह बात स्वयं बादल को भी मालूम नहीं।

(२)

क्यूं सूरज जल जल कर दिन भर तप करता है
जब पूछा संध्या से वह चाँद बुला लाई,
क्यूं ऊषा हँसती है निशि के भर जाने पर
जब एक कली से कहा खिली वह मुसकाई,
हर एक प्रश्न का उत्तर है दूसरा प्रश्न,
उत्तर तो सिर्फ निरुत्तर ही है इस जग में
जब जब रोई है लाश गोद में मरघट की
तब तब है बजी कहीं पर कोई शहनाई
हर एक रुदन के साथ जुड़ा है एक गान
यह सत्य जानता है हर एक सितार, मगर
किस घुँघरू से कितना संगीत छलकता है
यह बात स्वयं पायल को भी मालूम नहीं।

उसकी अनगिन बूँदों में स्वाती बूँद कौन ?
यह बात स्वयं बादल को भी मालूम नहीं।

(३)

किस क्षण अधरों पर कौन गीत उग आयेगा
खुद नहीं जानती गायक की स्वरवती श्वास,
कब घट के निकट स्वयं पनघट उठ आयेगा
यह मर्म बताने में है चिर असमर्थ प्यास,
जो जाना--वह सीमा है सिर्फ जानने की
सत्य तो अजाने ही आता है जीवन में
उस क्षण भी कोई बैठा पास दिखाता है
जब होता अपना मन भी अपने नहीं पास।
जिस उँगली ने उठ कर यह अंजन आंजा है
उसका तो पता बता सकते कुछ नयन, किन्तु-
किस आँसू से पुतली उजली हो जाती है ?
यह बात स्वयं काजल को भी मालूम नहीं

उसकी अनगिन बूँदों में स्वाती बूँद कौन ?
यह बात स्वयं बादल को भी मालूम नहीं।

(४)

उस रोज़ राह पर मिला एक टूटा दर्पण
जिसमें मुख देखा था हर चाँद सितारे ने
काजल कंघी, सेंदुर बिंदी से बार - बार
सिंगार किया था हँस हँस साँझ सकारे ने,
लेकिन टुकड़े टुकड़े हो कर भी वह मैंने
देखा सूरज से अपनी नजर मिलाये था
जैसे सागर पर हाथ बढ़ाया हो मानो
बुझते बुझते भी किसी एक अंगारे ने,
मैंने पूछा--इतना जर्जर जीवन लेकर
कैसे कंकड़, पत्थर की चोटें सहता तू
वह बोला--"किस चोट से चोट मिट जाती है
यह बात स्वयं घायल को भी मालूम नहीं

उसकी अनगिन बूँदों में स्वाती बूँद कौन ?
यह बात स्वयं बादल को भी मालूम नहीं।

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खड़ी-बोली गद्य की पूर्व - पीठिका

शिवदान सिंह चौहान

हिन्दी गद्य-साहित्य की सबसे पहली मौलिक कृति भारतेन्दु का 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' प्रहसन है जो 'एकान्त-वासी योगी' से १४ वर्ष पूर्व सन् १८७३ ई० में प्रकाशित हुआ। इसी वर्ष भारतेन्दु ने 'हरिश्चन्द्र मैगज़ीन' निकाली थी; एक वर्ष बाद उन्होंने इस पत्रिका का नाम बदल कर 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' कर दिया। इसकी भाषा के सम्बन्ध में स्वयं भारतेन्दु ने लिखा था कि "हिन्दी नई चाल में ढली, सन् १८७३ ई०।" किन्तु फिर भी भाषा की दृष्टि से चाहे हम सन् १८७३ को हिन्दी-गद्य का आरम्भ-काल न मानें, साहित्य की दृष्टि से तो 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' को ही हिन्दी साहित्य की प्रथम मौलिक रचना स्वीकार करना पड़ेगा।

हिन्दी गद्य के विकास की दृष्टि से यह तिथि अवश्य सही नहीं है। साथ ही, यह आश्चर्य की बात नहीं है कि हिन्दी में पहले गद्य का विकास हुआ और फिर पद्य-साहित्य का, यद्यपि विश्व की अधिकांश भाषाओं के इतिहास में साहित्यिक विकास का क्रम इससे उल्टा रहा है। उत्तर-भारत में अंग्रेजों के शासन की स्थापना, प्रेस आदि लग जाने से उत्पन्न प्रचार-साधन की सुविधा और पराधीनता के विरुद्ध उत्पन्न हुई स्वाभाविक प्रतिक्रिया, पुनरुत्थान की भावना और राष्ट्रीय जागरण की प्रथम चेतना के फलस्वरूप ही यह विकास सम्भव हो सका। इन परिस्थितियों में सबसे पहले एक ऐसी भाषा में साहित्य-रचना की आवश्यकता महसूस हुई जो समान रूप से समूचे भारत में या कम से कम देश के केन्द्रीय नगरों में, समझी जाती हो—बोली नहीं—और देश की राजनीतिक, सामाजिक एकता में योग दे सके। मुसलमान सम्राटों के दीर्घकालीन राजत्वकाल में सांस्कृतिक आदान-प्रदान और राजकीय आवश्यकताओं के कारण परम्परा से अपने उर्दू और हिन्दी रूपों में, एक खड़ी-बोली ही समूचे देश में अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार की भाषा बनी हुई थी। इसलिए खड़ी-बोली इन दोनों के रूपों में, विशेष रूप से हिन्दी में गद्य का इतनी तेज़ी से विकास हुआ। हिन्दी में विशेष रूप से इसलिए कि संस्कृतनिष्ठ हिन्दी-रूप अन्य भारतीय भाषाओं के अधिक निकट है।

खड़ी-बोली हिन्दी गद्य की प्राचीनता प्रमाणित करने के लिए भी हमारे इतिहासकारों ने काफ़ी ज़ोर लगाया है। लेकिन कुछ फुटकर रचनाएँ ही हाथ लगी हैं। ऐसी फुटकर रचनाओं में अकबरी दरबार के गंग कवि की 'चन्द छन्द बरनन की महिमा' सर्वप्रथम उल्लेखनीय है। सन् १५८० में लिखी गयी इस छोटी-सी पुस्तक को हिन्दी गद्य की पुस्तक माना जाता है। इसके बाद जटमल नाम के लेखक की पुस्तक 'गोरा बादल की कथा' मिलती है, जिसका रचना-काल सन् १६२४ ई० है। इन दोनों पुस्तकों की भाषा ब्रज-मिश्रित खड़ी-बोली है और साहित्यिक दृष्टि से दोनों का मूल्य नगण्य है। इसके बाद एक शताब्दी से अधिक काल तक हिन्दी गद्य का फिर कोई उदाहरण सामने नहीं आता। पटियाला की महारानी को कथा बाँचकर सुनानेवाले पण्डित रामप्रसाद निरंजनी ने सन् १७३२ ई० में संस्कृत से योगवासिष्ठ का साफ़-सुथरी परिमार्जित खड़ी-बोली हिन्दी में 'भाषा-योग-वासिष्ठ' नाम से अनुवाद किया। लेकिन इससे यह परिणाम निकालना गलत होगा कि उनके समय में हिन्दी में परिष्कृत गद्य लिखा जाने लगा था, क्योंकि इनके पश्चात् सन् १७६१ ई० में पण्डित दौलतराम ने हरिषेणाचार्य कृत 'जैन पद्मपुराण' का हिन्दी में जो अनुवाद किया उसकी भाषा त्रुटिपूर्ण और अपरिमार्जित है। इसी प्रकार राजपूताने के किसी अज्ञात लेखक की पुस्तक 'मण्डोवर का वर्णन' (रचनाकाल लगभग १८३० ई०) की भाषा शुद्ध खड़ी-बोली नहीं है। इन कतिपय उदाहरणों से हिन्दी-गद्य की परम्परा को उन्नीसवीं शताब्दी से पहिले खींच ले जाना उचित नहीं जान पड़ता। ये अपवाद हैं। और साहित्यिक दृष्टि से मूल्यवान न होने के कारण और भी कम महत्व रखते हैं। वस्तुतः हिन्दी-गद्य की अखंड परम्परा का उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से और गद्य-साहित्य (नाटक, उपन्यास, कहानी आदि) का उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से ही सूत्रपात होता है।

रामप्रसाद निरंजनी और दौलत राम के बाद उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में हिन्दी-गद्य के प्रारम्भिक उन्नायकों में मथुरानाथ शुक्ल, सदासुखलाल, इंशा, लल्लूलाल और सदल मिश्र के नाम गिनाये जाते हैं। इनमें से सैयद इंशा अल्ला खां को हम हिन्दी-गद्य परम्परा के विकास में सम्मिलित करना उचित नहीं समझते। उर्दू गद्य की विकास-परम्परा में ही वस्तुतः उनका स्थान है। इंशा उर्दू के प्रसिद्ध शायर थे और शाहजहानाबाद (दिल्ली) की उर्दू को ही भाषा का प्रमाण मानते थे, और यद्यपि अपनी 'रानी केतकी की कहानी' (रचना-काल १७९८ से १८०३ ई० के बीच) में उन्होंने मौज में आकर भाषा-सम्बन्धी एक नया प्रयोग करना चाहा, अर्थात् अरबी-फ़ारसी, संस्कृत, ब्रज, अवधी आदि सब भाषाओं के शब्दों से दामन बचा कर ठेठ खड़ी-बोली में अपनी कहानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहने का बीड़ा उठाया, लेकिन फिर भी उनकी भाषा पर फ़ारसी ढंग के उर्दू वाक्य-विन्यास का काफ़ी प्रभाव है, जिसमें हिन्दी के कर्त्ता-कर्म-क्रिया के क्रम में उलट-फेर हो जाता है। रानी केतकी की कहानी की भाषा अपनी प्रवृत्ति से सरल हिन्दी की अपेक्षा सरल उर्दू के अधिक निकट है। बाक़ी लेखकों में से मथुरानाथ शुक्ल और सदासुखलाल ने स्वान्तः सुखाय लिखा, किसी के आदेश पर नहीं; लेकिन लल्लू लाल और सदल मिश्र ने फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के अध्यक्ष जॉन गिलक्राइस्ट के आदेश पर हिन्दी में अनुवाद प्रस्तुत किये। इन चारों का रचना-काल लगभग एक ही है, इस बात ने भी हमारे संग्रहवादी इतिहासकारों को बड़ी हद तक व्यर्थ की ऊहापोह में आज भी फँसा रखा है। आधुनिक हिन्दी-गद्य का जन्म अंग्रेज़ों के आदेश पर और उनके तत्वावधान में हुआ या स्वतंत्र रूप से, इस प्रश्न की खोजबीन करने और सर जॉर्ज ग्रियर्सन के इस दावे का खंडन करने के लिए कि "इस प्रकार की भाषा भारतवर्ष में पहले कहीं नहीं थी। इसलिए जब लल्लूलाल ने 'प्रेमसागर' लिखा, उस समय उन्होंने एक बिल्कुल नई भाषा ही गढ़ी," उन्होंने व्यर्थ ही सैकड़ों पन्ने काले किये हैं। गत शताब्दी में जब सर सैयद अहमद खाँ ने हिन्दी का विरोध किया था और अँग्रेज़ी सरकार की दुर्नीति के विरुद्ध देश-भर में हिन्दी आन्दोलन चल पड़ा था, उस समय इस बहस का कोई मूल्य हो सकता था, लेकिन आज इसका विशेष मूल्य नहीं रहा। हिन्दी - आन्दोलन और हिन्दी-साहित्य का विकास दो भिन्न चीज़ें हैं। इतिहास में हिन्दी-आन्दोलन का उल्लेखमात्र पर्याप्त होना चाहिए। स्मरण रहे कि कोई एक व्यक्ति किसी भाषा के गद्य का जनक नहीं होता; और न किसी के आदेश पर कोई व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह एक बिल्कुल नई भाषा ही गढ़ सकता है। इसलिए इस प्रसंग में केवल इतना जानना ही पर्याप्त है कि एक ओर मुंशी सदासुखलाल 'नियाज़' (सन् १७४६—१८२४) ने, जो उर्दू और फ़ारसी के भी लेखक और शायर थे, उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में, 'सुखसागर' के नाम से श्रीमद्भागवत का हिन्दी में अनुवाद किया, और लगभग इसी समय मथुरादास ने 'पंचांग दर्शन' लिखा। इन दोनों लेखकों की हिन्दी रामदास निरंजनी के 'योगवासिष्ठ' जैसी ही थी, परिमार्जित और व्यवस्थित, यद्यपि उसमें यत्र-तत्र पंडिताऊ प्रयोग भी मिलते हैं। दूसरी ओर लगभग इसी समय (सन् १८०० ई०) कलकत्ते में अंग्रेज़ों ने फ़ोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की। अपनी राजकीय आवश्यकताओं के कारण उन्हें यहाँ की भाषाएँ सीखने-सिखाने की ज़रूरत हुई। मुसलमानी दरबारों के प्रभाव से उस समय खड़ी-बोली का उर्दू रूप ही प्रधानतः अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार और उत्तर-भारत के शिष्ट-जनों की भाषा बना हुआ था। हिन्दी का व्यवहार बहुत सीमित था, यद्यपि उसकी सम्भावनाएँ अपरिसीमित थीं, क्योंकि उर्दू की अपेक्षा हिन्दी अन्य प्रादेशिक भाषाओं के अधिक निकट थी। अँग्रेज़ों ने इस सम्भावना को देखा और अपने शासन की सुविधाओं का विचार करके उन्होंने एक ओर उर्दू को संरक्षण-प्रोत्साहन दिया तो दूसरी ओर हिन्दी को भी थोड़ा-थोड़ा आगे बढ़ाया। इससे उनकी दुरंगी नीति द्वारा शासन करने की पद्धति को भी भाषा के प्रश्न पर हिन्दू-मुसलमान का साम्प्रदायिक द्वेष फैलाने का पूरा अवसर मिल गया। अँग्रेज़ी राज्य की स्थापना से पश्चिम की आधुनिक औद्योगिक संस्कृति के सम्पर्क में आने के कारण उस ऐतिहासिक प्रक्रिया का सूत्रपात होना अनिवार्य हो गया था, जिसकी परिणति राष्ट्रीय जागरण और विभिन्न भाषाओं के आधुनिक गद्य-पद्य-साहित्यों के विकास में हुई। फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के अध्यक्ष डॉ० जॉन गिलक्राइस्ट की देख-रेख में और उनके आदेश पर लल्लूलाल (सन् १७६३—१८२५ ई०) ने यदि भागवत के दशम स्कन्ध की कथा को लेकर ब्रज-मिश्रित, कथावाचकों जैसी अनियंत्रित, अव्यवस्थित और उखड़ी-पुखड़ी भाषा में 'प्रेम सागर' की रचना न की होती, या 'बैताल पचीसी', 'सिंहासन बत्तीसी', 'शकुन्तला नाटक' और 'माधोनल' आदि के सरल हिन्दी में अनुवाद न किये होते और पंडित सदल मिश्र ने 'चन्द्रावती' और 'नासिकेतोपाख्यान' हिन्दी में न लिखे होते, तो भी देश में ऐसी परिस्थितियों और शक्तियों का जन्म हो रहा था, जो शिक्षित और प्रबुद्ध वर्ग के एक भाग को हिन्दी की ओर अनिवार्यतः मोड़तीं ही। इसलिए हिन्दी-गद्य के जनक की टोह के लिए सदासुखलाल, इंशाअल्ला, लल्लूलाल या सदल मिश्र के जीवन-वृत्तों की खोज-बीन में हमारे इतिहासकारों को व्यर्थ समय नहीं गँवाना चाहिए। रामप्रसाद निरंजनी, सदासुखलाल, इंशाअल्ला, मथुरादास के हिन्दी अनुवादों ने या फ़ोर्ट विलियम कॉलेज ने हिन्दी-गद्य और

एक नये व्यापारी थे। शौक़ में उन्होंने दफ्तर में जगह-जगह बोर्ड टँगवाये जिन पर लिखा था : 'जो करना है तत्काल करो, टालो मत!'

कुछ दिन बाद एक मित्रने पूछा : कहो, क्या परिणाम रहा नयी योजना का? कुछ लाभ रहा?

खिसियाना-सा व्यापारी बोला : लाभ? तीन क्लर्कों ने वेतन बढ़ाने की नोटिस दी है, चपरासी दूसरी जगह जाकर मिल गया है, और ऐकाउण्टेंट साहब टाइपिस्ट को लेकर गायब हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

०७८००२

साहित्य के विकास में जो योग और प्रोत्साहन दिया, वह उन सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों की तुलना में नगण्य है, जिनकी आवश्यकताओं से राष्ट्रीय जागरण की लहर फैली और उन देशव्यापी सुधार-आन्दोलनों का जन्म हुआ जिन्होंने राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर देश की राजनीतिक एकता की नींव दृढ़ करने के लिए उर्दू के साथ-साथ, और अधिकतर उसकी अपेक्षा में, हिन्दी को ही प्रचार और साहित्य-रचना का माध्यम चुना।

हिन्दी-प्रचार में जिन लोगों ने योग दिया उनमें ईसाई-धर्मोपदेशकों का नाम सबसे पहले उल्लेखनीय है। ईसाई पादरी डॉ० विलियम कैरे सन् १७९३ में हिन्दुस्तान आये और उन्होंने मलबार में एक गिरजा-घर की स्थापना करके गाँवों में ईसाई-धर्म के उपदेश देना आरम्भ किया। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने जब इस कार्य में बाधा डाली तो उन्होंने अपने साथियों के सहित बंगाल के सिरामपुर में आकर ईसाई मिशन की स्थापना की। इस स्थान से उन्होंने भारत की २७ भाषाओं में इंजील का अनुवाद कराके प्रकाशित किया। हिन्दी में स्वयं विलियम कैरे ने मुंशी सदासुखलाल की परिमार्जित, संस्कृत-निष्ठ शैली में इंजील का अनुवाद किया, जो सन् १८१९ में प्रकाशित हुआ। इसके बाद ईसाई मिशन देश के अन्य स्थानों में भी खुले, और उनकी ओर से ईसाई-धर्म और शिक्षा-सम्बन्धी पुस्तकों का, देश की अन्य भाषाओं की तरह, हिन्दी में प्रकाशन होना शुरू हो गया। अनेक स्थानों पर अँग्रेजी शिक्षा के लिए स्कूल खुल गये थे और पाठ्य-पुस्तकों की माँग बढ़ गयी थी। ईसाइयों ने आगरे में सन् १८३३ के लगभग 'स्कूल बुक सोसाइटी' क़ायम की और पं० रतनलाल, ओंकार भट्ट, प्रियानाथ, बद्रीलाल शर्मा आदि हिन्दी के जानकार लोगों से विविध विषयों पर शिक्षा-सम्बन्धी पुस्तकें और संग्रह तैयार करवाये।

अँग्रेजी राज्य के प्रारम्भ में कचहरी की भाषा फ़ारसी ही रही, लेकिन शिष्ट-वर्ग में फ़ारसी का व्यापक प्रचलन होने पर भी सर्वसाधारण इस भाषा से अपरिचित थे। शासन की सुविधाओं को ध्यान में रखकर कम्पनी-सरकार ने जुलाई सन् १८३६ में एक ऐक्ट द्वारा फ़ारसी को हटाकर प्रान्तीय भाषाओं को कचहरी की भाषा का स्थान दे दिया। बंगाल में बंगला की तरह युक्त प्रान्त में फ़ारसी और नागरी लिपि में हिन्दी बोली ही प्रथमत: कचहरी की भाषा बनायी गयी। लेकिन कम्पनी इस नीति पर अधिक दिनों तक दृढ़ न रह सकी और एक वर्ष बाद ही (सन् १८३७ ई०) उत्तरी-भारत के सब दफ्तरों की भाषा उर्दू कर दी गयी। संयुक्त-प्रान्त और उत्तर-भारत में उर्दू के प्रति अँग्रेज़ों का यह पक्षपात भारत छोड़ने के समय तक (सन् १९४७ ई०) लगातार बना रहा, यद्यपि सर सैयद अहमद खाँ के हिन्दी-विरोध की प्रतिक्रिया के रूप में उत्पन्न हिन्दी-आन्दोलन की व्यापकता से डरकर अँग्रेज सरकार ने सन् १८८२ ई० में विहार और मगध-प्रदेश में उर्दू को हटाकर हिन्दी को कचहरी की भाषा मान लिया था और सन् १९०१ में संयुक्त प्रान्त के अदालती अहलकारों के लिए भी नागरी लिपि का जानना अनिवार्य कर दिया था। लेकिन यह बहुत मामूली रियायत थी, क्योंकि व्यवहारत: कचहरी की भाषा अन्त तक उर्दू ही बनी रही।

अँग्रेजों ने अपनी नीति से भाषा के क्षेत्र में भी हिन्दू-मुसलमान का प्रश्न उठा दिया था। इसलिए जब ईस्वी सन् १८५५ में शिक्षा का स्थायी प्रबन्ध होने लगा तब उर्दू और हिन्दी के पक्ष में अलग-अलग आन्दोलन उठ खड़े हुए। यह आन्दोलन तब से किसी न किसी रूप में अँग्रेज़ों से स्वतंत्रता मिलने तक चलते रहे हैं, और अब भी कभी-कभी उभर पड़ते हैं। इन आन्दोलनों ने हिन्दू और मुसलमानों के बीच जितनी कटुता और वैमनस्य की भावना पैदा की उतनी और किसी आन्दोलन ने नहीं की। वास्तव में यह हमारे सांस्कृतिक और राष्ट्रीय इतिहास का कलंकपूर्ण और दुखदायी प्रसंग है। राष्ट्रीय चेतना उस समय तक इतनी व्यापक नहीं हुई थी कि वह इन आन्दोलनों को अपनी-अपनी भाषाओं के माध्यम से केवल रचनात्मक कार्य में लगे रहने की प्रेरणा देती और संकीर्ण साम्प्रदायिक पथ पर भटक जाने से रोकती। हम पहले कह चुके हैं कि भाषा का कोई धर्म नहीं होता, लेकिन ये आन्दोलन इस ग़लत आधार को लेकर ही पनपे और उनकी काली छाया अभी तक विद्वानों और इतिहासकारों के हृदय से मिट नहीं पायी है।

काशी के राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' (सन् १८२९-१८९५ ई०) और आगरे के राजा लक्ष्मणसिंह (सन् १८२६-१८९६ ई०) ने हिन्दी का पक्ष ग्रहण किया। राजा शिवप्रसाद की साक्षी के अनुसार उर्दू ही उस समय के शिष्ट-वर्ग

वक्ता महोदय ने मद्य-निषेध पर भाषण दिया। अन्त में पूछा, "अच्छा, मान लीजिए, में एक बालटी पानी और एक बालटी शराब मँगाकर यहाँ रख दूँ और एक गदहे को बुलवाऊँ तो वह किस बालटी से मुँह लगायगा?"

श्रोताओं ने उत्तर दिया, "पानी की बालटी से।"

वक्ता ने फिर पूछा, "आखिर क्यों?"

श्रोताओं का तत्काल उत्तर था, "वह गदहा जो ठहरा!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की भाषा थी, साथ ही कचहरी की भाषा भी होने के कारण वे चाहते थे कि हिन्दू भी इसे सीखकर बड़े-बड़े ग्रोहदे प्राप्त करें। इसलिए उनका विरोध उर्दू भाषा से नहीं था, प्रत्युत संस्कृत के विद्वान् होते हुए भी उन्होंने ग्रपनी पुस्तकों में ग्रधिकतर फ़ारसी-बहुल भाषा का ही प्रयोग किया है। उनका विरोध केवल फ़ारसी-लिपि से था। वे चाहते थे कि फ़ारसी लिपि के साथ-साथ शिक्षालयों में नागरी लिपि का भी समान व्यवहार हो। सर सैयद ग्रहमद खाँ ग्रौर उनके साथी नागरी लिपि ग्रौर हिन्दी-भाषा के कट्टर विरोधी थे ग्रौर हिन्दी को गँवारू भाषा कहकर पुकारते थे। लेकिन राजा शिवप्रसाद के प्रयत्नों से कम्पनी-सरकार को स्कूलों में हिन्दी की शिक्षा को स्थान देना पड़ा। उन्होंने पंडित वंशीधर, श्री लाल ग्रौर बद्रीलाल ग्रादि से हिन्दी में ग्रनेक पाठ्य-पुस्तकें लिखवाईं ग्रौर स्वयं भी लगभग २२ पुस्तकें लिखीं, जिनका साहित्यिक मूल्य साधारण है। 'राजा भोज का सपना' ग्रौर 'मानव-धर्म सार' को छोड़कर ग्रधिकांश पुस्तकों की भाषा उर्दू है, केवल यत्र-तत्र संस्कृत के कुछ शब्दों की पुट भर है। राजा साहब ने युक्त-प्रान्त के शिक्षा-विभाग में इन्स्पेक्टर-पद पर नियुक्त होने से लगभग दस वर्ष पूर्व सन् १८४६ ई० में काशी से 'बनारस ग्रखबार' निकाला था, जिसकी भाषा भी वस्तुतः उर्दू ही थी।

राजा लक्ष्मण प्रसाद सिंह राजा शिवप्रसाद सिंह की उर्दू-परस्ती के विरोधी थे। वे हिन्दी भाषा में फ़ारसी-ग्ररबी के प्रचलित शब्दों तक का प्रयोग ग्रनुचित समझते थे। सबसे पहले उन्होंने ही यह ग्रावाज़ उठाई कि हिन्दी ग्रौर उर्दू दो पृथक्-पृथक् भाषाएँ हैं ग्रौर किसी भी कृत्रिम ढंग से उन्हें एक बनाने की चेष्टा ग्रसफल रहेगी। स्वयं उन्होंने 'योग-वासिष्ठ' ग्रौर 'प्रेमसागर' की भाषा को ग्रपने लिए प्रमाण माना। फ़ारसी के प्रभाव से हिन्दी को मुक्त करने के लिए उन्होंने सन् १८६२ में ग्रागरे से 'प्रजा हितैषी' नाम का पत्र निकाला। हिन्दी के लिए ग्रान्दोलन करने के ग्रतिरिक्त उन्होंने हिन्दी-साहित्य को यद्यपि कोई मौलिक कृति नहीं दी, लेकिन सन् १८६३ में कालिदास के 'ग्रभिज्ञान शाकुन्तल', सन् १८७८ में 'रघुवंश' ग्रौर सन् १८८२-४ में 'मेघदूत' का ग्रनुवाद करके एक प्रकार से बहुत कुछ दिया। विशेषकर 'शकुन्तला नाटक' ने ग्रागे चलकर भारतेन्दु ग्रौर समकालीन लेखकों को हिन्दी में मौलिक साहित्य के सृजन की प्रेरणा दी। भाषा-प्रयोग कहीं-कहीं बेढंगे ग्रौर पुराने ग्रवश्य हैं; लेकिन उन्होंने ही हिन्दी-गद्य को पहली बार पुष्ट ग्रौर व्यवस्थित साहित्यिक रूप दिया।

इन दोनों राजाग्रों के उद्योग से हिन्दी का कार्य जिस प्रकार संयुक्त-प्रान्त (ग्रब उत्तर-प्रदेश) में चलने लगा, उसी तरह पंजाब में हिन्दी के लिए उनके समकालीन बाबू नवीनचन्द्र राय ग्रौर श्रद्धाराम फुल्लौरी ने डटकर ग्रान्दोलन किया। नवीनचन्द्र राय ने ब्रह्म-समाज के उदार सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए समय-समय पर हिन्दी में कई पत्रिकाएँ निकालीं ग्रौर ग्रनेक पाठ्य-पुस्तकें भी लिखीं। पंडित श्रद्धाराम फुल्लौरी ग्रपने समय के प्रसिद्ध कथावाचक ग्रौर वक्ता थे ग्रौर ग्रार्य-समाज के विरोध में सनातन धर्म के समर्थक थे। वह पंजाबी ग्रौर उर्दू में भी लिखते थे, लेकिन ग्रपनी मुख्य पुस्तकें उन्होंने हिन्दी में ही लिखीं। उनकी सिद्धान्त-पुस्तक 'सत्यामृत प्रवाह' में धर्म-सम्बन्धी विषयों में भी उनकी स्वतंत्र विचारणा के दर्शन होते हैं। उन्होंने सन् १८७६ ई० में 'भाग्यवती' नाम का एक सामाजिक उपन्यास भी लिखा, जो उन दिनों काफ़ी प्रशंसित हुग्रा।

रचनात्मक-क्षेत्र में इस व्यापक हिन्दी-ग्रान्दोलन की देन उन्नीसवीं शताब्दी के सातवें दशक तक ग्रधिकतर हिन्दी-गद्य-लेखन का एक निश्चित ढर्रा बनाने ग्रौर हिन्दी में विद्यार्थियों के लिए पाठ्य-पुस्तकें ग्रौर संग्रह तैयार करने ग्रौर हिन्दी चेतना फैलाने तक ही सीमित रही। उन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी के भारतीय जन-मानस को नये विचारों ग्रौर भावनाग्रों से उद्बुद्ध करके राष्ट्रीय जागृति नहीं फैलायी। यह कार्य हमारे राष्ट्रीय जागरण के ग्रग्रदूत राजा राममोहन राय ग्रौर बाद में स्वामी दयानन्द सरस्वती के नेतृत्व में क्रमशः चलनेवाले 'ब्रह्म-समाज' ग्रौर 'ग्रार्य-समाज' जैसे सुधार ग्रान्दोलनों ने किया। ईसाइयों के धर्म-प्रचार ग्रौर ग्रँग्रेज़ी-शिक्षा के द्वारा पाश्चात्य सभ्यता ग्रौर ग्रौद्योगिक संस्कृति के सम्पर्क में ग्राने से भारतीय समाज की कुरीतियों, देश की पराधीनता ग्रौर ग्रँग्रेज़ी राज्य के ग्रार्थिक शोषण के प्रति मध्यवर्ग के पढ़े-लिखे लोगों का सजग हो जाना स्वाभाविक ही था। राजा राममोहन राय युग की चुनौती सुनकर उपनिषद् ग्रौर वेदान्त का ब्रह्म-तत्त्व लेकर उठ खड़े हुए। उन्होंने सती-प्रथा, मूर्त्ति-पूजा, तीर्थाटन, जाति-पाँति, छुग्रा-छूत को ग्रलग करके शुद्ध ब्रह्मोपासना के प्रचार के लिए 'ब्रह्म-समाज' की स्थापना की ग्रौर सन् १८१६ में वेदान्त-सूत्रों का स्वतन्त्र भाष्य करके हिन्दी में छपाया। बंगाल में इस ग्रान्दोलन का पुराण-पन्थी लोगों ने घोर विरोध भी किया, लेकिन कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के पितामह राजा द्वारिकानाथ ठाकुर ग्रादि

एक बहुत पढ़ा-लिखा, ग्राधुनिक परिवार। लड़का परीक्षा में फ़ेल हो गया। कारणों की चर्चा के दौरान में पिता से बोला, "क्यों, ग्रापकी राय में मेरे फ़ेल होने का क्या कारण होगा: मेरे जन्मजात संस्कार या यहाँ का परिवेश ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की सहायता से वे सारे देश में प्रगतिशील चेतना फैलाने में समर्थ हुए। राजा राममोहन राय की दृष्टि उस युग के सभी सुधारवादियों से अधिक व्यापक, उदार और आधुनिक थी। पाश्चात्य सभ्यता और ईसाई-धर्म के प्रति उनका अन्ध-विरोध न था। वे भारतीयता की रक्षा करते हुए समन्वय-वादी थे, और पाश्चात्य संस्कृति और जीवन-प्रणाली के प्रगति-शील तत्त्वों का अपनी संस्कृति में समाहार कर लेने के पक्ष-पाती थे। उनमें एक साम्प्रदायिक पुनरुत्थानवादी की संकी-र्णता और दुराग्रह न था। वे केवल नव-जीवन के अभिलाषी थे, और एक युग-द्रष्टा की तरह इतिहास की गति-दिशा को पहचानते थे। इसीलिए उन्होंने विचार-जगत् में जो क्रांति की, उसमें अनेक नवोदित प्रतिभाओं को अपने हृदय का उदात्त संदेश मिला। लेकिन स्वामी दयानन्द सरस्वती (१८२५–१८६४ ईस्वी) की दृष्टि इतनी व्यापक, उदार और उदात्त न थी। उनके आन्दोलन में खण्डन-मण्डन की प्रवृत्ति अधिक थी, और दूसरे धर्मों और सम्प्रदायों के प्रति घोर अश्रद्धा और विद्रूप का भाव था। आर्य-समाज के हिन्दू-पुनरुत्थानवादी दृष्टिकोण के कारण पंजाब और पश्चिमी संयुक्त-प्रान्त में हिन्दी-आन्दोलन को बल तो अवश्य मिला, लेकिन साम्प्रदायिक कटुता और संकीर्णता को भी कम प्रोत्सा-हन नहीं मिला।

सन् १८५७ के राजद्रोह में भारतीय जनता स्वाधीनता-संग्राम की प्रथम दीक्षा ले चुकी थी। नये विचार और नयी भावनाएँ फैल रही थीं। देश की अनेक भाषाओं में विशेषकर बंगला, तमिल और मराठी में नयी बलशाली प्रतिभाओं ने प्रस्फुटित होकर अपने-अपने साहित्यों का नव-संस्कार शुरू कर दिया था। उनके रचे साहित्य में युग-जीवन की व्यापक समस्याओं का कलात्मक चित्रण मिलता है। उनकी एकता-बोधिनी दृष्टि उदात्त और सार्वजनीन थी। जहाँ उन्होंने हिन्दू-समाज की जर्जर अवस्था पर क्षोभ प्रकट किया, वहाँ किसी अन्य धर्म, भाषा या जाति का साम्प्रदायिक द्वेष-भावना से तिरस्कार नहीं किया। उर्दू में ग़ालिब जैसे महाकवि ने काव्य को विचारों की वह महानता, भावों की गहराई और सौन्दर्य की गरिमा प्रदान करदी थी जो विश्व-साहित्य में अनुपम है, और जिस पर कोई भी देश या जाति चिर-काल तक गर्व कर सकती है। हिन्दी में ऐसी मौलिक प्रतिभाओं की प्रतीक्षा थी जो साहित्य के विभिन्न रूप-विधानों का विकास करके, उनके माध्यम से युग-जीवन की वास्तविकता का कलात्मक अंकन करतीं। ऐसे समय में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, बालमुकुन्द गुप्त, प्रतापनारायण मिश्र, बद्रीनारायण, चौधरी 'प्रेमघन', श्रीधर पाठक आदि का हिन्दी के रंगमंच पर उदय हुआ।

ये नाम हिन्दी-साहित्य के इतिहास में विशेष रूप से आदरणीय हैं, क्योंकि हिन्दी में मौलिक नाटक, कविता, उप-न्यास, कहानी, निबन्ध, आलोचना आदि साहित्य के विविध रूप-विधानों का जन्म और प्रारम्भिक विकास इन महानुभावों के ही कृतित्व का परिणाम है। तभी से हिन्दी-साहित्य की अखंड परम्परा शुरू होती है, अर्थात् हिन्दी-साहित्य का इति-हास शुरू होता है। किन्तु फिर भी इस बात को साहस-पूर्वक कहने की जरूरत है कि इनमें से कोई भी असाधारण प्रतिभा का साहित्यकार नहीं था। सभी साधारण प्रतिभा के लोग थे, साहित्यकार से अधिक सुधारक, प्रचारक और हिन्दी-आन्दोलनकारी थे। भारतेन्दु में औरों की अपेक्षा संगठन करने की क्षमता अधिक थी, जिससे उनके समकालीन उन्हें अपना अग्रणी और नेता मानते थे। इन प्रचारकों की दृष्टि सीमित थी और अनेक अन्तर्विरोधों से भरी हुई थी। भारतेन्दु और उनके साथी आर्य-समाज के पक्षपाती न थे, लेकिन आर्य-समाज आन्दोलन की संकीर्णता उनमें भी थी। हमारे इतिहासकार अब तक स्वयं अपने साम्प्रदायिक संस्कारों के कारण भारतेन्दु-कालीन लेखकों की इस संकीर्णता को परिस्थिति-जन्य और उचित ठहराकर गौरवान्वित कर आये हैं। वे उनकी हिन्दूवादिता को राष्ट्रीयता का सच्चा रूप सिद्ध करते रहे हैं। लेकिन वस्तुतः परिस्थिति यह थी कि भारतेन्दु-कालीन लेखकों का हिन्दी-प्रेम आर्य-समाजियों की तरह ही उर्दू और मुसलमानों का विरोधी था। सन् १८५७ के राजद्रोह में मुसलमानों ने किन्हीं कारणों से क्यों न हो, सबसे आगे बढ़कर भाग लिया था। इसलिए सन् सत्तावन से लेकर १९०६ ई० में मुस्लिम लीग के जन्म तक मुसलमानों पर अँग्रेज़ों की कोप-दृष्टि बनी रही। उर्दू-साहित्य में ग़ालिब से लेकर इक़बाल तक सभी ने किसी न किसी ढंग से अँग्रेज़ी-शासन के विरुद्ध स्वर ऊँचा किया, और अँग्रेज़ी साम्राज्यवाद के मुक़ाबले में खड़े होने के लिए भारतीय एकता पर जोर दिया। ऐसी कोई व्यापक राष्ट्रीय भावना भारतेन्दु युग के लेखकों में नहीं मिलती। अँग्रेज़ों के आर्थिक शोषण, भुख-मरी और अकाल का उल्लेख उनकी तुकबन्दियों में यत्र-तत्र अवश्य मिलता है, किन्तु साथ ही राजभक्ति के उद्गार और आश्वासन इतने परिमाण में मिलते हैं कि उन सबको तत्कालीन

(शेषांश पृष्ठ ६१ पर)

पाँच मिनिट ले सकता हूँ आपके ?

जरूर, मगर संक्षेप में ही बोलें। दूसरों के लिए मेरे पास बहुत ही कम शब्द हैं।

जी हाँ, इसीलिए तो मैं आया। मेरे पास बड़ा सुन्दर 'शब्दकोष' है। जरूर खरीदें, आपके बड़े काम का है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रो० इन्दु शेखर

पात्र परिचय

चित्ररथ—गन्धर्व मन्दिर के आचार्य
वसन्त, **राजीव**, **शशांक** } आचार्य चित्ररथ के शिष्य
माधवी—आचार्य की शिष्या
महाराज, दर्शक, अन्य शिष्य आदि

कांचीपुरम् का गन्धर्व मन्दिर। आचार्य चित्ररथ एक कमरे में ५-६ शिष्यों सहित बैठे हैं। आचार्य की मुख-मुद्रा शान्त, गम्भीर किन्तु कोमल है। उनकी लम्बी दाढ़ी और सिर के बाल सभी श्वेत हैं। आचार्य ने रेशमी धोती बाँधी हुई है और शरीर पर पीला उत्तरीय है। शिष्यों की वेश-भूषा भी इससे मिलती-जुलती है। अगल-बगल अनेक प्रकार के बाजे रखे हैं और कुछ शिष्यों के हाथों में भी हैं। वीणा, मृदंग, खरताल, घटम् आदि बाजे बड़े क़रीने से चारों कोनों में सजे हैं। उत्तर की ओर दीवार के सहारे देवी सरस्वती का विशाल चित्र है और उसके ठीक ऊपर दीवार पर एक चित्र शिव-ताण्डव का टँगा है। दोनों चित्रों के चारों ओर फूल मालाएँ लटक रही हैं। कमरे में बैठने के लिए एक साधारण दरी बिछी है, केवल आचार्य के बैठने के लिए उस पर एक चादर बिछी है।

ताल, तम्बूरा और शंख की आवाज़ के साथ परदा उठता है, आचार्य और शिष्य अपने स्थानों पर बैठ-बैठे सरस्वती के चित्र की ओर मुख कर वन्दना करते हैं—

या कुन्देन्दु-तुषार-हार-धवला या शुभ्रवस्त्रावृता।
या वीणावर-दण्ड-मण्डित-करा या श्वेतपद्मासना॥
या ब्रह्माच्युतशङ्कर प्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता।
सा मां पातु सरस्वती भगवती निश्शेष जाड्यापहा॥

(धीरे-धीरे वन्दना समाप्त हो जाती है और बाजों की आवाज़ क्रमशः शान्त हो जाती है। वन्दना समाप्त होते ही आचार्य चारों ओर आँखें घुमाकर देखते हैं।)

आचार्य—आज वसन्त नहीं दिखाई पड़ रहा, क्या कारण है? सरस्वती की वन्दना में उसका उपस्थित न होना, कोई साधारण घटना नहीं है राजीव!

राजीव—जी। क्या आपने मुझसे पूछा गुरुदेव!

आचार्य—इस आश्रम में दस-बीस राजीव तो नहीं हैं, मैं तुम्हीं से पूछ रहा हूँ। बता सकते हो वसन्त कहाँ है?

राजीव—हाँ, वसन्त? वसन्त और मैं प्रातःकाल साथ ही साथ नदी पर स्नान करके लौटे थे। अपना वस्त्र सुखाकर मैं इधर चला आया और वसन्त शायद माधवी के कक्ष की ओर गया था गुरुदेव!

(घबड़ायी हुई अस्त-व्यस्त मुद्रा में वसन्त का प्रवेश)

वसन्त—अनर्थ हो गया गुरुदेव, अनर्थ....

आचार्य—क्या अनर्थ हो गया वसन्त? यही न कि तुम सरस्वती वन्दना में उपस्थित न हो सके, उसके लिए इतनी घबराहट क्यों?

वसन्त—मैं वन्दना की बात नहीं कर रहा गुरुदेव! **(सिर झुका कर)** माधवी अपने कक्ष में नहीं है। कुटिया के दोनों द्वार इस प्रकार खुले हैं जैसे निर्जीव मनुष्य की आँखें।

आचार्य—तो माधवी कहीं चली गयी है, घूम-फिर कर वापिस आ जायगी।

वसन्त—**(करुण स्वर में)** नहीं गुरुदेव! अब वह वापिस नहीं आयगी, देखिये यह पत्र।

(आचार्य के हाथ में पत्र देता है)

आचार्य—**(पत्र बिना पढ़े)** यदि माधवी लौटकर नहीं आयगी, तो नहीं सही। जो एक दिन आया है वह जायगा भी—

वसन्त—आश्रम में इतनी बड़ी घटना हो गयी आचार्य और आप बिना विचलित हुए उसे साधारण बात समझकर टाल रहे हैं।

आचार्य—**(दृढ़ स्वर में)** घटना आश्रम में नहीं, तुम्हारे हृदय में हुई है वसन्त! इसीलिए तुम इतने व्याकुल और कातर हो।

वसन्त—मालूम होता है माधवी आपसे अनुमति लेकर गयी है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुदेव ! तभी तो आप इतने स्थिर और शान्त हैं।

आचार्य—अनुमति लेकर नहीं, वह मेरे आदेश से आश्रम छोड़कर चली गयी है **(शिष्यों में विस्मय की आवाज़ और फुसफुसाहट—आचार्य स्वर में और भी दृढ़ता लाते हुए—)** मुझे शोक है वह पहिले नहीं गयी, उसे बहुत पहिले ही चले जाना चाहिए था।

वसन्त और राजीव—**(एकत्रित स्वर में)** क्यों गुरुदेव !

आचार्य—क्यों ? **(सन्नाटा छा जाता है—मुख को जरा तिरछा करते हुए)** मन्दिर के शिखर पर निरन्तर उड़नेवाली वह ध्वजा देखी है तुमने ?

वसन्त—देखी है गुरुदेव, मैं उसे अभी-अभी देखकर, नमस्कार करके आ रहा हूँ।

आचार्य—तो सुनो वसन्त ! यह निरन्तर आठ वर्ष से फहराने वाली मन्दिर की ध्वजा की प्रतिष्ठा का प्रश्न था। गन्धर्व मन्दिर उसके, मेरे, तुम्हारे भविष्य और कल्याण का प्रश्न था। जिस संस्था और उसकी कला के लिए मैंने दिन-रात परिश्रम किया है, उसकी मान-मर्यादा को स्थिर रखने के लिए माधवी का आश्रम-त्याग आवश्यक हो गया था वत्स !

वसन्त—क्षमा कीजिए गुरुदेव ! यह आप माधवी के प्रति अत्याचार कर रहे हैं। माधवी ने ऐसा कोई बुरा कार्य नहीं किया जिससे मन्दिर की प्रतिष्ठा ख़तरे में पड़ सकती। आप जिस संगीत कला को सर्वोच्च मानते हैं, वह उसमें और शील में किसी भी आदर्श से कम नहीं थी।

आचार्य—तुम मुझसे आज तर्क कर रहे हो वसन्त ! **(चारों ओर देखते हुए)** और मैं आज तुम सबके चेहरों पर विद्रोह के चिन्ह स्पष्ट झलकते हुए देख रहा हूँ। पहिले तो ऐसा कभी नहीं हुआ ?

राजीव—गुरुदेव ! क्षमा कीजिये हम....

आचार्य—**(स्वर में नम्रता लाते हुए)** क्षमा माँगने की कोई आवश्यकता नहीं है राजीव। मैं जानता था कि मन्दिर के इस शान्त, निश्छल और पवित्र वातावरण में किसी कुमारी का प्रवेश, कितना अनर्थ कर सकता है। रम्य, शान्त, सरोवर के स्थिर जल में एक छोटी-सी पथरी डालने से क्या प्रतिक्रिया होती है, क्या तुमने वह देखी नहीं ?

वसन्त—पत्थर के गिरने के कारण सरोवर में जो आन्दोलन उठता है, उसमें भी कम आकर्षण नहीं है गुरुदेव ! वह भी जीवन का एक महत्वपूर्ण पहलू है। कवियों और भक्तों ने नदी की शान्त धारा और चंचल लहरों के नृत्य में समान रूप से चमत्कार का दर्शन किया है गुरुदेव ! जप और तप करनेवाले मुनियों की कुटिया दोनों ही के किनारों पर पायी गयी हैं आचार्य।

आचार्य—**(अप्रतिभ होकर)** उन्हीं मुनियों ने तो नारी-संसर्ग से दूर रहने का आदेश दिया है वसन्त। आज से चार मास पहिले त्रिपुरम् नगर का वह ब्राह्मण जब माधवी को लेकर आया था, मैं उस दिन भी आश्रम में कुमारी कन्या के प्रवेश के विरुद्ध था। किन्तु जब वह ब्राह्मण मेरे अनुरोध की उपेक्षा कर इस अनाथिनी लड़की को यहाँ छोड़ ही गया, तब माधवी को रखना ही पड़ा।

शशांक—एक बार आश्रय देने के बाद उसे दूसरा आश्रय खोजने के लिए बाधित करने में तो मन्दिर की प्रतिष्ठा और भी धूल में मिल गयी है गुरुदेव !

आचार्य—व्यक्ति समाज से कभी ऊँचा नहीं हो सकता शशांक। मन्दिर की व्यवस्था और प्रतिष्ठा के लिए यदि सौ बार भी मुझे माधवी को बाहिर निकालना पड़े तो मुझे कोई पश्चात्ताप नहीं होगा।

वसन्त—पश्चात्ताप आपको नहीं, हमें हो रहा है आचार्य।

आचार्य—माधवी के चले जाने से तुम्हें इतना पश्चात्ताप होगा, इसका अनुमान न था। किन्तु तुम लोगों की माधवी के प्रति रुचि इतनी गहरी हो गयी थी, यह देखते हुए माधवी का जाना ठीक ही हुआ, इसका मुझे सन्तोष है।

वसन्त—ग़लत न समझिए आचार्य। हमें माधवी के जाने का इतना पश्चात्ताप नहीं है जितना यह जानकर कि आपने माधवी को इसलिए निकाल दिया कि आपका हम पर विश्वास नहीं था। हमारे चरित्र-पतन की आशंका से आपने जो कार्य किया, उसका विचार करते ही हृदय ग्लानि से भर जाता है।

आचार्य—यह तुम्हारा भ्रम है वत्स ! मुझे आज भी अपने समस्त शिष्यों के चरित्र और उनके कला-प्रेम पर अभिमान है। किन्तु माधवी धीरे-धीरे समस्त आश्रमवासियों की कोमल और सरस भावनाओं का केन्द्र बनती जा रही थी। तुम लोगों का कला-प्रेम, अभ्यास सब शिथिल पड़ता जा रहा था। अपने अपने हृदयों को टटोलकर देखो, तुम लोगों के मन और लोचन माधवी की कुटिया के द्वार पर पहरा दिया करते थे। तुम्हें इस बात का ध्यान नहीं रहा था कि तुम क्या कर रहे हो, किधर जा रहे हो ? तुम यह जानने के लिए उत्सुक रहा करते थे कि उस कुटिया में

कला-साधना तो कलाकार का सम्पूर्ण आत्म-समर्पण चाहता है। किन्तु शान्त सरोवर में कंकर के आन्दोलन की भाँति माधवी ने वसन्त को चंचल कर दिया, यह भी स्वाभाविक था। तब एक दिन...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या हो रहा है? क्या यह सत्य नहीं कि तुम्हारी आँखें और मन माधवी के मार्ग में बिछे रहते थे?

राजीव—चैत्र-मास के तारकों की छाया में, शरत् पूर्णिमा की उज्ज्वल चाँदनी में, शीतल-मन्द-मलय पवन के दुलार में, कोयल और पपीहे की कूक और सुन्दर मधुर संगीत की लहरियों में खो जाने पर हृदय में जो गुदगुदी उठती है, उस पर तो आपने कभी प्रतिबन्ध लगाया नहीं गुरुदेव!

आचार्य—(**हँस कर**) तुम्हारा तर्क अधूरा है राजीव। प्राकृतिक सुषमाओं के प्रति आकर्षण स्वाभाविक और सात्विक है, साकार नारी का आकर्षण तामसी होता है, उसमें वासना का संमिश्रण है।

वसन्त—वह तामसी भले ही हो पर है स्वाभाविक गुरुदेव। अभावमय जीवन की यात्रा खतरे से खाली नहीं, उस जीवन की विशालता के गीत तभी तक अच्छे मालूम देते हैं जब तक यथार्थ से परिचय नहीं होता। बालू का इतना विशाल क़िला बनाने से क्या लाभ जो नारी-दर्शन की साधारण फूंक से उड़ जाय।

आचार्य—(**दृढ़ और संयत स्वर में**) तुम इस आश्रम में जीवन के सभी अनुभव ग्रहण करने नहीं आये हो वसन्त। आश्रम से बाहिर भी दुनिया है जो समय आने पर तुम्हें सब कुछ सिखा देगी। आश्रम में तुम आये हो संगीत की शिक्षा और अभ्यास के लिए, कला-ज्ञान के लिए। इस उद्देश्य में जो भी रुकावट हो उसे दूर करना मेरा कर्त्तव्य है। (**वसन्त के समीप जाकर**) और यह भी न भूलो वसन्त कि तुम मेरे सर्वश्रेष्ठ, सर्वप्रिय शिष्य हो। मुझे तुम्हारे कल्याण का उतना ही ध्यान है, जितना अपने प्राण और जीवन का। (**गद्गद् स्वर में**) मैं अपने और आश्रम के भविष्य की सुमधुर कल्पनाओं को तुम्हीं में प्रतिष्ठित कर कभी का निश्चिन्त हो चुका हूँ वसन्त!

वसन्त—मुझे क्षमा कीजिए गुरुदेव! जहाँ तक आपकी प्रतिष्ठा और आज्ञा का प्रश्न है, मैं शपथ खाकर कहता हूँ....

आचार्य—शपथ खाकर विश्वास दिलाने की कोई आवश्यकता नहीं है वत्स। मैं तुमसे, तुम सबसे बहुत सन्तुष्ट हूँ। (**आँखें पोंछते हुए**) शायद तुम लोग समझते होगे कि माधवी के जाने का मुझे शोक नहीं, तुम वह जान भी नहीं पाओगे। खैर! इस अप्रिय प्रसंग को लेकर जो बातचीत आज उठ खड़ी हुई है, मैं उसे अब और अधिक नहीं बढ़ाना चाहता। तुम सब जा सकते हो—हाँ जाने से पहिले यह याद दिला देता हूँ कि आज से तीन दिन बाद वसन्तोत्सव के दिन वसन्त, तुम्हें प्रतियोगिता में गन्धर्व मन्दिर की मर्यादा की रक्षा करनी है। जाओ—

(एक-एक कर सभी शिष्य प्रणाम कर चले जाते हैं—सबके अन्त में वसन्त जाता है, खोया-सा, विक्षिप्त-सा। आचार्य चिन्तित मुद्रा में माथे पर हाथ धरे बैठे रहते हैं)

दूसरा दृश्य

गन्धर्व मन्दिर की संगीतशाला में वसन्तोत्सव मनाया जा रहा है। अध्यक्ष हैं—कांचीपुरम् के महाराज जो एक सिंहासन पर बैठे हैं। शेष सभी व्यक्ति, दर्शक, कलाकार और प्रतियोगी नीचे फ़र्श पर बैठे हैं। उत्सव की आवश्यकतानुसार संगीतशाला फूलों के हार और विविध चित्रों से सजी है। प्रतियोगिता चल रही है और एक प्रतियोगी आलाप ले रहा है। आचार्य और उनके अनेक शिष्य भी बैठे हैं।

आचार्य—(**एक शिष्य को संकेत करते हुए**) वसन्त अभी तक नहीं दिखायी दे रहा राजीव! ज़रा देखो तो वह कहाँ है? (**राजीव जाता है और दो क्षण बाद चिन्तित सा लौट आता है**)

राजीव—(**आचार्य के कानों के पास मुख ले जाते हुए**) वसन्त का कहीं भी तो पता नहीं गुरुदेव! मन्दिर का कोना-कोना खोज लिया गया है पर वसन्त का कुछ पता नहीं।

आचार्य—(**घबराते हुए किन्तु धीमे स्वर में**) क्या कहा, कुछ पता नहीं, प्रातःकाल तो वह मुझे प्रणाम कर आशीर्वाद लेकर गया है। जैसे भी हो उसका पता लगाना ही होगा, राजीव। वह जा भी कहाँ सकता है?

राजीव—पिछले तीन दिन से वह अपनी कुटिया से बाहिर नहीं गया गुरुदेव! जिस अनवरत साधना से पिछले तीन दिन वह संगीत का अभ्यास करता रहा है, उसे देख आश्चर्य होता था; किन्तु कल सायंकाल जब मैं उससे मिला था—उसका मुख उतरा हुआ था, उसका स्वर करुण था और ऐसा ज्ञात होता था कि संगीत की लहरियों में वह स्वयं को खो देना चाहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य--(कुछ प्रसन्न होकर) यही, यही तो मैं चाहता था राजीव। माधवी के रहते हुए वह कला के प्रति उदासीन हो गया था--उसके स्वर और अभ्यास शिथिल पड़ गये थे। (उत्तेजित स्वर में) किन्तु वह गया कहाँ? महाराज अभी-अभी उसका नाम पुकारने वाले हैं।

राजीव--अब क्या होगा गुरुदेव!

आचार्य--क्या होगा, मन्दिर की प्रतिष्ठा धूल में मिल जायगी। मेरे सपने चूर-चूर होकर मेरा उपहास करेंगे। गुरु शिष्य को सन्देह की दृष्टि से देखने लगेंगे, कांचीपुरम् में संगीत अनाथ हो जायगा--मैं और तुम....

(हलकी-हलकी ताली बजती है, वह प्रतियोगी गीत समाप्त कर बैठ जाता है। अध्यक्ष ऊँचे स्वर में घोषणा करते हैं--

अन्तिम प्रतियोगी गन्धर्व-मन्दिर के वसन्त कुमार। गन्धर्व-मन्दिर के वसन्तकुमार।

(सन्नाटा छा जाता है, दर्शक चारों ओर देखते हैं)

आचार्य--(अस्फुट स्वर में) गन्धर्व मन्दिर का वसन्त कुमार--गन्धर्व मन्दिर का....

आचार्य--गन्धर्व मन्दिर के वसन्तकुमार कहाँ हैं?

(दरवाजे से प्रवेश करते हुए)

वसन्त--मैं आ रहा हूँ।

आचार्य--(हर्षातिरेक) तुम आ गये वसन्त, मैं जानता था कि तुम ठीक समय पर अवश्य आओगे। मैंने तुमसे कहा था न राजीव!

आचार्य के चरण छूकर वसन्त वीणा हाथ में ले अध्यक्ष के सामने जा बैठता है, उसकी मुख-मुद्रा दृढ़ और शान्त है। चारों ओर विजेता की सी दृष्टि डाल वह सूरदास का निम्न पद गाता है)

निशि दिन बरसत नैन हमारे....

(वसन्त के आलाप, करुण-स्वर, उतार-चढ़ाव से प्रसन्न होकर उपस्थित दर्शक अनेक बार ताली बजा कर वाह वाह कर उठते हैं। उसके गीत का टेम्पो बढ़ता जाता है, महाराज स्वयं झूमने लगते हैं। धीरे-धीरे पद समाप्त होता है और तालियों की गड़गड़ाहट से संगीतशाला गूँज उठती है।)

अध्यक्ष--वसन्त कुमार तुम और तुम्हारी कला वास्तव में अद्वितीय हैं। तुम-सा कलाकार पाकर गन्धर्व मन्दिर और यह नगर दोनों धन्य हो गये। मैंने बरसों से हृदय को छूनेवाला ऐसा सुमधुर संगीत नहीं सुना था। मैं आचार्य चित्ररथ और उनके योग्य शिष्य वसन्त कुमार का अभिनन्दन करता हूँ। इधर मेरे पास आओ वसन्त!

(वसन्त आगे बढ़ता है, महाराज पुरस्कार रूप में उसे दो शाल देते हैं। धन्यवाद कर उन दोनों शालों को हाथ में लेकर वह क्षण-भर देखता रहता है। फिर चारों ओर विरक्त दृष्टि से देख वह आचार्य के पास पहुँच कर उनके चरणों पर दोनों शाल धर कर खड़ा हो जाता है)

आचार्य--शाबाश वसन्त, शाबाश **(पीठ थपथपाते हुए)** तुम सा शिष्य पाकर मैं धन्य हुआ, मेरी विद्या और शिक्षा सफल हुई।

वसन्त--यह आप ही का प्रताप है गुरुदेव! **(दृढ़ स्वर में)** किन्तु अब मैं जा रहा हूँ।

आचार्य--क्यों कहाँ जा रहे हो?

वसन्त--नहीं, गुरुदेव मैं अब मन्दिर के आश्रम में नहीं रहूँगा। मन्दिर की परंपरागत प्रतिष्ठा पर आँच न आये इसीलिए हृदय पर पत्थर रखकर मैं तीन दिन तक आश्रम में पड़ा रहा, किन्तु अब और नहीं रह सकूँगा।

आचार्य--तुम्हें क्या हो गया है वसन्त। तुम होश में हो?

वसन्त--मैं आपके आशीर्वाद से होश ही में हूँ आचार्य! मैं यह भी नहीं भुला सकता कि आपने ही मुझे बड़े स्नेह से संगीत की शिक्षा दी है; किन्तु गुरुदेव! जहाँ कला का नाम लेकर कला की हत्या की जाय मैं वहाँ नहीं रह पाऊँगा। **(रुँधे गले से)** मेरा वहाँ दम घुटता है आचार्य। मैं जा रहा हूँ **(जाने लगता है)**

आचार्य--(दीप्त स्वर में) समझा। ठहरो वसन्त, तुमने अभी-अभी महाराज के सामने स्वीकार किया है कि यह देव-दुर्लभ विद्या मैंने तुम्हें दी है। प्रत्येक दान दी हुई वस्तु का मूल्य होता है। तुम मुझे गुरु-दक्षिणा देने के लिए तैयार हो?

वसन्त--(घूम कर) हाँ गुरुदेव! आप जो कहें वह दक्षिणा में दूँगा, आज्ञा कीजिये।

आचार्य--तुम्हें बन्धन में बँधना होगा, विवाह-बन्धन में।

वसन्त--विवाह?

आचार्य--हाँ विवाह; मैं तुम्हारा विवाह कराऊँगा।

वसन्त--मैं आपके चरण छूता हूँ गुरुदेव।

(शेषांश पृष्ठ ६१ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

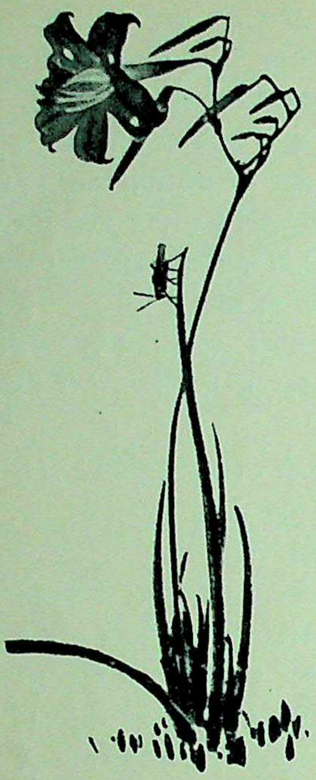

प्राण और पाषाण

(१)

ज्योति थी तुमने जगाई,
रोशनी मेरी कहाई !

दे दिया क्या प्यार तुमने
हरा तम का भार तुमने
किरण-कर से छू दिया तो
जिन्दगी यह जगमगाई

था भटकता बेसहारा
कर दिया तुमने इशारा
बन गया मैं एक राही
राह पर तुमने दिखाई

अब सभी का हो सकूँगा
बोझ अपना ढो सकूँगा
व्यक्ति-कारा से तुम्हीं ने
मुक्ति यह मुझको दिलाई !

—सुरेन्द्र कुमार दीक्षित

(२)

मृत्यु से मैं प्यार करती बढ़ रही हूँ !

दीप हूँ मेरी शिखा से काँप जाता है अंधेरा
मैं ढलकती साँझ हूँ पर अंक में मेरे सवेरा
पीर अंतर की सँजोये दामिनी सी हँस चली मैं
और सजला शशि-विहीना मूक निशि-सी नित ढली मैं
आँसुओं के शव उठा, गल ढल रही हूँ, जल रही हूँ

मैं प्रलय से प्रीत करती पल रही हूँ।
नील नभ की नीलिमा मेरे नयन में आ गई है
दामिनी भी आज हँस मेरे हृदय में छा गई है
मैं करूँगी मृत्यु से पहचान देकर प्राण मेरे
जो रहे हैं चार दिन मेहमान होकर, विश्व तेरे।
हार कर अब मृत्यु पीछे रह गई है, ढह गई है

साथ जीवन को लिये हूँ, चल रही हूँ

—कुमारी राज शिवपुरी

(३)

लीन हो गये आकर यहाँ समर्पण कितने,
थकीं प्रार्थनाएँ कितनी चरणों पर रोकर,
कितने अर्घ्य ढुलक कर सत्वर शेष हो गये,
बुझी आरती के भीगे दीपों से पूछो
जिनकी ज्योति मुंद गयी, उभरी रही कालिमा,
प्राणों के गह्वर से उड़ कर आने वाले
स्वर्णिम, मधुर, रुपहले, सुन्दर शलभ बहुत से
जले-अधजले, मरे-अधमरे यहाँ पड़े हैं,
(जिन्हें स्वप्न या आशा कहना भ्रम ही तो है !)
एक हवा का झोंका आया, उड़ा ले गया
सूखे सुमनों की बिखरी-बिखरी पंखुरियाँ,
वह ताजे-ताजे फूलों की ताज़ी माला
घबरायी है और बड़े असमंजस में है।
दूर कहीं मन्दिर के घेरे के बाहर से
आकर कोई स्वर दीवारों से टकराता—
है देवता, सही, लेकिन, वह पत्थर का है।

—श्री हरि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत और लंका के अन्तराल में

परदेशी साहित्यालंकार

पण्डित नेहरू के भारत को विश्व के राजनैतिक क्षेत्रों में भरपूर मान-सम्मान मिला है और निरन्तर मिल रहा है। परन्तु सामाजिक क्षेत्रों में काले और गोरे का भेद आज भी लबालब भरा है। अफ्रीका, मॉरिशस, मलाया, गोआ और लंका : सब कहीं भारतीयों का घोर अपमान और दमन किया जा रहा है।

लंका तो, जो सदा इस महाद्वीप का अभिन्न अङ्ग रही, इस बारे में अफ्रीका से दो क़दम आगे नहीं तो किसी मायना पीछे भी नहीं है। वहाँ के नेता इस बात पर कटिबद्ध हैं कि भारतीयों को वहाँ से गिन-चुनकर निर्वासित कर दिया जाय।

भारतीय नेताओं ने समय-समय पर सिंहलियों को समझाने के जो भी प्रयत्न किये वे सब प्रायः विफल ही रहे। और अब यह रहस्य उजागर हो चला है कि लंका के इस सारे 'भारतीयों को निकालो' आन्दोलन के मूल में पाश्चात्य शक्तियों और उनके नेता, अमेरिका, का हाथ है। लंका के डॉ० एन० एम० परेरा ने वहाँ की प्रतिनिधि सभा (हाउस ऑव रेप्रेज़ेन्टेटिव्ज़) में स्पष्ट शब्दों में यह घोषित भी कर दिया कि, "अमरीकी राजदूतावास या राजदूत के लिए यह अशोभन है कि वे स्थानीय पार्टी पॉलिटिक्स में भाग लें। इस दूतावास ने भारत-विरोधी आन्दोलन के लिए काफ़ी धन दिया है।"

लंकावासी भारतीयों की संख्या लगभग १० लाख है। देश की कुल आबादी ६६ लाख है। इस प्रकार भारतीय वहाँ की कुल जनसंख्या का पाँचवाँ अंश हैं। सदियों से, परम्परा से, ये लोग लंका में बसे हुए हैं। कुछ नये निवासी भी हैं : उनकी बात छोड़ दीजे। किन्तु जो पीढ़ियों से और सैकड़ों बरसों से सिंहल को ही मातृभूमि मानकर वहाँ रहते आये हैं, उनका सर्वस्व अपहरण कर अब देश से निर्वासित कर देना कहाँ तक सम्भव और उचित हो सकता है, यह भविष्य ही बतायेगा।

पण्डित नेहरू और पिछले सिंहलीय प्रधान मन्त्री श्री सेनानायक के बीच प्रथम बार लन्दन में इस प्रश्न को लेकर चर्चा चली थी, परन्तु परिणाम कुछ न निकला। कुल १० लाख की भारतीय आबादी में से, पीढ़ियों से रहते आये ४ लाख नागरिकों को लंका सरकार स्वीकार करती है, तीनेक लाख व्यक्तियों को स्थायी वास-पत्रक देने को तय्यार है, शेष को किसी भी प्रकार का स्थान-मान देने को वह तय्यार नहीं। क्या हो इन 'राज्य-रहित बे घरबार' लोगों का?

इतिहास की साक्षी है कि लंका भारत का एक अखण्ड खण्ड है। सन् १७९६ में पहिले पहल अँगरेज़ यहाँ प्रविष्ट हुए, १८१५ तक १९ वर्षों में ही समूचे द्वीप पर वे छा गये। और ब्रिटिश साम्राज्यवाद अपने आर्थिक स्वार्थों की तृप्ति के लिए स्थानीय विकास योजनाओं में लग गया। नहर, पुल, सड़क, रेल, कारख़ाने और बगीचों के निर्माण में उसे कुशल कारीगरों और श्रमिकों की आवश्यकता थी। इन कार्यों के लिए लंका के आराम-पसन्द सिंहल लोग नाकाम साबित हुए। जो थोड़े-बहुत लंकावासी भारतीय थे, उनकी सेवाएँ बड़ी उपयोगी सिद्ध हुईं। यह देखकर गोरों ने सोचा कि यदि अधिक संख्या में भारतीयों को लंका बुलाया जाय तो वे बड़े सहायक प्रमाणित होंगे। फलस्वरूप १८३० के आरम्भ में भारतीय श्रम द्वारा लंका में अनेक प्रकार के विकास-कार्य उठे और अग्रसर हुए। इस प्रदेश में जो परिश्रम करना पड़ता था, वह साधारण न था। भारतीय मज़दूरों, उनके बच्चों और बूढ़े माता-पिताओं ने अपने रक्त और पसीने से सींच-कर इन स्थानों को हरा-भरा समृद्ध किया था। आज कुछ विदेशियों के बहकावे पर लंका के तथाकथित मूल-निवासी नेता इन्हीं भारतीय-श्रमिकों के वंशजों को लंका से अधिकार-च्युत और निर्वासित कर देना चाहते हैं।

लंका के लिए भारतीय मज़दूरों की भर्ती करनेवाले ठेकेदारों को 'कंगानी' कहा जाता था। एक प्रकार से ये भी इतिहास-प्रसिद्ध 'गुलामों का व्यापार करनेवाले' जैसे क्रूर-निर्दयी होते थे। जब इन कंगानियों द्वारा भारत से अधिकाधिक संख्या में लोग लंका जाने लगे तो ब्रिटिश सरकार ने लंका से आश्वासन चाहा कि इन भारतीयों से सद्व्यवहार किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाय। सन् १८४७-६७ तक लंका और भारत सरकारों में पत्र-व्यवहार चला, और परिणाम यह हुआ कि लंकावासी भारतीयों को लगभग वही राजनैतिक अधिकार मिले जो लंका के नागरिकों के थे।

जुलाई १९२९ में लंका-सरकार ने लिखित रूप में भारत सरकार को विश्वास दिलाया कि लंकावासी भारतीय स्थानीय नागरिकों के समान ही अधिकार रखते हैं और वे अपने लिए वहाँ ज़मीन और खेत खरीद सकते हैं। किन्तु व्यवहार में जहाँ एक ओर यह था, वहाँ दूसरी ओर सन् १९२७ से ही लंका में भारतीय और सिंहलीय का भेद पैदा कर दिया गया था। यह भेद उसी चक्रव्यूह का एक सिलसिला था जो भारत में हिन्दू-मुस्लिम जातियों के मध्य फूट फैलाने के लिए बड़ी कुशलतापूर्वक सजाया गया था और जो भारत की नाईं लंका में भी तेज़ी से पनपा और १९३९ में भारतीयों को लंका से निकालने का प्रयास आरम्भ हो गया। इस पर तत्कालीन भारत-सरकार ने भारतीयों का लंका जाना वर्जित कर दिया। साथ ही, लंका से व्यापार-सम्बन्ध बन्द कर दिया। इसके बाद एक-दो बार सुलह-समझौते के प्रयत्न हुए, परन्तु असफल रहे।

तुम भारतीयों का यहाँ क्या काम . . .

समझ-समझौते की राह पर

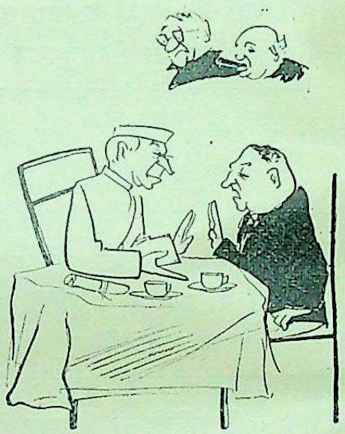

फिर : समझौता ? कैसा समझौता !

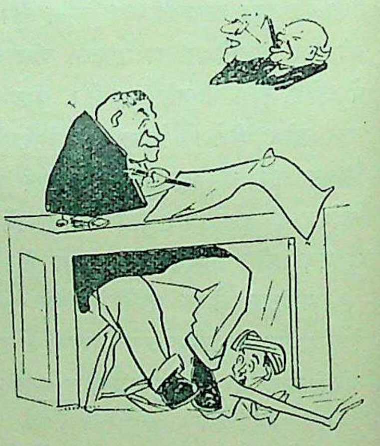

समस्या और समझौते की पृष्ठभूमि :

१९४१ में चेष्टा हुई कि लंकावासी भारतीयों की समस्याओं का शमन हो। तब गिरिजाशंकर वाजपेयी, मिर्ज़ा इस्माइल, टी० रदरफ़ोर्ड और वेंकटरामा शास्त्री—इन चार प्रतिनिधियों का एक शिष्टमण्डल लंका भेजा गया। लंका की ओर से भूतपूर्व प्रधान मंत्री डी० एस० सेनानायक, जी० सी० एस० कोरिया और रॉबर्ट ड्रेटन ने प्रतिनिधित्व किया। दोनों दलों में एक समझौता हुआ, परन्तु तत्कालीन भारत-सरकार ने उसे स्वीकार नहीं किया और समस्या उलझन में पड़ी रह गयी।

भारत की स्वतन्त्रता के बाद पण्डित नेहरू और श्री डी० एस० सेनानायक ने स्वयं इस मसले पर विचार करके समाधान का कोई मार्ग खोज निकालने का प्रयत्न किया। भारतीय प्रधान मन्त्री ने यह प्रस्ताव रखा कि लंका-सरकार उन सभी भारतीयों को सम्पूर्ण नागरिक अधिकार प्रदान करे जो पाँच साल से लंका में रह रहे हैं; परन्तु सेनानायक ने यह स्वीकार नहीं किया, और १९४९ में लंका-सरकार ने 'सिलोन-पार्लियामेंट ऐक्ट' पास किया, जिसके अनुसार उन सभी लोगों का मताधिकार छीन लिया गया जो सिंहलीय नहीं थे—अर्थात् क़लम के एक ही झटके में उन सभी भारतीयों को अधिकार-हीन कर दिया गया जो वर्षों से लंकावासी थे। फिर, १९५२ के निर्वाचन में भारतीय प्रतिनिधियों को सिंहलीय-संसद से निकाल कर बाहर कर दिया गया। इसके बाद, एक ओर लंका-सरकार अपनी जनता और जगत् को भुलावे में रखने के लिए बारम्बार वार्ताओं और समझौतों का अभिनय करती रही और दूसरी ओर सिंहलीय भारतीयों के अधिकारों का अपहरण करने के लिए विविध योजनाएँ बनाती रही। यह परिस्थिति थी जब १९५३ के मार्च मास में पण्डित नेहरू ने श्री सी० सी० देसाई को भारत का हाई कमिश्नर बनाकर लंका भेजा। श्री देसाई ने लंका के तत्कालीन प्रधान मन्त्री डडले सेनानायक से कई बार भेंट की और सिंहलीय भारतीयों के अधिकारों के विषय में बातचीत की और भारत और लंका के प्रधान मन्त्रियों की लन्दन-वार्ता के लिए भूमिकात्मक रूपरेखा तैयार की।

वार्ता-विग्रह :

१९४७ में यह नेहरू-सेनानायक वार्ता हुई। इसी साल के दिसम्बर मास में भारत और लंका के बीच एक समझौता हुआ, परन्तु तीन महीने बाद ही लंका सरकार समझौते से मुकर गयी।

इसके बाद परिस्थितियाँ तेज़ी से पलटती गयीं। लंका और भारत के प्रधान मन्त्रियों के बीच लम्बा-चौड़ा पत्र-व्यवहार चला। लेकिन, जहाँ भारतीय प्रधान मन्त्री अपनी सहज सरलतावश समझौते के लिए प्रयत्नशील थे, वहाँ लंका के प्रधान मन्त्री भारतीय प्रधान मन्त्री को एक ओर अपने पत्र-जाल में उलझाये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे और दूसरी ओर अपनी पुरानी नीति चलाते रहे। नतीजा यह हुआ कि प्रधान मन्त्रियों का पत्र-व्यवहार एक दिन अचानक बन्द हो गया। लंका के प्रधान मन्त्री की 'समझौता-सूर्पणखा' ने अपना असली रूप दिखाया और 'इण्डियन रेजिडेण्ट्स बिल' सामने आया। लंकावासी भारतीयों के अधिकारों पर कुठाराघात चलाकर उन्हें अत्यन्त अपमान-जनक श्रेणियों में बाँट दिया गया।

काल-चक्र की चाल पर लंका के प्रधान मन्त्री सेनानायक को शीघ्र ही आसन छोड़ना पड़ा और सर जान कोटलेवाला प्रविष्ट हुए। प्रत्येक नवागन्तुक के समान कोटलेवाला ने भी कुछ दिनों तक सद्भावनाओं का संग्रह-कार्य आरम्भ रखा और परिणाम-स्वरूप दोनों देशों के प्रधान मन्त्रियों की फिर एक कान्फ्रेंस बुलाई गयी।

पहला समझौता :

१८ जनवरी १९५४ को बड़ी धूमधाम से नेहरू-कोटलेवाला कान्फ्रेंस ने यह समझौता प्रकाशित किया। संक्षिप्त में उसकी शर्तें इस प्रकार हैं :—

१—लंका और भारत, दोनों देशों की सरकारें प्रवेशपत्र-रहित व्यक्तियों का अपने-अपने देशों में प्रवेश रोकेंगी।

सहसा कूटनीति ने आँखें तरेर कर फ़तवा दिया कि यह फ़ॉरमोसा अब चीन की लंका बनेगा !

२—लंका की सरकार ऐसे लोगों की एक सूची तैयार करेगी, जिनके नाम मतदाताओं की नामावलि में नहीं हैं। जिनके नाम इस सूची में नहीं होंगे, उन्हें लंका में नहीं रहने दिया जायगा।

३—लंका सरकार बाहर से आनेवालों के लिए जो बिल तैयार कर रही है, उसे बना सकती है। इससे यह जाहिर हो जायगा कि कौन व्यक्ति बाहर से आया है, और किसने अनधिकार प्रवेश किया है।

४—नागरिक ऐक्ट के अन्तर्गत शेष अर्जियाँ दो वर्षों के अन्दर निबटा दी जायेंगी।

५—ऐसे नागरिकों को मताधिकार देने की आवश्यक व्यवस्था होगी।

६—जिनके नाम रजिस्टर नहीं हुए हैं, वे भारतीय अथवा पाकिस्तानी हाई कमिश्नर के कार्यालयों में नाम लिखा सकेंगे।

७—दोनों सरकारें पारस्परिक वार्ता-व्यवहार चालू रखेंगी, जिससे उभय पक्षों का समुचित हित साधन हो सके।

लंका द्वारा उल्लंघन :

परन्तु पिछले समझौते के समान लंका सरकार ने इस समझौते का भी खुले रूप में उल्लंघन किया और न केवल भारतीयों को अपने देश से निकाल बाहर करने की प्रवृत्ति प्रचलित रखी, बल्कि भारत-सरकार पर समझौता भंग करने का उल्टा आरोप भी लगाया।

देसाई-कोटलेवाला प्रकरण :

लंका सरकार ने जब प्रथम समझौते का उल्लंघन किया तो लंका-स्थित भारतीय हाई कमिश्नर श्री सी० सी० देसाई ने लंका के एक समाचारपत्र-प्रतिनिधि को बतलाया—"साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व स्थापित करके लंका-सरकार अपने ही वचनों के विरुद्ध हो गयी है। इस तथ्य की उपस्थिति में भारत-द्वारा यह माना जायगा कि भारत-लंका-क़रार का लंका सरकार ने असम्माननीय प्रक्रिया-द्वारा उल्लंघन किया है।"

इस सीधी, साफ़ और सरल बात को सुनकर लंका के प्रधान मन्त्री क्षुब्ध हो गये और बोले, "मैं श्री देसाई के इन शब्दों को लंका के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप करनेवाला प्रयास मानता हूँ। श्री देसाई शायद यह नहीं जानते कि हम उन्हें बिना नोटिस लंका से हटा सकते हैं। भारत को हम इसी आधार पर यह समझने का एक अवसर दे सकते हैं कि उसके लिए डिप्लोमेसी नयी चीज़ है, और वह अपने राजदूतों के चुनाव में भी अभी नया खिलाड़ी है। देसाई 'मेन्टल एब्रेशन' से पीड़ित हैं।..."

एक स्पष्ट कथन को लंका के प्रधान मन्त्री ने किस प्रकार अस्पष्ट बनाकर उलझन पैदा करने की कोशिश की है, यह कहने की बात नहीं है। श्री देसाई ने न तो इस कथन-द्वारा लंका के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप किया, न लंका की जनता का कोई अपमान ही किया। लंका की जनता को प्रत्येक भारतीय उतने ही सम्मान और स्नेह से देखता है, जितना स्वयं लंकावासी।

(शेषांश पृष्ठ ६० पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

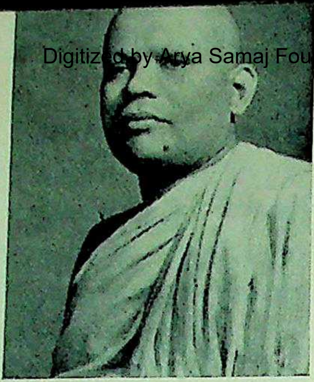

शिवली जी

शिवली जी सिंहल देश की एक प्रतिभा हैं––किन्तु उससे भी कहीं अधिक हैं वे भारत के सांस्कृतिक राजदूत।

प्रतिभाओं के परिश्रम से बने हुए सांस्कृतिक-सेतु कभी टूट नहीं सकते––भविष्य इस पर दृढ़ क़दमों से निर्भय होकर बढ़ सकता है।

प्रो० रंजन

सिंहली साहित्य आज तक अँग्रेज़ और अँग्रेज़ी की छत्रछाया में बना है। आज तक लोगों के दिल और दिमाग़ में अँग्रेज़ियत का प्रभाव है। सिंहली में लिखना हेय समझा जाता है और अँग्रेज़ी में लिखना सम्मान की बात। इसी कारण आज़ादी के बाद भी सिंहली साहित्य उन्नति नहीं कर सका। सारे सिंहल द्वीप में सिंहली में लिखने वाले कुल मिलाकर ७-८ लेखक ही हैं। वस्तुतः इस द्वीप में दो परम्परायें क़ायम हो गयी हैं––एक परम्परा के प्रतिनिधि उच्च अँग्रेज़ी साहित्य के विद्वान् ईसाई या बौद्ध वे सिंहली हैं जो अपने साहित्य का विकास पच्छिमी ढंग पर करना चाहते हैं, दूसरी परम्परा उन बौद्ध भिक्षुओं की है जो साहित्य में प्रेरणा का आधार जातक कथाओं और पाली साहित्य को मानते रहे हैं।

श्री बी० शिवली इसी दूसरी परम्परा के प्रतिनिधि हैं। जहाँ एक ओर उन्होंने बौद्ध इतिहास और पाली साहित्य को अपनी साहित्यक प्रेरणा का स्रोत माना है, वहीं दूसरी ओर प्रगतिशील विचारों से उन्होंने अपनी लेखनी को शक्तिशाली भी बनाया है। शिवली जी प्राचीन और अर्वाचीन के सम्यक मिश्रण हैं। उनमें एक आधुनिक विचारक और धार्मिक लेखक के दर्शन होते हैं। जहाँ वे जीवन में नवीन मूल्यों की प्रतिष्ठा करना चाहते हैं, वहीं अपने नवीन जीवन मूल्यों की आधारशिला वे पाली साहित्य को मानते हैं। एक दिन हम दोनों में प्रगतिशील साहित्य और बौद्ध धर्म पर चर्चा चल रही थी। चर्चा के बीच उन्होंने बड़े आत्म-विश्वास के साथ कहा था––"बौद्ध धर्म साम्यवादी विचारधारा की पृष्ठभूमि है और प्रत्येक बौद्ध एक श्रेष्ठ साम्यवादी।" उनके इन विचारों को बहुत अंश तक सत्य भी माना जा सकता है। कोलम्बो और सिंहल में जो भी कला और साहित्य प्रेमी आता है, वह शिवली जी से बिना मिले नहीं जाता। वे भारत और सिंहल की पुरातन एकता की एक कड़ी हैं।

उनका घुटा सिर, थोड़ा स्थूल शरीर, मुस्कराता चेहरा, पैनी आँखें, और विनोदी स्वभाव सहज ही मिलनेवाले को अपनी ओर खींच लेते हैं। किलानिया का 'विद्यालंकार प्रवीन' उनकी उपस्थिति और सहयोग से एकमात्र विद्या-केन्द्र बन गया है। इस विद्यापीठ में विद्वानों का आना-जाना बना ही रहता है। पाली और संस्कृत शिक्षा की यह सबसे मान्य संस्था हैं। इसी विद्यालंकार-प्रवीन में एक दिन श्री राहुल सांकृत्यायन और श्री आनन्द कौसल्यायन ने दीक्षा और शिक्षा प्राप्त की थी। आज भी यहाँ पाली और संस्कृत के उद्भट विद्वान् मौजूद हैं। मैं जब 'विद्यालंकार प्रवीन' में पहुँचा तो शिवली जी बनते भवनों का निरीक्षण कर रहे थे। अब वे काफ़ी स्थूल हो चुके हैं। उन्हें देखते ही आज से २३ वर्ष पहिले की उनकी वह सौम्य मूर्ति सामने खिंच गयी जिसे मैंने काशी विद्यापीठ में सन् १९३१ में देखा था। उन दिनों मैं काशी विद्यापीठ का विद्यार्थी था और सर्वश्री शिवली जी और राहुल जी उन दिनों ज्ञान-चर्चा के लिए रोज़ आचार्य नरेन्द्र देव जी के पास आया करते थे। वहाँ से हम दोनों को लेकर वे अपने अध्ययन कक्ष में गये। इस कक्ष में हिन्दी, पाली, संस्कृत, अँग्रेज़ी के अनेकों छोटे-बड़े ग्रन्थ सजे थे। बातचीत का सिलसिला शुरू हुआ। भारत और उसकी राजनीति, नेहरू और जयप्रकाश, एक के बाद एक अनेक बातें हमारे बीच हुई। वे हिन्दी में ही बात कर रहे थे और उनके बोलने में हिन्दी की वही स्वभाविकता मौजूद थी जो किसी उत्तर भारतीय में हो सकती है।

इस सिंहली भिक्षु ने कितना पढ़ा है, कितना लिखा है––यह कहना कठिन है। 'विद्यालंकार प्रवीन' की अपनी एक राजनैतिक मान्यता है और भिक्षुक होते हुए भी स्वयं शिवली जी राजनैतिक चिन्तन और चर्चा को अस्पृश्य नहीं मानते। कोलम्बो की सम-समाज पार्टी का संचालन विद्यालंकार प्रवीन से ही होता है। और इस संस्था का यह अटल विश्वास है कि राजनीति से भिक्षु को बिल्कुल तटस्थ नहीं रहना चाहिए और इस विचारधारा के नेता हैं हमारे भिक्षु शिवली जी स्वयं।

शिवली जी की प्रत्येक साँस भारत और सिंहल को निकट लाने का प्रयत्न है। उनकी लेखनी प्रत्येक क्षण इसी प्रयत्न में जुटी रहती है। भारत में ८ वर्ष रह कर उन्होंने जिस भारतीय आत्मा का साक्षात् किया था, आज उसी की अभिव्यक्ति वे अपनी लेखनी द्वारा कर रहे हैं। श्री गुप्त जी की 'यशोधरा' का उन्होंने सिंहली में बड़ा करुण अनुवाद किया है। सिंहली भाषा-भाषियों को भगवद्गीता पढ़ने का सौभाग्य उन्हीं के प्रयत्न से प्राप्त हुआ। इसका बड़ा सुन्दर अनुवाद श्री शिवली जी ने किया है। 'लाइफ़ इन इण्डिया' (भारत का जीवन) नामक उनकी अँग्रेज़ी पुस्तक सांस्कृतिक दृष्टि से बड़ी ऊँची रचना है। अभी हाल में ही उनकी एक पुस्तक प्रकाशित हुई है––"बौद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग" इस पुस्तक में विभिन्न देशों के बौद्धों के जीवन का अनेक पक्षों और दृष्टियों से अध्ययन किया गया है।

सिंहली भाषा में शिवली जी ने लगभग ३० पुस्तकें लिखी हैं। कहानी, साहित्यालोचना, कला, पुरातत्व आदि विषयों पर वे बराबर लिखते रहते हैं। और पाली और बौद्ध-साहित्य पर सिंहली भाषा के माध्यम द्वारा उन्होंने बहुत प्रकाश डाला है।

मैं जब तक कोलम्बो में ठहरा, शिवली जी से मेरी दो-चार बार बातचीत हुई। चलते समय जिस दिन मैं उनसे विदा लेने गया उस दिन हमारी चर्चा का प्रधान विषय 'सीलोन में हिन्दुस्तानी प्रश्न' रहा। इस महत्वपूर्ण और नाजुक प्रश्न पर उनके विचार बड़े सुलझे हुए थे। उनकी पहिली दलील यह थी कि यह प्रश्न केवल आर्थिक नहीं है। इसके पीछे कुछ ऐतिहासिक और राजनीतिक कारण भी हैं। और साथ ही साथ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि किसी भी सिंहली के मन में उत्तर भारतीयों के प्रति अपूर्व श्रद्धा और प्रेम है। परन्तु यही बात दक्षिण से जाकर बसनेवाले तमिल लोगों के विषय में नहीं कही जा सकती है। इसके दो मुख्य कारण हैं––तमिल देश के आक्रमणों के समय विजेता-शासकों के साथ आक्रमणकारी सिपाहियों के रूप में बहुत-से तमिल सीलोन में समय-समय पर जाते रहे हैं। दक्षिण भारत के आक्रमणों का सीलोन सदियों तक शिकार रहा है। आज भी सीलोन के खण्डहरों में टूटी बौद्ध प्रतिमाएँ, ध्वस्त भवन और भूमिसात प्राचीन स्थल तमिल अत्याचारों के जीवित प्रमाण हैं—कटुता की इस शृंखला को सीलोन सरलता से भुला नहीं सका है। फिर सीलोन में जो आक्रमण दक्षिण से होते रहे, वे कुछ वैसे ही लूट-खसोट के आक्रमण थे जैसे किसी समय भारत पर पश्चिम-उत्तर से मुहम्मद ग़ोरी या महमूद ग़ज़नवी ने किये थे। इनका उद्देश्य लूट-पाट और संहार था। उसी समय से कुछ तमिल यहाँ बस गये हैं। फिर अंग्रेज़ी हुकूमत सस्ते मज़दूरों को दक्षिण भारत से सदा लाती रही और इस प्रकार श्रम प्रतियोगिता में सीलोनी मज़दूर पीछे पड़ते गये। नतीजा यह हुआ कि श्रम और साधन आज दोनों तमिलों के हाथ में हैं। साथ ही यह लोग अपनी कमाई का उपयोग भारत में करना चाहते हैं। कोई भी राष्ट्र और सरकार इस भावना को बरदाश्त नहीं कर सकती।" उनके इन विचारों से सिंहल—भारतीय प्रश्न के एक पक्ष पर कुछ प्रकाश अवश्य पड़ता है। इसके बाद और बहुत-सी बातें होती रहीं। जब मैं वहाँ से उठकर चला तो 'विद्यालंकार प्रवीन' की एक मधुर स्मृति साथ ले आया।

शिवली जी आदि कुछ ऐसे भिक्षु नेता हैं जो नेहरू जी की विदेश नीति के पूर्ण समर्थक और प्रचारक हैं। और यह कहना ग़लत नहीं होगा कि कोलम्बो में भारत के हाई-कमिश्नर के कार्यालय से अधिक दोनों देशों की एकता और मिलाप का कार्य यहाँ के ये बौद्ध भिक्षु कर रहे हैं। यह हमारी एक ऐसी विरासत है जिसे राजनैतिक और आर्थिक कारण हमसे छीन नहीं सकते।

❀

(पृष्ठ १५ का शेषांश)

गीत-काव्य की सरिता में उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त डा० रामकुमार वर्मा, नरेन्द्र, अंचल, सुमन, नीरज और सुमित्रा कुमारी सिन्हा आदि ने भी अवगाहन किया है। तरुण कवि रमानाथ अवस्थी के गीत भी बड़े हृदय-स्पर्शी और भावनामय हैं। उनका निम्न गीत गीत-काव्य के इतिहास में सदा अमर रहेगा––

मैं तुम से इतनी दूर चाँद से जितनी दूर सितारे।
मैं पास तुम्हारे जैसे विद्युत के संग घन कजरारे॥
मैं एक बटोही चलने वाला साँसों की मंजिल पर।
मैं एक बूँद जो गिरा किसी के जलते भुनते दिल पर॥
मैं दीन हीन हूँ जैसे विधवा की आँखों का पानी।
मैं पावन उतना जितना पावन सावन का घन॥
मै बूँद बूँद से सदा मिलाता रहता विलय किनारे।
मै तुम से इतनी दूर चाँद से जितनी दूर सितारे॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि गीति-काव्य अभिव्यक्ति का सबसे सरल और प्रभावोत्पादक साधन है। यही कारण है कि गाँवों में हम उन विभिन्न परम्परागत गीतों को सुनते चले आते हैं, जो किसी समय वहाँ ने अज्ञात कवियों के भावातिरेक में लिखे थे और जिन्हें अब हम लोक-गीत के नाम से पुकारते हैं। लोक-गीतों की प्रियता का एक मात्र कारण यही है कि वे गेय काव्य हैं। काव्य जब तक गेय नहीं होता, तब तक उसे लोक-प्रियता नहीं मिलती। सुनानेवाला और सुननेवाला दोनों ही गेय काव्य में अधिक रस (आनन्द) का अनुभव करता है। यही कारण है कि हिन्दी साहित्य में अधिकतर गीत-काव्य लिखे जाने की परम्परा चल पड़ी है।

इस प्रकार आधुनिक गीत-काव्य को हम तीन कालों में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम भारतेन्दुकाल, जिसमें भक्ति तथा शृंगार मिश्रित गीत के अतिरिक्त देश-प्रेम के गीत भी लिखे गये। द्वितीय प्रसाद-काल जिसमें रहस्यवादी गीतों की बाँसुरी बजी और आज का तृतीयकाल, जिसमें प्रगतिवादी गीत हैं। अब भविष्य में सरस्वती के मन्दिर में किन फूलों से उपास्य की उपासना होती है, भविष्य ही बतलायेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

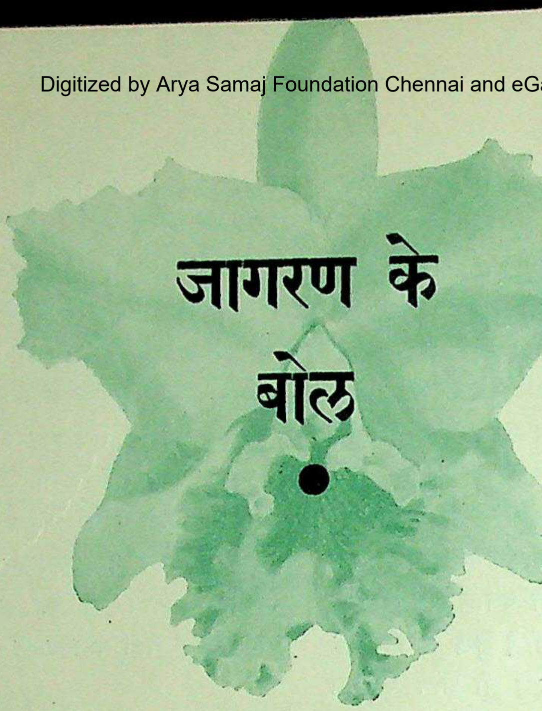

जागरण के बोल

एक

पहरुए की आवाज़

रमाकान्त श्रीवास्तव

सो रहा है गाँव
सन्नाटा चतुर्दिक छा रहा है
जज्ब हो पाते नहीं हैं
पत्तियों के टूटने के
झींगुरों के बोलने के
क्षीण से भी क्षीण सुर।
रात की चढ़ती जवानी का गरम औ' लाल लोहू
हर नखत में चमकता है।
हाथ में है लम्प
मरियल रोशनी है काँपती
डर कर अँधेरे दैत्य से।
लग रही जैसे कि उल्टी लटकती खरगोशिनी
कस बज्र मुट्ठी में शिकारी की
भयातुर कांपती है।
और लाठी
झुरमुटों की याद में डूबी हुई-सी
वायु जिनमें घुस बजाती बाँसुरी थी।
बुझ गए
दिन के अँगारे की बहुत ही स्याह राखी
जम रही है साँझ से हर अंग पर
बन नींद बोझिल।
इसलिए
वह झाड़ता है देह अपनी
जोर की आवाज देकर,
गूँजती जो दूर जाकर
क्षितिज की आवाज बन कर।

दो

ज्योति का आह्वान

भारत भूषण अग्रवाल

जागो ज्योति अमर !
लपटों की वंशी से फूटें रूप-रंग के स्वर !
जागो ज्योति अमर !

धरती पूजा करे तुम्हारी, सागर मन्त्रोच्चार
मंगल-कलश सजायें सरिता, तारे वन्दनवार
चँवर डुलाये पवन, चढ़ाये अर्घ्य-दान अम्बर
जागो ज्योति अमर !

तम के शिखरों पर फहराये, तेरा कनक-निशान
इतिहासों के चारण निशिदिन, गायें जय के गान
जिनके अक्षर बनें तुम्हारे चिर-कुंकुम-केसर
जागो ज्योति अमर !

मिट्टी की यह काया कर ले ज्वाला से शृंगार
तेरी ऊष्मा से प्राणों को मिले नवीन निखार
किरणों का सौरभ पीने को जीवन बने भ्रमर
जागो ज्योति अमर !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन विधाता

मूल : परशुराम

अनुवाद : हंस कुमार तिवारी

सारी उच्च स्तर की वार्त्ता यानी हाई लेवेल टॉक जब बेकार साबित हुई तो लोगों ने समझ लिया कि मनुष्यों की इन बातचीतों से कुछ होने-हवाने का नहीं, ऐश्वरिक स्तर तक उठना पड़ेगा। सो विश्व-मानव के कल्याण-कामी साधु-सन्तों ने सामूहिक तौर पर तपस्या शुरू कर दी। और अन्त तक वही होकर रहा जिसकी किसी ने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी। ब्रह्मा, गॉड और अल्लाह तीनों सुमेरु अर्थात् हिन्दुकुश पर्वत पर इकट्ठे हुए। इस ऐश्वरिक सभा के वितर्कों में हाथ बँटाने की इच्छा तो और भी बहुतेरे देवता-उपदेवताओं की थी, लेकिन बहुत सारे साधुओं से यज्ञ नष्ट होने की सम्भावना रहती है, इसलिए आयोजकों ने केवल तीन विधाता का ही आवाहन किया था।

ब्रह्मा के साथ नारद, गॉड के साथ सन्त पितर (सेण्ट-पीटर) और अल्लाह के साथ लगे एक पीर भी पहुँचे। इनके सिवाय अनेक अनाहूत देवी-देवता, ऋषि-सेन्ट, यक्ष-नाग, भूत-पिशाच, ऐंजेल-डेविल इत्यादि तमाशा देखने के खयाल से अदृश्य रूप में आस-पास छिपे रहे।

ब्रह्मा की मूर्ति सब जानते ही हैं—चार हाथ, चार मुँह, कभी लगता है कि दाढ़ी-मूँछ है और कभी लगता है सफ़ाचट है। पहनावे में सादी धोती, सादी चादर; कन्धे पर जनेऊ; माथे पर मुकुट। गॉड ठहरे निराकार, उन्हें देख सकने का तो कोई उपाय ही नहीं। फिर भी भक्तों के विशेष अनुरोध पर बातचीत की सुविधा के खयाल से वे प्राचीन जिहोवा का रूप लेकर आये। छाती तक लटकती कच्ची-पक्की दाढ़ी-मूँछ, कन्धों को छाये हुए बाल, बड़ी-बड़ी आँखें, सिकुड़ी हुई भौंवें, दुर्वासा जैसा क्रोधी चेहरा, झूला पहनावे में। पचास साल पहले चीना बाज़ार में ख्रीष्टीय सम्प्रदाय विशेष के लिए इस तरह की तस्वीर बिका करती थी; आज भी बिकती है या नहीं, नहीं जानता।

अल्लाह गॉड से भी बढ़कर निराकार ठहरे! लाख निहोरा-मिन्नत के बावजूद वे कोई रूप लेने या बातें करने पर राज़ी नहीं हुए। पीर साहब ने फ़रमाया, फ़िक्र न करें, अल्लाह हर जगह हैं, यहाँ भी हैं; उनके विचार में ज़ाहिर करूँगा। मगर नारद और सन्त पितर ने कहा: इस तरह उनके बहाने आप अपनी नहीं कहेंगे, इसका कौन-सा सबूत रहेगा? पीर साहब बोले: लीजिए यह चाँद-छाप झण्डा यहाँ गाड़े देता हूँ, इसके नीचे पच्छिम मुँह खड़े होकर मैं बोलूँगा; अगर अल्लाह नाराज़ होंगे तो यह झण्डा टूटकर मेरे माथे गिरेगा। इस प्रस्ताव पर ब्रह्मा और गॉड राज़ी हो गये, इसलिए कि वे अल्लाह के बन्दे को खुश करने के लिए हर समय तैयार रहते थे।

नारद, सन्त पितर और पीर साहब के हुलिये बताना बेकार हैं। इनकी शकल-सूरत नाटचमञ्च, यूरोप के पुराने चित्रों और इस्लामी सभा-जुलूस में देखी जाती हैं।

ब्रह्मा, गॉड और अल्लाह के मिज़ाज भी एक-से नहीं। मज़ाक़-दिल्लगी में हिन्दू देवता नहीं उखड़ा करते। फिर ब्रह्मा की तो बात ही क्या, रिश्ते में वे सबके दादा लगते हैं। गॉड बड़े ही गम्भीर स्वभाव के, लेकिन बहरहाल उनमें कुछ रसबोध आ गया है: हल्का-फुल्का हँसी-ठट्ठा उनसे चल सकता है। मगर यह अल्लाह जो हैं, वे न केवल नज़र या वाक्य से परे हैं, बल्कि परिहास से भी परे हैं। पाकिस्तानी शासनतन्त्र के मुखबन्ध में अल्लाह के आधिपत्य की जो घोषणा की गयी है, वह महज़ मज़ाक़ नहीं है।

कालिदास ने लिखा है, जब महादेव तप में तल्लीन हुए तो नन्दी के शासन से पेड़-पौधे सन्न हो गये; भौंरों का गुनगुन भुला गया, पंछी गूँगे हो गये, हिरनों की दौड़-धूप थम गयी—सारा जंगल जैसे चित्र-लिखा हो। इन तीन विधाताओं के सम्मेलन से सुमेरु पर्वत का भी वही हाल हो गया। लेकिन चूँकि ये ध्यानस्थ न होकर तर्क में जुट गये, इसलिए स्थावर-जंगमों के जान में जान आयी।

ब्रह्मा को देखते ही जिहोवा रूपी गॉड ने भौंवों पर बल डालकर पूछा—आखिर आप यहाँ किस मतलब से? आप की तो अब कहीं भी पूछ नहीं है, केवल ब्याह के न्योतेवाले काग़ज़ पर लोग आपकी तस्वीर छापा करते हैं। हाँ, कृष्ण, शिव, काली या राम आये होते तो एक बात थी।

ब्रह्मा बोले—उन्होंने मुझे ही अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजा है।

पीर साहब की भी टकटकी ब्रह्मा पर बँधी थी। नारद ने पूछा—क्या देख रहे हैं जनाब!

पीर साहब ने धीरे से कहा—इनके तो चारों तरफ़ मुँह हैं, भला ये सोते कैसे होंगे? नारद ने कहा—इनके सोने की गुंजाइश ही कहाँ है। तमाम रात जागकर काटते हैं। सोये नहीं कि प्रलय!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीर—या ग़ज़ब !

सन्त पितर ने हाथ जोड़कर कहा—अब सभा शुरू करने की इजाज़त दी जाय।

ब्रह्मा ने कहा—माइ हेवन्ली ब्रदर्स ! मेरे आसमानी बिरादरान, हमारा सबसे पहला कर्त्तव्य इस सभा के लिए सभापति का चुनाव कर लेना है। उम्र के लिहाज़ से में आप सब में बड़ा हूँ, लिहाज़ा सभापतित्व मैं ही करूँगा।

गॉड ने कहा—यह हर्गिज़ नहीं होने का। आप तैंतीस करोड़ में से एक हैं और मैं हूँ एकमात्र अद्वितीय ईश्वर—

सम्भान से झण्डे की ओर अपना हाथ बढ़ाते हुए पीर साहब ने कहा—और ये भी वही हैं।

गॉड बोले—ख़ैर वही सही। हम और ये, दोनों एकमात्र अद्वितीय ईश्वर हुए। लेकिन चूँकि सीनियर मैं पड़ता हूँ, इसलिए सदारत मैं करूँगा।

ब्रह्मा ने कहा—बड़े भाई, यह तो बतायें कि इस विश्व-ब्रह्माण्ड को चलाते आपको कितने दिन हुए ? इस दुनिया को आपने बनाया कब ?

गॉड—मेरे पुत्र ईसा के जन्म से चार हज़ार साल पहिले।

ब्रह्मा—और उसके पहले क्या करते रहे थे आप ?

गॉड—लगता है, आपने बाइबिल नहीं पढ़ा ? ईश्वर की आत्मा पानी में निवास करती थी।

ब्रह्मा—यानी बुड़की लगाये सो रहे थे। हमारे नारायण डूबते नहीं, तिरते हुए ही सोया करते हैं। और अल्लाहताला का क्या हाल है ?

पीर—क़ुरान शरीफ़ पढ़ देखें, शुरू से अख़ीर तक उसमें सब लिखा है।

गॉड—अच्छा ब्रह्माजी, आप शायद विष्णु की नाभी से उत्पन्न हुए ? आप का भी जीवन-मरण है ?

ब्रह्मा—है तो क्या हुआ ? मेरा एक ही जीवन इतना बड़ा होता है कि—इकत्तीस की पीठ पर तेरह शून्य देने से जितना होता है, उतने वर्ष का। आप जब पानी में डुबकियाँ लगाये पड़े थे, तब भी मैंने अनेक रचनायें कीं।

नारद ने हाथ बाँधकर कहा—हे भगवान ! मेरी तुच्छ बुद्धि में यह बड़े-छोटे का विवाद बेकार है। आप तीनों ही सभा का सभापतित्व करें।

सन्त पितर ने कहा—हाँ, यही ठीक है। पीर साहब चुपचाप, ऊपर-नीचे, दायें-बायें सिर हिलाते रहे।

नारद ने कहा—आप लोगों को इतना कष्ट देकर बुलाने का एक उद्देश्य है। वह यह कि संसार में जिससे शान्ति क़ायम हो, मार-काट, लूट-पाट, हिंसा-द्वेष, ठगी-लुच्चई आदि पाप कर्म न हों, इसका कोई उपाय निकाला जाय।

ब्रह्मा—भई गॉड, आप कोई उपाय सुझायें।

गॉड—उपाय तो मैंने बहुत पहिले ही बता दिया है। सारे संसार के लोग ईसा की शरण में आयें, उनके बताये मार्ग पर चलें, दो दिन में यहाँ शान्ति क़ायम होगी, स्वर्ग का राज्य स्थापित होगा।

ब्रह्मा—मगर हाथ कंगन को आरसी क्या ! देख तो रहे हैं कि ईसा के उपदेश कोई नहीं मानता। फिर भी आप चुप हैं। आप के वज्र, तूफ़ान, महामारी, अग्नि-वृष्टि—ये सारे हथियार क्या हो गये ?

गॉड—वे सुरक्षित हैं—अवस्था देखकर उनकी व्यवस्था की जायगी अभी नहीं। मैंने मनुष्यों को कर्म करने की आज़ादी दे रक्खी है, आज़ादी यानी फ्री विल्। अब अगर अपनी इच्छा से मनुष्य अपना सर्वनाश करे, तो मैं लाचार हूँ।

ब्रह्मा—मतलब यह कि आप क़बूल करते हैं कि मनुष्यों की कुबुद्धि दूर करने की ताक़त आप में नहीं है। इस पर अल्लाहताला का क्या ख़याल है ?

पीर—दुनिया के लोग इस्लाम क़बूल कर लें तो सब आप ही आप दुरुस्त हो जाय।

नारद—जिन लोगों ने क़बूल कर लिया है, उनके भी तो आसार अच्छे नहीं दीखते। अल्लाह उनकी ख़ैर क्यों नहीं करते ?

पीर—सबसे पहले लोगों को पाकिस्तान से एक-दिल होना पड़ेगा।

नारद—इसकी तो सम्भावना नहीं है। अल्लाह बलपूर्वक सब को एकदिल क्यों नहीं बना देते ?

पीर—यह तो अल्लाह की मर्ज़ी।

गॉड—सुनिये ब्रह्माजी, मैंने मनुष्यों की एक निष्पाप जोड़ी बनाकर ईडेन वन में रक्खी थी। वे मज़े में रह रहे थे, मगर आप लोगों से यह देखा नहीं गया। तुम्हारे वंशजों में से एक वहाँ गया और अपने फ़रेब से आदम और हव्वा को उसने बिगाड़ दिया।

ब्रह्मा—यह तो शैतान ने किया था, जो आपका ही एक बाग़ी अनुचर था।

गॉड—शैतान तो निहायत बदज़ात है, मगर उसने आदम हव्वा को नहीं बिगाड़ा, बिगाड़ा था तुम्हारे एक परपोते वासुकी ने।

ब्रह्मा—वासुकी ? है तो वह साँप ज़रूर पर बड़ा भला-सा छोकरा है। ऐसा फ़रेब वह नहीं कर सकता। ख़ैर, उससे ही पूछ देखा जाय। नारद, ज़रा वासुकी को तो बुलाना।

पास ही एक देवदार की डाल से पूंछ टिकाये वासुकी झूल रहे थे। आवाज मिली नहीं कि हाज़िर हो गये। ब्रह्मा को लम्बे पड़कर उन्होंने प्रणाम किया और पूछा—क्या आज्ञा है पितामह ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मा—हाँ, यह तो बताना, तुमने क्या ईडन वन में जाकर आदम और हव्वा को बिगाड़ा था? वासुकी ने अपनी फटी जीभ काटकर कहा—राम-राम! ऐसा मैं कर सकता हूँ भला! आपको ग़लत खबर मिली है प्रभु! अगर अभय मिले तो सच्ची घटना सेवा में निवेदन करूँ।

ब्रह्मा—दिया अभय। खोलकर सब कहो।

वासुकी ने आरम्भ किया—यह क्या कोई आज की बात है! सागर-मन्थन के बाद मेरे सर्वांग में बड़ा दर्द हो गया था। अश्विनीकुमारों से जब उसकी दवा पूछी, तो बोले, अरे यह मामूली दर्द है। हड्डी नहीं टूटी है, मांस कुछ कुचला गया है। दो-चार दिन हवा बदल आओ, सब रफ़ा। सो मैं दुनिया की सैर को निकला। घूमते-घामते एक दिन तौरस पर्वत के नीचे जा निकला। ऊपर एक सुन्दर बगीचे पर नज़र पड़ी। मैंने साँप का रूप लिया और रेंगते हुए ऊपर जा पहुँचा। पहुँचकर देखा, वहाँ एक स्त्री और एक पुरुष क़ैद हैं, दोनों ही असभ्य हैं, कुछ नहीं जानते—लाज-शरम भी नहीं। मेरे जी में दया उपजी। स्त्री के पास जाकर मैंने पूछा—अयि सर्वांग-सुन्दरी, तुम किसकी लाड़ली हो, किसकी पत्नी? तुमने कपड़े क्यों नहीं पहने? बाल क्यों नहीं सँवारे, नाखून क्यों नहीं काटे? गले में हार क्यों नहीं डाला? वह जो मुस्टण्डा-सा जंगली आदमी घास छील रहा है, वह तुम्हारा कौन होता है? तुम लोगों का गुज़ारा कैसे चलता है, क्या खाती हो?

मेरी बातों से वह खुश हो गयी। धीमे हँसकर बोली—मैं हव्वा हूँ। वह है आदम, मेरा पति। मैं किसी की कन्या नहीं हूँ। उस आदम के पँजरे से ही जिहोवा ने मुझे बनाया है। हम यहाँ खेती-बारी करते हैं, फलमूल खाते हैं और आनन्द से गाते-नाचते हैं।

मैंने पूछा— फल कौन-सा खाती हो? आम, कटहल, केले हैं यहाँ?

हव्वा बोली—अखरोट, अंगूर, अनार, अंजीर, आबजूस—ये मेवे खाया करती हूँ। सिर्फ़ उस पेड़ का फल खाने की हमें मनाही है। जिहोवा ने कहा है, उसे खाया नहीं कि सर्वनाश। अक्ल खुलेगी, भले-बुरे का ज्ञान हो जायगा।

पूँछ के सहारे उठकर मैंने उस पेड़ का एक फल चखा। दाँत गड़ाने में कठिनाई हुई, मगर खाने में मज़े का था। न छिलका, न बिया, न रेशे—मानो कड़ी चाशनी की मिठाई हो। पितामह, इस साँप की ज़ात को आपने तो अक्ल के दाँत दिये नहीं, पर उस फल के खाते ही मेरे चार अकल के दाँत एक-बारगी मसूड़े चीरकर निकल आये। बुद्धि ज़रा तीखी हो गयी, कर्त्तव्य के बारे में दिमाग़ खुल गया। मैंने हव्वा से कहा—आखिर इतने दिनों तक तुम क्या भाड़ झोंकती रही—इतने अच्छे फल को नहीं चखा?

—जिहोवा ने मना जो किया है।

—मने की ऐसी की तैसी। बूढ़ों की हर बात मानी जाय तो कुछ खाना ही नसीब न हो। मेरी सुनो, एक बार ज़रा-सा खा देखो।

—और अगर अक्ल खुल जाय?

—तुम भी कैसी भोली औरत हो। अक़ल तो खुलनी ही चाहिए। ज़िन्दगी-भर उजबक ही रहना चाहती हो क्या? मैं इसके दो फल तोड़ देता हूँ। एक आप खा लो और एक उस जंगली भूत आदमी को खिला दो।

हव्वा ने खुद एक बड़ा फल खाया और छोटा वाला आदम को खिला दिया। खाया और जीभ काटकर वह भाग खड़ी हुई। ज़रा देर बाद गूलर के पत्तों की झालर पहन कर वह आयी। पूछा—भला अब कैसी लगती हूँ मैं?

क्या कहने हैं! अब उर्वशी, मेनका और रम्भा कहाँ लग पाती हैं।

हव्वा ने होंठ फुलाकर आँखें सिकोड़ कर कहा—मुझे हार नहीं है, चूड़ी, कंघी, महावर और होठों पर लगाने का रंग नहीं है।

मैंने कहा—वह सब कुछ हो जायगा, तुम आदम से कह देखो।

हव्वा ने होठों को थोड़ा और फुलाया। बोली—वह बड़ा वैसा है। कुछ नहीं देता, उसके पास कुछ हई नहीं। तुम मुझे ला दो। मैं तो तुम्हारे ही पास रहूँगी—हूँ।

मैंने कहा—अरे राम, मैं यह सब कहाँ पाऊँगा। उसके तो हाथ-पैर हैं, मेरे वह भी नहीं। और इस साँप के साथ तुम गिरस्ती कैसे करोगी? मेरे कोई पचास तो साँपिन हैं। तुम्हें देखकर वह फुफकारेंगी कि. . . . मगर तुम्हें फ़िक्र कैसी पड़ी है। अपने मियाँ के पास ही ज़रा रूठो, ठुनको, वही रोज़गार कर लायगा, जो चाहोगी मिलेगा।

और इतने में बड़ी आँधी आयी। बिजली की चमक के साथ ज़ोरों की कड़क हुई। मैंने देखा, एक ताड़-सा लम्बा आदमी मुझे खदेड़े आ रहा है। मैंने समझा, हज़रत जिहोवा हैं और मैं साँप का रूप लिये खिसक पड़ा।

गॉड ने कहा—अब तो सुन लिया, वासुकी ने अपनी ग़लती मान ली।

ब्रह्मा—इसमें ग़लती की क्या बात। आपने दो प्राणी बनाये और उन्हें अज्ञान के अन्धेरे में रक्खा। सामने ही ज्ञान का पेड़ खड़ा रहा पर उसका फल खाने की मुमानियत! वासुकी ने उनकी आँखें खोल दीं।

गॉड—खाक खोल दीं—मेरा सारा किया-कराया ही चौपट कर दिया। उन आदिम पुरुष-स्त्री की पहली अबाध्यता से ही संसार में पाप और दुःख-कष्टों का अन्त नहीं रहा।

सन्त पितर ने कहा—श्रीकृष्ण ने तो अनजानों में बुद्धिभेद की मनाही की है।

(शेषांश पृष्ठ ६२ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धरती से १००५७ मील ऊपर

ओमप्रकाश एम०, एस्-सी०

चन्द्रलोक को जानेवाले यात्री प्रतीक्षालय में बैठे थे। कुछ अपनी तैयारियों को अन्तिम रूप दे रहे थे और कुछ लोग अपने इष्ट-मित्रों से बातें कर रहे थे, जो उनको बिदा करने के लिए आये हुए थे। एक ओर डाक्टर स्वास्थ्य-सम्बन्धी काग़ज़ों की जाँच-पड़ताल कर रहा था और दूसरी ओर सतर्क-अधिकारी सभी यात्रियों की जानकारी के लिए कुछ सूचनाओं को लाउड-स्पीकर द्वारा सुना रहा था। सारे वातावरण में एक अजीब हलचल-सी दिखायी देती थी। इस कोलाहल में प्रतीक्षालय के एक कोने में अशोक और अनीता स्नेही जनों के साथ बैठे थे।

"अशोक, तुम्हारे इस मूक बलिदान को पृथ्वी लोक के लोग कभी न भुला सकेंगे", मित्रों में से एक बोला।

"और अनीता भी क्या कम साहस कर रही है? छोटे-से जीवन में ही यह चन्द्रलोक की सर्वप्रथम यात्रा में जा रही है—और वह भी मानवता का शुभ सन्देश लेकर। हमारी शुभ-कामनाएँ तुम्हारे साथ हैं", एक दूसरे ने कहा।

अशोक और अनीता दोनों ही चुप थे। अशोक ने अनीता और अनीता ने अशोक की ओर देखा। अशोक कहने लगा, "आप लोगों ने जो उत्तरदायित्व हमें सौंपा है, उसकी गुरुता को हम अनुभव करते हैं, आप लोगों का आशीर्वाद और शुभकामनाएँ हमारे साथ हैं, इससे हमें हर्ष होता है। हम अपनी ओर से पूरा प्रयत्न करेंगे कि जो ज़िम्मेवारी आज आप हमें सौंप रहे हैं, हम उसके अयोग्य सिद्ध न हों।"

अचानक घन्टी बज उठी। अशोक और अनीता ने प्रियजनों से बिदाई ली। यात्री राकेट विमान की ओर चल दिये। राकेट के द्वार पर सह-चालक, एक सत्कार-परिचारिका के साथ खड़ा था। वह यात्रियों के पत्रों को देख-देखकर, राकेट के अन्दर प्रवेश कराने लगा।

मदालसा जब सहचालक के निकट आयी तो उसके शरीर में कँपकँपी-सी चढ़ आयी। छिद्रान्वेषी सहचालक की तीव्र दृष्टि ने मदालसा की मानसिक दशा को ताड़ लिया। मदालसा ने पास-पोर्ट दिखाने के लिए हाथ आगे बढ़ाया। सहचालक ने पासपोर्ट को लेते हुए कहा, "आपको कुछ समय के लिए यहीं पर रुकना होगा।"

मदालसा की घबराहट बढ़ गयी। उसके ठीक पीछे अनीता खड़ी थी। मदालसा की यह दशा देखकर उसने पूछा, "मदालसा बहन क्या बात है?"

"कुछ नहीं, ये सहचालक न जाने मुझे क्यों रोक रहे हैं", मदालसा ने कहा, अब तक वह अपनी पूर्व स्थिति को प्राप्त हो चुकी थी।

"क्या बात है, जी?" अनीता ने सहचालक को पूछा।

"मुझे इन भद्र महिला के विषय में कुछ सन्देह है। क्या ये उन्हीं अठारह सम्मानित सदस्यों में से हैं जिन्हें विश्व-सरकार ने चन्द्रलोक की यात्रा पर भेजने का अवसर दिया है? मैं यही मालूम करना चाहता हूँ।"

अनीता और अशोक दोनों ही सहचालक की बात सुनकर मुस्कराये। अशोक ने आगे बढ़कर कहा, "हम दोनों यात्री आप को यह विश्वास दिलाते हैं कि मदालसा बहन उन १८ व्यक्तियों में से ही एक हैं। तीन माह तक ये राकेट आरोहण-प्रशिक्षण-शाला में हमारे साथ रही हैं। और ये उन सभी परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुई हैं, जो चन्द्रलोक जाने वाले यात्रियों के लिए नियत हैं। अन्य जानकारी के लिए आप प्रशिक्षण-शाला के संचालक से पूछताछ कर सकते हैं", यह कहकर अशोक ने मुस्कराते हुए अपने जेबी-रेडियो-प्रेषक (ट्रांसमीटर) को सहचालक के सामने कर दिया।

"धन्यवाद, यही पर्याप्त है", सहचालक ने उत्तर दिया।

मदालसा को लेकर अनीता और अशोक राकेट विमान के अन्दर घुसे। एक सत्कार-परिचारिका साथ थी। वह उनको उप-संचालक के केबिन में ले गयी। उप-संचालक ने तीनों के राकेट प्रशिक्षण-शाला से प्राप्त तीन माह की रिपोर्ट, अत्यधिक तनाव और दबावों को सह सकने का परीक्षा-पत्र, राकेट-मोटर या गामक यन्त्र की ड्राइवरी का प्रमाण-पत्र, अनुकूल स्थिति सम्बन्धी परख-पत्र आदि को देखने लगा। यहाँ से छुट्टी पाते ही परिचारिका उन्हें विमान के मुख्य-हॉल में ले गयी। वहाँ पर एक वैमानिक यात्रियों को सतर्कताओं के बारे में समझा-समझाकर बता रहा था जो राकेट-आरोहण-प्रशिक्षण-शाला में यात्रियों ने लगातार तीन माह तक तोते की भाँति रट-सी ली थीं।

एकाएक घण्टी बज उठी। वैमानिक ने कहा, "आप लोग तैयार हो जायें। अब शीघ्र ही विमान चलने वाला है।"

राकेट-विमान के बाहर खड़े कप्तान ने एक बार सरसरी किन्तु गम्भीर दृष्टि से विमान को चारों ओर से देखा। उसके साथ इंजीनियर, मुख्य-चालक, सह-चालक और दूसरे वैमानिक भी थे। कप्तान ने इंजीनियर की ओर देखते हुए कहा, "कल रात को आकाश स्टेशन से लौटते समय विमान का एक स्वतः-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चालक खराब हो गया था। उसे ठीक कर लिया है न?"

"हाँ, मैंने उसे ठीक कर दिया है, उससे सम्बन्धित नियन्त्रक-बोर्ड, संकेतक और अन्य यंत्र भी खराब हो गये थे। लेकिन इस समय सब ठीक हैं।"

कप्तान ने इंजीनियर की बात को ध्यान से सुना और कृत्रिम वायुमण्डल पैदा करने वाले यन्त्र की ओर देखा। उसको ठीक पाकर वह विमान में चढ़ गया। कप्तान के निश्चित कदमों के पीछे-पीछे सब कर्मचारी भी विमान में चढ़ गये।

कप्तान ने केबिन में जाकर अपना काम सँभाला। उसने मेज़ पर लगे बटन को दबाया कि सारे विमान में घनघनाती हुई गम्भीर घण्टी की आवाज़ बिखर गयी। और तभी एक वैमानिक विमान के चलने से पूर्व निरीक्षण-रिपोर्ट लेकर उपस्थित हुआ। रिपोर्ट देखते ही कप्तान ने आन्तरिक फ़ोन उठाया, बोला, "हलो, मुख्य-चालक सब ठीक है।"

मुख्य चालक ने यह सुना तो अपनी कुर्सी के बायें हत्थे पर लगे बटन को दबा दिया। विमान के प्रथम खण्ड के गामक यन्त्रों (राकेट मोटर) से घर्र-घर्र की खूब तेज़ ध्वनि निकलने लगी। वायुयान स्टेशन पर बैठे आकाश-नियन्त्रक ने विमान को चलाने का संकेत किया। मुख्य-चालक के केबिन से एक चकाचौंध पैदा हुई और राकेट के प्रथम खण्ड के गामक यन्त्र पूरी तेज़ी से काम करने लगे। आवाज़ और भी तीव्र हो उठी। यान्त्रिक चालक (ऑटोमैटिक मेकेनिक पाइलॅट) ने काम करना प्रारम्भ कर दिया, और राकेट विमान तेज़ी से आकाश की ओर सीधा ऊपर उठा।

अशोक ने अपने संग्राहक-पट (रडार द्वारा चालित टेलिविज़न स्क्रीन) को चालू कर दिया, यह संग्राहक-पट संजय की दिव्य दृष्टि का काम देता था। बादलों को चीरता हुआ राकेट विमान तीव्र गति से आकाश को छूने के लिए आतुर हो रहा था। आकाश का नीलापन धीरे-धीरे घना बना और गहरा होता जा रहा था। आकाश में होनेवाले परिवर्तन संग्राहक-पट पर आते और अशोक की कल्पना को रोमांचित कर जाते। उसने दूरी-मापक यन्त्र की ओर देखा। विमान दस मील ऊपर उठ चुका था। आकाश की नीलिमा हलके कासनी रंग में बदलने लगी और पृथ्वी से १२ मील तक पहुँचते-पहुँचते आकाश घने कासनी रंग का हो गया। अब उसे ताप की ओर देखना था, विमान की इस ऊँचाई पर सर्दी बर्फ़ से ६७ गुना अधिक हो चुकी थी! लेकिन राकेट विमान में बैठे अशोक को इसका कुछ भी पता नहीं चला। विमान के कृत्रिम-वायुमण्डल के कारण ही वहाँ घर जैसी उष्णता सम्भव थी।

सभी लोग अपने-अपने संग्राहक-पटों की सहायता से आकाश के दृश्य देखने में तल्लीन थे। और उधर विमान निरन्तर गति पकड़ता जा रहा था। वह ऊँचे, ऊँचे — बहुत ऊँचे चला जा रहा था। दूरी-मापक-यन्त्र की सुई २० मील पर हिल रही थी कि अचानक ही अशोक के संग्राहक-पट पर अन्धेरा छा गया। आकाश भी कासनी से घना काला हो गया। और अशोक का जादू-भरा पट भी अन्धकार में घुल गया। उसने स्विच से पट की क्रिया को बन्द कर दिया। अब दूरी-मापक-यन्त्र में विमान धरातल से २५ मील ऊँचाई पर आ गया था। और अचानक ही राकेट को एक भारी धक्का लगा। धक्के से सँभलते ही सब ने मदालसा की चीख सुनी।

मदालसा को ढाढ़स बँधाते हुए अशोक बोला, "पहिले खण्ड से अलग होने के कारण विमान ने अपने को बिलगाया है— इसलिए यह धक्का लगा है। शायद तुम्हें यह ध्यान नहीं रहा— क्यों मदालसा?"

विमान का प्रथम खण्ड अपना काम पूरा कर चुका था। इसलिए उसको यान्त्रिक-चालक ने अलग कर दिया है। अब हमारे विमान की गति ५५०० मील प्रति घण्टे से भी अधिक है, अनीता समझते हुए बोली। अब तक मदालसा सँभल चुकी थी। वह कहने लगी, "सब ही तो सीख चुकी हूँ। सब बातें मुझे आरोहण-प्रशिक्षण-शाला में बताई गयी थीं, पर न जाने क्यों अनायास ही मेरे मस्तिष्क का सन्तुलन बिगड़ गया?"

मदालसा की बात सुनकर सब हँस पड़े। अशोक ने मदालसा का ध्यान बँटाने के लिए कहा, "दीदी, यहाँ से यान्त्रिक-चालक ने विमान को दूसरे खण्ड के लिए नियन्त्रित कर लिया है और उसके गामक यन्त्रों ने काम आरम्भ कर दिया है। याद है न तुम्हें! यान्त्रिक चालक काम कैसे करता है?"

"मैंने तुम्हें बताया तो कि जब कोई भी मुझसे कुछ पूछता है तो सब जैसे भूल जाती हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अच्छा, तो सुनो। यान्त्रिक चालक एक चुम्बकीय टेप के द्वार विद्युतकणों (इलेक्ट्रोनिक्स) की सहायता से चलाया जाता है। इस चुम्बकीय टेप में विमान के उड़ने से पूर्व ही आवश्यक आदेश भर दिये जाते हैं, जैसे ग्रामोफ़ोन रेकार्ड में ध्वनि भर दी जाती है।"

और उधर विमान की गति बढ़ती जा रही थी। मदालसा ने सामने लगी हुई घड़ी को देखा। विमान को धरातल छोड़े १२४ सेकण्ड हो चुके थे। और विमान १४५०० मील प्रति घण्टे की चाल से ऊपर उठ रहा था। साथ ही लगा थरमॉमीटर आकाश का तापमान बता रहा था।

मदालसा अशोक से पूछ बैठी, "देखो, थरमॉमीटर में अब इतना अधिक तापमान कैसे है? अभी एक मिनट पहले तो आकाश हिम से भी अधिक शीतल था।"

"हाँ, यह ठीक ही है दीदी। धरातल से २० मील की ऊँचाई पर वायुमण्डल में ओज़ोन गैस मिलने लगती है। इसमें सूर्य ताप को सोखने का गुण होता है। इसीलिए यह थरमॉमीटर गर्मी बता रहा है। जब हम धरातल से ५० मील ऊँचे पहुँच जायँगे तो आकाश का ताप भी बढ़ जायेगा। यदि इतनी ऊँचाई पर किसी मानव को आकाश में छोड़ दिया जाय तो जानती हो क्या होगा?

"हाँ, वह नीचे गिरेगा।"

"सो तो है ही। लेकिन गिरने से पहिले ही वह मर जायगा। क्योंकि सूर्य की ओर वाले उसके अंग गर्मी से झुलस जायँगे और पृथ्वी के तरफ़ का शरीर ठंड से बर्फ की भाँति जम जाएगा और तीसरी ओर वायुमण्डल में इतना कम ऑक्सीजन होगा कि साँस लेना भी सम्भव नहीं होगा।"

"कृत्रिम वायुमण्डल के कारण ही शायद हमारी जान..." इतना कहना था कि एक बार और धक्का लगा। मदालसा फिर घबरा उठी, किन्तु उसे याद आ गया कि ४० मील के बाद दूसरा खण्ड भी समाप्त हो जाता है।

राकेट को पृथ्वी से चले ३०० सेकिण्ड हो चुके थे, उसकी गति बढ़कर १८५०० मील प्रति घण्टा हो चुकी थी। अशोक ध्यान से छत को देखने लगा। प्लास्टिक और नाइलोन की बनी दीवारें बड़ी आकर्षक लग रही थीं। कोने में एक छिद्र से वायु-जनित्र (एयर जेनरेटर) से उत्पन्न कृत्रिम वायु यात्रियों के प्राण-वायु का प्रबन्ध कर रहा था।

दूर-मापक-यन्त्र की सुई 'सत्तर' तक पहुँच चुकी थी। कौतुहलवश अशोक ने संग्राहक पट का बटन दबा दिया। पट-क्रियाशील हो उठा। पट पर चिनगारियों के फ़व्वारे छूटने लगे। अशोक समझ गया कि उल्का कणों ने विमान पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया है।

अशोक के देखा-देखी मदालसा ने भी पट चाल कर दिया, परन्तु इधर तो चिनगारियों को देखना था कि उसकी आँखें मुँद-सी गयीं, घबराहट में चिल्ला उठी: "आग लगी, आग लगी।"

"मदालसा, आग नहीं, उल्काकणों ने विमान पर आक्रमण कर दिया है। घबराओ मत। विमान को कोई हानि नहीं होगी। क्योंकि विमान ऐसी धातु की चादरों से बना हुआ है जो पिघलती नहीं।" अशोक ने कहा।

आराम की साँस लेकर बोली, "ओफ़ ओह, फिर भूल गयी थी।"

शाह फ़ारूक के बाद अब प्रेसिडेन्ट नगीब भी !

मदालसा का कौतुहल शान्त हुआ। उसने दूरी-मापक यन्त्र में देखा विमान धरती से १३० मील की ऊँचाई पर आ गया था। अचानक पट पर फिर चकाचौंध की झलक दिखाई पड़ी। मानो अरुणोदय हो गया हो। उसे याद हो आया कि यह एक ज्योतिपुंज है जो अब दस मील की ऊँचाई तक बराबर मिलता रहेगा।

मदालसा यह सोच ही रही थी कि एक सत्कार-परिचारिका ने प्रवेश किया और उसने स्विचबोर्ड के एक बटन को दबा दिया। जिससे प्लास्टिक की दीवारों पर सीसे के धातु का आवरण छा गया। फिर वह बोली, "कृपया अपने संग्राहक पटों को कुछ समय तक मत चलाइए क्योंकि विमान पर ब्रह्माण्ड किरणों (कॉस्मिक रेज़) ने आक्रमण शुरू कर दिया है। पटों के चलने से ब्रह्माण्ड किरणें अन्दर आ सकती हैं।" सभी यात्रियों ने अपने-अपने संग्राहक-पटों को बन्द कर दिया क्योंकि वे इन किरणों की भयानकता से परिचित थे—हाइड्रोज़न और अणुबम की मृत्यु किरणें तो खिलौना हैं इनके सामने!

धरती को छोड़े अभी केवल ४८।। मिनट ही हुए थे। पर इतनी ही देर में विमान १० हज़ार मील की घुमावदार यात्रा कर चुका था। ज्यों-ज्यों राकेट विमान ऊपर को उठता जा रहा था त्यों-ही-त्यों वायुमण्डल छिछला और हल्का होता जा रहा था; पृथ्वी का आकर्षण भी शनैः शनैः कम हो रहा था।

(३)

राकेट विमान पृथ्वी से एक हज़ार मील की ऊँचाई पर आ गया था। यात्रीगण वायुहीन आकाश की यात्रा के अभ्यस्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गये थे। अब आकाश-स्टेशन समीप ही है। सभी इस उपगृह को देखने के इच्छुक थे। इसलिए सबने अपने संग्राहक पटों को चालू कर दिया। संग्राहक-पट पर तीव्र गति से प्रकाश करता हुआ, राकेट विमान से २० गुना आकाश स्टेशन सर्र से निकल गया। १००५७ मील की ऊँचाई पर यह आकाश-स्टेशन बनाया गया था। मानव-मस्तिष्क और इंजीनियरिंग का यह एक अद्भुत उदाहरण था। प्रति दो घण्टे में यह पृथ्वी का एक पूरा चक्कर लगा लेता था। इसकी गति १५८४० मील प्रति घण्टा थी। इसको पृथ्वी से यहाँ तक आने में केवल डेढ़ घण्टा लगा था।

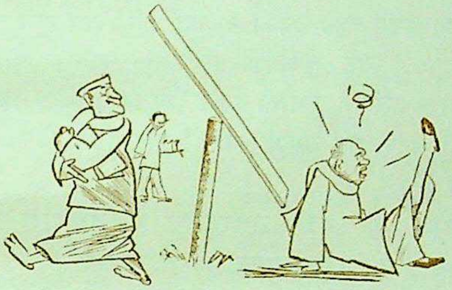

नीति, कूटनीति या शान ?
त्रिवांकुर कोचीन का थानु-पिल्ले मन्त्रिमण्डल

इसी बीच परिचारिका ने प्रवेश किया। बड़े विनम्र शब्दों में उसने सम्बोधित करके कहा, "अब आप लोग अपने-अपने चापयुक्त आकाशीय कवच (प्रेशराइज्ड स्पेस-सूट) और शिरस्त्राण को पहन लें। क्योंकि अब हम लोग प्रथम पड़ाव के निकट आ गये हैं। दो घण्टे में ही हम आकाश के स्टेशन (स्पेस-स्टेशन) पर होंगे।"

हमें लगा कि राकेट विमान रुक गया है यद्यपि विमान की गामक मोटरें अब भी आग बरसा रही हैं। स्थिरता के कारण हमें वस्त्र बदलने में आसानी रही। हमारे शरीर पर अत्यधिक गति से उत्पन्न 'त्वरण' बन्द हो गया था, और जो मांस-पेशियाँ शिथिल हो गयी थीं, अब वे पुनः क्रियाशील हो उठीं।

मदालसा ने इसी बीच फिर एक प्रश्न कर दिया। सभी लोग हँस दिये। लेकिन अशोक और अनीता गम्भीर थे। अनीता बोली, "अब तक विमान ऊपर की ओर ले जा रहा था, किन्तु अब उल्टी ओर चलने लगा है?"

"वास्तव में यह नीचे की ओर तो नहीं जा रहा है। यह तो जहाँ का तहाँ खड़ा है!" मदालसा ने कहा।

"इसका कारण यह है कि यहाँ आकर प्रत्येक पदार्थ की गति १५८४० मील प्रति घण्टा हो जाती है। क्योंकि यहाँ पर न वायु है और न गुरुत्वाकर्षण ही। इसलिए यहाँ किसी भी चीज़ को स्थिर रखने के लिए उसको उल्टी दिशा में उसी गति से चलाना पड़ता है।" अशोक ने शंका का समाधान करते हुए कहा।

मदालसा फिर प्रश्न कर ही रही थी कि सबकी हँसी के भय से चिन्तित हो चुप हो रही। सब लोग अपना-अपना भापयुक्त आकाशीय कवच पहिनने लगे। कवच क्या था, पूरा एक छोटा-मोटा कमरा था नाइलोन और प्लास्टिक का बना हुआ। बिल्कुल हल्का-सा। कवच में ही शिरस्त्राण लगा हुआ था। अशोक उसमें घुस गया। सिर से पाँव तक उस आवरण में ढँक गया। बाहर से गोताखोर लगने लगा। कवच में ही स्थित ऑक्सीजन जनित्र 'जेनेरेटर' को धक्का दिया, और वह ज़ोर-ज़ोर से साँस लेने लगा। मुख से निकली कार्बन ऑक्साइड को यह यन्त्र ऑक्सीजन में बदलने लगा। अशोक ने कुछ ताज़गी अनुभव की। उसने कवच में रखे जेबी रेडियो का सम्बन्ध अनीता से जोड़ा।

"हलो अनीता, तुम्हारा क्या नम्बर है?

"हलो, कौन अशोक, मेरा नम्बर पाँच है, ज़रा देर ठहरो। मैं अब तक वायुहीन रक्षक कवच को नहीं पहन सकी हूँ।

अशोक फिर अपने निरीक्षण में लग गया, उसने अपने दाहिने हाथ के पास के कवच में लगे दो बटनों में से एक को दबा दिया। कवच में स्थिर रडार का संग्राहक पट संजय की दिव्य दृष्टि की तरह काम करने लगा।

वायुहीन रक्षक और भापयुक्त कवचों को पहनने में यात्रियों को लगभग डेढ़ घण्टा लगा, अब भी विमान की गामक मोटरें उसी चाल से काम कर रही थीं और विमान उसी स्थान पर स्थिर खड़ा था। सभी यात्री अपने संग्राहक पटों में प्रकृति के आश्चर्य देख रहे थे, लेकिन अशोक का मन आकाश की शून्यता को पार करके धरती पर उतर आया था। मन ही मन बोल उठा, "हमारी इस चन्द्रलोक की यात्रा के विषय में विश्व-सरकार की राय ठीक नहीं थी, पर क्या उससे ही अपने उद्देश्य से पीछे हटा जा सकता है?" इसी उलझन में था कि परिचारिका का स्वर सुनाई दिया, "अशोक बाबू, आपकी प्रतीक्षा तो डेक पर हो रही है।"

"ओह माफ़ करिए बहन, मैं कुछ यों ही सोच रहा था आप चलिये मैं आया।" और अशोक अपने वायुहीन रक्षक लबादे को पहने डेक की ओर चल पड़ा।

डेक पर आकर उसने अपने संग्राहक पट में देखा। दूर से एक तीव्र प्रकाश की रेखा पट पर दिखायी पड़ी। वह समझ गया कि आकाश स्टेशन पास ही आ गया है। कप्तान के केबिन से शोर करती हुई एक घण्टी गूँज उठी। एक के बाद एक यात्री डेक पर से वायुहीन आकाश में कूद पड़े। मदालसा को भी कूदना पड़ा, कूदते समय उसके मुख से एक चीख निकली, किन्तु वह केवल उसके भापयुक्त कवच से टकरा कर ही रह गयी। कुछ भी सुनाई नहीं दिया।

(शेषांश पृष्ठ ५२ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अमरबेल"

विश्वनाथ वैशम्पायन

जहाँ तक मुझे ज्ञात है, सामहिक खेती और सहकारिता के विषय को लेकर हिन्दी में अभी तक उपन्यास तो क्या किसी उल्लेखनीय कहानी की भी रचना नहीं हुई है। यूरोपीय भाषाओं में भी विशेष कर रूसी भाषा में इस विषय पर जगत-प्रसिद्ध अनेक उपन्यासों का सृजन बहुत पहिले हो चुका था जैसे "वर्जिन सॉयल अपटर्न्ड", "लाइट इन कूर्डी" आदि। शोलोखोफ़ के उपन्यासों ने उस काल के रूसी साहित्य को एक नयी स्वस्थ दिशा की ओर अग्रसर किया।

"गोदान" के बाद हिन्दी-साहित्य में भारतीय ग्रामों के विकास, संघर्ष और उनकी समस्याओं एवं कठिनाइयों का चित्रण समाप्त प्रायः हो गया। जैनेन्द्र और उनके बाद के उपन्यासकारों ने शहरी सामाजिक क्षेत्र की ओर हाथ बढ़ाया जिससे वह परिचित थे। एक दो कहानीकारों ने यदि शौक़िया ग्रामीण क्षेत्र की ओर दृष्टिपात किया भी तो वह सफल नहीं हो सका, क्योंकि उनका वर्णन हवाई, चित्रण अस्वाभाविक, उखड़ा-उखड़ा-सा और सतही रहा। उनकी जड़ें गाँवों में नहीं थीं, उनकी सहानुभूति बौद्धिक थी और उनकी ग्रामीण समस्याओं की जानकारी किताबी थी, परन्तु साहित्यिक उपेक्षा के कारण गाँव का विकास रुक नहीं गया, अपितु विगत बीस वर्षों में ग्रामीण पटभूमि पर जितनी अधिक उथल-पुथल हुई उतनी उससे पूर्व डेढ़ सौ वर्षों में भी नहीं हुई थी।

बा० वृन्दावनलाल वर्मा का बुंदेलखंडी ग्रामीण सहकारी जीवन पर आधारित उपन्यास "अमरबेल" इन समस्त अभावों की एक साथ पूर्ति करता है। वर्माजी एक लम्बे काल से ऐतिहासिक और सामाजिक उपन्यास लिख रहे हैं। उनकी मँजी हुई कलम का लोहा हर एक मानता है। बुंदेलखंडी लोक-जीवन से उनका परिचय खूब घनिष्ठ और लगभग पचास-पचपन वर्ष से निरन्तर रहा है। सहकारी आन्दोलन में उनकी रुचि इस आ दोलन के जन्म से ही रही है, जिसका प्रमाण है कि जहाँ वह अन्य प्रकार के सामाजिक जीवन से पल्ला छुटा चुके ह, वहाँ झाँ ी के सहकारी वैंक के प्रधान डाइरेक्टर वह बरसों बरस रहे और अब भी हैं। ऐसे अधिकारी उपन्यास-कार की सधी हुई लेखनी से प्रसूत यह उपन्यास अनेक कारणों से महत्वपूर्ण है।

अमरबेल का प्रयोग लाक्षणिक अर्थ में ही हुआ है—पेड़ों की चोटियों पर छाई पीली-पीली अमरबेल जिसकी धरती में जड़ नहीं होती, लेकिन जो धीरे-धीरे पेड़ों का रस चस-चस कर अन्त में उन्हें सुखा देती है। हमारे समस्त जन-जीवन और विशेषकर, ग्रामीण समाज के तरु को भी जमींदारी, साहूकारी, अंधविश्वास, घूँस, आपापूती, अनीति से रुपया कमाने और अनेक सामाजिक कुप्रथाओं की अमरबेलें ग्रसे हुए हैं, जो धीरे-धीरे उसके रस का शोषण किये जा रही हैं और यदि समय रहते उनका सफ़ाया नहीं किया गया, तो भय है कि कहीं वे उसे सुखा ही न डालें—ग्रामीण जीवन को मृतप्राय ही न कर दें। वर्माजी ने इस रोग का रामबाण सहकारिता में पाया है, परन्तु वह उसकी कमियों और दोषों से भी अपरिचित नहीं हैं।

उपन्यास का काल उत्तर-प्रदेश में जमींदारी उन्मूलन कानून पास होने के कुछ समय पूर्व से आरम्भ होकर बिल्कुल आज के दिन तक का है। घटनाओं एवं पात्रों की सत्यता के विषय में लेखक ने आरम्भ के परिचय में ही स्पष्ट बता दिया है। झाँसी निवासी और विशेषकर तहसील महरौनी के निवासी तुरन्त बता देंगे कि यह ललिता नदी, सुहाना और वांगुर्दन गाँव और पात्र वास्तव में कौन-कौन हैं। उपन्यासकार ने अपनी कल्पना की पॉलिश भी जहाँ-तहाँ लगाई है और ललिता नदी पर बाँध बँधवा कर नहरें भी निकलवा दी हैं जब कि वास्तव में अभी जामुनी नदी का बाँध नहीं बँध पाया है। ये गाँव भी ऐसी जगह पर हैं जहाँ उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और विन्ध्य प्रदेश की

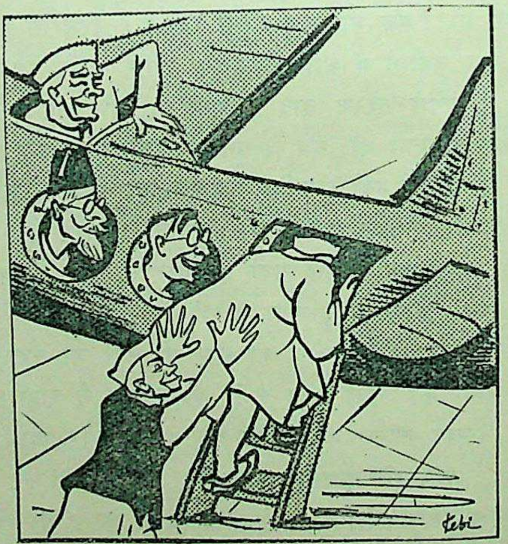

पन्तजी केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीमाएँ मिलती हैं, घने जंगल हैं, सिचाई की सुविधा से विहीन कम उपज की धरती है, जो निरन्तर काँस से ढकती जा रही है ; जहाँ निर्धन ग्रामीण भूतपूर्व जमींदार और छोटे-मोटे साहूकारों के चंगुल में पड़े कराह ही पाते हैं, बिना मूल कारणों के समझे स्पर्धा और सस्ता रुपया कमाने की धुन में धोखाधड़ी करते ह, चोरी करते हैं, झूठे मुकदमे लड़ते हैं, डाकुओं का सहयोग करते हैं और सवाई के बीज तक में बेईमानी करते हैं। ऐसी अँधेरी और निराशाजनक पृष्ठभूमि पर वर्माजी ने सहकारिता के केन्द्र बिन्दु पर एक अत्यंत स्वस्थ एवं सबल उपन्यास की रचना की है।

उपन्यास का आरम्भ जिले की रूढ़िगत शासन व्यवस्था पर एक मीठी चुटकी के साथ होता है जिसमें उपयोगी से उपयोगी योजना भी विभिन्न पदाधिकारियों के झमेलों में से होती हुई अन्त में पटवारी के बस्ते में पहुँच कर दफ़न हो जाती है। गाँवों में जो अधिकारी पहुँचते हैं वे न तो योजना को स्वयं भली प्रकार समझते हैं और न समझाने का प्रयत्न ही करते हैं और इसलिए वे उसके लिए आवश्यक उत्साह जाग्रत नहीं करा पाते।

सुहाना गाँव का १५ आने का जमींदार युवक देशराज है जो लखनऊ से वकालत की प्रथमा में फ़ेल होकर अपनी रूपवती सहपाठिन कुमारी अंजना के सहयोग से अफ़ीम का अवैध व्यापार इस उद्देश्य से करता है कि शीघ्र से शीघ्र दो लाख की रकम गाँठ में करके अंजना से विवाह करे और शेष जीवन आराम से काटे। जमींदारी उन्मूलन से वह हताश नहीं होता क्योंकि उसके सामने एक दूसरे ही स्वर्ग का नक्शा है। नाहरगढ़ का ज़मींदार बाघराज जो उस क्षेत्र के डाकू कालीसिंह का आश्रयदाता भी है, इस अवैध अफ़ीम को मद्रास तक पहुँचाया

आसाम की नागा पहाड़ियों पर एक नये प्रकार की तितली पायी गयी है जिसको पण्डित नेहरू ने 'लेक्रिया नेहरूआना' नाम दिया है

करता है और यह व्यापार अंजना के रूप की चमक, संगीत-सम्मेलनों, शिकार तथा पिकनिक पार्टी की ओट में होता है।

सुहाना और बांगुर्दान के गाँवों में नयी चेतना उमड़ रही है और उसकी अतिशयता के रूप का प्रतिनिधित्व बांगर्दन स्कूल का अध्यापक टहलराम करता है, जो सदा पढ़ाई में तेज़ रहा परन्तु बड़े ओहदे की परीक्षा में फ़ेल होकर कम्यूनिस्ट विचार-धारा से प्रभावित है और उसका संतुलित नेतृत्व डा० सनेहीलाल करता है, जो गाँव में थोड़ी फ़ीस, मन लगाकर काम और सेवा भाव के कारण लोक प्रिय है और जिसका सिद्धान्त है कि जो गुड़ देने से मरे, बिस न दीजिये ताहि।

चमारों द्वारा देशराज की मरी भैंस न उठाने पर उसके महीदार उठा ले जाते हैं। मुर्दा चमड़े की आर्थिक हानि को लेकर दोनों दलों में मारपीट होती है ; फिर जुलूस निकलता है ; देशराज की हवेली पर हमला होता है ; हवाई फ़ायर होते हैं और अन्त में ज़मानत-मुचलके होते हैं। आगे जमींदारी नाश की घोषणा होती है, सभा होती है जिसमें राघवन सुहाना सहकारी कृषि समिति बनने का समाचार देता है।

टहलराम समिति के ख़िलाफ़ है और अन्त में कुछ भी न होने से कुछ अच्छा है कि भावना से बांगुर्दान में भी सहकारी समिति बनाता है। काँस उत्पादन की योजना चलती है तो ट्रेक्टरों के आगे सत्याग्रह होता है ; लोग अपने निकम्मे खेत समिति में लगाते हैं, अच्छे-अच्छे खेत निजी खेती में रखते हैं ; मेहनत से काम भी अपने निजी खेतों पर ही करते हैं, मुनाफ़ा बाँटने में झगड़ा होता है। अंजना एक हाथ से नामवरी के लिए समिति को दान देती है, तो दूसरे हाथ से कालीसिंह द्वारा डाका डलवा देती है, दूसरे डाके में टहल घायल होकर सदर अस्पताल पहुँचता है, जहाँ उसकी सेवा डा० सनेही और उसकी पत्नी राजदुलारी करते हैं ; फ़सल की कटाई पर, पसर चराने पर, गाँववालों में फ़ौजदारियाँ होती हैं ; स्वस्थ होकर लौटने पर टहल का गाँव में स्वागत होता है।

नहर खुदवाने के लिए सामूहिक श्रम की योजना बनती है ; आषाढ़ में नाले के भरके पूरने का निश्चय होता है ; प्रौढ़ पाठशाला चल पड़ती है, जहाँ टहल हरको के प्रति आकृष्ट होता है ; अवकाश प्राप्त फौजी लटोरे सिंह कवायद परेड सिखाने लगता है जिसका परिणाम होता है कि तीसरे डाके में गाँववाले कालीसिंह को अन्य दो डाकुओं सहित मार गिराते हैं।

ललिता बाँध से नहर में पानी आता है ; गाँव की सफाई, चकबंदी, सड़क, रोशनी की योजना बनती है ; घरेलू शिल्प उद्योग आरम्भ होते हैं ; गाँव में रेडियो भी आ जाता है और ग्राम-जीवन की अमरबेलों का सफाया हो जाता है। उधर अंजना अफ़ीम लाते समय कई बार पछियाई जाती है, परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभी फिल्म तारिका बनकर और कभी होटल के नौकर को प्रेम जाल में फँसाकर बचने में सफल होती है।

नाहरगढ़ में संगीत सम्मेलन होता है। बाघराज लौटते हुए नाचने गानेवाले मेहमानों को रास्ते में लुटवा लेता है, देशराज भी घायल होता है, पुलिस व मजिस्ट्रेट आते हैं, बाघराज गिरफ्तार होता है और देशराज नया जीवन शुरू करने का निश्चय करता है। अंजना रुपये लेकर लखनऊ चली जाती है जहाँ से देशराज को लिखती है कि 'काम' के लिए कतर-ब्योंत कर रही है परन्तु देशराज उत्तर भेज देता है कि वह खेती के सिवा कुछ न करेगा और इस प्रकार वह अपनी इस अमरबेल से निस्तार पाता है। अंत में विधवा हरको का हाथ टहल के हाथ में दे दिया जाता है। इस उपन्यास का यही कथानक है जो कुशल कथाकार के हाथों अत्यंत सजीव और सप्राण बन पड़ा है।

अछूते विषय के अतिरिक्त अमरबेल की एक और प्रमुख विशेषता है। अनावश्यक विस्तार का अभाव—जो आजकल के हिन्दी उपन्यासों में प्रचुरता से देखने में आ रहा है। लम्बे-लम्बे संवाद जिन्हें पढ़कर लगता है मानों पात्र बातचीत न करके भाषण दे रहे हों, आजकल बहुधा पाये जाते हैं। उपन्यासकार अपने मत के प्रतिपादन के प्रलाप में पृष्ठ के पृष्ठ बिना हिचक रंगता चला जाता है और इससे कथानक के प्रवाह में शिथिलता आ जाती है। 'अमरबेल' में उपन्यासकार ने अनेक आन्दोलनों और योजनाओं को समेटा है और विस्तार को बड़ी कुशलता से बचाया है। अन्यथा यह उपन्यास पौने पाँच सौ पृष्ठों के स्थान पर एक हजार पृष्ठों में समाप्त होता। लेखक ने अपने विचारों का प्रत्यक्ष वर्णन न करके भी उपन्यास की कलात्मकता में वृद्धि की है। केवल परोक्ष रूप में ही उसके विचार डा० सनेहीलाल द्वारा निःसृत होते रहते हैं। वर्माजी के अन्य उपन्यासों की भाँति अमरबेल में भी स्थानीय रंग (Local Colour) गहरा है; परन्तु संतुलित है, अखरने वाला नहीं।

मालिक : मेरी दराज से सौ रुपये गायब हैं। आखिर यह हुआ कैसे! हम-तुम दो ही हैं यहाँ। एक ताली मेरे पास है दूसरी तुम्हारे पास!

क्लार्क : तो अच्छा यही होगा कि पचास आप दे दें पचास मैं दे दूं। मामला यहीं खत्म हो जाय। शोर मचाने से क्या लाभ?

'अमरबेल' में ग्रामीण अन्धविश्वासों पर धुँआधार कुल्हाड़ी चलाई गयी है। जैसे जब मेंह नहीं बरसता तो लेखक ने जोशी के पत्रा को झूंठा होते, मनौतियों को विफल होते और देवी देवताओं की पूजा तक को असफल होते दिखलाया है। यहाँ तक कि पानी बरसने के विषय में परम्परा से चली आई भड्डरी की देहाती कहावतें तक निरर्थक हो जाती हैं। इतिवृत्तात्मकता और काव्यात्मकता की कमी वर्माजी के उपन्यासों का सामान्य दोष माना गया है, परन्तु 'अमरबेल' के प्रकृति वर्णनों में काव्यात्मकता की कमी कहने से पहिले यह सोचना पड़ेगा कि कहीं उससे लेखक के प्रति अन्याय तो नहीं हो रहा है।

प्रसिद्ध कलाकार पृथ्वीराज के जीवन सूत्र—"मेरी जिंदगी एक मुसलसल सफर है, जो मंजिल पै पहुँची तो मंजिल बढ़ा गई"—का बड़ा सुन्दर उपयोग लेखक ने परम उत्साही सहकारी अफसर राघवन के द्वारा कराया है।

इस उपन्यास में एक बड़ा दोष जो अनेक पाठकों को अपनी विकृत रुचि के कारण खटकेगा, वह रोचकता की कमी का है। जिस प्रकार सस्ते, सेक्स-प्रधान, अधनंगे फिल्मों ने हमारी जानता की रुचि को बिगाड़ दिया है, जिसके कारण परिष्कृत रुचि-सम्पन्न, कलात्मक और उद्देश्य-मूलक चित्रपट सफल नहीं हो पाते, उसी प्रकार आधुनिक उपन्यासकारों के निर्बन्ध यौन-प्रधान एवं दमित वासनाओं के अतिरंजित वर्णन-प्रधान उपन्यासों ने पाठकों की रुचि को विकृत और एकांगी बना दिया है।

इस प्रकार के पाठकों को 'अमरबेल' से अवश्य निराशा होगी। ऐतिहासिक रोमांसों के लेखक वर्माजी से अधिकांश पाठक ऐसे स्वस्थ, सप्राण और संतुलित उपन्यास की शायद आशा भी न करते हों, परन्तु मेरे विचार में भारतीय ग्रामों के विकास के कार्य में लगे प्रत्येक कार्यकर्ता को 'अमरबेल' प्रेरणा प्रदान करेगी। उसमें हमारे ग्रामीण समाज का फोटो ही नहीं है, उसके भविष्य की रेखा भी है।

मेरा दृढ़ मत है कि हिन्दी साहित्य में यदि जासूसी और तिलिस्मी उपन्यासों के पारावार में 'सेवासदन' का प्रकाशन एक घटना थी और फिर किसी न किसी आश्रम के निर्माण में समाप्त होनेवाले उपन्यासों के बीच 'गोदान' का उद्भव एक दूसरी घटना थी, तो आज के सेक्सी, विकृत चरित्र, छिछली भावुकता, क्षयी एवं अस्वस्थ रोमांस-प्रधान उपन्यासों की पृष्ठभूमि पर 'अमरबेल' का प्रकाशन तीसरी महत्त्वपूर्ण घटना है, जिसके लिए हिन्दी संसार वर्माजी का कृतज्ञ रहेगा।

❀

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन्होंने जीवन भर अपने और औरों के साथ धोखा किया उन्हीं की क़ब्रों पर खुदा था : ईमानदार, नेक, सच्चरित्र !

मूल : मोपासाँ — अनुवाद : श्रीकृष्ण

मैं उसे बहुत प्यार करता था।

एक आदमी किसलिए प्यार करता है? किसलिए एक आदमी प्यार करता है? देखने में यह कितना अनोखा लगता है कि इस लम्बी-चौड़ी दुनिया में एक आदमी सिर्फ़ एक ही को प्यार करता है, एक ही के बारे में सोचता है और एक ही की इच्छा करता है, एक का ही नाम उसकी ज़बान पर होता है—उसी नाम को वह बार-बार दोहराता रहता है और जहाँ भी जाता है प्रार्थना की तरह उसी एक नाम को रटता रहता है।

हाँ, तो जिस रोज़ उससे मेरी मुलाक़ात हुई, उसी रोज़ से मैं उसके प्रेम में इस तरह खो गया, इस तरह कि मुझे यह भी पता न चलता कि कब दिन है, कब रात है, मैं मर रहा हूँ या ज़िन्दा हूँ।

और फिर एक रोज़ वह मर गयी। कैसे मर गयी, मैं नहीं कह सकता। ज़्यादा दिन मुझे कोई चीज़ याद नहीं रहती। एक संध्या को जब वह घर आई तो बुरी तरह बारिश में भीगी हुई थी। अगले दिन उसे खाँसी हो गयी और फिर एक रोज़ उसने खाट पकड़ ली। डॉक्टर आये, नुस्खा लिखकर चले गये। दवा आयी और पिला दी गयी। उसके हाथ गरम थे, माथा जल रहा था और आँखों से व्यथा टपकी पड़ती थी। मैंने उससे जो-जो पूछा, उसने जवाब दिया। मगर इस वक्त मुझे याद नहीं पड़ रहा कि उस समय हम में क्या-क्या बातें हुईं। अब तो मैं सब कुछ भूल चुका हूँ, सब कुछ, हाँ सब कुछ। और फिर वह मर गयी। उसकी आख़िरी हिचकी मुझे अब भी वैसी की वैसी याद है। नर्स के मुख से निकला था : उफ़! और मैं फ़ौरन ही समझ गया था कि उसकी उफ़ का क्या अर्थ है।

मगर इससे अधिक मैं कुछ नहीं जान सका। मैं एक पादरी से मिला। वह बोला : "यह शायद तुम्हारी पत्नी....?"

उसके यह शब्द मेरे दिल में चुभ गये। मुझे ऐसा लगा जैसे वह उसका अपमान कर रहा हो। मैं नहीं चाहता था कि अब जब वह मर चुकी थी, कोई उसे इस नाम से पुकारे। मैंने उसे भगा दिया।

फिर इसके बाद जो दूसरा पादरी आया वह बहुत भला आदमी था। जब उसने मुझसे उसके बारे में पूछा तो मैं रो पड़ा।

फिर उन्होंने मुझे अन्त्येष्टि करने के लिए कहा, क्या कहा यह मुझे याद नहीं। मगर वह बक्स, जिसमें उसका शव रखा था और हथौड़े की आवाज़, जब उसके शव को बक्स में बन्द करके वे उसमें कीलें ठोंक रहे थे, मुझे अब भी अच्छी तरह याद है और फिर उसे दफ़ना दिया गया, हाँ उसे....

मेरे पास कुछ युवतियाँ आयीं, भित्र युवतियाँ। मैं उनसे बचकर भागा। और दूसरे ही दिन यात्रा के लिए निकल पड़ा।

और कल जब वापस पैरिस लौटकर मैं अपने कमरे में आया और वहाँ मेरी नज़र कमरे पर पड़ी जिसमें हम रहते थे, उस बिस्तरे पर पड़ी जिस पर हम सोते थे, अपने फ़र्नीचर पर पड़ी जिस पर हम उठते-बैठते थे और उन तमाम चीज़ों पर पड़ी जो एक आदमी के मर जाने के बाद भी उसकी याद दिलाती रहती हैं, तो उस समय मेरे दिल को कितना धक्का पहुँचा इसे मैं बयान नहीं कर सकता। एक बार तो जी में आया कि खिड़की खोलकर बाहर सड़क पर गिरकर मर जाऊँ।

अब मैं वहाँ उस कमरे में उन चीज़ों और उन दीवारों के बीच जहाँ उसने साँसें ली थीं, ज़्यादा देर खड़ा नहीं रह सकता था।

मैंने अपना टोप उठाया और दरवाज़े की ओर बढ़ा। सहसा ही मेरी नज़र हॉल में लगे एक बड़े शीशे पर पड़ी, जिसे उसने वहाँ इसलिए लगाया था कि उधर से आते-जाते वह बार-बार अपने आपको सिर से पैर तक देख सके।

कुछ क्षण के लिए मैं उस शीशे के सम्मुख आकर रुक गया। उसी शीशे के सामने जिसमें वह दिन में कई बार अपनी सूरत देखा करती थी—इतनी बार, इतनी बार मानो उसकी सूरत भी उसमें समा गयी हो। मैं वहाँ खड़े-खड़े काँप रहा था, मेरी आँखें शीशे पर गड़ी थीं, उस चपटे मोटे शीशे पर जो उसे पूरी तरह अपने में समा लेता था और जिसका अधिकार उस पर उतना ही था जितना कि मेरा।

मैंने महसूस किया जैसे मैं उस शीशे को ही प्यार करने लगा हूँ; मैंने उसे छूकर देखा वह बिल्कुल ठण्डा पड़ा था।

और फिर मैं क़ब्रिस्तान की ओर चल पड़ा। मैं उसकी क़ब्र पर पहुँचा। क़ब्र संगमरमर की बनी थी। उस पर लिखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था : ....वही जिसने किसी को प्यार किया, जिसे किसी ने प्यार किया।

वह क़ब्र के नीचे दबी पड़ी थी। उफ़! भगवान्! ज़मीन पर अपना माथा टेककर मैं सुबक पड़ा। और बहुत देर तक उसी तरह पड़ा रहा। तभी मैंने देखा अँधेरा हो चला था। सहसा मेरे मन में एक इच्छा हुई—एक अजीब इच्छा, एक पागल इच्छा—वैसी इच्छा जैसी कि एक निराश प्रेमी को हुआ करती है। मैंने वह रात, वह आख़िरी रात वहीं उसकी क़ब्र पर रोते-रोते गुज़ारना तय किया। लेकिन अगर किसी ने मुझे यहाँ देख लिया तो? तो....तो....मैं यहाँ से निकाल दिया जाऊँगा। तब....तब....मैं तर्कीब सोचने लगा।

मैं क़ब्रिस्तान में घूमने लगा। घूमता रहा, घूमता रहा। दूसरे शहरों की अपेक्षा वह शहर कितना छोटा था, उन शहरों की अपेक्षा जिनमें हम-तुम रहते हैं मगर तो भी वहाँ मरे हुए आदमियों की संख्या ज़िन्दा आदमियों की अपेक्षा कितनी ज़्यादा थी। हम ज़िन्दा आदमियों को रहने के लिए ऊँची-ऊँची हवेलियाँ चाहिए, चौड़ी-चौड़ी सड़कें चाहिए, अपनी मर्ज़ी के हम नवाब होते हैं, जब जिसके जी में आता है सोता है, जब जी में आता है उठता है, मगर यह जो मर चुके हैं और क़ब्रों में सो रहे हैं? ये सब एक साथ निकलते हुए सूरज को देखते हैं, चश्मों का ये पानी पीते हैं, इनकी क़ब्रों पर जो अंगूर की बेलें उग आती हैं उनसे ये शराब लेते हैं....

काफ़ी देर तक मैं इधर-उधर घूमता रहा। मगर उसकी क़ब्र नहीं मिल सकी। मैं दोनों हाथ फैलाये हुए क़ब्रें टटोलता हुआ चल दिया। कहीं ठोकर लगती तो कहीं सिर बजता। मैं क़ब्रों को इस तरह टटोल रहा था जैसे एक अन्धा अपना रास्ता खोजता है। मैंने जान लिया कि कहाँ पत्थर है, कहाँ क्रॉस है, कहाँ फूल हैं। यहाँ तक कि अक्षरों पर उँगली फिरा-फिराकर नाम भी पढ़ लिये। मगर उसकी क़ब्र नहीं मिली।

ओह! वह कितनी अँधेरी रात थी। और साथ ही कितनी भयानक। मैं डर गया। बुरी तरह डर गया। मेरे चारों ओर क़ब्र ही क़ब्र थीं। आगे-पीछे, दायें-बायें—जिधर देखो उधर ही क़ब्र।

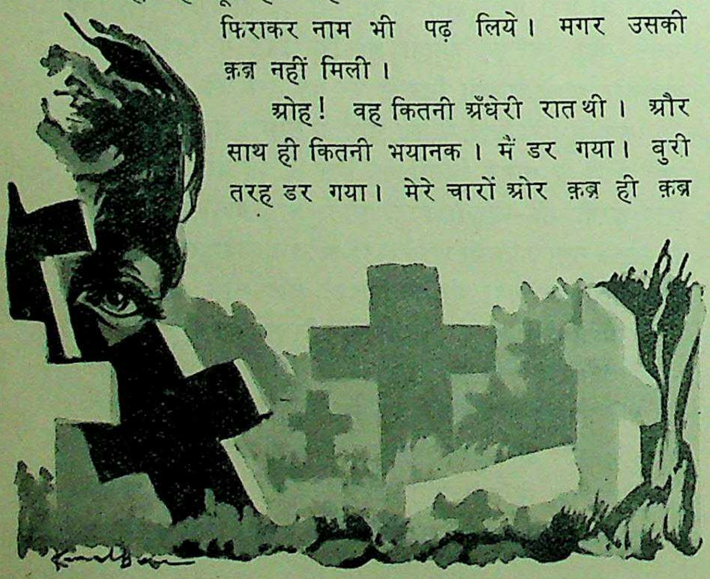

मैं चलते-चलते थक गया इसलिए सुस्ताने के विचार से एक क़ब्र पर बैठ गया। मुझे अपने हृदय की धड़कनें सुनाई पड़ रही थीं। सहसा ही मेरे कानों में एक अस्पष्ट आवाज़ पड़ी, मेरे दिमाग़ में हलचल मची। मैंने अपने चारों ओर देखा मगर मैं नहीं कह सकता मैं वहाँ कितनी देर तक बैठा रहा। मैं बेतरह घबराया हुआ था।

और अचानक, बिल्कुल अचानक, मुझे लगा जैसे वह संगमरमर का पत्थर जिस पर मैं बैठा हुआ था खिसक रहा हो। मैं उछलकर बराबर वाली क़ब्र पर जा बैठा। वहाँ से मैंने देखा-वह पत्थर जिसको मैंने अभी-अभी छोड़ा था सीधा ऊपर उठ रहा था और वह मरा हुआ आदमी जो अब सिर्फ़ हड्डियों का ढाँचा मात्र रह गया था, अपनी झुकी हुई कमर से उसे नीचे धकेल रहा था।

क़ब्र के उस पत्थर पर लिखा था : ....यह क़ब्र उस जैक्स ऑलिवेण्ट की है जो बहुत ही रहमदिल और ईमानदार था जो अपने घर वालों को बहुत ही ज़्यादा प्यार करता था और ईश्वर की सेवा करते-करते ही जिसकी मृत्यु हुई।

उस मरे हुए आदमी ने भी उसे पढ़ा; तब उसने अचानक ही वहीं रास्ते में पड़े एक पत्थर को उठा लिया, एक छोटे मगर नुकीले पत्थर को। और उस पत्थर पर खुदे अक्षरों को खरोंचने लगा। बड़े धीरे-धीरे उसने उन्हें मिटाया, और फिर अपनी कनकी उँगली के सिरे से जो अब सिर्फ़ हड्डी मात्र रह गयी थी बड़े ही चमकदार अक्षरों में उसने लिखा : ....यह उस जैक्स ऑलिवैण्ट की क़ब्र है जो अपने पिता का हत्यारा था, जिसने अपनी स्त्री को दुख दिये, अपने बच्चों को सताया, अपने पड़ोसियों को धोखा दिया और जिस-जिस को वह भी लूट सकता था, लूटा और फिर वह अभागा मर गया।

यह लिखकर वह मृतक अपने काम की ओर देखते हुए बिना हिले-डुले खड़ा रहा। अब मैंने घूमकर अपने चारों ओर देखा। मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। सारी की सारी क़ब्रें खुली हुई पडी थीं और सारे के सारे मृतकों ने अपनी-अपनी क़ब्रों से निकल कर वहाँ पत्थरों पर खुदे पहले अक्षरों को मिटा दिया था और उनकी जगह जो कुछ तथ्य था, वह लिख दिया था।

और मैंने देखा कि ये अच्छे पिता, ये वफ़ादार पत्नियाँ, ये लायक बेटे, ये निर्दोष लड़कियाँ, ये ईमानदार व्यापारी, ये मर्द और औरतें जिन्हें शरीफ़ बताया गया था, इनमें कोई भी शरीफ़ नहीं था। बहुत से इनमें से पापी थे—अपने पड़ोसियों को सतानेवाले, बहुत से बेईमान, पाखण्डी, झूठे, लुटेरे, अव्वल दर्जे के चुग़लखोर और जलनखोर। उन्होंने चोरियाँ की थीं, डाके डाले थे, लोगों को धोखा दिया था और दुनिया में जो भी

(शेषांश पृष्ठ ५६ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे प्रवासी

जो भारत से विलग होते भी भारत के अपने हैं :
क्या हम कभी भी उन्हें भुला सकेंगे ?

★

प्रवासियों में हिन्दी लेखक

विदेशों में बसनेवाले करीब ५० लाख भारतीय भारत के विभिन्न प्रान्तों से गये हुए हैं और वे विभिन्न भाषा में बोलते, लिखते, पढ़ते हैं। परन्तु विगत कुछ वर्षों से उनमें हिन्दी का प्रचार बढ़ रहा है ; अनेक स्कूलों में हिन्दी पढ़ाई जाती है और किन्हीं-किन्हीं देशों में हिन्दी का प्रमुख स्थान है। हिन्दी में उनके अपने समाचार-पत्र भी निकलते हैं। भारत की राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन होने के कारण वहाँ हिन्दी का प्रचार अब और भी तीव्र गति से बढ़ेगा। वहाँ भारत में प्रकाशित हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों आदि की आज भी खपत होती है।

स्वर्गीय स्वामी भवानी दयाल सन्यासी, विदेश में ही उत्पन्न और शिक्षित हुए थे और हिन्दी के प्रथम प्रवासी लेखक थे जिन्होंने खूब लिखा और अच्छा लिखा। भारत में उनकी अच्छी खासी प्रतिष्ठा थी। यहाँ के पत्रकार सम्मेलन के सभापति भी रहे थे। और भी लेखक हुए हैं और हैं ; उनकी कृतियाँ भारतवर्ष के अच्छे-अच्छे पत्रों में छपती हैं। स्वामीजी के छोटे पुत्र श्री ब्रह्मदत्त भी अच्छे लेखक हैं। पर अधिकांश अभी आगे आ रहे हैं।

"भूली हुई कहानियाँ" शीर्षक से फिजी द्वीप के विभिन्न स्थानों के २० लेखक तथा लेखिकाओं द्वारा लिखित २० कहानियों का प्रथम संग्रह हमारे देखने में आया है। कहानियाँ अधिकतर प्रथम प्रयास की हैं। रचयिताओं ने फिजी में ही शिक्षा प्राप्त की है। इनके लेखक हैं ईश्वरी प्रसाद चौधरी, आर० आर० शाण्डिल, रामचन्द्र, रामप्रसाद चौधरी, बी० शिवप्रसाद, विद्यासागर, आनन्द, नवीन, सावित्री राय, पूर्णिमा, अनिरुद्ध, एच० पी० विश्वा, एम० ए० रहमान, एस० मुनेश्वर, निर्मल, ज्ञानीदास, ए० ए० शमीम, निराश छाया, देवनारायण। १०० पेज की छोटी-सी सुन्दर पुस्तिका फिजी में ही छपी है।

प्रवासी भारतीयों के साथ व्यवहार

फिजी प्रवासी भारतीय श्री शंकर प्रताप ने, जिनके पिता उत्तर प्रदेश से वहाँ जाकर बसे थे, जिनकी शिक्षा-दीक्षा फिजी में ही हुई है और फिजी में प्रथम भारतीय हैं जो पुलिस के स्थानापन्न असिस्टेन्ट सुपरिन्टेण्डेन्ट के पद तक पहुँच सके, हमें एक उपयोगी सुझाव भजा है। करीब २० वर्ष तक सरकारी नौकरी करने के बाद उन्होंने अब व्यापार प्रारम्भ किया है।

श्री शंकर प्रताप (फिजी)

उनका सुझाव है कि प्रवासी-भारतीयों में भारतीय व्यापार की खपत बढ़ाने के लिए प्रवासी-भारतीयों के प्रमुख व्यापारियों की एक कॉन्फ्रेन्स भारत में की जाय, जिसमें इस समस्या पर विचार किया जाय और भारत सरकार इसका प्रबन्ध करने का भार अपने ऊपर ले। वह विदेशों में स्थित अपने दूतावासों के द्वारा उनके प्रतिनिधियों को निमन्त्रण दे।

विदेशों में बसे भारतीयों में, विशेषकर उन देशों में जहाँ उनकी संख्या पर्याप्त है भारत के बने माल के लिए बहुत गुंजाइश है। भारतीय ढंग से रहने व भारत के प्रति श्रद्धा-भक्ति होने के कारण वह अपने लिए भारतीय वस्तुएँ लेना अधिक पसन्द करेंगे और करते हैं।

अभी उनके साथ भारत से व्यापार है, पर वह पर्याप्त नहीं कहा जा सकता। विदेशी सरकार ने इस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया। स्वतन्त्र भारत की सरकार को इस ओर शीघ्र क़दम उठाने की आवश्यकता है। वैसे किन्हीं उपनिवेशों में भारतीय इन्श्योरेन्स कम्पनियाँ, भारतीय बैंक हैं और कुछ न कुछ अन्य चीज़ों का व्यापार भी है। पर यह कई गुना बढ़ सकता है अगर उसे ठीक से संगठित किया जाय। व्यापार बढ़ने से उनका भारत से अधिकाधिक सम्बन्ध बढ़ेगा ; उनका आना-जाना अधिक होगा और भारतीय भी वहाँ जायेंगे उससे पारस्परिक मान-प्रतिष्ठा बढ़ेगी तथा मातृभूमि के साथ अच्छे सम्बन्ध क़ायम होंगे। श्री शंकर प्रताप की पुस्तक बहुत उपयोगी और समीचीन है। सरकार व व्यापारिक संस्थाओं को इस ओर ध्यान देना ही चाहिए।

पं० गोपेन्द्र नारायण पथिक (फिजी)

प्रवासी भारतीयों के सम्बन्ध में न्यून जानकारी

संसार के प्रायः सभी देशों में भारतीय बसे हुए हैं। कुछ देश ऐसे हैं जहाँ इनकी संख्या हजारों-लाखों में है और जहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री गुरुप्रसाद अवस्थी (केनिया)

यह स्थायी रूप से बस गये हैं। वे देश भारत से कई-कई हज़ार मील दूर हैं और कइयों में, वर्तमान समय में भी, समुद्री जहाज से चिट्ठी पहुँचने में २-२॥ महीने तक लगते हैं। उत्तर प्राप्त करने के लिए ५-६ महीने चाहिए। इन भारतीयों में अधिकांश ऐसे हैं जो वहीं उत्पन्न हुए हैं। सभी देशों के सभी भारतीय भारत की ओर आशाभरी निगाह से देखते हैं। वह भारत को अपनी मातृभूमि मानते हैं और भारत की प्रगति से प्रसन्न होते हैं।

हम भारतवासी भी अपने इन विदेशों में बसे हुए भारतीयों को नहीं भूल सकते। उनकी कठिनाइयों और दिक्कतों से हम परेशान होते हैं, उनके दुख से दुखी और सुख से सुखी होते हैं।

स्वतन्त्र भारत की नेहरू सरकार ने उनको सलाह दी है कि वह जहाँ जिस देश में बस गये हैं, अपने को उनका ही नागरिक समझ कर उनके हितों को ही आगे बढ़ाने में ध्यान दें। पर इसके अर्थ यह नहीं हैं कि हम उनको भूल जायँगे।

श्रीमति लीला अवस्थी

परन्तु एक बात अवश्य है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से भारतीय जनता की दिलचस्पी कम हो गयी है। उनका यह ख्याल है कि अब सरकार उनकी देखभाल करेगी। परन्तु अब उतनी दिलचस्पी नहीं दिखाई देती जितनी परतन्त्रता के जमाने में थी। उस जमाने में जनता प्रवासी-भारतीयों के मामलों को अपना समझती थी क्योंकि विदेशी शासकों से उसे कोई आशा न थी। स्वतन्त्र भारत की सरकार भी प्रवासियों की तरफ़ से पर्याप्त जागरूक नहीं कही जा सकती क्योंकि वह अनेक देशी-विदेशी समस्याओं में उलझी हुई है। जो प्रश्न सामने आ जाते हैं उन्हें तो हाथ में लेना ही पड़ता है पर दूरदर्शिता की दृष्टि से वृहत्तर भारत के निर्माण के हेतु सरकार के कार्य सन्तोषजनक स्थिति में नहीं हैं।

इनमें एक है प्रवासी भारतीयों के सम्बन्ध में यथेष्ट जानकारी का न होना अथवा उनके सम्बन्ध में ताजे आँकड़ों का अभाव। विभिन्न देशों में बसे हुओं के बारे में विधिवत् सामग्री एकत्रित करना अत्यन्त कठिन काम है। यह तभी सम्भव है जब कि कोई वहाँ जाय, सब देखे-समझे, कुछ दिन रह कर सबके सहयोग से जानकारी प्राप्त करे अथवा वहाँ के भारतीय अपने-अपने देशों की सामग्री भेजें।

प्रवासियों में शिक्षा प्रचार

इन उपनिवेशों में जहाँ भारतीयों की संख्या पर्याप्त है और जहाँ भारतीय कुली-प्रथा के अनुसार गये थे, शिक्षा-सम्बन्धी सुविधाओं का सुप्रबन्ध न था। भारतीयों ने अपने बच्चों की शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध स्वयं किया; उन्होंने अपने स्कूल-कॉलिज खोले हैं। पढ़ाने के लिए भारतवर्ष से भारतीय शिक्षकों को अपने खर्चे से बुलाया, उनके लिए विशाल इमारतें बनाईं। उन देशों की सरकार की ओर से अब तक भारतीय बालक-बालिकाओं की शिक्षा के लिए उचित प्रबन्ध नहीं है। और जो कुछ भी सरकारी या ग़ैर-सरकारी प्रबन्ध अब तक हो सका है, उसमें उच्च-शिक्षा का अभाव है और टेकनिकल शिक्षा का तो कुछ भी प्रबन्ध नहीं है। उच्च व टेकनिकल शिक्षा के लिए दूसरे देशों में जाना पड़ता है, जिनमें इंगलैण्ड और भारत प्रमुख हैं।

स्वयं भारत सरकार ने सन् १९४९ से प्रति वर्ष २००) रुपये महीने की १०० छात्रवृत्तियाँ देना प्रारम्भ की हैं जिनके अन्तर्गत विदेशों से विद्यार्थी भारत की शिक्षण-संस्थाओं में उच्च व टेकनिकल शिक्षा प्राप्त करने आते हैं। यह उन देशों के आदिम निवासियों तथा भारतीय युवक-युवतियों को मिलते हैं जो वहाँ स्थायी रूप से बसे हुए हैं। छात्रों के भारत आने-जाने का खर्चा उनको ही देना होता है।

ब्रिटिश ईस्ट अफ्रीका ४, ब्रिटिश गायना १, बर्मा ३, सीलोन ३ फिजी ३, इण्डोचाइना १, इण्डोनेशिया १, जमैका १, मलाया ३, मॉरीशस ३, पॉर्चुगीज़ ईस्ट अफ्रीका १, दक्षिण अफ्रीका ४, दक्षिण रोडेशिया १, सुरीनाम १, थाईलेण्ड १, ट्रिनीडाड १।

इन देशों से उनके सामने लिखी संख्या के अनुसार ३२ भारतीय छात्र-छात्रायें भारत में पढ़ने आ सकते हैं। शेष ६८ छात्रवृत्तियाँ गैर-भारतीयों के लिए हैं जिनमें वे तथा कुछ अन्य देश भी सम्मिलित हैं। इस योजना में और भी देश शामिल करने के लिए भारत सरकार के पास निवेदन आये हैं पर आर्थिक कारणों से अधिक छात्रवृत्तियाँ नहीं दी जा सकीं।

(शेषांश पृष्ठ ५६ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यिक ज्ञान-विकास में नया प्रयोग

ज्ञान-चक्र प्रतियोगिता नं० २ द्वारा

१०१ रु० अवश्य जीतिए

नगद-पुरस्कार तथा साथ ही साथ—

० शब्द-भण्डार का निर्माण ० शब्दों का सही उपयोग ० विशेषणों के सही प्रयोग से भाषा-सौंदर्य ० मनोरंजन के साथ ज्ञान-वर्द्धन ० ज्ञान-वर्द्धन से बुद्धि का विकास

ज्ञानोदय के गत अंक से अपने पाठक-पाठिकाओं के मनोरंजन, ज्ञानवर्द्धन, विचारोत्तेजना तथा शब्द-भण्डार और शब्दों के सही प्रयोग से भाषा-सौंदर्य की ओर एक नया श्रीगणेश किया गया है। विश्वास यह है कि यह प्रतियोगिता क्रम साधारण पाठक से लेकर छात्र-छात्राओं, महिला-बालक तथा काम-काजी व्यवसायी सभी के लिए समान रूप से उपयोगी सिद्ध होगी। लीजिए अब ज्ञान-चक्र नं० २ हल कीजिए।

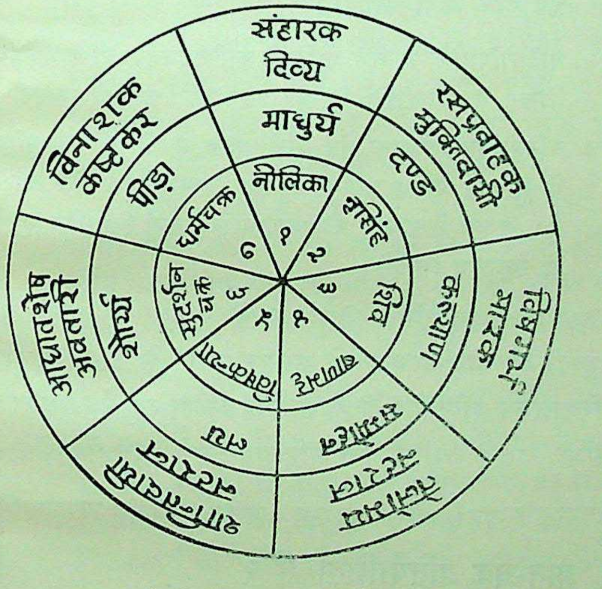

इस पहेली को आप कैसे हल करेंगे

साथ छपा 'ज्ञान-चक्र' सात खानों में विभाजित है। केन्द्र के पास के ७ खानों में नीलिका, नृसिंह आदि विषय-संज्ञाएँ निर्धारित स्थान पर रखी हैं, इनके क्रम और स्थान में परिवर्तन नहीं होगा। इसीलिए कूपन में ये नाम छाप दिये गये हैं।

केन्द्र के प्रत्येक खाने के ऊपर मध्य के खाने में सातों विषयों में से किसी एक का गुण अस्त-व्यस्त ढंग से रखा है। किस विषय के लिए कौन-सा गुण उपयुक्त होगा यह आपको स्थिर करके गुण-भाव वाले बीच के खाने में, छपे नाम के ऊपर, लिखना है। ज्ञान-चक्र के बाहरी खानों में उसी प्रकार प्रत्येक विषय के दो-दो विशेषण अस्त-व्यस्त रखे हैं। आपको प्रत्येक के दो उपयुक्त विशेषण चुनकर प्रत्येक विषय के ऊपर विशेषण के खानों में लिखने हैं।

उदाहरण : केन्द्र के १ संख्यक कोष्ठक में विषय-संज्ञा है 'नीलिका' जिसके अर्थ हैं : १—एक नेत्ररोग तथा २—चोट से पड़ जाने वाला नीला निशान। उसके ऊपर मध्य कोष्ठक में गुण-भाव-वाची है 'माधुर्य' और बाहरी कोष्ठक में दो विशेषण 'दिव्य' तथा 'संहारक' हैं। नीलिका का गुण-भाव-वाची होना चाहिए 'पीड़ा' जो ७ संख्यक भाग के मध्य कोष्ठक में पड़ा है। ऐसे ही 'संहारक' और 'दिव्य' भी नीलिका के विशेषण हमारी समझ में ठीक नहीं लगते। वह तो 'आघात शेष' और 'कष्टकर' होने चाहिएँ जो क्रमशः ६ और ७ संख्या के बाहरी खानों में रखे हैं। इस प्रकार कूपन के १ संख्यक खाने की सही पूर्ति कूपन में छपे अनुसार हुई।

इसी प्रकार पूरे कूपन की पूर्ति कर, अंतिम तिथि तक कार्यालय में भेजनी चाहिए।

नियम और प्रतियोगिता कूपन अगले पृष्ठ पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस कूपन पर ही उत्तर भेजिए

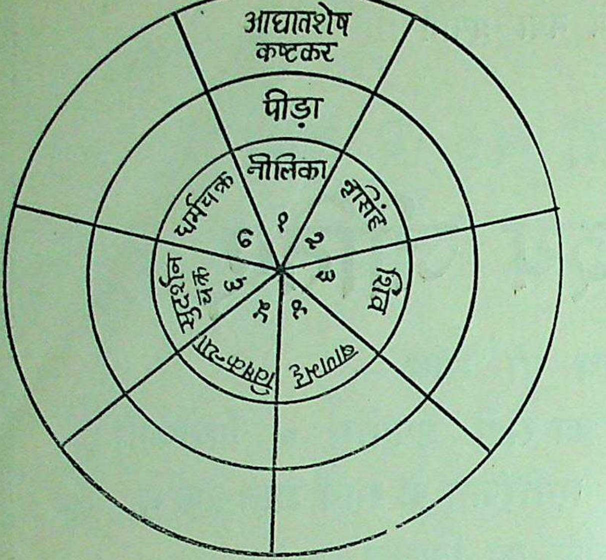

इस प्रतियोगिता में निर्णायक-समिति का निर्णय मुझे अंतिम तथा वैधानिक रूप से मान्य होगा।

नाम

पूरा पता

(कृपया स्पष्ट अक्षरों में स्याही से ही लिखिए।)

यह पूर्ति सोमवार ३१ जनवरी १९५५ तक पहुँच जानी चाहिए। इसके बाद आयी पूर्तियाँ अस्वीकृत हो जायँगी। **ज्ञान-चक्र नं० २**

यहाँ से काट कर अलग कीजिए

नियम और शर्तें

१. ज्ञान-चक्र प्रतियोगिता में कोई प्रवेश-शुल्क नहीं है परन्तु ज्ञानोदय के पाठक-पाठिकाएँ ही इसमें भाग ले सकेंगे।

२. ज्ञानोदय में प्रकाशित प्रतियोगिता कूपनों पर ही पूर्तियाँ स्वीकार की जायँगी।

३. गन्दी, अस्पष्ट, पेंसिल से लिखी या काट-छाँट की गयी पूर्तियाँ अस्वीकृत कर दी जायँगी। अक्षर स्पष्ट तथा स्याही से लिखे जाने आवश्यक हैं।

४. सभी पूर्तियाँ "ज्ञानचक्र प्रतियोगिता नं २, ज्ञानोदय, ११ क्लाइव रो कलकत्ता-१" के नाम आनी चाहिएँ।

५. कार्यालय में इस प्रतियोगिता की पूर्तियाँ प्राप्त होने की अन्तिम तिथि सोमवार ३१ जनवरी है। इसके बाद आई प्रतियोगिता-पूर्तियों पर विचार नहीं होगा।

६. प्रत्येक कूपन पर भेजने वाले का नाम और पूरा पता स्पष्ट लिखा जाना चाहिए। नाम-पता ठीक न होने पर सही पूर्तियाँ भी रद्द हो जायँगी।

७. डाक में कूपन गुम हो जाने या देर से प्राप्त होने का कोई उत्तरदायित्व ज्ञानोदय कार्यालय पर न होगा।

८. ज्ञानोदय का कोई कर्मचारी या उससे सम्बन्धित व्यक्ति इस प्रतियोगिता में भाग न ले सकेगा।

९. निर्णायक समिति के हल से अक्षरशः मिलने वाले सर्व शुद्ध उत्तर पर १०१ रुपए नगद पुरस्कार स्वरूप दिए जायँगे। एक से अधिक शुद्ध हल आने पर पुरस्कार-राशि बराबर बाँट दी जायगी।

१०. सर्व शुद्ध हल न आने पर न्यूनतम अशुद्धियों वाली पूर्ति या पूर्तियों पर ही पुरस्कार दे दिया जायगा।

११. विजेता का नाम और पता तथा सर्व शुद्ध हल मार्च मास के अंक (जो १९ फरवरी '५५ को प्रकाशित होगा) में प्रकाशित किया जायगा।

१२. प्रतियोगिता के सम्बन्ध में किसी व्यक्ति विशेष को पत्र आदि लिखने से प्रतियोगी की पूर्ति अस्वीकृत कर दी जायगी।

१३. प्रतियोगिता में भाग लेने वाले पाठक अपनी पूर्ति की पुष्टि में संक्षिप्त प्रमाण पूर्तियों के साथ नत्थी करके भेज सकते हैं। इससे निर्णायकों को न्यूनतम अशुद्धियाँ निर्धारित करने में सहायता मिलेगी।

यह प्रतियोगिता ज्ञानोदय के पाठकों में शब्दों के भावों की बोध-गम्यता को अग्रसर कराने के लिए विशुद्ध शिक्षात्मक दृष्टिकोण से ही आरम्भ की जा रही है। इसलिए सभी आयु के व्यक्ति तथा महिलाएँ इसमें भाग ले सकेंगे।

यहाँ से काट कर अलग कीजिए

ज्ञान-चक्र प्रतियोगिता नं २
ज्ञानोदय,
११ क्लाइव रो,
कलकत्ता-१

यह अंश काट कर अपनी पूर्ति के लिफाफे पर चिपकाइए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास बन रहा है

पूरनचन्द्र जोशी

यह प्रायः सभी मानते हैं कि द्वितीय महायुद्ध समाप्त होते न होते तीसरे की तैयारी शुरू हो गयी। कोरिया, हिन्दचीन और मलाया : इन एशियाई देशों में तो युद्ध शुरू भी कर दिया गया था। सचमुच तो साम्राज्यवादियों का दम्भ यहाँ तक बढ़ा कि २४ जनवरी को न्यूयॉर्क टाइम्स ने एक नक्शा प्रकाशित किया जिसमें, अमरीकी हवाई सेना ने धरती पर जहाँ-जहाँ जितने अड्डे स्थापित किये थे, सब साफ़-साफ़ बताये गये। और उनकी संख्या ४०० है। साथ के साथ सबने अपने अपने बजट का आधे से पौना तक अंश शस्त्रास्त्रों पर खपाना शुरू कर दिया।

शायद उनकी और विशेष रूप से अमेरिका की, योजना यह थी कि सामरिक शक्ति और ऐटम बम्ब प्रदर्शित करके तथा तरह-तरह के विचारों के प्रचार का बवण्डर खड़ा करके वे अपना ध्येय हासिल कर लेंगे, और जैसे पिछली शताब्दी 'ब्रिटिश शताब्दी' थी वैसे ही इसे 'अमेरिकी शताब्दी' बना लेंगे। किन्तु यह हो न सका। वे सामरिक शक्ति में सबसे आगे न निकल सके। ६ सितम्बर के 'क्रिश्चियन साएंस मॉनीटर' में जोज़ेफ़ हार्श ने स्वीकार भी किया कि "सामरिक शक्ति का सन्तुलन हिरोशिमा के समय अमेरिका के पक्ष में था, किन्तु अब ऐसा रहा नहीं, और शायद आगे भी ऐसा न हो पाय।"

सामरिक शक्ति के सन्तुलन में यह परिवर्तन स्पष्ट होते ही साम्राज्यवादी नीति ने फिर जो रूप लिया उसका बड़ा सुन्दर वर्णन एक अँगरेज सामरिक नीतिकार सर जॉन स्लेसर ने अपनी पुस्तक 'स्ट्रैटेजी फ़ॉर द वेस्ट' में इन शब्दों में किया है कि "और कोई उपाय न रह जाने पर हमें इस बात से भी नहीं झिझकना चाहिए कि रक्तपातहीन पराजय लेने के बजाय हम ही आगे बढ़कर पहिला वार करदें।" और शायद यह कहना अत्योक्ति न होगा कि कुछ समय से साम्राज्यवादी राजनीतिज्ञों और उनके समर-कला-वेत्ताओं की यही मूल नीति बनी हुई है। पिछले दो महीनों में अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक क्षेत्र में जो दाँवपेंच चले हैं उनका यही उद्देश्य रहा है कि इस नीति की कुचेष्टाओं को कैसे विफल किया जाय और कैसे विभिन्न राष्ट्रों से शान्तिपूर्ण सहवास का सिद्धान्त स्वीकार कराया जाय।

यह सिद्धान्त कुछ समय पूर्व तक सिर्फ़ सोवियत सरकार की विदेशी नीति का एक ऐलानी सिद्धान्त था। मगर एशिया के जागरण के बाद से यह बड़ी तेज़ रफ्तार से फैला और बढ़ा। नये चीन और स्वतन्त्र भारत के प्रधान मन्त्रियों ने इसे अपने देशों के पारस्परिक सहयोग का आधार घोषित किया और अन्य राष्ट्रों से अनुरोध किया कि वे भी उसे स्वीकार करके आपसी समस्याओं को सुलझा लें। बर्मा, इण्डोनीशिया और हिन्दचीन आदि अन्य एशियाई राष्ट्रों ने नेहरू-चाऊ के 'पंचशिला सिद्धान्तों' को सरकारी स्वीकृति भी दी।

इसका परिणाम यह हुआ कि अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में एक नयी हवा बह चली। मुखर या मन्द स्वरों में सभी कहीं यह पुकार उठने लगी कि युद्ध की तैयारियाँ रोको और शान्ति स्थापित रखने की चेष्टा करो। इसी वातावरण में राष्ट्रसंघ की जेनरल ऐसेम्बली बैठ रही है, और वहाँ लम्बी-लम्बी बहसों के बाद जो प्रस्ताव स्वीकृत हो रहे हैं उनके पीछे भारतीय तथा अन्य सभी शान्तिकामी देशों के प्रतिनिधियों की सम्पूर्ण चेष्टाएँ लगी हैं और वे सभी शान्ति-स्थापना की तीव्र कामना का भाव प्रतिबिम्बित करते हैं। विश्व के शान्तिकामी राष्ट्रों का यह व्यापक सहयोग और उसमें भारत का प्रमुख स्थान, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक क्षेत्र में एक शुभ और महान् घटना है; जिसने कुछ शक्तियों को सचमुच असमंजस और शंका में डाल दिया है।

इस शान्ति-कामना और शान्ति-स्थापना से ही सम्बन्धित एक और मामला है, निरस्त्रीकरण का, जो बरसों से झमेले में पड़ा था। पश्चिमी राष्ट्रों की योजना ऐसी थी कि सोवियत को अपने शस्त्रास्त्र सबसे अधिक घटाने पड़ जाँय और वे स्वयं ऐटम बम्ब विषयक निषेध से मुक्त रहें। सोवियत योजना इससे भिन्न थी : कि सभी राष्ट्र पहिले ऐटम बम्ब को तिलांजलि दें और फिर एक सर्व-स्वीकृत निश्चित परिमाण में सब कोई अपनी-अपनी सामरिक तय्यारियों में कमी करें। इस बार संघ के अधिवेशन में सोवियत प्रतिनिधि ने पश्चिमी राष्ट्रों की योजना को ही मान लिया और ऐटम बम्ब के निषेध को पक्का कर देने के लिए छह मास की अवधि बाँध दी, तथा साथ ही प्रस्ताव किया कि निरस्त्रीकरण कमीशन में भारत भी रहे। अमेरिका आदि इस प्रस्ताव को टाल न सके, और इस प्रकार भारत के कन्धों पर एक नयी-भारी जिम्मेदारी और आ गयी।

योरप में इधर एक बड़ा गम्भीर मसला जर्मनी के भविष्य का रहा है। सोवियत चाहती है कि जर्मनी के दोनों भागों से तमाम विदेशी फ़ौजें हटादी जाँय और फिर दोनों भागों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरकारें आपस में तय करलें कि देश का एकीकरण और जनवादी निर्माण किस प्रकार हो। अमेरिकी योजना है कि पश्चिमी जर्मनी पहिले नाटो (उत्तरी अतलांतक सुरक्षा संगठन) में शामिल हो जाय और फिर इस तरह चुनाव हों कि पूर्वी जर्मनी भी पश्चिमी जर्मनी में मिलकर उस संगठन में आ जाय। दोनों योजनाओं के बाद, राष्ट्रसंघ में भारतीय प्रतिनिधि श्री कृष्ण मेनन ने यह सुझाव घोषित किया कि जर्मनी की वर्तमान समस्या का सबसे सहज और सरल हल एक ही है : कि पूर्वी और पश्चिमी जर्मनी बैठकर स्वयं आपस में अपनी समस्या सुलझा लें। अमेरिका तथा उसके साथी पश्चिमी राष्ट्रों के प्रतिनिधियों को यह भारतीय सुझाव अपनी आकस्मिकता और साहजिकता से एकदम अवाक् कर गया और अन्त परिणाम यह हुआ कि उस मसले पर विचार ही टल-सा गया।

और देखें तो अमेरिका आदि की निगाह से बात भी ठीक थी। क्योंकि, जर्मनी के शस्त्रीकरण को आधार बनाकर, पश्चिमी योरॅपियन देशों के एकीकरण की जो योजना—ई० डी० सी० अर्थात् योरॅपियन डिफ़ेन्स कम्यूनिटी—बनायी थी, वही इस समय संकट में थी। फ्रान्स की पार्लामेण्ट ने उसे मंज़ूरी देने से इन्कार कर दिया था और इंग्लैण्ड भी योरॅप में अमेरिका का इतना प्रभुत्व स्वीकार करने को राज़ी नहीं था।

इसी बीच योरॅप की शान्ति के लिए सोवियत ने अपनी योजना पेश की : कि पूर्वी और पश्चिमी योरॅप के सारे देश एक सम्मेलन में आयें और सर्वसम्मति से योरॅप की सुरक्षा के लिए योजना बनायें। सोवियत का कहना था कि पश्चिमी योरॅप के देशों को किसी अलग गुट में बाँधना सोवियत तथा पूर्वी योरॅप के खिलाफ़ 'सामरिक योजना' होगी 'योरॅप-भर की शान्ति-सुरक्षा योजना' नहीं।

पश्चिमी योरॅप के देशों में कई जगह जनवादी तत्त्वों ने अपनी-अपनी सरकार को ज़ोर देकर सुझाया कि सोवियत निमन्त्रण स्वीकार कर लिया जाय। उधर, अमेरिका ने असफल ई० डी० सी० (योरॅपियन डिफ़ेन्स कॅम्युनिटी अर्थात् योरॅपीय सुरक्षा संघ) को 'योरॅपियन यूनियन' के नाम से नया रूप दिया और इंग्लैण्ड-फ्रान्स को इसे स्वीकृति देने के लिए कहा। साथ ही, यह प्रचार भी किया कि सोवियत-सुझाव के अनुसार सोवियत तथा अन्य सब पूर्वी योरॅप के देशों से 'शान्ति-सुरक्षा-योजना' की बातचीत अवश्य करेंगे, मगर पश्चिमी योरॅप के देशों का संघटन करने के बाद ही।

किन्तु यह किया नहीं गया ; और मॉस्को में जो सोवियत तथा पूर्वी योरॅप के देशों का सम्मेलन हुआ उसने जर्मनी के शस्त्रीकरण पर आधारित 'योरॅपियन यूनियन' को विश्वशान्ति के लिए 'जोखिम' घोषित किया और अपनी सुरक्षा के लिए अलग स्वतन्त्र सामूहिक योजना बनायी।

यों, योरॅप साफ़-साफ़ दो भागों में बँट गया है। बेशक 'जानकारों' का कहना है कि जब अमेरिका की ई० डी० सी० योजना ही न चली तो यह 'योरॅपियन यूनियन' भी न टिकेगी। कारण, यह प्रत्यक्ष है कि जीवन का नियम शान्ति है और शान्ति के लिए आपसी मेल-समझौता अनिवार्य है ; और इस सत्य का बल विश्व का जन-मानव ही नहीं स्वीकार कर रहा बल्कि स्वयं आइक और डलेस भी कर रहे हैं।

योरॅप के इस चित्र के मुक़ाबले में एशिया का भी चित्र देखें तो यहाँ की स्थिति काफ़ी आशाजनक मिलती है। यहाँ, अमेरिका आदि के सुझाव पर और नेतृत्व में 'सियाडो' की रचना हुई, किन्तु समूची एशिया का कोई भी बड़ा या स्वाभिमानी देश उसमें शामिल नहीं हुआ। और इतना ही नहीं, बल्कि स्वयं चीन और भारत ने एशिया भर में भाईचारा, सहयोग और शान्ति स्थापित करने का बीड़ा उठाया। चीनी प्रधान मन्त्री चू-एन-लाई भारत आये, फिर भारतीय प्रधान मन्त्री पण्डित नेहरू चीन आदि गये : और यह यात्रा-विनिमय, अथवा एक ही महान् यात्रा के दो पहलू, ऐतिहासिक घटना बन गये हैं। अब बर्मा के प्रधान मन्त्री चीन गये हैं। जल्दी ही दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों के प्रधान मन्त्री गण इण्डोनीशिया में मिलनेवाले हैं कि आनेवाले अभूतपूर्व 'एशिया-ऐफ्रिका' सम्मेलन की योजना पूरी और पक्की हो जाय।

*

(पृष्ठ ४१ का शेषांश)

अशोक ने दाहिने हाथ के पास कवच में लगे दूसरे बटन को दबा दिया कि उसके कवच की पेंदी में लगी गामक मोटरें आग बरसाने लगीं। संग्राहक-पट पर उसने देखा अनीता उससे लगभग आधा मील दूर थी। उसने गामक मोटरों को चालू कर दिया और आकर्षणहीन आकाश में इधर से उधर तैरने लगा। आकाश स्टेशन धीरे-धीरे उसके पास आता जा रहा था। सभी यात्री अपनी गामक मोटरों की सहायता से आकाश स्टेशन की ओर बढ़ने लगे। धीरे-धीरे आकाश स्टेशन उनके पास आकर स्थिर हो गया। उसमें एक बड़ा प्लेटफ़ार्म स्वतः चालित यन्त्रों की सहायता से अपने आप नीचे लटक गया। एक के बाद एक सभी यात्री प्लेटफार्म पर चढ़ गये।

यात्रियों ने अपने संग्राहक पटों में से देखा कि राकेट विमान के कप्तान और दूसरे वैमानिकों ने उनसे विदा माँगी और विमान पुनः पृथ्वी की ओर नीचे उतरने लगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

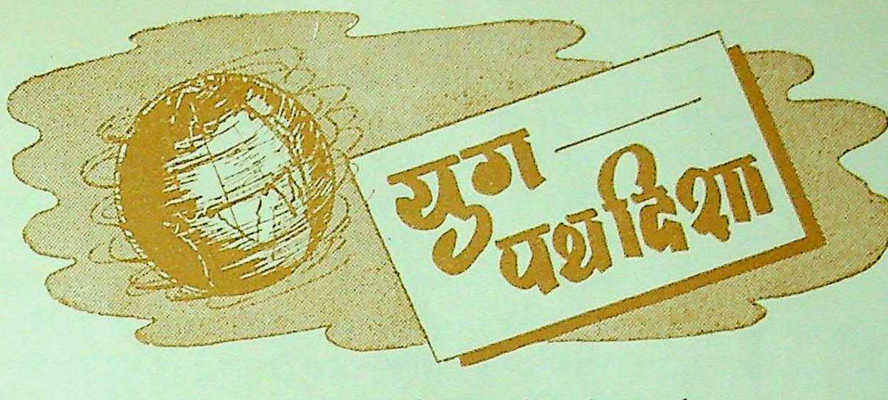

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

श्रीमती उमा नेहरू के नेतृत्व में भारत का जो शिष्टमण्डल चीन गया, उसके सदस्यों को एक आदेश यह भी था कि "भारत छोड़ने के बाद कोई व्यक्ति अंगरेज़ी में बातचीत न करे।" क्योंकि विदेशी पूछते हैं कि क्या भारत की अपनी कोई भाषा नहीं और पं० जवाहरलाल नेहरू इस बात को बहुत महत्व देते हैं कि भारतीय लोग विदेशों में अपनी ही भाषा में बोलें।"

यह फटकार !

भारतीय लोकसभा के अध्यक्ष श्री गणेश वासुदेव मावलंकर आकृति में ही सरल-सौम्य नहीं, प्रकृति में भी सहज-सरस हैं। लोकसभा के सदस्यों की अव्यवस्था को नियंत्रित करने के लिए अपनी पीली पेंसिल की पुश्त जब वह अपनी मेज पर टंकोरते हैं, तो उससे 'आर्डर-आर्डर' की परुष ध्वनि नहीं, सारंगी की मधुर कुन-कुन ही निकलती है।

पर अभी उस दिन लोक सभा में अहिन्दी भाषा-भाषी सदस्यों को उनकी तीखी फटकार सुननी पड़ी। बात यह हुई कि हिन्दी में पूछे गये एक प्रश्न का उत्तर जब राज्य मंत्री श्री आबिद अली शुद्ध संस्कृतमय हिन्दी में दे चुके, तो कुछ सदस्यों ने उस उत्तर को अंगरेज़ी में भी दोहराने का आग्रह किया। इस पर श्री मावलंकर ने कहा—संविधान को व्यवहार में आते ५ वर्ष हो गये। इतने दिन बाद भी यदि कोई सदस्य साधारण हिन्दी नहीं समझ सकता, तो यह उसकी भूल है; इसलिए लोक सभा में दिये गये हिन्दी उत्तरों, भाषणों या वक्तव्यों का सार अब अंगरेज़ी में नहीं सुनाया जायगा।

आशा है यह फटकार अपना काम करेगी।

और ये अफसर ?

चीन की यात्रा में प्रधान मंत्री नेहरू पर जो दो मुख्य प्रभाव पड़े, उनमें एक है तेज़ी से काम निबटाना और दूसरा अंगरेज़ी का नाम भी लिए बिना अपनी राष्ट्रभाषा में ही सब काम करना।

यात्रा से लौटते ही जब वे अपने परराष्ट्र विभाग में गये, तो उन्होंने वहाँ के अफसरों से हिन्दी में बातचीत शुरू की, पर ३ मिनट में ही उन्हें अंगरेज़ी बोलनी पड़ी, क्योंकि अधिकांश अफसर समझते भी न थे।

तो यह यों ही कब तक? जब तक कि वे यह न समझें कि अब हिन्दी न जानने पर भी 'इनक्रीमेण्ट' (तरक्की) रुक जायगी।

और ये प्रतिनिधि ?

शिष्टमण्डल के एक सदस्य श्री सत्यकेतु विद्यालंकार लिखते हैं—"निश्चय किया गया कि हवाई जहाज पर सवार होने के समय से ही हम सब अंगरेज़ी का पूर्ण बहिष्कार कर देंगे, पर मुझे खेद है कि स्वराज्य के ७ साल बाद भी हम अभी राष्ट्र-भाषा के महत्व को नहीं समझते। प्रतिनिधि मण्डल के बहु-संख्यक सदस्य अंगरेज़ी में ही बात करते थे। सार्वजनिक सभाओं में भी वे अंगरेज़ी में ही भाषण देते थे और चीनी लोगों के सामने भी वे आपसी बातचीत में अंगरेज़ी का ही उपयोग करते थे।"

क्या इस पर भी किसी टिप्पणी की आवश्यकता है?

हमारे जय बाबू

बिहार के सहर्षा जिले में सन्त विनोबा के स्वागत में जो द्वार बनाये गये, उनमें एक का नाम था 'जयप्रकाश नारायण द्वार।' वहाँ के कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने इस द्वार को हटा दिया और जयप्रकाश के नाम पर द्वार पसन्द नहीं किया।

आज के समाजवादी नेता कहते हैं कि जयबाबू क्रान्ति के मार्ग से हटकर सुधारवादी हो गये हैं और इस प्रकार उनका मानसिक पतन हो गया है।

भारत के कम्यूनिस्टों की राय है कि क्रान्तिकारी तो कभी थे ही नहीं, अब तो पक्के क्रान्ति-विरोधी हो गये हैं।

और जयबाबू हैं कि बिना इनमें से किसी की ओर देखे रात-दिन अपनी धुन में जुटे हुए हैं। यह पलायन है, थकान है या अडिगता?

पूर्वज मिले !

भारत सरकार के नृतत्व-विज्ञान विभाग के निर्देशक श्री डा० एम० दत्त मजूमदार की घोषणा है कि उनके विभाग ने अण्डमान में बसनेवाली ओंगेस जाति का पता चलाया है। यह उन ३ जातियों में से एक है, जो हजारों साल पहले मानवता की मुख्य धारा से अलग हो गयी थी—संक्षेप में हमारे वे पूर्वज जो नावों द्वारा समुद्र पार कर अण्डमान जा पहुँचे और हजारों साल से घुमन्तू जीवन बिता रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन लोगों में वस्त्र और लोहे का भी अभी ज्ञान नहीं है और इस जाति की जन-संख्या कुल २४ है। अभी तक भूल से इन्हें हब्शी माना जाता रहा, पर रक्त की परीक्षा से यह बात भ्रम सिद्ध हुई। डाक्टर मजूमदार ने चेतावनी दी है कि इन लोगों से नियंत्रित सम्पर्क रखना चाहिए। अन्यथा रोग फैलकर इनका नाश हो जायगा।

अपनी धरती !

भारतीय चिकित्सा शास्त्र का सिद्धान्त है कि जिस देश में जो जन्मा है, वहीं की औषधि उसे लाभ करती है। अपने चारों ओर दीवारें खींचकर बैठने का समय तो यह नहीं है, फिर भी अपनी धरती का बहुत महत्व है—अपनी धरती का वातावरण अपना होता है और वहाँ हमारा निर्माण अपनापन लिए पनपता है। खेद है कि अपनी धरती आज हमारी आँखों में नहीं है।

"वर्तमान भारत की प्रत्येक चीज का सम्बन्ध उसकी अपने जीवन की विशेषताओं से होना चाहिए। यह बात वैज्ञानिक और औद्योगिक प्रगति पर और भी अधिक लागू होती है। प्रतिरक्षा विभाग का औसत अफसर विदेशों से हथियार मँगाने के पक्ष में मालूम पड़ता है, पर मुख्य बात तो यह है कि वह हथियार भारत की परिस्थितियों में सफल हों। मैं कहता हूँ कि जो हथियार भारत में बनाया जायगा, वह बाहर से मँगाये किसी भी हथियार से अधिक उपयोगी होगा।" यह प्रधान मन्त्री ने देश के विशेषज्ञों से कहा।

हमारे देश के निर्माता, विशेषज्ञ और अधिकारी अपनी धरती से कितनी दूर हैं, इसका प्रमाण है चण्डीगढ़। पंजाब की नयी राजधानी में जो क्वार्टर बनाये गये, वे विदेशी परिस्थितियों के अनुकूल थे, इसलिए वे शानदार भले ही हों, सुविधाजनक नहीं हैं।

क्या यह कोई बहुत बड़ा तकाज़ा है कि स्वतन्त्रता के ७ वर्ष बाद हमारे देश के बुद्धिमान लोग पैरों के आगे की धरती को देखकर चलें, आकाश के तारे गिनते हुए नहीं ?

नई कड़ी

भारत के पुरातत्व विभाग की ओर से पंजाब के नगर रोपड़ा में जो खुदाई हुई, उससे हड़प्पा-सभ्यता के अन्त और बुद्धकाल के बीच वाले अन्धकार युग की कड़ी का पता चल गया। इस खोज से ईसाई दूसरी सहस्राब्दि के प्रारम्भ से वर्तमान समय तक उत्तर भारत में विभिन्न सभ्यताओं के विकास का एक श्रृंखलाबद्ध वितरण मिल गया है।

पृथ्वीमाता की जय, जो अपने हृदय पर हमें धारण किए है, तो अपने हृदय में हमारे इतिहास की कड़ियों को। और किसमें शक्ति है, जो इन रत्नों की रक्षा कर पाता।

आलोचना और आग्रह

भारतीय नयी तालीम सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद ने कहा—"पुरानी शिक्षा पद्धति की संस्थाएँ बढ़ती जा रही हैं और जो कुछ भी सरकार खर्च करना चाहती है, उसका अधिकांश पुरानी पद्धति को कायम रखने में लग रहा है। मैं चाहता हूँ कि जितने लोग शिक्षा से सम्बन्ध रखते हैं—शिक्षाशास्त्री और शिक्षामंत्री—वे विचारमात्र ही न करें, बल्कि क्रियात्मक रूप से शिक्षा-प्रणाली को बदलने का निश्चय करें।" क्योंकि—"मेरा विश्वास है कि जब तक शिक्षा में मौलिक परिवर्तन न किया जायेगा, तब तक शिक्षितवर्ग में जीवन के प्रति असन्तोष और निराशा बढ़ती जायगी।"

स्वतन्त्रता के ७ वर्षों में देहाती अध्यापक से राष्ट्रपति तक शिक्षा पद्धति की आलोचना करते रहें, अब भी नया समय नहीं आया कि हमारे बड़े आग्रह करें कि नये परिवर्तनों की सृष्टि हो !

साधु श्री वास्वानी

राष्ट्र के पुण्य साधक श्री टी० एल० वास्वानी ७५ वर्ष के हो गये। इस उपलक्ष्य में पूना में उन्हें ४०००० रुपयों की थैली भेंट की गयी। उन्हें जनता ने 'साधु' की उपाधि दी—वे लिख रहे हों तो कलम और बोल रहे हों तो जीभ, सीधे अन्तरात्म से जुड़ी रहती है—यही उनकी साधुता है।

वे भारतीय जागरण की एक ऐतिहासिक कड़ी हैं। १९२३ में जब असहयोग का सूर्य अस्त हो गया और उसकी प्रतिक्रिया में हिन्दू मुस्लिम दंगों की धूल यों आकाश में भर गयी कि लगा—जागरण का सूर्य अब सदा को गया—गया, तो कुछ दीपक एक के बाद एक यों जले कि १९३० का जागरण-पर्व हम पा सके।

इन पुण्य प्रदीपों में एक प्रदीप था—साधु वास्वानी का युवक आन्दोलन। उस समय के वातावरण में वे इतने प्रदीप्त थे कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर और महात्मा गान्धी के साथ भारत के विचार-नेताओं में तीसरा नाम उनका ही लिया जाता था। साधु वास्वानी शतायु हों !

वह पिस्तौल !

महात्मा गान्धी की समाधि पर बननेवाले अजायबघर में वह पिस्तौल भी रखी जायगी, जिससे प्रचण्डात्मा गोडसे ने उनकी हत्या की थी।

हत्यारा इतिहास में अमर हो गया और हत्यारी दर्शनीय—हायरे, महात्मा के सत्संग !

उत्साह की पहली किरणें !

भारत में स्वतन्त्रता के जन्म लेते ही साम्प्रदायिक खून-खच्चर हुआ, शरणार्थी गये, शरणार्थी आये, युद्ध के बाद का सामग्री-अभाव बरसा और पैसा उछला, अकाल उमड़ा और

CC-0, In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुष्ट तथा दुर्भागी संस्थाओं ने पाकिस्तान की नकली सफलताओं के गीत और भारत की कल्पित असफलताओं के मर्सिये कुछ इस तरह पढ़े कि राष्ट्र के वातावरण में निराशा का धुआँ भर गया और उसमें सारे समाज को एक घुटन अनुभव होने लगी। यह घुटन उस प्यास से और भी असह्य हो गयी, जो स्वराज्य के मिलते ही जनता में जागी कि अब तो हमें सब कुछ मिलना ही चाहिए था।

लगभग पूरे ७ वर्ष उस निराशा में घनघोर डूबे रहने के बाद इधर सहज रूप से देश के वातावरण में उत्साह की किरणें फूटने लगी हैं। यह किरणें सूक्ष्म हैं, इसलिए इन का अध्ययन करने के लिए सूक्ष्मताओं में जाना पड़ता है।

इस बार की दीवाली में जितने नये चित्र बाज़ार में आये, उतने पिछले ७ वर्षों में नहीं आये थे और बाज़ार पुराने ही चित्रों से पटा रहता था। चित्रों में देश के नेताओं की ओर जनता का ध्यान नहीं था। राष्ट्रीय नेताओं में गान्धीजी और नेहरू के ही चित्र आये और बिके। एक नयी बात यह थी कि राष्ट्रीय संघ के नेताओं में डा० हेडगेवार और श्री गुरुजी के चित्र बाज़ारों में नगण्य रहे और डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी का चित्र छविमान रहा। अभिनेत्रियों के चित्रों की प्रतिष्ठा गिराव पर रही, उभार पर नहीं, पर देवताओं का रंग दमकदार रहा।

दीपावली की रोशनी पहले वर्षों से हर जगह शानदार रही और आतिशबाजी ने पैर इस बार पूरी तरह जमा लिये।

इन महीनों में स्थानीय मेलों में भी अच्छा उत्साह रहा और गुरुनानक जयन्ती आदि के उत्सव भी नगर में अच्छे रहे। इन सब के जलूस इस बार पहले वर्षों से बड़े रहे और संयोजकों की इच्छा उन्हें उससे भी बड़े दिखाने की रही। संक्षेप में उत्साह फूट रहा है, यह हर तरह और हर जगह साफ दिखाई दिया; निश्चय ही सूक्ष्म, पर निश्चय ही स्वच्छ-साफ और राष्ट्रवादी!

तो इसके कारण भी राष्ट्रवादी ही होंगे और वे हैं—विदेशों में भारत की प्रतिष्ठा बढ़ना, चीन के प्रधानमंत्री का भारत आना, भाँकड़ा बाँध का उद्घाटन, रूस से नेहरू को निमंत्रण, गाँव-गाँव में श्रमदान और पाकिस्तान की हवा उखड़ना।

इस उत्साह का हम स्वागत करें और इसे परिपुष्ट भी।

वे अब नहीं रहे!

तेजस्वी साहित्यकार श्री पारसनाथ सिंह की मृत्यु एक ऐसे कर्मठ नागरिक का अभाव है, जो जीवन में कभी एकांगी नहीं हुआ और जिधर वह मुड़ा, सफलता उसके साथ रही।

श्री मातादीन शुक्ल की मृत्यु से हिन्दी का एक पुराना कवि और पत्रकार चला गया, जिससे हिन्दी सदा अपनी जगह बल पाती रही। दोनों की स्मृति का अभिनन्दन!

(पृष्ठ ४६ का शेषांश)

बुरे से बुरा काम हो सकता था इन्होंने किया था। ज़िन्दा रहते जिस सच्चाई से वे अनभिज्ञ थे या जिसे उन्होंने छिपाया था अब उसे उन्होंने अपनी क़ब्रों पर लिख दिया था।

मैंने सोचा उसने भी ज़रूर कुछ न कुछ लिखा होगा। और अब निडर होकर मैं उन अधखुली क़ब्रों के बीच से गुज़रता हुआ उसकी ओर भागा। उसके चेहरे को बिना देखे ही मैंने फ़ौरन उसे पहिचान लिया।

जहाँ कुछ देर पहले मैंने पढ़ा था: "वही जिसने किसी को प्यार किया, जिसे किसी ने प्यार किया!" अब मैंने पढ़ा: "अपने प्रेमी को धोखा देने के लिए जब एक दिन वह वर्षा में जा रही थी उसे ठण्ड लग गयी और वह मर गयी!"

मुझे कुछ-कुछ याद पड़ता है कि अगले सवेरे मैं उसकी क़ब्र पर बेहोश पाया गया था।

*

ज्ञानोदय का एक नया अनूठा साहस

सम्पूर्ण एशिया की संस्कृति-साहित्य-कला-इतिहास-राजनीति का अपने प्रकार का प्रथम ज्ञानकोष

विशाल एशिया अंक

शीघ्र ही प्रकाशित होगा

एजेण्ट अपनी प्रतियाँ सुरक्षित करा लें
ग्राहकों से कोई अतिरिक्त मूल्य नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पृष्ठ ४८ का शेषांश)

फिजी

पं० गोपेन्द्र नारायण पथिक अब से करीब २६ वर्ष पूर्व भारतवर्ष से फिजी मे शिक्षा-प्रचार के कार्य में सहयोग देने गए थे। तीन वर्ष रह-कर एक वर्ष के लिए वह भारत वापिस आये और दुबारा फिर चले गये थे। अगले साल उन्हें फिजी में पच्चीसवाँ वर्ष पूरा हो जायगा।

वहाँ से आपने दर्जनों बालक-बालिकाओं को भारतवर्ष की विभिन्न शिक्षण संस्थाओं में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजा था और वहाँ की कई शिक्षण-संस्थाएँ स्थापित करने में सराहनीय योग दिया है। आजकल आप फिजी में स्वामी भवानी दयाल सन्यासी स्मारक विद्यालय बनवाने में व्यस्त हैं, जो कई हज़ार पौण्ड की लागत से बनकर शीघ्र ही तैयार होगा।

ब्रिटिश गायना के एक शहर किट्ठी के विद्यालय की भारतीय छात्रा समिति

नैरोबी

अवस्थी दम्पति (पं० गुरु प्रसाद अवस्थी एम० ए०, बी० टी तथा श्रीमती लीला अवस्थी बी० ए०, बी० टी०) पूर्वार्ध अफ्रीका के केनिया प्रदेश के प्रमुख शहर नैरोबी की आर्यकन्या सीनियर स्कूल में करीब ३।। वर्ष तक अध्यापन-कार्य करके दिसम्बर के उत्तरार्ध में भारत वापिस लौट रहे हैं।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जब आज का शानदार नैरोबी शहर एक गाँव था, श्री उत्तम चन्द आर्य ने अपने घर में ही एक निःशुल्क कन्या-पाठशाला खोली थी जो सन् १० में बाक़ायदा स्कूल के रूप में परिणत हो गयी। यह केनिया उपनिवेश का प्रथम कन्या विद्यालय था। प्रगति की ओर बढ़ते-बढ़ते पिछले ४० वर्ष में इसने आशातीत सफलता पायी और आज यह केनिया के सबसे बड़े विद्यालयों में एक है जिसमें १२०० छात्राएँ शिक्षा पाती हैं और ४० अध्यापक-अध्यापिकाएँ हैं। पूर्वी अफ्रीका के धनी-मानी सेठ श्री नानजीभाई कालीदास मेहता ने, जिन्होंने अपने पुरुषार्थ से वहाँ करोड़ों रुपये कमाये हैं और जिन्होंने सौराष्ट्र में गान्धी जी के जन्म स्थान पर लाखों रुपये खर्च करके उनका स्मारक बनवाया है, इस स्कूल की उन्नति में सराहनीय आर्थिक सहयोग प्रदान किया है।

अनुचित माँग

१८ नवम्बर का नैरोबी से समाचार है—

"केनिया के सिख समाज ने मुसलमानों के चुनाव में प्रथम प्रतिनिधित्व मिल जाने के कारण अपने पृथक् प्रतिनिधित्व के दावे पर ज़ोर देना शुरू कर दिया है। एक सिख प्रतिनिधि-मण्डल केनिया के गवर्नर से मिला तथा सिखों को अन्य भारतीयों से पृथक् समाज स्वीकार करने की माँग की।

"इस सम्बन्ध में वास्तविक प्रश्न १९५६ से पहिले नहीं उठता क्योंकि तब ही वहाँ आगामी आम चुनाव होगा। परन्तु सिख इस बात के लिए जोर डाल रहे हैं कि एक सिख को लेजिस्लेटिव कौन्सिल में नामज़द करके उनके इस अधिकार को स्वीकार किया जाय।

"परिचित सूत्रों का कहना है कि केनिया के योरोपियन नेता सिखों के पृथक् प्रतिनिधित्व का विरोध करेंगे। योरोपियन नेताओं की धारणा है कि कुछ वर्ष पूर्व मुसलमानों का पृथक् प्रतिनिधित्व स्वीकार करने के कारण ही सरकार को लिट्लटन—योजना के अन्तर्गत केनिया सरकार में दो एशियायी मंत्री स्वीकार करने पड़े हैं। उनकी धारणा है कि यदि सिखों की भी पृथक् जाति स्वीकार कर ली गयी तो केनिया सरकार में उनके पृथक प्रतिनिधित्व का विरोध नहीं किया जा सकेगा और इस प्रकार एशियाइयों को केनिया की सरकार में तीन स्थान प्राप्त हो जायेंगे।"

विभाजन करके शासन करने की नीति में दक्ष योरोपियन निवासियों का यह रुख उनके अपने वर्तमान निजी हितों के अधिक अनुकूल है। इसलिए हो सकता है वह इसी आधार पर विरोध करें।

ट्रिनिडाड में भारतीय

ट्रिनिडाड (दक्षिण अमेरिका) जहाँ भारतीय सन् १८४४ में सबसे पहिले गये थे, और जहाँ की कुल आबादी ५५७,९७० में उनकी संख्या १९७,४४७ है, के भारतीय व्यापारी श्री जंग-बहादुर सिंह ने, जो आजकल भारत भ्रमण कर रहे हैं, आगरे में बताया है कि ट्रिनिडाड-भारतीयों को हिन्दी समाचार-पत्रों का बड़ा अभाव है।

उन्होंने बताया कि ट्रिनिडाड के प्रायः शत प्रतिशत भारतीय हिन्दी में लिख-पढ़ सकते हैं और खुशहाल हैं। वह ट्रिनिडाड में १५ लाख रुपया लगाकर एक विशाल मन्दिर का निर्माण कर रहे हैं जो भारतीय स्थापत्य-कला के आधार पर होगा। उन्होंने कहा कि ट्रिनिडाड के शासन में भारतीयों का गौरवपूर्ण स्थान है और वहाँ की कौन्सिल के १८ सदस्यों में ७ भारतीय हैं एवं एक मंत्री भी भारतीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पृष्ठ ७ का शेषांश)

करने में जिससे सत्य लांछित होता हो अथवा दूसरों को क्लेश पहुँचता हो। सबसे अलग रहकर कूपमण्डूक की तरह जीनेवाले समाज की भी कोई संस्कृति होती होगी, किन्तु वह संस्कृति स्वभाव से ही अत्यन्त सीमित और संकीर्ण होगी। संस्कृति का स्वभाव है कि वह आदान-प्रदान से बढ़ती है। जो जाति केवल देना ही जानती है, लेना कुछ भी नहीं, उसकी संस्कृति का एक दिन दिवाला निकल जाता है। इसके विपरीत, जिस जाति के सांस्कृतिक दरवाजे बराबर खुले रहते हैं, उसके सरोवर का जल कभी नहीं सूखता। उसमें सदा ही स्वच्छ जल लहराता रहता है और नये-नये कमल के फूल खिलते रहते हैं। कूपमण्डूकता और दुनिया से रूठकर अलग हो बैठने का भाव संस्कृति को ले डूबता है। संस्कृतियों का सर्वाधिक विकास पारस्परिक सम्पर्क से होता है। पहले एक भाषा में 'शेली' और 'कीट्स' पैदा होते हैं, तब दूसरी भाषाओं में रवीन्द्र और पन्त जन्म लेते हैं। पहले एक देश में बुद्ध पैदा होते हैं, तब दूसरे देश में ईसामसीह का जन्म होता है। अगर मुसलमान इस देश में नहीं आये होते तो सूफ़ी कविता, उर्दू भाषा और मुग़ल तूलिका की चित्रकारी यहाँ नहीं खिली होती। अगर यूरोप से भारत का सम्पर्क नहीं हुआ होता तो विज्ञान का प्रचार यहाँ देर से होता और ब्रह्म-समाज, आर्य समाज, थियोसॅफ़िकल समाज और रामकृष्ण तथा विवेकानन्द का जन्म होता या नहीं, यह संदिग्ध बात है।

विभिन्न जातियों, विभिन्न भाषा-भाषियों और विभिन्न मतावलम्बियों के बीच रक्त-मिश्रण एवं सांस्कृतिक समन्वय के उदाहरण कुछ अन्य देशों (जैसे मेक्सिको और प्राचीन यूनान) में भी उपलब्ध हैं, किन्तु वैसे नहीं जैसे भारत में। संसार में कुल मिलाकर गोरे, गेहुँए, काले और पीले ये चार रंग के लोग हैं और इन चारों रंगों का भरपूर मिश्रण भारतीय जनता में हुआ है। भाषा की दृष्टि से देखें तब भी सभी प्रमुख भाषा-परिवारों की सन्ततियाँ इस देश में एक साथ जी रही है। और धर्म की दृष्टि से तो सारा भारत आरम्भ से ही संसार के सभी प्रमुख धर्मों की सम्मिलित भूमि रहा है। त्रावणकोर के भारतवासी इंग्लैण्ड वालों से कई सौ वर्ष पहले क्रिस्तान हुए थे एवं मोपलों के बीच इस्लाम, शायद, तभी पहुँच गया था जब हज़रत मोहम्मद स्वर्गीय नहीं हुए थे। इसी प्रकार, ज़रथुस्त्र के अनुयायी भी बहुत दिनों से भारत में बसे हुए हैं। अतएव, ईसाइयत, इस्लाम और पारसी धर्मों का भारत पर उतना ही अधिकार है जितना हिन्दुत्व या बौद्ध धर्म का।

ऐसा लगता है, मानों, विश्वैकता को सम्भव बनाने के लिए, प्रकृति ने भारत भूमि में एकता का प्रयोग किया हो। यदि भारत की सामाजिक संस्कृति सत्य है तो एक दिन विश्व-संस्कृति एवं विश्व-मानवता की कल्पना भी सत्य होगी। भारत ने मार्ग बता दिया है। वह सत्य और अहिंसा का मार्ग है।

*

(पृष्ठ ११ का शेषांश)

चीज़ उठाकर चल दिया हो। खूब सोचने पर मन ने कहा कि यह चीज़ तो मैंने समाज से ठगी करके अपनायी थी। दुःख मनाना व्यर्थ है। लोमड़ी के आँसू कोई नहीं पोंछता।

अगले पत्र में मैंने उसे बधाई देते हुए लिखा कि मेरे सब पत्र या तो वह जला दे या मुझे भेज दे। पत्रों का बण्डल ससुराल में ले जाने से बड़ी हिमाक़त और कोई नहीं होगी। क्योंकि पति-पत्नी के सम्बन्ध एक-दूसरे से इतने निकट होते हैं कि किसी भी वस्तु का छिपा रह जाना असम्भव है।

उसका उत्तर आया कि वह उन पत्रों को अपने जीवन की सबसे अमूल्य निधि समझती है, इसलिए जलाने का विचार तो उसे आ ही नहीं सकता। मुझे वह दे सकती थी, लेकिन पारसल करना उसके बस की बात नहीं थी। अभी से घर से बाहर जाना उसके लिए वर्जित हो गया था। विवाह में रेखा के साथ मुझे जाना ही था, इसलिए, उसने लिखा था कि वे सब पत्र मुझे उस अवसर पर मिल जायेंगे।

इसके बाद पत्रों का वह ताँता बन्द हो गया। शायद उसके घर में मेहमान इकट्ठे होने लगे थे। मैंने रेखा से विवाह में चलने के बारे में पूछा। मुझे उस समय असीम आश्चर्य हुआ, जब उसने चलने में बड़ा उत्साह दिखाया। इसलिए निश्चित तिथि पर रेखा विमला की अभिन्न सहेली के रूप में और मैं उसके 'अभिन्न' पति के रूप में विमला के घर जा पहुँचे।

विश्वास था कि विमला अवश्य दिखाई देगी। मैंने उसे आज तक नहीं देखा था। लेकिन बरात आने तक भी यह अवसर नहीं मिल सका। बदले में वर के दर्शन हुए।

वर के रूप में जो व्यक्ति था, उस तरह के खुशमिज़ाज आदमी बहुत कम देखने को मिलते हैं। पहली ही भेंट में उसने कहा, "आपके साथ क्या रिश्ता जोड़ूँ?"

मैंने कहा, "साले और ससुर के अलावा जो रिश्ता चाहें आप जोड़ सकते हैं। रिश्ता न जोड़कर केवल मित्र भी समझ सकते हैं। सबसे बड़ा रिश्ता यही होता है।"

सारी बातचीत काफ़ी हल्की-फुल्की सतह पर हुई। इसके बाद उसने कुछ गम्भीर बनकर पूछा, "आपसे एक सलाह तो लेना मैं जरूर चाहता हूँ। मैंने स्वास्थ्य सुधारने के लिए कुछ अरसे से सुबह के समय एक-दो मील की दौड़ लगाना आरम्भ किया था। तीन-चार दिन तक पैर तो दुःख कर ठीक हो गये लेकिन कन्धे दुखते हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आजकल जाड़े हैं," मैंने कहा। "ठण्ढी हवा का असर होगा। यहाँ आपके ससुर साहब जो शाल आपको देंगे, उसे कन्धों पर डालकर दौड़ लगाया कीजिए।" मैं मुसकरा दिया।

वह चिढ़ गया। "यह देने-लेने की प्रथा कितनी गन्दी है।" वह बोला।

"जी हाँ," मैंने फिर नहले पर दहला रखते हुए कहा, "लोग अपनी लड़की को इस तरह दे देते हैं, जैसे यही चीज़ घर में सबसे ज़्यादा फ़ालतू हो।"

वह फिर हँस पड़ा। "बहुत से लोगों के लिए फ़ालतू चीजें बहुत काम की होती हैं, जैसे मरीज़ों के लिए डॉक्टर....अरे हाँ, आपने मेरा नाम तो पूछा ही नहीं! बिना नाम जाने यह मुहब्बत कितने दिन चलेगी?"

"आप से मुहब्बत करने के लिए अभी मुझे कुछ दिनों दिमाग़ी कसरत करनी पड़ेगी," मैंने कहा। "इसीलिए मैंने आपका नाम नहीं पूछा।"

"पर अभी-अभी तो आपने अपने को मेरा मित्र समझने के लिए कहा था।" उसने आश्चर्य प्रकट किया।

"मित्र का कर्त्तव्य निभाने से मैं पीछे हट ही कब रहा हूँ?" मैंने उत्तर दिया। "लेकिन उसमें मुहब्बत करने की शर्त्त नहीं है।"

"माफ़ करना, डॉक्टर," वह बोला। "ज़रूर आपके दिमाग़ का कोई स्क्रू ढीला है। मित्र रहोगे और मुहब्बत नहीं करोगे, यह तो बड़ी अजीब-सी बात है। आपको तो भूलना ही मुश्किल हो जायगा, और जो मित्र भूलने में नहीं आते वे कभी-कभी बहुत दुःख देते हैं। खैर, मैं तो अपना नाम बताकर ही रहूँगा। मेरा नाम है विमल।"

मैं जैसे बैठा-बैठा उछल पड़ा। मैंने ध्यान से वर महाशय की ओर देखा कि कहीं पर कोई शैतानी का चिन्ह तो नहीं है। लेकिन वह सरल स्वभाव से मुस्करा रहा था। स्वयं ही अपने व्यवहार से लज्जित होते हुए मैंने कहा, "तब तो आपको भूलना मेरे लिए भी उतना ही मुश्किल हो जायगा।" लेकिन यह 'तब तो' किस रहस्य का सूचक थी, वह ग़रीब समझने में असमर्थ रहा।

दूसरे दिन रेखा से कहकर मैंने विमला से मिलने की सबील निकाली। सहेली के पति की मिज़ाजपुरसी के बहाने कमरे में लोगों की छोटी-मोटी आवाजाही के बीच ही हम दोनों को बातचीत करनी पड़ी। मिलने पर लगा कि मुझसे पहले-पहल मिल पाने का उत्साह उसके मुँह पर फूटा पड़ रहा था। मालूम होता था कि मेरे सम्बन्ध में यदि कोई उत्सुकता उसकी थी तो बस इतनी ही थी। वह यदि मुझसे कुछ चाहती थी या आगे चाह सकती थी, तो बस यही कि मैं उससे कभी कुछ बातें कर सकूँ। कितनी विचित्र है पत्र-मित्रता!

मैंने पत्रों को ले जाने के विषय में कहा, तो उसने इन्कार कर दिया। वह बोली, "तुम इन्हें ले जाओगे, तो ....तो मेरे पास कुछ भी नहीं रह जायगा।" इस दरिद्रता के आगे कोई आख़िर कहे भी तो क्या?

विमला का विवाह सम्पन्न हो गया। हम लोग अपने घर वापस आ गये। रेखा प्रसन्न थी। रास्ते में उसने कहा, "वह लड़की लाखों में एक थी। आपने ही उसे बहका लिया था।" ठीक है, मैं इस अपराध को स्वीकार करता हूँ।

अब विमला के पत्र, विमला से भेंट, विमला का नित्य नवीन परिचय, इन सबकी सम्भावना विमला के सुहाग में विलीन हो गयी थी; किन्तु मस्तिष्क के तन्तुओं में विमला मानो एक अविभाज्य नाड़ी बनकर समा गयी थी। वह कभी अचेतन मस्तिष्क में नहीं जा सकी। विमला का ध्यान हटाने के लिए इस बीच कुछ कम चीज़ें नहीं आयीं। सर्जन के रूप में मेरी दूर-दूर तक प्रसिद्धि सबसे बड़ी बाधा थी, जिसके फेर में पड़कर मैं विमला को काफ़ी-काफ़ी समय के लिए भूल जाता था। लेकिन किसी भी समय बिना सूचना दिए ही वह फिर एक स्पष्ट चित्र की तरह मेरे मन पर आ विराजती थी। लेकिन छः महीने बाद सहसा उसे दिल से निकाल डालने की मेरी सब राहें बन्द हो गयीं।

मेरी डाक के ऊपर एक वैसा ही लिफ़ाफ़ा मौजूद था, जो मेरे लिए चिर-परिचित था। बड़ी तेज़ी से उसे खोला। पढ़ा। लेकिन उसमें जो कुछ लिखा था उससे मुझे कोई प्रसन्नता अनुभव नहीं हो सकी। विमला का पति—ओह! उस कम्बख़्त का नाम भी विमल ही था—जीर्ण प्लूरिसी से ग्रस्त था। विमला ने लिखा था कि कड़कते जाड़े में सुबह ही सुबह खुली छाती भागने से इस रोग का आरम्भ हुआ था। सभी अच्छे डाक्टरों का इलाज होने के बाद वह अब दो कुशल हाथों के द्वारा ऑपरेशन की प्रतीक्षा में अपनी साँसें गिन रहा था। विमला के निकट इतने कुशल हाथ मेरे ही हो सकते थे, और उसने जाने-न-जाने का निर्णय भी मेरे ऊपर नहीं छोड़ा था। मुझे जाना था। तुरन्त मैंने एक तार दिया।

सबसे पहिली गाड़ी से मैं अपना औज़ारों और दवाइयों का पोर्टमैण्टो सँभाल रवाना हो गया। तीन दिन बाद वहाँ पहुँचा।

विमला मेरी प्रतीक्षा में द्वार पर खड़ी थी। बिना कुछ अधिक कहे वह मुझे तुरन्त अपने पति के कमरे में ले गयी। विमल अब वह विमल नहीं रह गया था, जो मुझे शादी में मिला था। उसके स्थान पर एक पतला-दुबला शरीर, भीतर धँसी हुई आँखें, और एक निस्तेज मानव पिंड था, जो पलंग से चिपक कर रह गया था। उसकी आँखें खुली थीं, किन्तु उसने मुझे नहीं पहचाना।

मैंने उसके शरीर की परीक्षा की। असंख्य दवाओं का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परीक्षण उस पर किया जा चुका था। खून आदि सभी शारीरिक तत्वों के टेस्ट के आँकड़े पहिले से ही मौजूद थे। यह उसी प्रकार की जीर्ण प्लूरिसी का केस था जिसे में एक बार भुगत चुका था। साथ-साथ एक अजीब समानता थी....उसकी छाती में भी एक चीरा पहले दिया जा चुका था।

इस अन्तिम बात का पता लगते ही मेरे हाथ की सारी कुशलता छूमन्तर हो गयी। मैं जानता था कि यह केस, केस नहीं जुआ है। यदि दाँव उलटा पड़ा तो कौन मेडिकल साइंस की बारीकियों को खोजने जायेगा? कौन मेरी भावनाओं को समझेगा? तब इस लम्बी-चौड़ी दुनिया में मैं रेखा और विमला दोनों ही के लिए किस स्थान पर हूँगा, इसकी कल्पना भी भयावह थी। हत्यारे से कम मेरा दरजा नहीं होगा।

उस मीठे बोलवाले के रिश्तेदारों से घर भरा था। मैं विमला को इशारे से बुलाकर अलग एक कमरे में ले गया। वहाँ पहुँचकर मैंने अपने माथे का पसीना पोंछते हुए कहा, "ऑपरेशन तो ज़रूर होगा, लेकिन मेरे हाथों से नहीं होगा।"

विमला ने एक क्षण मेरी आँखों में देखकर मेरे मन के भावों को पढ़ने की चेष्टा की। फिर वह बोली, "अच्छी बात है। दुनिया में सबसे बड़ा सम्बन्ध मित्रता का होता है। कोई मित्र की मुसीबत में भी हाथ रोक कर बैठ सकता है, तो फिर इस संसार में जीने का कोई प्रलोभन ही नहीं है। लेकिन, डाक्टर, मैंने जो इतने दिनों तक तुम्हें एक छली मित्र के रूप में याद रखा है, क्या इसका कोई प्रतिदान मुझे नहीं मिलेगा?"

मेरी स्थिति दयनीय थी। मैंने जैसे गिड़गिड़ा कर कहा, "विमला, क्या तुम मेरी जगह आकर नहीं सोच सकतीं? अगर.."

विमला ने मेरी बात बीच में ही काट दी। निर्णयात्मक स्वर में उसने कहा, "अगर वह इस संसार में इस प्रयत्न के बाद भी न रहे, तो भी संसार में जीने का प्रलोभन शेष रह जायेगा।"

इस आशावाद के आगे मैंने हथियार डाल दिये। वहाँ से चलते हुए मैंने कहा, "अच्छी बात है। कल सरकारी अस्पताल के ऑपरेशन रूम में मैं ही अपने हाथों से तुम्हारे भाग्य का ऑपरेशन करूँगा।" और मैंने जाते-जाते देखा कि उस विचित्र विश्वासिनी के मुँह पर एक सरल हास छा गया।

अगले दिन विमल बाबू का ऑपरेशन मैंने किया। चीर-फाड़ उनके फेफड़े की नहीं, मानो मेरे दिल की हो रही थी। न जाने कैसे मेरे हाथ संयत भाव से अपना काम करते रहे। लेकिन ऑपरेशन रूम से बाहर निकलने के बाद मेरी चेतना शक्ति ने जवाब दे दिया था। फिर भी....

ऑपरेशन सफल हुआ था।

जब मेरी आँखें खुलीं, तो विमला का मुँह मेरे मुँह से एक इंच की दूरी पर एक विशाल स्नेह के छल के रूप में दिखाई पड़ रहा था। सहसा ही वह हट गया। उसने मेरे दोनों हाथों को अपने दोनों हाथों में लिया और फिर हाथों के इस बन्धन को चूम लिया। एक लड़की की मित्रता के इस स्नेह-दर्शन की तुलना शायद संसार के किसी भी सुख से न हो सके।

विमल बाबू जब घर आ गये, तो वह बराबर मेरी ओर देखते रहे। उनकी आँखों में घृणा थी, स्नेह था, या कृतज्ञता थी, मैं नहीं कह सकता। वे केवल मुझे देख रही थीं....।

तीसरे दिन ही मैंने विमला से कहा, "अच्छा, अब मैं जाऊँगा। अब अस्पताल के डॉक्टर लोग सँभाल लेंगे। तुम जानती हो, मेरा समय मेरा नहीं है।"

"अच्छा," विमला ने कहा। "एक स्वार्थी मित्र की तरह मैं अब और अधिक तुम्हें नहीं रोकूँगी। ज़रा ठहरो।"

वह भीतर कमरे में गयी। थोड़ी देर बाद एक लिफ़ाफ़ों का बण्डल लिये वह वापस आयी। दूसरे हाथ में मिठाई की एक तश्तरी थी। उसने कहा, "ये हैं तुम्हारे वे पत्र। सचमुच पति-पत्नी के सम्बन्ध इतने निकट के होते हैं कि सदा इनका डर बना ही रहा। इन छः महीनों में कभी यह बण्डल खोलकर देखने का भी साहस नहीं हुआ। अब इस घर में इन्हें पढ़ना पुरानी यादगार को ताज़ी करना और आँसू टपकाना मुझे अच्छा नहीं लगा। इसीलिए मैंने इन्हें नहीं पढ़ा। फिर सोचा कि जब ये कभी पढ़े ही नहीं जाते, तो खतरे को पास रखने से क्या लाभ। तुम इन्हें ले जाओ, लेकिन तुम्हें ये सुरक्षित रखने पड़ेंगे, ताकि जब मैं चाहूँ, मुझे फिर से अपना जीवन टटोलने के लिए मिल सके। अब तुम इस तश्तरी की मिठाई को निबटा डालो।"

मैंने चलती बार उसे पत्रों को सुरक्षित रखने का आश्वासन दिया और उस बण्डल को 'पुरस्कार' में लेकर मैं चलते-चलते बोला, "विमल बाबू से मेरा नमस्कार कहना, और कहना कि मैं कोशिश करूँगा कि उन्हें प्यार कर सकूँ।"

"पहली बात कहूँगी," विमला ने कहा। "और दूसरी छिपा लूँगी।" उसने हँसकर मुझे विदा दी।

लेकिन तीसरे दिन फ़ाइल बनाने के लिए जब मैंने अपने दवाखाने में उन लिफ़ाफ़ों के बण्डल को खोला, तो मैं धक् से रह गया। शायद अलादीन को लैम्प में से देव निकलने पर भी इतना बड़ा आश्चर्य नहीं हुआ होगा। वहाँ सारी फिलॉसफ़ी, सारा विज्ञान, सारा स्नेह, सारी घृणा और तिरस्कार केवल एक वाक्य में संचित थे। उस लिफ़ाफ़ों के बण्डल के ऊपर एक साफ़-सुथरे काग़ज़ की चिट आलपीन से लगी हुई थी। उस पर एक पुरुष के अक्षर थे। वे अक्षर लाल स्याही से लिखे हुए थे, जैसे किसी ने अपने खून से लिख दिये हों। उन अक्षरों से बने हुए शब्दों का रूप यह था:

"क्या ऐसा हो सकता है कि कोई विमला को प्यार करे और विमल को न करे?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पृष्ठ ३१ का शेषांश)

सिंहल : प्राचीन भारत का अंग

भौगोलिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सामरिक दृष्टि से सिंहल द्वीप भारत का अविभाज्य अंग है। समय और परिस्थितियों ने उसे विभक्त किया है।

इतिहास साक्षी है कि 'देवानांप्रिय प्रियदर्शी' अशोक के सुपुत्र स्थविर महेन्द्र ने सर्वप्रथम सिंहल को सभ्यता एवं सांस्कृतिक संस्कार प्रदान किये, तत्पश्चात् १८ वर्षीया भिक्षुणी संघमित्रा वहाँ बोधिशाखा ले गयी। अनुराधापुर, लंका की प्राचीन राजधानी, में पल्लवित इस पवित्र वृक्ष की छाया में सिंहल ने सदैव शान्ति-लाभ लिया। यही महाबोधि विश्व का विख्यात एवं प्राचीनतम वृक्ष है।

प्रकृति और भूगोल ने तो भारत-सिंहल को एक सूत्र में आबद्ध कर रखा है। धर्म, साहित्य और सांस्कृतिक ऐक्य के आधार भी उन्हें उपलब्ध हैं। सिंहलीय साहित्य-भण्डार बौद्ध-ग्रन्थों से भरा है। भाषा भी द्राविड़, संस्कृत, पाली के प्रभावों से परिपूर्ण है।

किन्तु इस सारी प्रकृत एवं सांस्कृतिक समता के बावजूद भी आज सिंहल और भारत विभक्त हैं। क्योंकि सिंहलीय राजनीति विदेशी षड्यन्त्रकारियों और स्वदेशी स्वार्थ-साधकों के द्वारा परिचालित है। फिर भी यह सिंहलीय हिन्दी है जो अपने अधिकारों के लिए अनत और अटल खड़ा है। वह लंका में रहा है, लंका में रहेगा। लंका उसका भी देश है।

बेशक भारत लंका को शंकित और रुष्ट नहीं करना चाहता। इस विषय में भारतीय नेताओं और सरकार को पूरी सावधानी रखना है। समस्या और परिस्थितियाँ विचारपूर्ण प्रहार चाहती हैं। लंका हिन्द महासागर का प्रमुख द्वीप है। लंका की आन्तरिक निर्बलता दूर-पूर्व तथा दक्षिण-पूर्व के राष्ट्रों की चिन्ता का कारण बनती है। भारत तो भारत, स्वयं लंका की अपनी आत्मरक्षा और प्रगति के लिए सिंहलीय शान्ति एवं सबलता आवश्यक है। वहाँ की अशान्ति एवं निर्बलता भारत और एशिया के लिए भयावह है। यह प्रत्यक्ष और निश्चित है कि लंका के लिए भारतीय सद्भावना अत्यन्त मूल्यवान है। यदि केवल लंका के वर्तमान शासक और कुछ नेता यह समझते और स्मरण रखते कि अपने नीति-नातों में विदेशी स्वार्थों का साधन बनकर अथवा स्वयं संकीर्णताओं का आखेट बनकर—वे आज जो कुछ कर रहे हैं उसके दुष्परिणाम क्या होंगे और किस रूप में वे वहाँ की भावी पीढ़ियों के पल्ले पड़ेंगे।

नया समझौता

अक्टूबर १९५४ ई० की ९ वीं और १० वीं तारीखों को नई दिल्ली में लंका के प्रधान-मन्त्री श्री कोटलेवाला और भारतीय प्रधान मन्त्री श्री नेहरू के नेतृत्व में एक कान्फ्रेंस की आयोजना हुई। दो दिन की बहस के बाद सिंहलीय-भारतीयों के अधिकारों की समस्या सुलझाने में कॉन्फ्रेंस को आंशिक रूप में 'सफलता' प्राप्त हुई, और फिर एक नये 'दिल्ली-पैक्ट' की घोषणा हुई।

दोनों पक्षों में इस तथ्य पर सैद्धान्तिक मतभेद था कि राज्य-रहित व्यक्तियों का निपटारा किस प्रकार किया जाय। लंकाई शिष्ट-मण्डल का कहना था कि ऐसे व्यक्ति जब तक सिंहलीय नागरिक नहीं बन जाते तब तक वे 'भारतीय' बने रहते हैं। इस आधार पर उन्हें "राज्य-रहित" व्यक्ति कहना अनुचित है।

इसके विपरीत भारतीय शिष्टमण्डल का दावा था कि मात्र वे व्यक्ति भारतीय नागरिक हैं, जिनके पास पासपोर्ट हैं अथवा जो भारतीय हाई कमिश्नर के दफ्तर में भारतीय विधान की ८ वीं धारा के अन्तर्गत अपना नाम लिख चुके हैं। अतः शेष भारतीय, जो न सिंहलीय नागरिक हैं, न भारतीय नागरिक हैं, 'राज्य-रहित' ही हैं। ऐसे व्यक्तियों को केवल रक्त-सम्बन्ध के आधार पर 'भारतीय' कहना अनुचित है।

इस कान्फ्रेंस ने १८ जनवरी १९५४ के उस पिछले समझौते पर भी ग़ौर किया और उसकी कमियाँ दूर करने का प्रयत्न किया। 'राज्य-रहित' व्यक्तियों के लिए अनेक सुविधाओं के सुझाव पेश किये गये जिससे कि वे जल्दी से जल्दी भारतीय या सिंहलीय नागरिकता के अधिकार प्राप्त कर सकें। दोनों पक्ष की सरकारें उन समस्त व्यक्तियों को यात्रा-पत्रक प्रदान करेंगी जो लंका या भारतीय सरकार के कार्यालयों में नागरिक बनने के लिए अपने आवेदन-पत्र प्रस्तुत कर चुके हैं।

इसके अतिरिक्त लंकाई शिष्टमण्डल का अपना प्रश्न था कि उसे अपने नागरिकों की नौकरी-चाकरी और रोटी की सुरक्षा करनी है। इस उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त सिंहल-सरकार भारत का सहयोग चाहती है। लंका-सरकार का विचार है कि भविष्य में वह अपने देश में उन्हीं भारतीय नागरिकों को नौकरी में रखेगी, जिनकी आयु ५५ वर्ष से कम है। इसके पश्चात् उन्हें लंका देश छोड़ देना पड़ेगा। ऐसे व्यक्तियों को लंका-सरकार आवश्यक एवं यथोचित हर्जाना तथा भत्ता देगी।

भविष्य में पारस्परिक सहयोग और वार्ताओं की आवश्यकता मानते हुए कान्फ्रेंस समाप्त हो गयी।

१० अक्टूबर १९५४ के इस उपरोक्त द्वितीय 'दिल्ली-पैक्ट' का लंका और भारत-स्थित सभी क्षेत्रों में स्वागत किया गया। सिंहल और भारतीय सम्बन्धों के प्रवाह में जो असहज गत्यावरोध आ गया था, इस कान्फ्रेंस और पैक्ट के कारण दूर हुआ है। यदि लंका सरकार अपने विदेशी या विदेश-परस्त सलाह-

(शेषांश पृष्ठ ६४ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पृष्ठ २३ का शेषांश)

परिस्थिति की विवशता के मत्थे मढ़ देना एक प्रवंचना को प्रश्रय देना-मात्र है। परिस्थिति की विवशता में सजग कलाकार अपने स्वाभिमान को त्यागकर अन्याय और अनीति के प्रतिनिधियों का स्तवगान नहीं लिखते। आश्चर्य की बात तो यह है कि सन् सत्तावन के राजद्रोह के बारे में इनमें से जिस किसी ने यदि कुछ लिखा भी तो उसके विरोध में, यह कहकर कि यह कुछ मूर्खों का कार्य था और महारानी विक्टोरिया ने उनका दमन किया तो ठीक ही किया। उनके आन्दोलन में प्रगतिशील तत्व केवल इतना था कि उन्होंने पाश्चात्य सभ्यता के अनुकरण का विरोध करते हुए भी हिन्दू-समाज की कुरीतियों का पक्ष समर्थन नहीं किया, प्रत्युत उनका विरोध ही किया और इस प्रकार सामाजिक-जागृति फैलाने में योग दिया। और चूंकि ये महानुभाव मूलतः प्रचारक और पत्रकार थे, इसलिए उनका रचना-साहित्य भी सामयिक आन्दोलनों की संकीर्णता से आक्रान्त है, स्थायी मूल्य का उसमें शतांश भी नहीं है। सम्भव है कि इस सत्य को इतनी स्पष्टता से सुनना हमारे संकीर्णमना इतिहासकारों और विद्यार्थियों को असह्य लगे, लेकिन सत्य पर आवरण कब तक डाला जा सकता है? कुछ इतिहासकार भारतेन्दु-युग को छायावादी-युग से आगे बढ़ा हुआ बताने की चेष्टा में साहित्य के मूल्यों को उठाकर ताक पर रख देते हैं और भारतेन्दु-युग की प्रत्येक तुकबन्दी को हिन्दी-साहित्य की श्रेष्ठतम और अमर सम्पदा घोषित करने लगते हैं। लेकिन अधिकतर इतिहासकारों का पूर्वाग्रह इतना अंधा नहीं है। वे यह तो स्वीकार करते हैं कि भारतेन्दु-कालीन साहित्य अत्यन्त साधारण कोटि का साहित्य है, किन्तु एक विचित्र और अनैतिहासिक प्रवंचना को जन्म देकर उसे गौरवान्वित भी करते हैं। उनका तर्क है कि उस समय तक न हिन्दी भाषा का स्टैण्डर्ड रूप बन पाया था, न खड़ी-बोली हिन्दी में काव्योचित परिमार्जन ही हुआ था। अतः प्रारम्भ काल की रचनाएँ ऐसी ही हो सकती थीं। इस औचित्य-प्रकाशन में एक प्रवंचना भरी हुई है। ये इतिहासकार यह भूल जाते हैं कि साहित्य की रचना साहित्यकार करता है। उसकी प्रतिभा पर ही श्रेष्ठ-साहित्य का निर्माण निर्भर है। कबीर ने किस पहले से मँजी-मँजाई भाषा में लिखा, तुलसीदास की अवधी में कितनी दीर्घ साहित्य-परम्परा थी? चॉसर की अँग्रेज़ी का क्या आधुनिक स्टैण्डर्ड है? पुश्किन के पहले रूसी-काव्य कहाँ और कितना था? भाषा का निर्माण और विकास जैसे जन-जीवन की सामाजिक आवश्यकताओं द्वारा होता है, वैसे ही उसका साहित्यिक मार्जन प्रतिभा-सम्पन्न साहित्यकार द्वारा रचना की प्रक्रिया के बीच होता है। प्रतिभा की स्वल्पता के साथ-साथ भारतेन्दु-युगीन लेखकों की विचार-पूंजी भी स्वल्प थी। इसको भी परिस्थितियों के मत्थे मढ़ देना सत्य से आँख मींच लेना है, क्योंकि ग़ालिब, हाली, अकबर तो थे ही, भारतेन्दु-युग के अन्त तक इक़बाल का रचना-काल भी शुरू हो गया था और रवीन्द्रनाथ ठाकुर तो वस्तुतः भारतेन्दु के समकालीन ही थे—उनसे केवल दस-ग्यारह साल छोटे थे—लेकिन उनके जीवन-काल में ही रवीन्द्रनाथ ठाकुर की काव्य-शक्ति अपनी प्रौढ़ता प्राप्त कर गयी थी। हम भारतेन्दु और उनके समकालीन लेखकों की कठिनाइयों को कम करके देखने के पक्ष में नहीं हैं, लेकिन उनके साहित्यिक कृतित्व के बारे में ग़लत दावों को भी उचित नहीं समझते। इस से साहित्य के इतिहास को समझने की जो एक भ्रान्त परिपाटी चल पड़ी है, उससे अपने को बचाना आवश्यक है।

०

(पृष्ठ २७ का शेषांश)

इतने निर्दयी न बनिये। और जो कुछ भी आप कहेंगे मैं करूँगा। मैं विवाह नहीं करूँगा।

आचार्य—अपनी प्रतिज्ञा को मत भूलो वसन्त! दिये हुए वचन लौटाये नहीं जाते। विवाह के बाद तुम ही गन्धर्व मन्दिर के आचार्य रहोगे। महाराज की आज्ञा से मैं गन्धर्व-मन्दिर के द्वार आज से सभी कुमार-कुमारियों के लिए खोल रहा हूँ। उसके बाद मैं तीर्थ-यात्रा के लिए चला जाऊँगा।

वसन्त—गुरुदेव! मेरा भी तो निवेदन सुन लीजिये।

आचार्य—इस प्रकार कातर होने से काम नहीं चलेगा वसन्त! यह दायित्व का काम है। तुम और तुम्हारी पत्नी दोनों को मिलकर यह काम करना होगा। प्रस्तुत हो जाओ।

(आचार्य ताली बजाते हैं और बगल के कमरे का परदा हटाकर माधवी आती है। उसकी वेश-मुद्रा सौम्य है और उसका मुख लाज के कारण लाल और झुका हुआ है—उसे देखकर सभी चकित रह जाते हैं)

वसन्त—माधवी तुम, तुम कहाँ से आयी?

आचार्य—मेरी कुटिया से। पिछले चार दिन से माधवी मेरी अतिथि थी वसन्त। मन्दिर की प्रतिष्ठा की सुरक्षा के लिए उसका तुमसे अलग हो जाना आवश्यक हो गया था। उस दिन जो आवश्यक था, वह मैंने किया और आज जो आवश्यक है, वह भी मैं कर रहा हूँ।

वसन्त— **(चरणों में गिरकर)** गुरुदेव! मेरा अपराध क्षमा हो।

(आचार्य तथा अन्य सारे दर्शक धीरे-धीरे चले जाते हैं, वसन्त जब आँखें खोलता है तब केवल माधवी ही दिखाई देती है)

वसन्त— **(स्नेह से)** माधवी!

माधवी— **(भावावेश में)** वसन्त!

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पृष्ठ ३७ का शेषांश)

नारद--आपने ग़लत समझा है सन्त। उनके कहने का मतलब यह है कि जो मूर्ख हैं, उन्हें तर्क करने की गुंजाइश न दो। उन्होंने चतुरों को बुद्धियोग की चर्चा की छूट दी है।

पितर--हव्वा और आदम तो मूर्ख ही थे।

नारद--वे तो आदिम स्त्री-पुरुष थे, जैसे कि बच्चे हों। अगर उन्हें सदा को मूर्ख ही रखने का मन हो, तो मनुष्य निर्माण की ज़रूरत भी क्या? बैल या भेड़ों जैसे और जानवर बनाने से क्या लाभ? हमारे पितामह की कीर्ति देखिये, उन्होंने पहले ही दस प्रजापति की सृष्टि की--मरीचि, अत्रि जैसे विद्या-बुद्धि के दस विशाल जहाज़।

गॉड--(मेघ गम्भीर स्वर में बोले) शोर न कीजिये। मेरा हुक्म तोड़कर आदम और हव्वा ने जो आदिम पाप किया, उसी का यह नतीजा है कि उनकी सन्तानों की यह दुर्दशा हो रही है। आज भी अगर लोग ईसा की पनाह लें तो कुशल हो।

ब्रह्मा--लेकिन ईसा की शरण जाना जब लोगों को मंजूर नहीं तो उनकी फ्री विल् वाला नियम तोड़कर उपयोगी बुद्धि क्यों नहीं देते?

पितर--ईश्वर क्या चाहता है, यह समझना मनुष्यों के वश का नहीं।

नारद--लेकिन हमारे ब्रह्मा तो मनुष्य नहीं हैं--कानों-कानों इन्हें अगर वह अभिप्राय बता दिया जाय तो क्या हर्ज है? न हो तो प्रभु गॉड स्वयं ब्रह्मा के कानों में कह दें।

पीर--अल्लाह की कहीं मर्ज़ी हो जाय तो पलक मारते सब दुरुस्त कर दें।

नारद--फिर दुरुस्त करते क्यों नहीं?

पीर--शायद उनकी यह मर्ज़ी नहीं।

नारद--समझ गया, सभी प्रभु लीला ही कहते हैं।

गॉड--आप सब खामोश रहें। ब्रह्मा, आप महज़ उड़ती-उड़ती बातें करते हैं। मानों आप ही हाकिम हैं और मैं असामी हूँ। आखिर तुम्हारी रियाया ही कौन कम बदमाश है। उन्हें रास्ते पर क्यों नहीं ले आते? उन्हें भी फ्री विल् दे रक्खी है क्या?

ब्रह्मा--फ्री विल् क्यों दी जाय। मेरी प्रजा बहुत अनुकूल है। जैसे चलाते हैं, वैसे ही चलती है। उस पर करम का फल भी भोगती है।

गॉड--मतलब यह हुआ कि आप ही उनसे कुकर्म कराते हैं।

ब्रह्मा--कुकर्म-सुकर्म सभी कराते हैं।

गॉड--दरअसल आपको नीतिज्ञान नहीं है। हम आपकी तरह पाप को प्रश्रय नहीं देते। पापियों के एक दल को मारने के लिए दूसरे दल की सृष्टि कर दी है और एक-दूसरे के विध्वंस के लिए दोनों दलों को वज्र दे रक्खा है।

पीर--ग़ज़ब खुदा का! हरामज़ादों के दुश्मन हरामज़ादे!

ब्रह्मा--आपका ख़्याल क्या है, क्या इस मारपीट से लोगों में सद्बुद्धि आयगी?

गॉड--ज़रा मज़े की चोट खा लेने पर यह फ्री विल् ही कोई राह निकालेगी--जब कोई उपाय न सूझेगा तो लोग ईसा की शरण लेंगे।

पीर--हर्गिज़ नहीं जी, हर्गिज़ नहीं।

गॉड--जनाब ब्रह्मा, अब आप दलीलें न देकर यह बतायें कि आप करना क्या चाहते हैं?

ब्रह्मा--मैं कुछ भी नहीं करना चाहता। विश्वास का विधान बनाकर ही मैं छुट्टी पा गया हूँ।

गॉड--क्यों, क्या आप दयामय नहीं?

ब्रह्मा--दयामय मैं नहीं; हाँ, हरि को लोग दयामय ज़रूर कहते हैं।

गॉड--आप सर्वशक्तिमान भी नहीं हैं? क्या आपकी सृष्टि का कोई उद्देश्य नहीं है?

ब्रह्मा--वास्तव में जिसके शक्ति कम होती है, उद्देश्य उसी का होता है। जो सर्वशक्तिमान है, उसका उद्देश्य तो सफल ही हुआ-हुवाया है। उसे दया करने की भी क्या ज़रूरत पड़ सकती है। जो बात है, सो चुपके से कह दूँ, सुनिये। लोग हमें सृष्टिकर्त्ता ज़रूर कहते हैं पर मनुष्यों ने ही हमारी सृष्टि की है। जो खुद निर्दय है, वह भी एक दयालु भगवान चाहता है। जो अपनी तुच्छ शक्ति कुकर्मों में खर्च करता है, वह भी किसी सर्वशक्तिमान ईश्वर को चाहता है, जो उसकी सारी मनोकामनाओं को पूर्ण करदे। अपने स्वार्थों की सिद्धि के लिए ही मनुष्य हमें दयालु और सर्वशक्तिमान बनाना चाहता है।

गॉड--यह नास्तिकों की बातें रहने दीजिए। साफ़ बताइये कि आप मनुष्यों के पाप करने पर क्रोध करते हैं? भले कामों से खुश होते हैं?

ब्रह्मा ज़ोर-ज़ोर से अपने चारों सिर हिलाने लगे।

नारद गुनगुना उठे--नादत्ते कस्यचित् पापं न चैव सुकृतं विभुः--प्रभु किसी के पाप-पुण्य को ग्राह्य नहीं करते।

गॉड--ब्रह्मा, आप बड़े ही कुचक्री हैं। इधर मनुष्यों की शेष दशा उपस्थित है और आप हैं कि निश्चिन्त हैं--कुछ नहीं करते।

ब्रह्मा--और आप क्या कर रहे हैं। अजी फ़िक्र काहे की, सामने ही तो अनन्तकाल पड़ा है। कुकर्म-सुकर्म की कसौटी पर मनुष्य फल की परीक्षा कर रहा है, इस बात की खोज में है कि किस बात से उसे ज़्यादा लाभ है, जिस दिन वह परम स्वार्थसिद्धि का उपाय निकाल लेगा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी दिन मानव-समाज में शान्ति होगी। उससे पहले तो यह मार-काट चलती ही रहेगी।

गॉड—यानी फ्री विल् पर आपकी भी आस्था है?

ब्रह्मा—पागल हो गये हैं आप!

नारद ने अपनी कच्छपी वीणा के तारों पर झंकार दी। बोले—ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति, भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्र-रूढ़ानि मायया—हे अर्जुन, ईश्वर सभी प्राणियों के हृदय में हैं और सब को भ्रम के चर्खे में औंटते रहते हैं।

सन्त पितर ने कहा—हमारे प्रभु प्रेममय परम दयालु सर्वशक्तिमान हैं।

नारद ने कहा—लेकिन शैतान को क़ाबू में नहीं ला सकते!

पीर साहब बोले—अल्लाह मिहरबान! उनकी मर्ज़ी जानना गुनाह है। उनकी रियासत में कोई बुरा काम नहीं होता।

ब्रह्मा बोले—भैया गॉड, सुन लीजिये मनुष्य जब स्वयं दयालु और प्रेममय होंगे, तभी हम भी वैसा हो सकेंगे। इसके बिना सब बेकार है।

सन्त पितर ने कहा—यह आप कह क्या रहे हैं? आप ही प्रभुगण जब ऐसा करेंगे तो ईश्वर पर से लोगों का विश्वास जाता रहेगा। जब तीनों इकट्ठे हो गये हैं तो ऐसा कोई उपाय ज़रूर निकालें कि आदमी-आदमी में मेल हो जाय।

पीर बोले—नहीं हो सकता, कभी नहीं हो सकता। अल्लाह की प्रजा मीठा शरबत है, गॉड की प्रजा तीखी शराब। ये दोनों मिल सकते हैं, शराब और शरबत घुल-मिल सकते हैं। मगर हज़रत ब्रह्मा की प्रजा तो बदबूदार कोलतार है।

अचानक आसमान में अँधेरा छा गया। झपाटे की आवाज़ हुई, जैसे कोई विशाल डैना फड़फड़ा उठा हो। ब्रह्मा ने कहा—शायद विष्णु आ रहे हैं, गरुड़ के डैनों का शब्द सुनाई पड़ रहा है।

नारद बोले—गरुड़ नहीं हैं। देखते नहीं चमगादड़ जैसे डैने हैं; रंग काला है, सींग हैं माथे पर, पाँवों में खुर हैं और पूँछ भी है। यह हज़रत शैतान आ रहे हैं।

सन्त पितर चिल्ला उठे—ऐमन्ट्, दूर हो। पीर साहब ने हाथ हिलाकर कहा—गुम् शो, दूर हटो। गॉड अपने झूले की जेब में वज्र को टटोलने लगे।

ब्रह्मा बोले—तो उसे आने ही दीजिए न। हम कोई दूध पीते बच्चे तो हैं नहीं कि डर जायँ।

शैतान उतरे। सैनिकी ढंग से सलाम बजा कर बोले—प्रभुगण, अगर इजाज़त हो तो कुछ निवेदन करूँ। गॉड मुँह गाड़े रहे। सन्त पितर और पीर साहब ने आँखें बन्द कर लीं, कानों में अँगुली डाल लीं। ब्रह्मा ने कहा—बेटे, तुम क्या कहना चाहते हो?

शैतान ने कहा—पितामह, आज यहाँ आप तीनों विधाता

इकट्ठे हुए हैं। ऐसा संयोग फिर कभी नहीं मिलेगा। सो मैं आप लोगों से कुछ सौदा तय कर लेना चाहता हूँ। संसार के सभी पूँजीपतियों ने मुझे अपना दूत बनाकर यहाँ भेजा है। वे कर्म की स्वाधीनता चाहते हैं लेकिन चाहते हैं कि फिर भी इहलोक और परलोक में उनका कोई अनिष्ट न हो। इसके लिए वे सब आपको प्रसन्न करना चाहते हैं।

ब्रह्मा—अर्थात् वे चाहते हैं कि बेखौफ़ कुकर्म करें, क्यों? इसके बदले वे क्या देंगे हमें? चावल-केले का नैवेद्य? होम की आग में दसेक सेर दालदा की आहुति?

शैतान—नहीं भगवान्, वे जान गये हैं कि ऐसे भोगों से अब आप लोगों को नहीं लुभाया जा सकता। अपने मुनाफे का एक हिस्सा वे आपको देंगे।

ब्रह्मा—मगर हम नक़द रुपये नहीं ले सकते।

शैतान—नक़द रुपये नहीं, आप लोगों की खुशी के लिए वे बेहिसाब खर्च करने को तैयार हैं। मन्दिर, गिर्जा, मस्जिद, मठ, अनाथ-आश्रम खोल देंगे; अस्पताल, रेडक्रॉस, स्कूल, कॉलेज, मदरसा और महापुरुषों की स्मृति-रक्षा पर बहुत खर्च करेंगे, भूखों को खिचड़ी खिलायेंगे, जाड़े से ठिठुरते हुओं को कम्बल बाँटेंगे। कृपया बता दें कि कौन-कौन आप भगवानों के मानस पुत्र हैं, उन्हें बड़ी-बड़ी नौकरियाँ और हवागाड़ी देंगे। और इनके बदले आप लोग हमारे मवक्किलों पर दयादृष्टि रखें, बस।

ब्रह्मा—कितना खर्च करेंगे?

शैतान—मुनाफे की रक़म का सैकड़े पीछे एक।

ब्रह्मा—बेटे, इतने में बात नहीं बनती।

शैतान—अच्छा तो दो फ़ी सदी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मा—मुझे दलाल समझ रहे हो क्या ?

शैतान—पाँच परसेंट, दस—पन्द्रह—बीस ? अच्छा, न हो तो सैकड़े पचीस। उस पर भी राज़ी नहीं ? देखते हैं, आपका खाँव-खाँव तो देश-सेवियों से भी बढ़ गया है। क साल जेल रह आये हैं प्रभु ! खैर, आप ही बतायें, कि कितने पर आप खुश होंगे।

ब्रह्मा—सौ फ़ी सदी पर।

नारद—हज़रत शैतान, प्रभु का कहना है, कर्म का सारा फल अर्पण करें तो निष्कृति होगी।

शैतान—तब व्यापार से लाभ क्या रहा ? अगर सब छोड़ ही देना है, तो इतनी खून-खराबी, लूट-पाट, डकैती क्यों की जाय ?

ब्रह्मा—खैर अपने मुवक्किलों से यही कह दो। हाथ में कुछ रखकर सौदा तय नहीं किया जाता। गॉड और अल्लाताला की क्या राय है ?

नारद—सब ग़ायब हो गये।

शैतान—तो पितामह, मैं भी राह लगूँ। आपने तो निराश कर दिया।

ब्रह्मा—ज़रा देर रुको। खाली हाथ लौटना ठीक नहीं। एक वरदान देता हूँ बेटे, पुरोहित, पादरी, मुल्ले-पुलिस, फ़ौज या जातीय संसद, तुम्हें कोई नहीं रोक सकता। मज़े में अपने मवक्किलों को नरक भेजते रहो। बाद में मैं फिर मनुष्यों की सृष्टि करूँगा। नारद, चलो चलें। मेरे वाहन हंस को बुलाओ।

नारद—प्रभो, वह तो चरने के लिए मानसरोवर चला गया है। इतनी जल्दी सभा खत्म होगी, पता न था। तो मेरी इस ढेंकी पर ही चलें।

*

(पृष्ठ ६० का शेषांश)

कारों के प्रपंच में न फँसी तो दोनों देशों में सद्भावना-पूर्ण व्यवहार बना भी रहेगा।

ऐसा प्रतीत होता है, द्वितीय 'दिल्ली-पैक्ट' की आवश्यकता दोनों सरकारों ने महसूस कर ली थी। यदि यह समझौता नहीं होता, तो दोनों देशों के सम्बन्ध सुदूर सीमा तक बिगड़ जाते और स्थिति बदतर हो जाती।

वास्तव में प्रथम और द्वितीय दिल्ली-पैक्ट सिंहलीय भारतीयों के हित की दृष्टि से अंतिम उपाय नहीं है। वह तो मात्र एक मूलाधार है, जिसकी नींव पर उनकी सुख-सुविधाओं का स्वर्ण-भवन निर्मित होगा।

सिंहल सरकार को यह सदैव स्मरण रखना चाहिए कि भारत अपनी समस्त समस्याओं को सुलझाने के लिए स्नेह, शान्ति और सहानुभूति का त्रिकोणात्मक आधार स्थापित करना चाहता है।

*

(पृष्ठ १७ का शेषांश)

मुझे पुस्तक में भूमिका नहीं भाती, भूमिका में पुस्तक भाती है—जैसे 'हिन्दी साहित्य की भूमिका।' आचार्य शुक्ल की तो सारी पुस्तकें ही भूमिका हैं। परन्तु मैं नहीं समझता कि जिस भाषा में लिख रहा हूँ, मृत हो गयी है। इसलिए उस पर सटिप्पण वैज्ञानिक भूमिका लिखने का समय अभी नहीं आया है।

कौन जाने सब-कुछ लिख जाने पर भी आदमी को सन्तोष न होता हो। इसलिए शायद वह 'निवेदन' या 'कृतज्ञता' के लिए कुछ कहना चाहता है। पुस्तक वस्तुनिष्ठ होती है, भूमिका व्यक्तिनिष्ठ। लेकिन जब स्वयं पुस्तक भी व्यक्तिनिष्ठ हो तब भूमिका कैसी ? सच तो यह है कि भूमिका सहित कहना सब चाहते हैं, सुनना कोई नहीं। इसीलिए कवि अपनी पुस्तक की भूमिका लिखकर आलोचक होने का दावा करता है। यहाँ तो मैं जिस भूमिका प्राणी हूँ, वहाँ भूमिका नहीं लिखी जाती—भूमिका पर लिखा जाता है।

आशा है, आप इसे भूमिका समझने का भ्रम न करेंगे।

आप का,

....बक़लम खुद

पुनश्च—'प्रकाशक जी इसे ज्यों का त्यों प्रकाशित कर देना चाहते हैं केवल इस सूचना के साथ कि प्रकाशक के सम्पूर्ण कथन को मज़ाक में लिया जाय। उनका कहना है कि इसी बहाने उन्होंने मुझसे मनचाहा लिखा तो लिया।

परन्तु खेद है कि न तो आज वसन्त पंचमी है और न गुरु पूर्णिमा, महाशिवरात्रि और न रामनवमी। भूमिका-सुलभ कोई पुण्य या शुभ तिथि भी आज नहीं। अधिक छानबीन करने पर शायद कोई न कोई चौथ, नवमी एकादशी, अमावस्या अथवा पूर्णिमा विशेष तो मिल ही जायगी लेकिन वह बात.... न आएगी। भूमिका लिखने के लिए कलम उठाते-उठाते कोई न कोई पर्व हाथ जोड़कर खड़ा हो जाय ऐसी मेरी विभूति कहाँ ? तारों से कोई नाता-रिश्ता भी तो नहीं। न सही, लेकिन क्या शब्द की यह सृष्टि ही किसी दिन को पर्व या त्यौहार बनाने के लिए काफ़ी नहीं ? जो मानव के पूर्ण कला-विकास के लिए लड़ रहा हो, उसे चन्द्रमा की कलाओं का खाता देखने की फ़ुर्सत कहाँ ?

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशन सत्कार

अञ्जलि :

सम्पादक : वाल्मीकि चौधरी

मूल्य : तीन रुपया।

देशबन्धु राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद के प्रति उनके सत्तरवें जन्म-दिवस पर यह 'अञ्जलि' समर्पित की गयी है। राजेन्द्र बाबू के सरल, सीधे और सहज ही आकर्षित करनेवाले व्यक्तित्व के कारण वे भारत के जन-मन के श्रद्धेय प्रतीक बन गये हैं। यह अञ्जलि सम्पूर्ण भारत की शुभ कामनाओं का एक 'अकिञ्चन प्रयास' मात्र है।

७० पृष्ठों की पुस्तिका में राजेन्द्र बाबू के जीवन से प्रेरणा पाकर राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त, श्री दिनकर एवं श्री भगवतीशरण वर्मा की कविताएँ हैं; संस्मरण हैं; उनके और विषय में भारत के गण्यमान्य व्यक्तियों की अपनी-अपनी धारणाएँ हैं। सारी पुस्तिका पढ़कर लगता है कि भारत के सभी महान् व्यक्तियों के लिए राजेन्द्र बाबू का व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक तथा महान है।

धर्मशर्माभ्युदय (धर्मनाथ चरित)

मूल संस्कृत : महाकवि हरिश्चन्द्र

हिन्दी रूपान्तर : पं० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य

प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

पृष्ठ संख्या २५६ ; मूल्य मूल्य ३)

जैन महाकाव्यों में धर्मशर्माभ्युदय का विशिष्ट स्थान है। इसमें १५वें तीर्थंकर श्री धर्मनाथजी का जीवन-चरित चित्रित है। प्रसङ्ग आदि और विषय भी सुन्दर शब्दों में आकर्षक ढंग से लिखे गये हैं। अन्तिम २१ वें सर्ग में धर्मशास्त्र का भी संक्षिप्त सार आ गया है। आरम्भ से अन्त तक अनुप्रास और उत्प्रेक्षाओं की विच्छित्ति से ग्रन्थ और भी सुन्दर हो गया है। जिन स्वाध्याय प्रेमियों ने इसे ध्यान से पढ़ा है, उन्हें यह कण्ठस्थ हो गया है। यह ग्रन्थ अभी तक संस्कृत मूल रूप में ही प्रकाशित था।

अनेक ग्रन्थों के सम्पादक और टीकाकार कवि-हृदय पण्डित पन्नालालजी ने इसका हिन्दी अनुवाद किया है। अनुवाद इतना सरस और सरल हुआ है कि पुस्तक बन्द करने की इच्छा नहीं होती। विद्वान टीकाकार ने पहले मूल का संशोधन किया, बाद में अनुवाद। इससे अनुवाद में और भी सुन्दरता और प्रामाणिकता आ गयी है। यदि अनुवाद के साथ मूल और जोड़ दिया जाता तो संस्कृत प्रेमी विद्वानों का भी उपकार होता।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रारम्भ में विद्वान् लेखक की महत्वपूर्ण प्रस्तावना है, जिसमें काव्य स्वरूप, काव्य के कारण, कवि, कवि के भेद, काव्य का प्रयोजन, काव्य के भेद, काव्य में रस, काव्य का प्रवाह और ग्रन्थ तथा ग्रन्थकार का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। बाद में अनुवाद प्रारम्भ होता है। पुस्तक की छपाई सफाई बहुत सुन्दर है और जिल्द नयनाभिराम है। प्रत्येक पुस्तकालय और स्वाध्याय-शाला में एक प्रति होना चाहिए।

ये घर ये लोग (स्टडी स्केच) : लेखक—जितेन्द्र। प्रकाशक : युगमन्दिर, उन्नाव। पृष्ठ संख्या : ९२, मूल्य डेढ़ रु०।

लेखक की उम्र इस समय २४ वर्ष की है और उसने जैसे भी मुद्रण जिस रूप में बन कर सुगम हो सका है, अपने लेखन का संग्रह प्रस्तुत किया है। आत्म-दोहन और निर्जीव दृश्यों में कल्पना की चित्ताकर्षक कूची का फेरना जब एक साथ होने की घड़ी उपस्थित हो जाती है, उस समय विचारों की शृंखला बाँधती कम है, खनखनाती अधिक है। यह खनखनाना प्रतिभाशाली लेखकों के उद्गम काल में एक विचित्र कार्य करता है और यह पुस्तक इसका नमूना है।

मुद्रण की दरिद्रता ने लेखक के साथ अधिक अन्याय किया है।

विधाता की भूल लेखक : ज्योतिन्द्रनाथ। प्रकाशक : राजेन्द्र प्रकाशन, पटना। पृष्ठ संख्या १७०। मूल्य २) रु०

हर क्षण धुरन्धर विद्वानों की रचनाएँ दिमाग पर सवार रहें, तो उससे एक विरस प्रतिक्रिया मन को उद्विग्न करती है ऐसा पाश्चात्य मनोविज्ञान का मत है। और कहानी साहित्य के पाठकों का बहुत कुछ मत इससे मेल खाता है। उस समय वे उस लेखक की ओर आमुख होते हैं जो हृदयतः सरल हो और लेखनी से एक भोले ग्रामीण का प्रतिनिधित्व करता हो। प्रस्तुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी संग्रह, जिसमें १५ कहानियाँ हैं, अपने बिहार प्रान्त के जीवन का उन्मेष मुखर करता है और अपने एक जीवट लेखक की साहित्य साधना को बड़े सुन्दर ढंग से परिचायक बनाता है। 'एक घटना' तथा 'तब और अब' रचनायें सुन्दर हैं।

कहानी (जनवरी १९५४ विशेषांक) : सम्पादक—श्रीपतराय, कहानी कार्यालय, ५, सरदार पटेल मार्ग, इलाहाबाद। पृष्ठ संख्या ४००। मूल्य : ढाई रुपये।

परम्परा जब मर्मस्पर्शी और नवीन मानदण्डों को सुचारू ढंग से कहे और सामने लाये, तो उसका अभिनन्दन हमारा पहिला काम होना चाहिए। कहानी साहित्य की परम्परा इस समय देशभर में किन संस्कारों और मूल्यों को अपने आँचल में बटोरे भविष्य की दिशा में बढ़ी जा रही है, उसका दिग्दर्शन किसी भी एक विशेषांक में निश्चय ही असाध्य कार्य है। लेकिन कहानी मासिक ने अपनी विवशताओं का समाधान करते हुए यह विशेषांक निकाल कर कहानी साहित्य और उसके पाठकों के साथ एक उपकार किया है। कहना होगा, यह विशेषांक इसके कहानी लेखकों से अधिक इसके सम्पादकों की उम्दा, अनुभवजन्य दावत देने के एक स्वप्न के अनुरूप ही बन गया है।

उद्यम : (गृहोद्योग विशेषांक)
सम्पादक : बि० बा० बाडेगाँवकर
स्थान : धर्मपेठ, नागपुर।

बड़े-बड़े कारखानों में बननेवाली वस्तुओं से आज की सारी दुनिया ही सजी हुई पड़ी है। लेकिन इन बड़े-बड़े कारखानों को चलानेवाले भी बड़े-बड़े लोग होते हैं। और भारत में बड़े आदमी हैं ही कितने? इसलिए भारत की आवश्यकताओं की साधारणतया पूर्ती गृह-उद्योगों से ही होती है। किन्तु इन गृह-उद्योगों पर वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन और उनका समुचित प्रचार नहीं हो रहा था। उद्यम ने यह स्तुत्य प्रयास किया है।

छोटी मोटी रोजमर्रा की आवश्यकताओं को कम ही पूँजी, स्थान व मेहनत से बनाया जा सकता है। पिपरमेंट, खिलौने का पिस्तौल, ईंट, गुड़िया बनाना आदि कितने ही उपयोगी लेखों द्वारा यह स्पष्ट हो सकता है। विशेषांक में एक बात खटकती है और वह है उसके संपादन के टेकनिकल स्वरूप की। पूरा 'ले आउट' बहुत ही ऊबड़-खाबड़ हुआ है। जिससे सुरुचि और व्यवस्था का प्रभाव नहीं पड़ता। अंक की उपयोगिता निर्विवाद है।

नयी कविता :
सम्पादक : डॉ० जगदीश गुप्त, रामस्वरूप चतुर्वेदी
राजकमल प्रकाशन, देहली।

हिन्दी साहित्य को भरापूरा बनाने के लिए हर सम्भव स्थान से अच्छे प्रयत्न चल रहे हैं। लेकिन उन प्रयत्नों में जब कोई सबल और सशक्त स्वर सुनने को मिलता है तो मन प्रफुल्लता से भर जाता है। 'नयी कविता' का स्वर जितना ही ऊँचा है उतना ही गहरा भी है। आज का कवि विषय की खोज में है, छन्द की खोज में है, जीवन दर्शन की खोज में है, और इन्हीं मार्गों पर भागता हुआ हिन्दी कवि 'नयी कविता' में दिखाई देता है। किन्तु इस सम्पूर्ण कोलाहल और भावों के आन्दोलन में 'व्यक्ति' के मन की बात ही कुछ अधिक है उसमें सामाजिक उत्तरदायित्व का रङ्ग अभी नहीं उभर पाया है। कहने का अर्थ केवल इतना ही है कि जितना प्रयत्न रूपगत वैचित्र्य लाने की ओर कवियों ने किया है उतना ही कलात्मक प्रयास (एक शब्द में—साधना) विषय के लिए नहीं किया गया है। रूप और विषय के सम्पूर्ण कलात्मक समन्वय के शक्ति स्वर सुनना अभी भी शेष है।

'नयी कविता' द्वारा आज यह सम्भव हो गया है कि वैद्य की भाँति 'नाड़ी' पर हाथ रखकर हिन्दी कविता की वस्तुस्थिति को समझा जा सके।

यह प्रयत्न सफल हो।

नवनीत : सम्पादक : रतनलाल जोशी,
स्थान : ३४१, तारदेव, बम्बई—७

ज़िन्दगी की भाग दौड़ में कुछ क्षण ठहर कर ज्ञान-विज्ञान से परिचय पाने की क्षुधा बढ़ती जा रही है। इस क्षुधा की तृप्ति आज के जीवन की आवश्यकता बन गई है। 'नवनीत' हिन्दी जगत में इसी अभाव को तीन वर्षों से परिपूरित कर रहा है। दीपावली के अवसर पर लगभग डेढ़ सौ पृष्ठों का विशेषांक निकला है। छपाई-सफाई सुन्दर; नयनाभिराम।

विभिन्न विषयों पर लेख हैं—कहानियाँ हैं, सूक्तियाँ हैं, चुटकुले हैं। रवी बाबू, आनन्द कुमारा स्वामी राधाकृष्णन्, मौलाना आज़ाद, राजागोपालाचारी, खलीलाजब्रान आदि की संकलित रचनाएँ हैं। निराला एवं पन्त के गीत हैं। विश्व एवं प्रान्तीय साहित्य के छोटे अनुवाद हैं। यशपाल का सुन्दर संस्मरण-लेख है। इस प्रकार सम्पूर्ण अंक में विषयों और अच्छे-अच्छे लेखकों का अच्छा संकलन हुआ है। अंक पठनीय एवं संग्रहणीय है।

आज (दैनिक) का अर्थ उद्योग व्यापार विशेषांक :
पृष्ठ २४, मूल्य : चार आना, स्थान : बनारस।

'आज' हिन्दी के श्रेष्ठतम दैनिकों में से है और उसे काफी सहजता से अंग्रेजी पत्रों के समक्ष रखा जा सकता है। विश्व की उन्नत भाषाओं के दैनिकों में आये दिन गम्भीर विषयों पर 'सप्लिमेण्ट्स' निकलते रहते हैं। 'आज' ने इस स्वस्थ, गम्भीर और विकास में सहायक परम्परा को स्वीकार किया है। उसी के परिणाम स्वरूप अर्थ-उद्योग-व्यापार-विशेषांक प्रकाशित हुआ है। पं० नेहरू, टी० टी० कृष्णामाचारी, श्रीमन्नारायण अग्रवाल, विनोबा भावे, लक्ष्मी शंकरजी व्यास आदि के विभिन्न लेख हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैकलियॅड ऐराड कंपनी लिमिटेड

मैकलियॅड हाउस - ३ नेताजी सुभाष रोड - कलकत्ता

जूट मिल्स ● रेलवेज़ ● चाय के बाग

बीमा कंपनी

●

प्रमुख एजेन्ट्स :

लॉ यूनियन एण्ड रॉक इन्श्योरेंस कं० लि०
दि ब्रिटिश इण्डिया जनरल इन्श्योरेंस कं० लि०
लंडन एण्ड लंकाशायर इन्श्योरेंस कं० लि०

इन्जिनियरिंग

●

मैनेजिंग एजेन्ट्स :

ब्रिटेनिया इन्जिनियरिंग एण्ड कं० लि० टीटागढ़

उत्पादक :

जूट मिल और चाय की मशीनें,
रेल्वे इंजिनियरिंग का सामान,
मशीन के औज़ार,
'कोल-फिक्स' विटपेन एमलसन फॉर रोड ड्रेसिंग

●

वितरक :

'लेजली' बॉलबेयरिंग,
जूट स्पिंडल्स,
"होटफिक्स" होट एसफाल्ट
रोड ड्रेसिंग मेटिरियल

एजेण्ट्स

अमेरिकन प्रेसिडेण्ट्स लाइन्स लि०
गिलमेन एण्ड कं० लि०

◆

एजेंसियाँ

जोसेफ हिवर्ट एंड कं० लि०	---	जूट साइज़िंग मशीन्स
ईबोयडेल एंड कं० लि०	---	'मुईर-हिल' डम्पर्स, लोड्स और शंटिंग
सी० एम० विल्सन एंड कं० लि०	---	ट्रेक्टर्स, ग्रोइल एंजिन्स
बन्टन्स (मशल वर्ग) कं० लि०	---	ब्राइट एम० एस० शेफ्टिंग
कोपर पेगलर एंड कं० लि०	---	मलेरिया व पाले विरोधी दवाइयों को उड़ान की मशीन।
ट्रूमीटर कं० लि०	---	औद्योगिक कार्यों के लिए ग्रौटोमेटिक काउंटिंग और नापने के औजार।
टी—लाइन पेपर	---	टी चेस्टर पेपर लाइनिंग।
डबल्यू० जी० बेगनॉल, लि०	---	भाप व डिज़ेल के लोकोमोटिव्स

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Regd. No. C 3610

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुद्रक तथा प्रकाशक श्री मुनीश्वरलाल द्वारा भारतीय ज्ञानपीठ काशी के लिए विनानी प्रिण्टर्स लिमिटेड
३८, स्ट्राण्ड रोड कलकत्ता—१ में मुद्रित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानोदय

न जागरण का सजग सजीव
सरस परिचायक मासिक

वर्ष ६ : अंक ८ : फरवरी १९५५
८) वार्षिक : ।।।) प्रति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(स्थापित १८४८)

रामदत्त रामकिशन दास

(आयात विभाग)

६, ब्राबोर्न रोड, कलकत्ता

कागज, हार्ड बोर्ड, लेबोरेटरी ग्लासवेयर, सैनिटरी-वेयर, हेवी केमिकल्स,

आदि के व्यापरी

प्रतिनिधि

पश्चिमी बंगाल, बिहार, आसाम और उड़ीसा के लिये

सर्व श्री स्पाइसर्स (एक्सपोर्ट) लि०

१६, न्यू ब्रिज रोड स्ट्रीट, लण्डन

हर प्रकार के कागज और लेखन सामग्री के लिए

फ़ोन : बैंक-३१६५ (३ लाइन)

दी पोद्दार मिल्स लिमिटेड बम्बई

प्रस्तुतकारक

- ग्रे ड्रिल्स
- धोतियाँ
- शर्टिंग्स
- लाँग क्लाथ

ल्योपार्ड आदि

अपनी विशेषता, मज़बूती और टिकाऊपन के लिए सुप्रसिद्ध

मैनेजिंग एजेन्ट्स

पोद्दार सन्स लिमिटेड

'पोद्दार चेम्बर्स'

१६ पारसी बाज़ार ट्रीट

फ़ोर्ट, बम्बई

टेलिग्राम :

PODARGIRNI

टेलिफ़ोन :

ऑफ़िस : २७०६५ (६ लाइनें)

मिल्स : ४०१४२६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानपीठ के तीन महत्वपूर्ण प्रकाशन

ज्ञान कोष

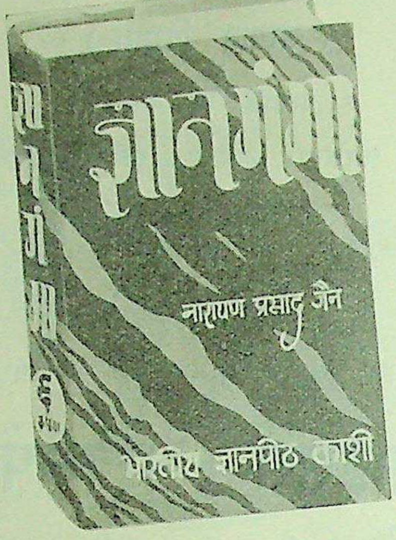

धर्मयुग, बम्बई—

"इस पुस्तक में मानवता के आदिज्ञान, प्रभात से आज तक के अगाध, कोरे अपरिमेय ज्ञान-सागर में से मंथन कर निकाला गया सारभूत अमृत संचित है। हिन्दी में आजतक एक ही ग्रन्थ में विश्वज्ञान की ऐसी सार्वकालिक जोतमाला के दर्शन नहीं हुए।"

प्रत्येक सत्य और ज्ञान के खोजी के पास इस पुस्तक का होना अनिवार्य है। प्रत्येक आदर्श पुस्तकालय इसके बिना पूर्ण नहीं कहा जा सकता। छपाई, सफ़ाई, गेटअप अत्यन्त कलात्मक, आकर्षक है। मूल्य छह रुपये

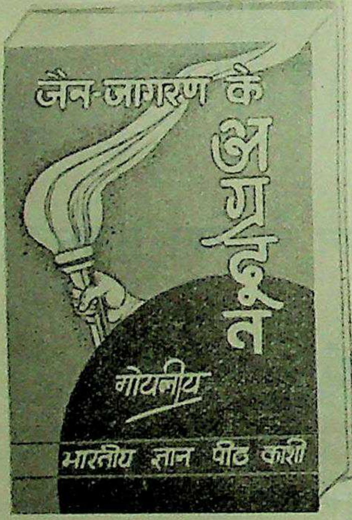

जीवनपरिचय

"१९०१ से १९५२ तक के २९ दिवंगत और ८ वयोवृद्ध प्रमुख दिगम्बर जैन कार्यकर्त्ताओं के संस्मरण एवं सचित्र परिचय।" मूल्य पाँच रुपये

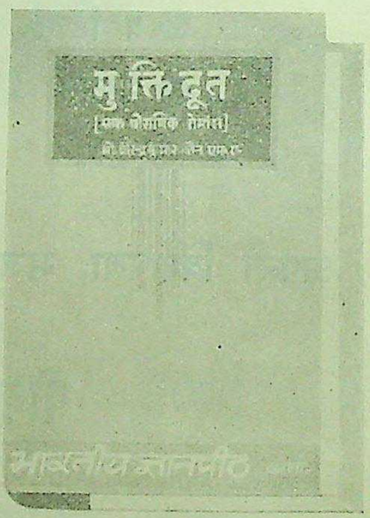

उपन्यास

आल इण्डिया रेडियो, देहली—

"प्रेमचन्द्र के उपन्यासों की भाँति मूक्तिदूत में दार्शनिक सूक्तियाँ भरी पड़ी हैं।" मूल्य पाँच रुपये

● भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर प्रदेशीय सरकार

द्वारा पुरस्कृत

कुछ महत्वपूर्ण प्रकाशन

—श्री अनूप शर्मा

नवजीवन, लखनऊ : "काव्य बड़ा सरस और हृदय-ग्राही बन गया है।"

भारत, इलाहाबाद : "लेखक का समन्वयी दृष्टिकोण बड़ा स्तुत्य है। उनका वाणी-वैभव प्रतिस्पर्धा की वस्तु है।"

❀ **मूल्य छह रुपये**

साहित्य-सन्देश : "डा० वर्मा के एकांकी 'कला' के जड़े हुए नगीने होते हैं और उनमें उदार उदात्त भावनाओं की जगमगाहट होती है। प्रत्येक एकांकी ऊँची मानवीय भावनाओं से ओत-प्रोत है पर सभी की पृष्ठभूमि भारतीय संस्कृति है।"

मूल्य ढाई रुपये

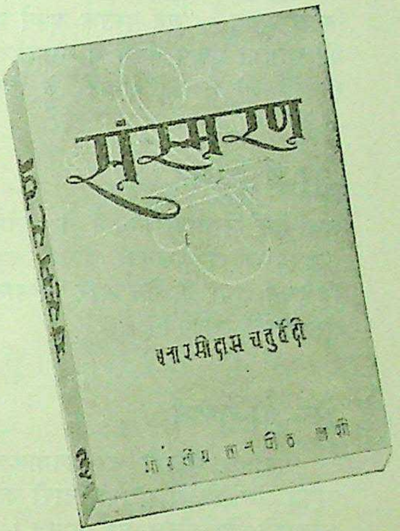

जीवन साहित्य : "प्रत्येक संस्मरण में मानो उस व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन उभर आया है। शैली इतनी सरस और प्राणवान है कि एक बार पुस्तक हाथ में लेने पर फिर छोड़ने का जी नहीं चाहता। प्रत्येक व्यक्ति के अन्तर को चतुर्वेदीजी ने जैसे खोलकर रख दिया है और इस खूबी से खोला है कि मन में आनन्द का उद्रेक ही नहीं होता, मानवता की ज्योति भी जागती है।"

मूल्य तीन रुपये

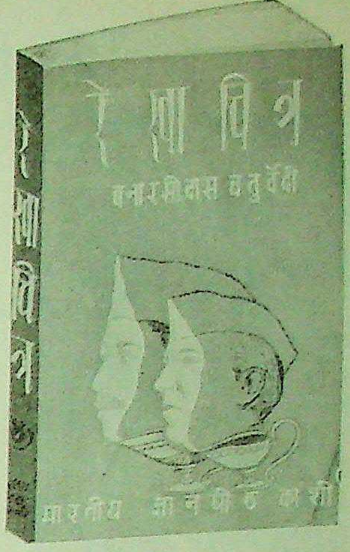

—श्री बनारसीदास चतुर्वेदी

लोकवाणी : "पुस्तक उपन्यास की तरह आकर्षक, कहानी की तरह रोचक, जीवन-परिचय की तरह प्रेरणादायक और नीति-ग्रन्थ की तरह मार्गदर्शक है। छपाई-सफ़ाई ज्ञानपीठ के स्तर के अनुरूप है।"

❀ **मूल्य चार रुपये**

सन्मार्ग, कलकत्ता : "इन रचनाओं में बच्चनजी के हृदय से पाठक मिलेंगे और उनके अन्तर्द्वन्द्व, उनकी अनुभूति, उनकी कल्पना, उनके सौन्दर्य-प्रेम का परिचय पर्याप्त और निकट से मिलेगा।"

मूल्य चार रुपये

भारतीय ज्ञानपीठ,
दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्दू साहित्य का प्रामाणिक प्रकाशन

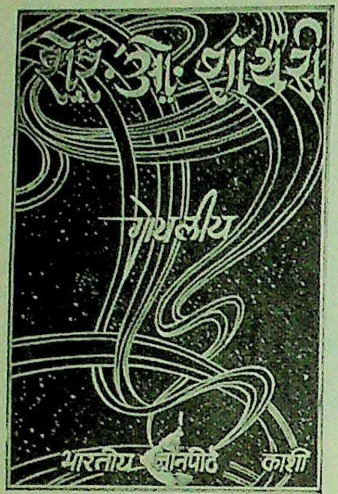

शेर-ओ-शायरी

—— श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय

प्राचीन और वर्तमान कवियों में सर्वप्रधान लोकप्रिय ३१ कलाकारों के मर्मस्पर्शी पद्यों का संकलन और उर्दू कविता की गति-विधि का आलोचनात्मक परिचय।

मूल्य आठ रुपये।

शेर-ओ-सुख़न भाग १

——श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय

आरम्भ से सन् १९०० ई. तक की उर्दू शायरी का प्रामाणिक इतिहास, निष्पक्ष आलोचना और इस अवधि के प्रायः सभी शायरों की श्रेष्ठतम रचनाओं का संकलन और परिचय।

हिन्दी जगत्——"यह पुस्तक अपने ढंग की अकेली पुस्तक है। आठ सौ पृष्ठों की सामग्री एकत्र करने में गोयलीयजी ने काफी मेहनत की है।....थोड़े में गोयलीयजी ने उर्दू शायरी के विकास का बहुत सुन्दर परिचय दिया है।"

मूल्य आठ रुपये।

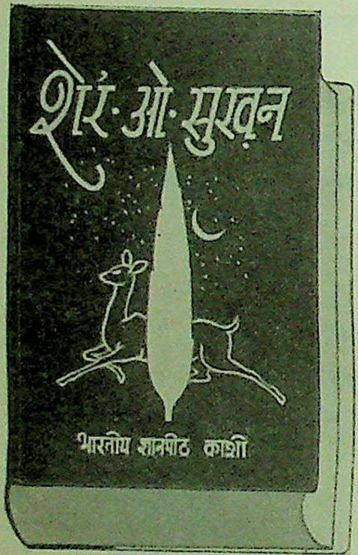

शेर-ओ-सुख़न भाग २

अर्वाचीन उस्ताद शायरों के वर्तमान युगीन ख्याति प्राप्त प्रतिष्ठित, योग्य उत्तराधिकारी लखनवी शायरों का जीवन-परिचय एवं कलाम। साहित्यिक विवेचन तथा प्राचीन और वर्तमान शायरी की गतिविधि और परिवर्तन का तुलनात्मक अध्ययन।

शेर-ओ-सुख़न भाग ३

पुरातन शायरी का कायाकल्प और लोकोपयोगी भावों का समावेश, पवित्र प्रेम की आराधना, नारी का सम्मान और १९०१ से १९५३ तक की घटनाओं का ग़ज़ल पर प्रभाव।

शेर-ओ-सुख़न भाग ४

प्राचीन एवं नवीन ग़ज़लगोई, भारत-विभाजन, स्वारज्य-प्राप्ति, राष्ट्र-पिता की शहादत आदि प्रेरणात्मक, लोकोपयोगी भावों का समावेश।

शेर-ओ-सुख़न भाग ५

अर्वाचीन और वर्तमान ग़ज़लगोई पर तुलनात्मक अध्ययन, हरजाई, बेवफ़ा, ज़ालिम माशूक के एवज़ नेक और पाक हबीब का तसव्वुर, रोने बिसूरने की प्रथा बन्द, रंजो-ग़म का मुसकान भरा स्वागत, निराशावाद का अन्त।

प्रत्येक भाग का मूल्य तीन रुपये।

हिंदी पाठकों को अत्यंत सुलभ

● भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस ५ ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हार्दिक शुभकामनाओं के साथ

कलिंग ट्यूब्स

लिमिटेड

पोस्ट चौदवार

जिला कटक

शीघ्र ही

गैल्वैनाइज्ड ट्यूब

निर्माण करने वाले हैं

आकार : ½" से २" तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारी राष्ट्रीय पंचवर्षीय योजना भारत की जनता के लिए भोजन, वस्त्र और रहने के स्थान की सुरक्षा के हेतु सिंचाई व बिजली के बड़े-बड़े बाँध, हॉस्पिटल, स्कूल, पुल, कंक्रीट की सड़क, कारखाने और मकानों आदि के निर्माण पर अत्यधिक जोर देती है। सुन्दर, मजबूत व टिकाऊ निर्माण के लिए डालमिया सीमेंट सर्वोत्कृष्ट है। योजना बनाने के पूर्व, डालमिया सीमेंट को याद रखिये।

अन्य डालमिया उत्पादन

- रि-इनफोर्स्ड सीमेंट कंक्रीट पाइप्स
- सेनिटरी वेअर
- इन्स्युलेटर्स
- एसिड जार्स
- रिफ्रेक्ट्रीज़
- साल्ट ग्लेज्ड स्टोनवेयर पाइप्स—भूमि-गत पाइप के लिए।

डालमिया सीमेंट (भारत) लिमिटेड

डालमियापुरम् (त्रिची)

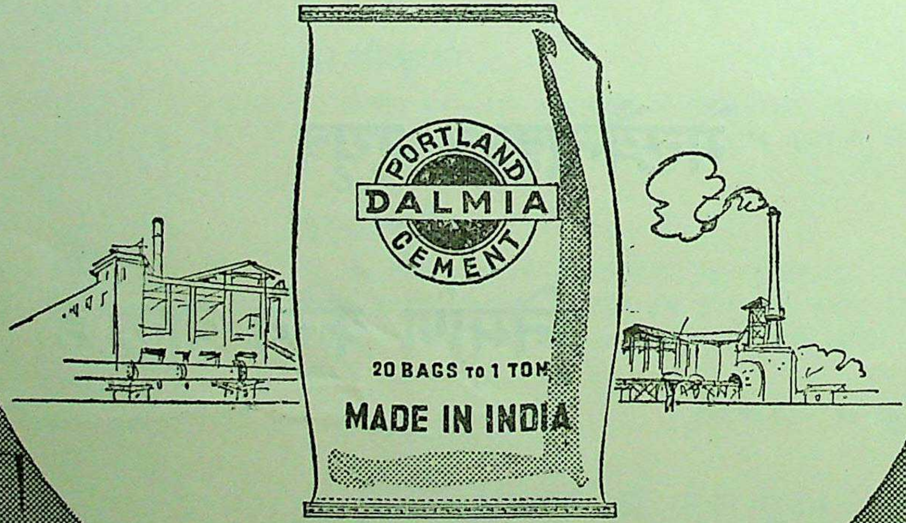

सिन्धिया हाउस, न्यू देहली-१

४-डी डलहौजी स्क्वेयर, कलकत्ता-१

Misc. 108

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वसुधैव कुटुम्बकम्

ज्ञानोदय

जीवन जागरण का सजग
सजीव सरस परिचायक

देश के नौ राज्यों द्वारा मान्यता प्राप्त

इस अंक में

आलोक——
१. साम्राज्य का मूल्य — महेन्द्रकुमार शास्त्री — ३

सांस्कृतिक निर्माण——
२. पलायन के दो पथ ... डा० रामानन्द तिवारी — ४
३. प्राची-प्रतीची ... रवीन्द्र - वेल्स — ६

औद्योगिक नीति निर्माण——
४. हमारे उद्योग-धंधों की भावी दिशा — जवाहरलाल नेहरू — १६

भावी समाज का निर्माण——
५. आनेवाली पीढ़ी के लिए — सत्यनारायण व्यास — १८

साहित्य और साहित्यकार——
६. प्रसाद की प्रतिभा ... भारतभूषण अग्रवाल — २४
७. बरजी में काहू की नाहिं रहूँ — कोमल कोठारी — ३४
८. आधुनिक साहित्यकार की उलझनें — प्रो० रामपूजन तिवारी — ४०

कला विषयक तथ्य——
९. प्रयोग का उपयोग ... केशव कोठारी — २७

संकेत कथा——
१०. राग एक तानें दो ... परशुराम नौटियाल — ११

हास्य कथा——
११. अरथी के तीन, तीन इकाइयाँ — लाडली मोहन — ३०

व्यंग कथा——
१२. सूअर के बच्चे ... प्रीस्ट्ले - गोस्वामी — ४३

एकांकी——
१३. एक इसराज तीन भटकती आत्माएँ — जनार्दन मुक्तिदूत — २०

कविताएँ——
१४. नीम के फूल ... माचवे, शमशेर, त्रिलोचन — १४
१५. दूर्वादल ... त्रिलोचन, शमशेर, त्रिपाठी — ३३
१६. बन पराग ... जितेन्द्र कुमार — ५१

ललित लोक परम्परा——
१७. गोआनी लोकनृत्य ... पूर्णेन्दु जोशी — ३१

मनोविज्ञान——
१८. आपकी बुद्धि की माप-जोख — जगदीश ओझा — ४६

धरती और आकाश——
१९. तारे गाते हैं, गंगा बहती है — हरिनारायण वर्मा — ३९
२०. विषधर का विषयन्त्र ... रामेश बेदी — ५२

स्तम्भ——
२१. इतिहास बन रहा है ... पूरनचन्द्र जोशी — ६३
२२. युग पथ दिशा ... राजा राम जैन — ६६
२३. प्रकाशन-सत्कार ... विभिन्न — ६८

वर्ष ६ : अंक ८ : फरवरी १९५५
८) वार्षिक : ।।।) प्रति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"बहुत सी आदिम मनोवृत्तियाँ ऐसी हैं जो ज़रा सी उत्तेजना पाते ही झनझना उठती हैं। साहित्य में उनकी भी खुशामद की गयी है, उनकी भी स्तुति की गयी है।

"किन्तु ये मनोवृत्तियाँ मनुष्यता के आधारभूत धर्म को स्वीकार नहीं करतीं। उनमें नव-सर्जन की प्रेरणा नहीं है, जगत को सुन्दर बनाने की उमंग नहीं है। उनमें वह शक्ति ही नहीं है जिससे मनुष्य प्रकृति पर विजय पाने का और उसे अपने अनुकूल बनाने का संकल्प पा सके।

"धूल में लोटना बहुत सहज है। परन्तु मनुष्य धूल में लोटना पसन्द नहीं करता। सभी आसान और अनायास साध्य बातें मनुष्य को प्रिय नहीं हैं। क्योंकि मनुष्य स्रष्टा है, धार्मिक वृत्ति वाला है और वह समूचे प्राकृतिक जगत को अनुकूल और मनोरम रूप में गढ़ लेने का व्रती है।

"इस कारण साहित्य का कर्म वही समझ सकता है जो साधना और तपस्या का मूल्य समझ सके।"

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के इन मार्मिक शब्दों का सत्य प्रत्यक्ष है।

मानव की दुर्बल मनोवृत्तियों और करुण परिस्थितियों को विषय और लक्ष्य बनाकर आज ढेरों साहित्य रचा जा रहा है और जो हाथोंहाथ प्रकाशित भी हो रहा है।

इसका एक ही उद्देश्य है : अर्थ-लाभ।

किन्तु इतिहास, और आगामी कल का ध्वस्त मानव स्वयं, क्या क्षमा कर देगा इस नीति को, इस वृत्ति को?

उत्तर एक ही है : नहीं, नहीं।

इसीलिए ज्ञानोदय का अलग ही मार्ग है। वह मार्ग है जिससे साहित्य और उसके द्वारा मानव के निर्माण में साधना, संयम और उत्साह की भावना पोषित हो, विकसित हो और फलवती होकर नवीन संस्कृति का बीज बन सके!

❁

प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ,
दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

सम्पादक

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'
जगदीश एम० ए०

व्यवस्थापक

कोमल कोठारी एम० ए०

कार्यालय

११ क्लाइव रो कलकत्ता

फ़ोन : बैंक ४३८६ तार : ज्ञानोदय

८) वार्षिक : ।।।) प्रति

सज्जाकार : कमल बोस

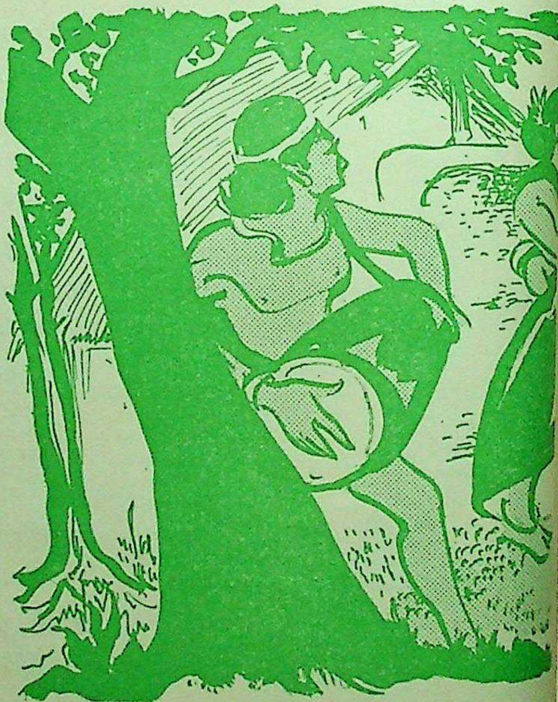

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साम्राज्य का मूल्य

महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य

महानिशा का मध्य काल था। किन्तु मगधपति बिम्बसार पुष्पशय्या पर छटपटा रहे थे। कारण, महाप्रभु महावीर ने स्पष्ट कह दिया था कि उनका नरक जाना निश्चित है। सहसा वह चौंके : "ऐं? यह विशाल साम्राज्य फिर कब काम आयेगा? दान द्वारा क्या नरक-यात्रा से रक्षा नहीं पायी जा सकती?" भीतर से अहं ने उत्तर दिया, "क्यों नहीं। फिर तुम तो महाप्रभु के अनन्य भक्त भी हो। उस भक्ति का इतना मूल्य भी नहीं क्या कि यह तुच्छ नरक-यात्रा रोक दी जाय!" और उष:किरण फूटते ही मगधराज भगवान् के निकट विपुलाचल पर पहुँचे। बोले, "प्रभु, मेरा साम्राज्य श्री-चरणों में अर्पित है, इसके मूल्य में मेरा नरक से उद्धार कीजिए।"

भगवान् महावीर ने देखा कि जिस अहं ने 'आत्मा ही अपने शुभ-अशुभ का धाता-भोक्ता है, और मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र है' इन सत्यों को इसके भीतर नहीं पैठने दिया वही इस समय दूसरी जिह्वा से उस पाप-पुंज साम्राज्य का मूल्य माँग रहा है जो इसका है ही नहीं और जिसे अपना मानने के कारण ही यह नरकगामी हो रहा है। और सान्त्वना देते हुए उन्होंने कहा, "श्रेणिक, अन्तर्द्रष्टा बनो, अहं को मारो। यह बहुरूपिया है, इसका नाटक समझो, इस पर भरोसा मत करो।" श्रेणिक बिम्बसार ने फिर कातर स्वर में कहा, "किन्तु प्रभु, मेरा उद्धार तो आप ही कर सकते हैं।" महाप्रभु ने देखा : वह समझ ही नहीं पा रहा है कि आत्मा स्वयं अपना प्रभु है, कोई दूसरा किसी का प्रभु नहीं। फिर बोले, "श्रेणिक, तुम्हें नरक से बचाने का एक ही उपाय है : कि अपने राज्य के पुण्य नामक श्रावक से एक सामायिक व्रत का फल प्राप्त करो।"

"यह कौन कठिन है" कहते हुए सम्राट् त्वरा में पाँव पैदल ही पुण्य के यहाँ जा पहुँचे। बड़ा स्वागत-सत्कार किया उसने। सम्राट् बोले, "श्रावक श्रेष्ठ, तुमसे याचना करने आया हूँ, निराश न करना।" पुण्य सकपकाया। सम्राट् ने सारी घटना बतायी। पुण्य ने धैर्यपूर्वक निवेदन किया, "महाराज, आपके लिए क्या अदेय हो सकता है, किन्तु. . . ." सम्राट् ने बात काटी, "मैं बदले में तुम्हें मुँहमाँगा दूँगा।"

पुण्य ने समझाया, "महाराज, सामायिक तो 'समता भाव' का नाम है। राग-द्वेष की विषमता से मुक्ति ही सामायिक है। वह क्या लेने-देने की वस्तु है! वह तो स्वयं सिद्ध करने की वस्तु है। और यह तब ही सिद्ध होगी जब मन से अहं को निकाल देंगे। जिस साम्राज्य के बल पर आप सामायिक खरीदना चाहते हैं वही अहं तो सामायिक का शत्रु है। महाराज, यह साम्राज्य क्या आपका है?"

दूसरे दिन सम्राट् फिर महाप्रभु के पास पहुँचे। प्रभु ने पूछा, "श्रेणिक, सामायिक खरीद लाये?" सम्राट् ने निवेदन किया, "भगवन्, खरीद तो न सका, पर पा लिया। मेरी दृष्टि खुल गयी है। मुझे आत्म-स्वरूप प्राप्त हो गया।" और मगधपति भगवान् के चरणों में झुके हुए आत्मलीन हो रहे थे। उन्होंने साम्राज्य का मल्य समझ लिया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पलायन, पराजित और निराश जीवन का आश्वासन है। वह एक प्रकार की आत्म-प्रवंचना है जिसका ध्येय जीवन की निष्फलता को भुलाने के अतिरिक्त कुछ नहीं। पलायन के उपकरणों में मदिरा की तन्मयता तो हो सकती है, किन्तु सचेतन जीवन की सार्थकता सम्भव नहीं।

डॉ० रामानन्द तिवारी, डी० फ़िल्०

एक वृद्ध, एक रोगी और एक मृतक मनुष्य को देखकर राजकुमार सिद्धार्थ जीवन की नियति के विषय में व्यग्र हो उठे। यदि काल और रोग से क्रमशः क्षीण होकर मृत्यु में ही मनुष्य जीवन का अन्त होता है तो जीवन में क्या सुख है? सर्व दुःखम्—सब कुछ दुःख है। राजकुमार सिद्धार्थ को राजप्रासाद के वैभव और विलास-पूर्ण वातावरण में दुःख का दर्शन दुर्लभ था। कदाचित् दुर्लभ होने के कारण ही संयोगवश प्राप्त होने पर उनके मन पर उसका इतना प्रभाव हुआ कि वे एक रात को राजभवन के सुख-विलास, पत्नी के प्रेम, पुत्र के मोह और माता-पिता के प्यार का परित्याग कर सत्य की खोज में संन्यास लेकर चल पड़े।

जिस दुःख का दूर दर्शन सिद्धार्थ के विराग का कारण बना वह संसार में सर्वत्र सुलभ है। सुलभ और सामान्य होने के कारण वह साधारण जन को विस्मित अथवा विचलित नहीं करता। किन्तु भारतीय विचारकों की असाधारण संवेदन-शीलता के कारण संसार का दुःख सदा से उनके मर्म को स्पर्श करता रहा है। लौकिक सुखों की असारता भी उन्हें सदा स्पष्ट रही। स्पष्ट दुःखों के साथ प्रतीयमान सुखों का दुःखमय परिणाम उन्हें सर्वदा आकुल करता रहा। अतः सिद्धार्थ की भाँति ही भारत के पूर्व ऋषि-मुनि सदा इस व्यापक दुःख से मानव की मुक्ति के साधन खोजते रहे। लौकिक सुख-साधनों के संवर्धन में उन्हें आत्मा के स्थायी सन्तोष का मार्ग न दिखाई दिया। धन, सन्तान, स्वर्ग आदि सब सीमित सुख के साधन हैं, उनसे मनुष्य की आत्मा की तृप्ति नहीं हो सकती।

छान्दोग्य उपनिषद् में ऋषि सनत्कुमार ने नारद से कहा 'जो नित्य और अनन्त है वही सुख है, अल्प में सुख नहीं है' (७-२३-१)। कठ उपनिषद में यम के प्रलोभनों के प्रति निरीहता दिखाते हुए नचिकेता ने कहा कि 'ये समस्त लौकिक भोग अनिश्चित और अस्थायी हैं, ये केवल इन्द्रियों के तेज को जीर्ण करते हैं (१-१-२६); मनुष्य धन आदि से तृप्त नहीं हो सकता' (१-१-२७) और आग्रहपूर्वक यम से मृत्यु के रहस्य तथा आत्मतत्व की जिज्ञासा की। बृहदारण्यक उपनिषद् के अनुसार 'आत्मकामी पूर्व मुनि सब कुछ त्यागकर चले जाते थे। वे सोचते थे कि हमें सन्तान से क्या करना है?' (४-४-२२)। महर्षि याज्ञवल्क्य जब आत्मसाधन के लिए संन्यास लेकर अपनी सम्पत्ति अपनी दोनों पत्नियों में बाँटकर वन को जाने लगे तो उनकी ब्रह्मवादिनी भार्या मैत्रेयी ने पूछा कि 'भगवान्! यदि धन से सम्पन्न सारी पृथिवी मेरी ही हो जाय तो क्या मैं उससे अमृतत्व प्राप्त कर सकती हूँ?' महर्षि ने उत्तर दिया कि 'धन से अमृतत्व की आशा नहीं की जा सकती।' लोक-वैभव की इस असारता से असन्तुष्ट होकर मैत्रेयी ने संन्यास के लिए प्रस्तुत पति से अमृतत्व का साधन पूछा (बृह० उप० ४-५-३)। लौकिक सुख-वैभवों की भाँति स्वर्ग भी सनातन नहीं है। स्वर्ग हमारे सीमित पुण्य का सीमित फल है। पुण्यों द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति करने वाले, पुण्य के क्षीण होने पर पुनः मर्त्यलोक में लौट आते हैं। (गीता, ९-२१)।

अतः लौकिक और स्वर्गिक सुखों की अनित्यता से असन्तुष्ट तथा जीवन की दुःखपूर्णता से व्यथित भारतीय विचारक आदि-काल से ही जीवन की अपूर्णताओं से परे किसी पूर्ण और परम आनन्दमय तत्व की खोज करते आये हैं। उन्हें यह सदा स्पष्ट रहा कि यह परम और नित्य आनन्द बाह्य-जगत् के उपकरणों में नहीं मिल सकता। लोक के समस्त पदार्थ अनित्य और अन्ततः दुःख के कारण हैं। पूर्ण और नित्य आनन्द आत्मा में ही प्राप्य है। यह आत्मतत्व ही जीवन का परमार्थ है। यह आत्मनिष्ठ दर्शन ही भारतीय विचारकों के अनुसन्धान का पर्यवसान तथा भारतीय जीवन का धर्म बना। लौकिक सुख-वैभव के प्रति अनुराग अथवा सचेष्टता इस आत्मतत्व की साधना में बाधक है, अतः लोक से वीतराग होकर ही मनुष्य परमार्थ का पथिक हो सकता है।

यह आत्मनिष्ठा और वीतराग भाव मुनियों और ज्ञानियों का ही अधिकार नहीं रहे, समस्त जनता के जीवन के दृष्टिकोण और गतिविधि को उन्होंने प्रभावित किया। सम्राटों का वैराग्य साधारण जनता की अध्यात्म-प्रवण प्रवृत्ति का ही एक उत्कृष्ट प्रतीक है। अध्यात्म के प्रति राजाओं का अनुराग जनता की निष्ठा का सूचक है। छान्दोग्य उपनिषद् में राजा जानश्रुति की कथा से अध्यात्म तत्व के प्रति सर्व-वैभव सम्पन्न राजाओं की उत्कट तत्वसाधना का परिचय मिलता है। राजा जानश्रुति ने गाड़ी के नीचे निवास करनेवाले उदासीन रैक्व मुनि से गोधन, रत्नहार, रथ और कन्या की भेंट देकर बड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुरोध पूर्वक तत्व-जिज्ञासा का निवेदन किया (छां० उप० ४-१)। सूर्यवंशी सम्राट् रघु ने विश्वजित यज्ञ करके अपना सर्वस्व दान कर दिया (रघुवंश-४-८६)। जब महर्षि वरतन्तु के शिष्य कौत्स मुनि गुरु-दक्षिणा के निमित्त अर्थयाचना के उद्देश्य से उनके पास पहुँचे तो उन्होंने सुवर्णपात्र के अभाव में एक मिट्टी के पात्र में अर्घ्य लेकर मुनि का स्वागत किया (रघुवंश-५-२)। अयोध्या के राजा जनक अपने वैराग्य के कारण विदेह नाम से विख्यात थे। राजा भर्तृहरि ने काम की निस्सारता से प्रभावित होकर 'धिक् तां च, तं च, मदनं च, इमां च, मां च' कहकर संन्यास ले लिया। कपिलवस्तु के संन्यासी राजकुमार का धर्म भारत की ही नहीं समस्त पूर्व एशिया की निष्ठा बना। कलिंग-विजय के ऐश्वर्य और दर्प में भी करुणा से अभिभूत सम्राट् अशोक का हृदय वैराग्य की ओर अभिमुख हुआ। सिंहासन पर बैठकर भी वे जनक की भाँति वैभव से विरक्त और धर्म में अनुरक्त रहे। शासन से अधिक धर्म के शान्तिमय प्रचार में उनका अनुराग अधिक रहा। उत्तर काल के इतिहास में भी ऐसे वीतराग राजाओं का अभाव नहीं है। आज भी वृन्दावन की गलियों में तथा ऋषिकेश आदि पर्वतीय तीर्थों के आश्रमों में ऐश्वर्य से विरक्त होकर अध्यात्म की साधना करने वाले अनेक महात्मा मिल सकते हैं।

भारत की यह अध्यात्म-निष्ठा अपने मूल रूप में लोक-जीवन की विषमताओं से पलायन का पथ नहीं थी। पलायन किसी भी स्वतन्त्र और सम्पन्न देश का धर्म नहीं बन सकता। पलायन स्वार्थ का मार्ग है, परमार्थ का नहीं। करुणा और लोकहित की जिस मर्मभावना से भारतीय साधना का अन्तर ओत-प्रोत है वह पलायन में सम्भव नहीं। पलायन, पराजित और निराश जीवन का आश्वासन है। वह एक प्रकार की आत्म-प्रवंचना है जिसका ध्येय जीवन की निष्फलता को भुलाने के अतिरिक्त कुछ नहीं। पलायन के उपकरणों में मदिरा की तन्मयता तो हो सकती है, किन्तु सचेतन जीवन की सार्थकता सम्भव नहीं। जीवन 'में' पलायन का लक्ष्य तो आत्मरक्षा है, किन्तु जीवन 'से' पलायन का लक्ष्य जीवन की शून्यता और निरर्थकता को एक निरुद्देश्य गति तथा एक निष्प्रयोजन जीवन-विधि की भ्रान्ति के आवरण से ढँक देना मात्र है। पलायन मृग मरीचिका का अनुसरण है जिसमें खोज की व्यग्रता तो होती है किन्तु साधना की पद-पद पर सन्तोषदायिनी प्रगति सम्भव नहीं। भारतीय अध्यात्म-साधना के मूल स्वरूप में आत्मिक प्रगति के जिन अनुभव-सिद्ध सोपानों का विधान किया गया है वे उसकी सार्थकता प्रमाणित करते हैं तथा आत्मानुभव की निष्ठा और स्पष्टता के साथ जिस शान्ति और आनन्दमय परमार्थ की प्रतिष्ठा की गयी है, उसी में मानव-जीवन की पूर्णता और परिणति है।

किन्तु भारतीय अध्यात्म-साधना के विधान में एक भूल हुई जिसका प्रायश्चित पिछली आठ शताब्दियों का अश्रुमय इतिहास कर चुका है। इस भूल के फलस्वरूप ही अध्यात्म की उदात्त साधना भी पलायन के पथ में भ्रष्ट होने लगी। पूर्वजों ने जीवन की चरम सार्थकता के रूप में जिस साधन-विधि का विधान किया था, वह उत्तरकाल में एक पराजित जाति का आत्म-सन्तोष मात्र रह गयी। इस विकृति का ही परिणाम यह हुआ कि आत्मानुभव की असन्दिग्ध प्रमिति और आचार की महत्ता के निकष पर प्रतिष्ठित उदात्त अध्यात्म-साधना भी आडम्बर और आत्मप्रवंचन का साधन बन सकी। जिस वैराग्य की भूमिका पर अध्यात्म की प्रतिष्ठा हुई वही अन्त में हमारी राजनीतिक उदासीनता का कारण बनकर आध्यात्मिक परमार्थ और लौकिक हित दोनों का घातक सिद्ध हुआ।

शान्ति और समृद्धि के निर्द्वन्द्व वातावरण में युगों तक भारतीय साधना का विकास अध्यात्म की अनिरुद्ध दिशा में होता रहा। दार्शनिक और धार्मिक सम्प्रदायों के अन्तर्द्वन्द्व ने अन्ततः अध्यात्म का ही पथ प्रशस्त किया। तत्व-विवेचन अध्यात्म की साधना-सरणि का ही आलोक बना। तत्वज्ञान और विवेक योग और उपासना के ही उपकारक सिद्ध हुए। इस एकाग्र अध्यात्म-साधना की योगनिद्रा प्रथम बार सिकन्दर के आक्रमण से भंग हुई। सिकन्दर के सेनापति सिल्यूकस को परास्त कर भारत से विदेशी आतंक को मिटाने वाले चन्द्रगुप्त मौर्य के पराक्रम के पीछे, अध्यात्म धर्म की नहीं, चाणक्य की जागरूक राजनीति की प्रेरणा थी। चाणक्य की राजनीति भारतीय अध्यात्म और धर्म के एकस्वर संगीत में एक विसंवादी स्वर है। अर्थशास्त्र के आरम्भ में ही चाणक्य ने चतुर्वर्ग मे अर्थ की प्रधानता का प्रतिपादन किया है—"धर्मार्थकाममोक्षाणां अर्थ एव प्रधानः तदाश्रयत्वात् इतरेषाम्"। जो धर्म और मोक्ष की साधना भारतीय अध्यात्म का सर्वस्व है वह अर्थ के सुदृढ़ आश्रय के बिना बालू की दीवार है। धन-वैभव, सामाजिक तथा सैनिक संगठन आदि लौकिक श्रेय के सम्पादन और संरक्षण के सभी साधन अर्थ के अन्तर्गत हैं।

अध्यात्म की इस अर्थाश्रयता को चाणक्य के पूर्व अन्य किसी भारतीय विचारक ने स्पष्टता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

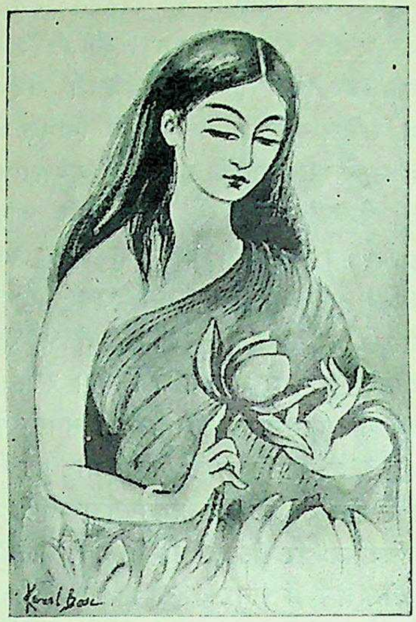

भारतीय आदर्शों का चरम रूप सावित्री जिसने भावनाओं को मान देते राजकुल त्याग कर तप और संयम का जीवन अपनाया और अपने सत्य के बल पर जो पति के जीव को स्वयं यम की पाशों से मुक्त करा धरती पर वापिस लायी

तथा दृढ़ता के साथ प्रतिपादित नहीं किया। चाणक्य और चन्द्रगुप्त का संयोग भारतीय इतिहास में एक अपवाद मात्र बन कर रह गया। वैराग्य पर आश्रित अध्यात्म में युगों से उसके लौकिक आधारों के सचेष्ट संरक्षण का समन्वय न रहने के कारण चाणक्य की नीति एक स्थायी परम्परा न बन सकी। अध्यात्म की योगनिद्रा में युगों से सोई एक उदासीन जाति को न चाणक्य की नीति जाग्रत कर सकी और न चन्द्रगुप्त का पराक्रम उसके राष्ट्रीय उत्थान की प्रेरणा बन सका। यह एक ऐतिहासिक दुर्भाग्य की बात है कि चन्द्रगुप्त के उत्तराधिकारी अशोक के शासनकाल में कोई विदेशी आक्रमण नहीं हुआ और कलिंग-विजय की करुणा से अभिभूत अशोक के आत्म-प्रतिशोध की छाया में उसी एकांगी अध्यात्म और अहिंसा को भारत में पूर्णतः प्रतिष्ठित तथा पूर्व एशिया के देशों में प्रचारित होने का अवसर मिला। यद्यपि चन्द्रगुप्त के डेढ़ सौ वर्ष बाद मीनान्दर को पराजित कर उसके द्वारा जीते हुए पंजाब से लेकर अवध तक के प्रदेश पर पुनः भारतीय प्रभुत्व स्थापित कर पुष्यमित्र ने इस बात का परिचय दिया कि मगध के वीरों की धमनियों में अभी चन्द्रगुप्त का रक्त प्रवाहित हो रहा था। किन्तु चाणक्य की राष्ट्रीय-हित-विधायिनी प्रतिभा लुप्त हो चुकी थी। एकांगी अध्यात्म और अहिंसा की कर्दम-भूमि में चाणक्य का शक्ति-बीज पल्लवित न हो सका। अशोक के बाद भारत और पूर्व एशिया अध्यात्म और अहिंसा की निश्चिन्त साधना की तन्द्रा में लीन शताब्दियों तक अधमुँदी पलकों से एशिया के क्षितिज पर बनते-मिटते भाग्य-चित्रों को निश्चेष्ट भाव से देखते रहे। स्कन्दगुप्त, हर्ष, संग्रामसिंह, प्रताप, शिवाजी आदि स्वाधीनता के सजग प्रहरियों के पराक्रम-पूर्ण किन्तु असफल प्रयत्न कोई आकस्मिक संयोग नहीं, एक लोक-विमुख राष्ट्र की ऐहिक उदासीनता पर आश्रित अध्यात्म के निरन्तर परिणाम थे। शत्रु के स्वल्प पद-मान के प्रलोभन पर देश के हित की बलि देनेवाले देश-द्रोहियों की प्रतारणायें उन असफलताओं की सहकारी कारण तथा उस उदासीन अध्यात्म की अनिवार्य फल थी। अस्तु, भारत और पूर्व एशिया का उत्तर-कालीन इतिहास लौकिक श्रेय की उपेक्षा पर आश्रित एकांगी अध्यात्म का अनिवार्य प्रायश्चित था।

इसी ऐतिहासिक दुर्भाग्य का फल यह हुआ कि मूल-रूप में जीवन के परमार्थ के रूप में प्रतिष्ठित अध्यात्म एक पराजित जाति के पलायन का आश्रय बन गया। एकांगी अध्यात्म की तन्द्रा में लीन भारतीयों ने पश्चिम से निरन्तर उठने वाली आँधियों से आकुल होकर अपनी अधमुँदी पलकें मूँद लीं। जीवन के रणक्षेत्र में हारे हुओं को योग की साधना और भगवान की आराधना में आश्रय मिला। समस्त अनीतियों और अत्याचारों की सहिष्णुता एक पराजित जाति के लिए उदारता का गौरव बनी। दासों के लिए 'कोउ नृप होउ हमें का हानी' जीवन का महामन्त्र बना। चेतन मनुष्यों के श्रेय और सम्मान की रक्षा में असमर्थ धर्म-भीरुओं के लिए जड़मूर्तियों के शृंगार और सेवा ही अध्यात्म के सर्वस्व रह गये। देश के नैतिक उत्थान तथा सामाजिक निर्माण से उदासीन धर्मनिष्ठों के लिए तीर्थ, पर्व, व्रत, पूजा आदि मात्र के आडम्बर धर्म और आचार के अवलम्ब बने। भगवान की लीलायें असमर्थ मनुष्य के मनोरंजन का साधन बनीं। समस्त मानवीय दुर्बलताओं को धर्म के आडम्बर में प्रश्रय मिला। एकांगी अध्यात्म का परमार्थ एक पराजित जाति के पतन में प्रतिफलित हुआ।

यह पलायन का पूर्वीय पथ है। लौकिक श्रेय और शक्ति के साधनों पर सुरक्षित और सुदृढ़ रूप से प्रतिष्ठित न होनेवाला एकांगी अध्यात्म एक असफल और पराजित जाति का आश्वासन और आडम्बर मात्र शेष रह गया।

पश्चिम का इतिहास भिन्न है। ईसाई धर्म के प्रचार के पूर्व पश्चिम का इतिहास अन्धकार और बर्बरता का इतिहास है। भारत की भाँति पश्चिम की किसी प्राचीन सभ्यता की कोई जीवित परम्परा सुरक्षित नहीं है। मिश्र के पिरामिड एक सभ्यता के जड़ समाधि-चिह्न हैं। ईसाई धर्म की उदार मानवीय भावना तथा रुढ़िवादी ईश्वरीय निष्ठा वैराग्य पर आश्रित न होने के कारण पश्चिमीय जातियों के लोक-परक जीवन को आध्या-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्मिक प्रतिष्ठा प्रदान न कर सकी। पूर्व के अनेकविध धर्म-सम्प्रदाय भी धार्मिक अत्याचारों और धर्म-युद्धों का कारण नहीं बने। किन्तु पश्चिम के इतिहास में धर्म के नाम पर नृशंस अत्याचार और धार्मिक युद्ध मध्यकालीन संस्कृति के स्वर्णस्तम्भ हैं। राजनीतिक युद्धों में भी अशोक की करुणा और पृथ्वीराज की उदारता के उदाहरण पश्चिम में दुर्लभ हैं।

पश्चिमी जीवन और संस्कृति में अध्यात्म की प्रतिष्ठा न होने के कारण पश्चिमी देशों की दृष्टि सदा लोकमुखी रही। जो युद्ध और आक्रमण एकांगी अध्यात्म की उदासीनता के कारण भारत को कभी पर्य्याप्त रूप से सजग न कर सके, वे पश्चिम के देशों को लौकिक श्रेय की सुरक्षा और शक्ति के संगठन के लिए सचेष्ट बनाते रहे। लौकिक श्रेय के प्रति एक जागरूक दृष्टिकोण से ही पश्चिम को विज्ञान का वरदान मिला। विज्ञान के विकास से लौकिक श्रेय के साधनों की समृद्धि हुई। युद्ध और व्यापार दोनों की सामग्री विज्ञान के कोष से समान रूप से प्राप्त हुई। लौकिक श्रेय की समृद्धि और साधनों की अभिवृद्धि जीवन के दर्प और महत्वाकांक्षा को प्रेरणा देती है। यह जीवन का दर्प और महत्वाकांक्षा शासन और साम्राज्य की कामना बन जाते हैं। आध्यात्मिक आधार के कारण पूर्व एशिया में भारतीय संस्कृति का प्रचार साम्राज्यवाद का कारण न बन सका। लौकिक आधार पर आश्रित पश्चिम की महत्वाकांक्षा शीघ्र ही साम्राज्यवाद के रूप में प्रकट हुई। समृद्धि और साम्राज्य की कामना ने साहसिक अभियानों का रूप लिया। कोलम्बस को भारत की खोज करते हुए अमरीका मिल गया जो आरम्भ में योरोपीय जातियों का अधिवास बनकर आज विश्व में पश्चिमी संस्कृति की समृद्धि और शासनवृत्ति का प्रतीक बन रहा है। वास्को डि गामा अफ्रीका की आशान्तरीप से होता हुआ भारत ही आ पहुँचा। अन्य योरोपीय देशों के निवासी भी उसके पीछे अफ्रीका, भारत और पूर्वी एशिया की ओर आये। कुछ आरम्भिक युद्धों के बाद अन्धकारपूर्ण अफ्रीका तथा एकांगी अध्यात्म की उदासीनता के कारण पूर्व से ही पराजित और दुर्बल भारत में तथा अन्य पूर्वीय देशों में अँगरेजों और अन्य योरोपीय सत्ताओं का शासन स्थापित हो गया। शासन की शक्ति और व्यापार के बल से अफ्रीका और एशिया की लक्ष्मी पश्चिम के राजमार्गों पर नृत्य करने लगी। लौकिक समृद्धि और ऐश्वर्य में निमग्न पश्चिम अपने को लोक का सांस्कृतिक नेता मानने लगा।

मध्यपूर्व के मरुस्थल से उठनेवाली धूल भरी आँधियों के विपरीत पश्चिमी अभियानों की सामुद्रिक आँधियाँ शान्ति और समृद्धि की मॉनसून बनकर आईं। उनकी कूटनीति की धूमिल मेघमालायें भोले एशियावासियों को रजो-रुद्ध नयनों का अंजन बनीं। वैज्ञानिक चमत्कारों की विद्युल्लेखायें उनके लोक-विमुख मन को चमत्कृत करने लगीं। कुशल शासन की शान्ति और समृद्धि के मेघासार में उन्हें स्वर्ग की मरीचिका दिखाई देने लगी। पश्चिमी समृद्धि और सभ्यता के वरदानों को पाकर पूर्व अपने को कृतकृत्य मानने लगा। एकांगी अध्यात्म की तन्मय साधना द्वारा देश में उसकी प्रतिष्ठा और विदेशों में उसका प्रचार करने वाला लोकविमुख पूर्व पश्चिम के ऐहिक ऐश्वर्य के वरदानों में अपनी भूल का परिशोध-सा पाने लगा। एक पराजित जाति के आश्वासन और आडम्बर रूप में अवशिष्ट अध्यात्म की उदासीन उपासना में आन्तरिक शून्यता का एक अलक्षित उद्वेग छिपा हुआ था। पश्चिमी सभ्यता और विज्ञान की बाह्य विभूति मानों इस आन्तरिक शून्यता को भरने लगी। रेल, मोटर आदि से शिथिल जीवन को गति मिली; कोट, पैन्ट आदि से अर्धनग्न शरीर को गौरव मिला; क्रीम, पाउडर आदि में युगों से एक निष्प्राण धर्म की लीक पीटने वाली निर्यातित नारी को रूप-दर्प का साधन और मुक्ति का मार्ग मिला। जड़ देवताओं के तत्वशून्य मन्दिरों की उदासीन आरती और अर्थहीन अर्चना से ऊबे हुए लोगों को सिनेमा के सौन्दर्य और शृंगार में मनोरंजन का साधन मिला। दासता की सीमाओं में नीरस बने हुए गृह से उद्विग्न वयस्कों को रेस्तराँ के विनोदालाप में जीवन की शून्यता को पूर्ण करने का एक सुलभ साधन मिला।

यह पलायन का पश्चिमी पथ है। आन्तरिक जीवन के आध्यात्मिक तत्वों की असफल साधना के कारण उदासीन जाति का बाह्य उपकरणों और अनुरंजनों के प्रति आकर्षण

पश्चिमी लोकमुखता और पलायनवाद का चरम रूप
दारू की दूकान और बेचनेवाली कुमारी :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक प्रकार का पलायन मात्र है। यह जीवन के लौकिक पक्ष की भी पूर्णता का मार्ग नहीं है, वरन् आध्यात्मिक साधना में असफल और लौकिक श्रेय की ओर से उदासीन जीवन की उभयविध शून्यता को एक उन्मादक आकर्षण के अस्थिर आह्लाद से भर देने का प्रयास है। यह प्रयास एक उजड़े हुए उद्यान को कागज़ की फुलवारी से नन्दन बनाने के प्रयास के समान निष्फल और उपहासास्पद है। जीवन के कल्पतरु के सौरभ को चिरकाल से भूले हुए भारतीयों को इस प्रयास की निष्फलता तथा उपहासजनकता स्वाधीनता के अरुणोदय के बाद अब कुछ भासित हो रही है। इसका स्पष्ट रूप तो उन्हें भारतीय संस्कृति के सूर्योदय के उज्ज्वल आलोक में ही दिखाई दे सकेगा।

पश्चिम में लौकिक श्रेय और समृद्धि की साधना मूलत: पलायन के रूप में आरम्भ नहीं हुई, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि अध्यात्म की साधना भी पूर्व में मूलत: पलायन के रूप में आरम्भ नहीं हुई थी। दोनों का आरम्भ जीवन की साधना के दो मार्गों के रूप में हुआ। पूर्व ने अध्यात्म को ही जीवन का सर्वस्व मानकर उसी की एकान्त साधना को जीवन की कृतार्थता माना। उत्तर वैदिक काल की शान्तिपूर्ण परिस्थिति में इस अध्यात्म का उदय होने के कारण लौकिक श्रेय और शक्ति की सुदृढ़ भूमिका में इस अध्यात्म को प्रतिष्ठित करने की कल्पना अन्तर्मुखी भारतीय प्रतिभा न कर सकी। भारत में बौद्ध धर्म की सफलता और अशोक के शासनकाल में विदेशों में उसके स्वागतपूर्ण विस्तार ने इस मौलिक भारतीय भूल को एक स्थायी भ्रम का रूप दिया। आधुनिक काल में स्वाधीनता की सन्दिग्ध भूमिका में गांधीवाद ने एक बार फिर उसी भूल को देश के धर्म और राजनीति दोनों का आधार बनाया। अशोक के बाद निरन्तर होने वाले विदेशी आक्रमण और अत्याचार इस एकांगी अध्यात्म के कारण लोक से उदासीन देश को लौकिक श्रेय और शक्ति के संगठन के प्रति सजग न कर सके। आधुनिक काल में देश के विभाजन की भूमिका में होनेवाले अवर्णनीय अत्याचार भी इसकी समाधि को भंग न कर सके। भविष्य में कोई विनाशक युद्ध इस जानबूझ कर सोये हुए देश को योगनिद्रा से सजग कर सकेगा या नहीं यह इतिहास ही बता सकेगा।

किन्तु इतना स्पष्ट है कि लौकिक श्रेय और शक्ति की सुदृढ़ भूमि पर प्रतिष्ठित न होने के कारण एकांगी अध्यात्म एक पराजित जाति का आश्वासन और आडम्बर मात्र रह गया। लोक के रणक्षेत्र में पराजितों के लिए अध्यात्म पलायन का पथ बना।

पूर्व के दुर्भाग्यपूर्ण इतिहास के कारण पश्चिम की एकांगी लोक-साधना की अपूर्णता शीघ्र स्पष्ट न हो सकी। पूर्वीय देशों की दुर्बलता के कारण पश्चिमी आक्रमणकारियों की ऐहिक महत्वाकांक्षा साम्राज्यवाद के रूप में प्रतिफलित हुई। साम्राज्यवाद की सफलता ने पश्चिम की एकांगी लोक-साधना की अपूर्णता को समृद्धि और ऐश्वर्य के मद में आवृत रखा। इसी भव्य आवरण पर मुग्ध होकर पराजय से प्रमाणित एकांगी अध्यात्म की शून्यता को भरने के लिए पूर्व भी पश्चिमी सभ्यता के बाह्य उपकरणों को वेग से ग्रहण करने लगा। पश्चिम का सफल प्रतीत होने वाला लोक-साधन पूर्व के पलायन का दूसरा पथ बना। पूर्वीय आत्मा को इस मार्ग में पूर्णता की शान्ति और सन्तुष्टि नहीं मिल रही है, अत: यह स्पष्ट है कि यह एकांगी बहिर्मुख लोक-साधना भी केवल पलायन का मार्ग है। कदाचित् पूर्व ही दोनों एकांगी सत्यों की असत्यता का निकष सिद्ध होगा।

साम्राज्यवाद और उसके आश्रय पर पलने वाली एकांगी लौकिक श्रेय-साधना की असत्यता पश्चिम में भी धीरे-धीरे प्रकट हो रही है। विगत महायुद्धों के विध्वंस और पूर्वीय उपनिवेशों की क्रमिक स्वाधीनता से योरोपीय देशों में प्रस्फुटित होती हुई इस असत्यता को अमरीका का नवोदित साम्राज्यवाद अभी प्रश्रय और प्रलोभन दे रहा है। पूर्व में उदित होती हुई नवीन संस्कृति की ऊषा को पश्चिम के व्यथित नेत्र एक अस्फुट विस्मय से देख रहे हैं। पूर्व एशिया के पूर्णत: स्वाधीन होने पर अफ्रीका में पूर्व और पश्चिम की सांस्कृतिक परीक्षा का अन्तिम क्षेत्र रह जायगा। सैनिक शक्ति से साम्राज्यवाद स्थायी नहीं बनाया जा सकता। यह पूर्व एशिया का जागरण प्रमाणित कर रहा है। अन्त में सत्य की ही जय होती है यह भारतीय संस्कृति का स्वप्न नहीं, जीवन का एक असन्दिग्ध सत्य है। बल से विश्व का विनाश सम्भव है जैसा कि विज्ञान के नवीनतम आविष्कार दावा करते हैं, किन्तु बल से सचेतन मानव जाति का सदा के लिए दमन असम्भव है। अत: सभी देशों की स्वाधीनता भावी इतिहास का एक असन्दिग्ध सत्य है। अफ्रीका तथा अन्य

(शेषांश पृष्ठ ५९ पर)

जीवन और विकास का सर्व मान्य पथ : संयम-समन्वय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतीची

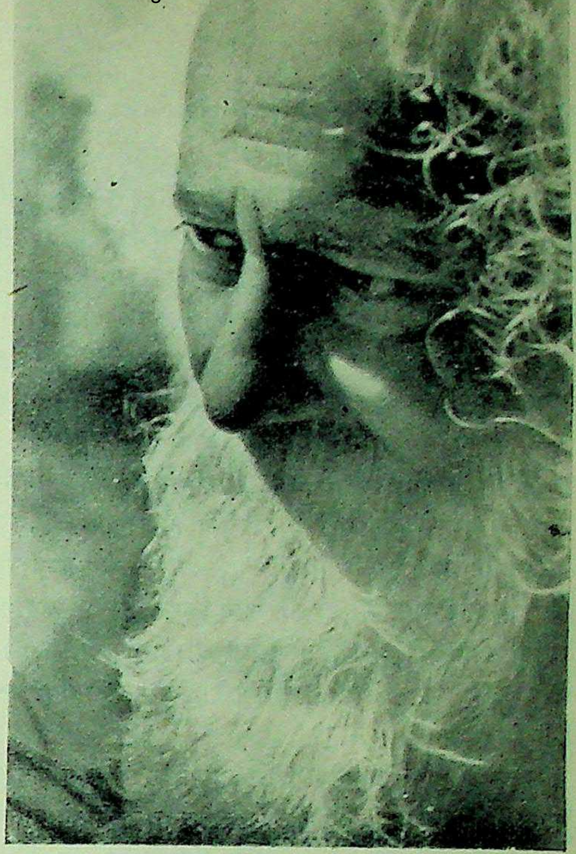

प्राची के इस युग के प्रतिनिधि

रवि बाबू और एच० जी० वेल्स एक दिन योरप की भूमि पर मिले। दोनों अपनी-अपनी संस्कृतियों के आलोक-स्तम्भ थे। किन्तु बड़े आश्चर्य की बात यह थी कि संस्कृतियों के संगम पर सब कुछ समान था : जाति, मानव, भाषा, संगीत! आलोक में आलोक मिलकर दिव्यालोक बन गया था जैसे!

* * * *

रवीन्द्रनाथ : आधुनिक सभ्यता का आग्रह दुनिया को एक-रूपता के साँचे में ढाल देने का है। कलकत्ता हो या बम्बई, हाँगकाँग हो या कोई और शहर सभी प्रायः एक जैसे ही हैं। वे जिस नक़ली चेहरे को पहने हुए हैं, वह किसी विशेष देश का परिचायक नहीं।

वेल्स : क्या आप ऐसा नहीं सोचते कि इस आग्रह के भीतर ही इस बात का प्रमाण छिपा हुआ है कि हम हाथ फैलाकर किसी नये विश्व-व्यापी मानव समाज को टटोल रहे हैं जो किसी देश-विशेष की सीमा में अपने को आबद्ध नहीं करना चाहता?

रवीन्द्रनाथ : हमारा व्यक्तिगत रूप-रंग, चेहरा-मोहरा सब बिल्कुल एक जैसा ही हो ऐसी तो कोई बात नहीं। मनुष्य का चित्त सार्वभौम हो किन्तु इसके लिए व्यक्तिगत विशेषता की बलि न दे दी जाय।

वेल्स : हम लोग तो आज क्रमशः ऐसी एक मानव सभ्यता की परिकल्पना करने लगे हैं जिसमें व्यक्ति अपनी सार्थकता लाभ करने का अधिकतर मौक़ा पा सकेगा। व्यक्ति जैसा बना हुआ है उसे देखते हुए तो हम यही अनुभव करते हैं कि आज तक सभ्यता के खण्डित होने से ही उसकी इतनी हानि हुई है। मनुष्य के विकास का स्वाभाविक पथ तो इन खण्डित अंशों का किसी विश्वव्यापी समष्टि के भीतर पर्यवसित होना ही है।

रवीन्द्रनाथ : मेरा विश्वास है कि मैत्री और सहयोग की भावना के द्वारा संसार की विविध सभ्यताओं को जोड़ रखने में ही मानव सभ्यता की एकता अधिक सुरक्षित रह सकती है। क्या आप ऐसा समझते हैं कि इस समय संसार में केवल एक ही सार्वभौम भाषा का आदर्श प्राप्त करने की ओर ही दुनिया का रुझान है?

वेल्स : पुराने समय में सुसंस्कृत विचारों वाले मनुष्यों की टुकड़ियाँ नयी नयी बोलियों को जन्म दिया करती थीं। आज तो जरूरत के दबाव से ही हमें सार्वजनीन भाषा को स्वीकार करना पड़ेगा।

रवीन्द्रनाथ : बिल्कुल सही है। आवागमन के द्रुततर साधन आज सार्वजनीन भाषा के बनने में मदद कर रहे हैं। लेकिन ऐसी भाषा राष्ट्रीय भाषाओं को देश-निकाला नहीं दे देगी। एक और बात बड़े मज़े की देखने को मिल रही है कि जहाँ एक तरफ़ मानव चित्त गाढ़तर एकता की ओर झुक रहा है, वहाँ साथ ही साथ राष्ट्रीय आत्म-चैतन्य और भी विकसित होकर राष्ट्रीय भाषाओं के निर्माण या पुनरुत्थान की ओर हमें बरबस लिये जा रहा है। क्या आप ऐसा नहीं सोचते कि अमेरिका में अंगरेज़ी भाषा, इंग्लैण्ड और अमेरिका के अनवरत संस्रव के होते हुए भी, निश्चित रूप से संशोधित और परिवर्तित होती रही है?

वेल्स : मैं नहीं समझता कि इस समय भी ऐसा हो रहा है। आज से ४०-५० बरस पहिले शायद ऐसा हुआ था लेकिन अब तो साहित्य में और आम बातचीत की भाषा में अंग्रेज़ी तथा अमेरिकन भाषाओं को विशिष्ट करके देख सकना और भी कठिन होता जा रहा है। बल्कि अन्य दिशाओं में इसका प्रभाव कहीं अधिक देखा जा सकता है : आज हम शब्दों को दूसरों के चित्त तक पहुँचाने वाले भौतिक साधनों को ही अधिक विस्तृत या पूर्णतर बनाने में लगे हुए हैं। अनुवाद का रास्ता एक खासा झमेला समझिए। अपनी कविताओं की ही बात लीजिए न? अनुवाद में क्या उनका बहुत-कुछ ऐश्वर्य खो नहीं जाता? अगर ऐसा कोई साधन होता जिससे आज सब लोगों के निकट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक ही साथ अपने काव्य का आवेदन पहुँचा सकते तो सचमुच ही कैसे आश्चर्य की बात होती।

रवीन्द्रनाथ : नाना देशों के संगीत का आभ्यन्तरिक आधार एक ही है, मगर इसका यह अर्थ तो नहीं होता कि तत्तत् देशों के संगीत को जीने का कोई अधिकार ही नहीं। मेरा ख़्याल है कि साहित्य के क्षेत्र में भी यही बात सच है।

वेल्स : आधुनिक संगीत एक देश से दूसरे देश में बिना अपना कुछ खोए ही आ रहा है—हाँ प्राच्य संगीत तक। दुनिया की सब चीज़ों में संगीत ही सबसे अधिक अन्तर्राष्ट्रीय है।

रवीन्द्रनाथ : देखिए, मैं बताऊँ आपको। मैंने लगभग ३०० गान रचे हैं किन्तु वे सब पश्चिम के लिए बन्द पड़े हैं क्योंकि उन्हें आपकी अपनी स्वरलिपि में ठीक-ठीक व्यक्त नहीं किया जा सकता। मगर मैं उन्हें योरोपीय स्वरलिपि में लिखवा भी डालूं तब भी वह आपके देशवासियों के लिए आस्वाद्य न हो सकेंगे।

वेल्स : पश्चिम के श्रोता धीरे-धीरे पूर्व का संगीत सुनने के आदी हो जायँगे।

रवीन्द्रनाथ : पूर्व की तानों और श्रुतियों के कुछ रूप जब कि हमें भीतर तक हिला देते हैं, पश्चिम के दरदी उन्हीं को सुनकर ज़रा हैरानी में पड़ जाते हैं। लेकिन जैसा आप कह रहे हैं, घनिष्ठतर परिचय से पश्चिम में भी पूर्व के संगीत का रस-ग्रहण सम्भव हो सकेगा।

वेल्स : शिल्प का रस-ग्रहण शायद भविष्य में आज से बिल्कुल और ही तरह का हो। शिल्प का माध्यम तब एक ही होगा और वह सबके निकट बोधगम्य होगा। रेडियो का उदाहरण ही लीजिए जो आज सारी दुनिया को ध्वनि के सूत्र से जोड़े हुए हैं। आविष्कारों का अन्त यहीं तो हो नहीं गया। भविष्य में अब ब्रॉडकास्टिंग के क्षेत्र में बोलियों और जातीय भाषाओं का कोलाहल शान्त हो जायगा और विज्ञान ने और भी नयी खोजें प्राप्त करली होंगी तब हम एक दूसरे के साथ किसी ऐसे माध्यम के ज़रिए बातचीत करेंगे जो अभी हमारी कल्पना के भी परे है।

रवीन्द्रनाथ : हमें इस युग के अनुरूप नये मानस तत्त्व की सृष्टि करनी होगी, सभ्यता की नयी आवश्यकताओं और परिस्थितियों के साथ हमें सामंजस्य बिठाना होगा।

वेल्स : सामंजस्य ? बेहद सामंजस्य की ज़रूरत होगी।

रवीन्द्रनाथ : क्या आपका ख़याल है कि इसके रास्ते कुछ बुनियादी जाति-विषयक अड़चनें हैं ?

वेल्स : जी नहीं। नित नयी जातियाँ जन्म ले रही हैं—अनवरत बदलती जा रही हैं। बहुत प्राचीन ऐतिहासिक युग से ही जातियों में परस्पर सम्मिश्रण चला आया है। भारतवर्ष तो जीवन्त उदाहरण है।

रवीन्द्रनाथ : जातिगत अभिमान की समस्या ज़रूर सामने आयेगी। क्या पश्चिम पूर्व को पूर्णतया स्वीकार कर सकता है? यदि यह पारस्परिक स्वागत सम्भव न हुआ तो मुझे उस देश के दुर्भाग्य पर तरस आयगा जो दूसरे की संस्कृति को ठुकरा देता है। एक दूसरे के अध्ययन से कोई हानि नहीं हो सकती, यद्यपि कुछ लेखकों का ख़्याल है कि पूर्व की मनीषा को पूर्व में ही क़ैद रहना चाहिए तभी सब ठीक रहेगा।

वेल्स : आप तो इसे नहीं मानते ; और मैं भी नहीं मानता।

रवीन्द्रनाथ : बड़े खेद की बात है कि कोई जाति या राष्ट्र यह दावा करे कि उस पर भगवान की विशेष कृपा है या किसी ऐसी आन्तरिक श्रेष्ठता की छाप है जिससे सृष्टि में और सब देश वंचित हैं।

वेल्स : पश्चिम के आधिपत्य की कहानी पिछले सौ बरसों से अधिक पुरानी नहीं है। लेवाण्टो की लड़ाई के पहले पश्चिम में तुर्कों का ही बोलबाला था। कोलम्बस की इतनी लम्बी यात्रा सिर्फ़ तुर्कों से बचने के लिए ही हुई थी। एलिज़ाबेथ के ज़माने के लेखक और उनके बाद के लेखक पूर्व का ऐश्वर्य तथा भौतिक सभ्यता का ऊँचा आदर्श देखकर चकित थे। पश्चिम की शान तो अभी कल की चीज़ है।

रवीन्द्रनाथ : उन्नीसवीं सदी के भौतिक विज्ञान ने ही कदाचित् पश्चिम में जातिगत श्रेष्ठता की यह भावना जगायी थी : जब पूर्व के देश भी विज्ञान की इस उन्नति को पचा लेंगे तो बाज़ी लौटेगी और संतुलन ठीक हो जा सकेगा।

वेल्स : आधुनिक विज्ञान वस्तुतः योरोपियन नहीं है। कुछ आकस्मिक संयोगों ने तथा विशेष परिस्थितियों ने पूर्व के देशों को उन नयी खोजों को करने से वंचित रखा, जिन्हें हर देश के मानवता-प्रेमियों ने प्राप्त किया था। एक समय था जब इन पूर्वी देशों ने भी अनेक ज्ञान-विज्ञानों की उद्भावना की थी, उन्हें परिणति दी थी ; पीछे पश्चिम ने उन्हीं की कृतियों को लेकर अधिक पूर्णता प्राप्त की और नाम किया। आज जापानी, चीनी तथा भारतीय वैज्ञानिकों के नाम वैज्ञानिक क्षेत्र में क्रमशः अधिकाधिक स्वागत लाभ कर रहे हैं।

रवीन्द्रनाथ : भारतवर्ष बड़ी प्रतिकूल परिस्थिति में रहा है।

वेल्स : यह हालत अब बदल रही है ; और इतना भी आप को विश्वास दिला दूँ कि हम अंगरेज़ लोग भी कुछ ख़ास अच्छी अवस्था में नहीं थे। औसत हिन्दुस्तानी से हमारी शिक्षा कम ख़राब नहीं थी—शायद और भी ख़राब थी।

रवीन्द्रनाथ : हमारी कठिनाई यह है कि पश्चिम की महान् सभ्यता के साथ हमारा संस्रव सहज-स्वाभाविक नहीं है। जापान ने पश्चिमी संस्कृति की आत्मा को कहीं अधिक आत्मसात् किया क्योंकि उसे अपने प्रयोजनके अनुसार ग्रहण करने न करनेकी स्वाधीनता थी।

वेल्स : बड़े अफ़सोस की बात होगी अगर पारस्परिक आदान-प्रदान के इतने सुन्दर सुयोग इसी तरह व्यर्थ चले जायँगे।

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राग एक तानें दो

० परशुराम नौटियाल ०

यह एक नयी और नये तरह की कहानी है। इसमें चार पात्र-पात्रियाँ हैं। राम और लीला भारतीय हैं, होशे और पावेला योरोपियन। होशे लीला से और राम पावेला से प्रेम करता है। दोनों की लीलाएँ दो समय और दो स्थानों की हैं। पर घटनाओं में अद्भुत साम्य है। इसीलिए दोनों पात्रियों और दोनों पात्रों को युक्त नामों से चलाया गया है। जहाँ व्यवहार में भिन्नता पड़ती है वहाँ अलग-अलग नाम रखे गये हैं।

लीलापावेला का सौन्दर्य प्रकृति की लीला का अत्यद्भुत चमत्कार था। रूप और यौवन की साम्राज्यों की पंक्ति में उसे यदि किसी उपेक्षित छोर पर भी धकेल दिया जाय तो किरण की चमक उसी छोर से दौड़ेगी और वायु में सुगन्ध उसी ओर से आयेगी। सौन्दर्य, यौवन और प्रकृति तीनों ने मिलकर जिस रूप को प्रकट करने की साधना की थी लीलापावेला उस साधना का जीवित फल था।

होशेराम से लीलापावेला का साक्षात्कार एक साहित्यगोष्ठि में हुआ था। लीलापावेला ने होशेराम से उस कविता को माँगा जिसे वह मंच पर से सुनाकर आया था। उसका दिल मरा हुआ था और मुख पर कालिख-सी पुती हुई थी, क्योंकि दर्शकों ने कवितापाठ के मध्य सराहना का एक भी शब्द नहीं उच्चारा था जब कि होशेराम अपने जीवन की सर्वश्रेष्ठ रचना पाठ कर रहा था और रचना के पद-पद पर उसकी प्रशंसा के वाक्य सुनना चाहता था। वह आज की गोष्ठी के प्रधान रचयिता का श्रेय लूटना चाहता था, किन्तु हुआ कुछ और ही। लीलापावेला का हाथ उसकी झुकी आँखों के सामने कौंध-सा गया। वह झिझका और रुक गया। वह बोली—"अपनी रचना की एक प्रति मुझे दे सकते हैं?"

होशेराम ने कविता उसके हाथों में रख दी।

"धन्यवाद" कहते हुए लीलापावेला को होशेराम ने देखा जैसे उसके सामने कोई मोती बिखेर रहा है। उसे लगा जैसे किसी अलौकिक माया की छलना ने उसके मृतवत् प्राणों में नयी ज्योति जगमगा दी है। दर्शकों और कवि समाज ने इस दृश्य को देखा और उनकी दृष्टि लीलापावेला पर जा टिकी। न जाने क्यों, कहाँ से, एक ताली बजी और सारा हॉल तालियों से गुंजायमान हो गया।

इसके बाद एक-दो और कई साहित्यकारों की रचनाएँ आईं और उन्हें अनसुनी किया जाने लगा। सुननेवाले क्या चाहते थे यह निर्णायकों की बुद्धि में न आ सका। कविगोष्ठि वितण्डा के दृश्य में परिणत होने लगी कि इसी समय लीलापावेला ने प्रस्ताव किया कि—"यदि निर्णायक महोदय आज्ञा दें तो मैं होशेराम महोदय से प्रार्थना करूँगी कि वे पुनः अपनी किसी रचना का पाठ करके हमें कृतज्ञ करेंगे।"

लीलापावेला का वक्तव्य समाप्त भी नहीं हुआ था कि श्रोताओं में से एक वृद्ध महोदय ने कहा—"मैं आप ही से प्रार्थना करता हूँ कि आप ही किसी रचना से हमें कृतार्थ करें।"

लीलापावेला ने विनम्रतापूर्वक अपने स्थान पर खड़े होकर उत्तर दिया—"आपके आह्वान के लिए धन्यवाद! किन्तु मैं श्राविका हूँ रचयित्री नहीं।" वाणी का माधुर्य श्रोताओं को कुतूहलोन्मत्त कर गया।

किन्तु लीलापावेला के कथन को किसी ने नहीं माना और श्रावकों में एक आह्वान ध्वनित होने लगा। सभी ओर से एक ही माँग आने लगी—"आप ही सुनाइये, आप ही सुनाइये, आप ही सुनाइये!"

निर्णायकों में से एक महोदय ने जाकर नम्रतापूर्वक लीलापावेला का हाथ थामा और उसे मंच पर ले आये।

लीलापावेला स्तब्ध थी, किन्तु स्थिर थी और उसने हाथ पर रखे कागज़ को खोला और माइक के पास खिसकी।

श्रावकों का चीत्कार बिजली की कड़क की भाँति एकाएक शान्त हो गया और गोष्ठी में एक स्फूर्ति की लहर-सी दौड़ पड़ी। सभी के मुख से एक सुनहरी आभा खिलखिलाने लगी—जैसे कड़कती दुपहरी में बर्फीली हवा का एक झोंका आ गया हो।

लीलापावेला ने पहला पद सुनाया।

तालियों की भीषण गर्जना ने इसका स्वागत किया।

यौवन और सौन्दर्य की मोहकता ने वाणी बनकर गोष्ठी के वातावरण को मादक बना दिया था और लीलापावेला से सुने जाने वाले सभी पदों पर तालियों की गड़गड़ाहट से तृप्ति का आस्वाद मिल रहा था। भूख से बिलखते प्राणियों को जैसे पेट भर कर सुस्वादु भोजन दिया जा रहा हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

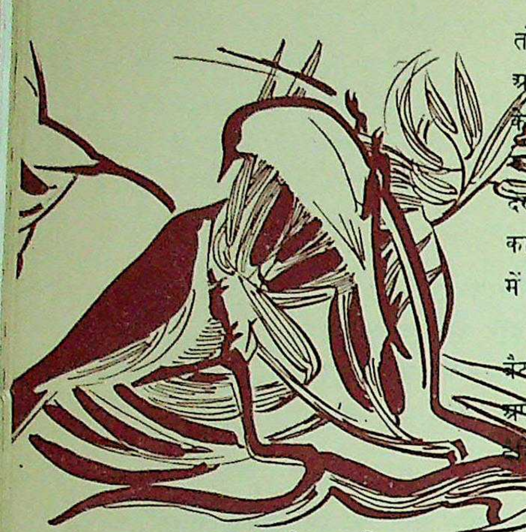

तो आज मालूम हुआ है कि श्रावक क्या चाहते हैं, क्या समझते हैं और क्या सुनते हैं। और सबसे बड़ा सत्य जिसका मुझे आज अनुभव हुआ है वह यह है कि कला को जीवित रूप देने के लिए सौन्दर्य की सहयोगिता और नारी कण्ठ की कितनी आवश्यकता है! नाटकीय रचनाओं की ओर रुचि और चित्रपटों की बढ़ती हुई माँग का भी यही कारण है, जिसे मैं आज देख पाया हूँ। देवी जी! आप विश्वास कीजिये आज मुझे लगा जैसे मेरी कला ने सौन्दर्य का वही रूप धारण कर लिया है जिसे देखने के लिए मेरी दृष्टि युग-युगान्तर से शून्याकाश में भटक रही थी। आज तो शून्य ने भी आकार धारण कर लिया है।"

लीलापाबेला इतनी देर बाद होशेराम के हाथों के बन्धन से मुक्त हुई और एक आसन पर बैठते हुए बोली—"आप मेरी धृष्टता की रक्षा कर रहे हैं, अपने ही अपराधी को उसके अपराध से मुक्त कर स्वयं नम्र हो रहे हैं, आपकी इस भावना के अजेय सौन्दर्य के आगे यह दैहिक सौन्दर्य और वाणी माधुर्य न जाने कितनी बार पराजित हो सकते हैं—आप वास्तव में महान् हैं।"

रचना की समाप्ति पर स्वस्ति की मंगल-गर्जना के बीच लीलापाबेला ने चुपके से होशेराम की ओर देखा और हाथ जोड़कर एक मंद स्मित के साथ अपने स्थान पर आ बैठी।

होशेराम जब घर पहुँचा तो उसे प्रतीत होता था वह सुरापान के मीठे सुरूर में है—जैसे आज वह कुछ कहना नहीं चाहता, कुछ सुनना नहीं चाहता और कुछ देखना नहीं चाहता, केवल सोचना चाहता है। वह कला और प्रकृति के अकल्पनीय उस प्रतीक को अपने रोम-रोम में रमा हुआ अनुभव कर रहा है। वह आज पार्थिव जगत् से बहुत दूर कल्पनालोक के अमृत-सर में विहार कर रहा है।

किसी की पदध्वनि से उसकी जाग्रत-निद्रा भंग हुई और उसने अपने सामने लीलापाबेला की उस मंजुल मंगल मूर्ति को पाया जिसे वह 'सत्यं-शिवं-सुन्दरं' का प्रतीक समझ रहा था।

लीलापाबेला ने हाथ जोड़कर विनीत स्वर में कहा—"परिस्थिति के चक्रान्त के कारण मुझ से जो अभद्रता हो गयी है उसके लिए क्षमा-याचना करने के लिए मुझे यहाँ तक आने का साहस हुआ है।"

कहते हुए वह होशेराम के पैरों पर गिर पड़ी "आप महान् कलाकार हैं! मुझे क्षमा दान दीजिये। मैं अपराधी हूँ, किन्तु यह अपराध मैंने अपनी रक्षा के लिए किया। क्षमा चाहती हूँ।'

होशेराम ने चेतना के पावन स्पर्श से जैसे चौंककर लीलापाबेला के दोनों हाथ पकड़ लिये और उसे उठाकर उसके दोनों स्कन्धों पर हाथ रखकर कहा—

"यह आप क्या कर रही हैं? आपने तो मेरी कविता का पाठ करके मुझे एक नया जीवन दिया है। सच समझिये अपनी कविता द्वारा मुझे यदि सच्चा सन्तोष और सुख मिला है तो वह केवल आज, और अब उस सन्तोष का भण्डार जीवन में कभी समाप्त न होगा। आप मुझ से क्षमा माँग रही हैं किन्तु वास्तव में मुझे ही आपका आभार मानना चाहिए कि आपने मेरी आँखों को प्रकाश की ज्योति से भर दिया है। मुझे

और लीलापाबेला ने पुनः होशेराम के पैर छुए। उठकर वह भक्ति भाव से गद्‌गद् एकटक उसे देखने लगी।

लज्जा के कारण होशेराम अपने को शिथिल अनुभव करने लगा। वह उठकर बाहर बरामदे में आ गया और दूर-दूर तक फैले हुए पर्वतों की घनी पंक्ति में किसी के सौहार्द का मूर्त-स्वरूप खोजने लगा।

पीछे से धीर गम्भीर मधुर ध्वनि में प्रश्न हुआ—"अब मैं जा सकती हूँ?"

घूमकर होशेराम ने देखा वह शान्त गम्भीर मूर्ति उत्तर की प्रतीक्षा लिये मन्द हास्य की मुद्रा में खड़ी है, जैसे वरदान की देवी स्वयं को ही वरस्वरूप प्रदान करके सदा के लिए अचल हो गई हो। वरदायी भिक्षा माँग रही हो।

"आप कहाँ रहती हैं?" होशेराम ने उसके प्रश्न के उत्तर में यह प्रश्न किया।

लीलापाबेला ने रेलिंग के पास जाकर अपनी उँगली से पहाड़ियों की तलहटी पर निर्मित उन कच्ची झोपड़ियों को दिखाया जो उद्वासितों के निमित्त निर्मित की गयी थीं और जिनमें रहनेवालों के भरण-पोषण का भार केन्द्रीय सरकार ने अपने ऊपर ले रखा था।

न जाने क्यों एक पागल भाव ने होशेराम को लीलापाबेला के निकटतम जाने को बाध्य कर दिया। लीलापाबेला यथावत् अविचलित रही।

"आप उद्वासित हैं? आपके यहाँ और कौन कौन हैं?" होशेराम ने पूछा।

उसकी आँखों में आँखें डालकर लीलापाबेला ने उसी स्मित के साथ उत्तर दिया—"मेरे बीमार माता-पिता हैं और तीन भाई दो बहनें हैं और मैं हूँ। हम लोग सभी काम करते हैं; मैं डाक्टर हूँ, मेरे दो बड़े भाई भी डाक्टर हैं, छोटे पढ़ते हैं।"

तनिक दूर हटकर होशेराम ने आँखें ऊपर उठाते हुए कहा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"डाक्टर और कवितामयी ? कैसा दुर्लभ संयोग है ! मैं भी डाक्टर हूँ।"

लीलापावेला को भी आश्चर्य हुआ। उसके भी नेत्र विस्फारित हुए बिना न रहे--"अच्छा !" वह बोली।

होशेराम चुप ही रहा, मुस्कुराहट उसके होठों पर थी। मन्द हास्य से लीलापावेला ने क्षण भर होशेराम पर दृष्टि टिकायी और तब बोली--"लेकिन मेरी डाक्टरी कवितामयी नहीं है। मैंने अपने जीवन में कभी कविता नहीं लिखी है। यह भी एक संयोग ही था कि आपकी कविता ने मुझे आज कवियित्री बना दिया--मेरे जीवन की यह एक आश्चर्यजनक घटना है। और यह भी एक आश्चर्यजनक संयोग है कि हम डाक्टरों के परिवार में आप भी एक डाक्टर ही आये हैं, वह भी कवितामय, कलामय और मङ्गलमय !"

"आप ऐसा सोचती हैं ?" होशेराम ने प्रश्न किया।

"मैं सोचने को बाध्य हुई हूँ--अपने जीवन के इस मुहूर्त तक, मेरी कभी आप जैसे अच्छे आदमी से मुलाकात नहीं हुई। सौन्दर्य के देवता कला के अवतार और........"

बीच में टोकते हुए होशेराम ने कहा--"बस-बस अब अधिक कुछ नहीं।" और उसने लीलापावेला के कन्धों को दबा दिया।

लीलापावेला ने भी प्रश्न किया--"क्या आप यहाँ अकेले हैं, और कोई नहीं है आपके साथ ?"

वह बोला--"कोई साथी नहीं मिलता इसलिए अकेला हूँ। दिन में रोगियों की सेवा करता हूँ और रात को कविता करता हूँ।"

लीलापावेला ने कहा--"समय का बहुत अच्छा उपयोग करते हैं आप ! काम का साथ है और कविता से बातचीत होती है।"

इस बात पर दोनों खिलखिला कर हँस पड़े।

हँसते हुए ही होशेराम ने उत्तर दिया--"कविता से बात का आपने बहुत अच्छा पद बिठाया है। वास्तव में मैं अपनी कविता द्वारा आज वर्षों से जिस अनागत और अनाहूत का आह्वान करता था..."

लीलापावेला ने वाक्य पूर्ण किया--"वह अभी तक नहीं आया किन्तु एक दिन उसे आना पड़ेगा।"

कुछ कहते हुए होशेराम केवल हँस पड़ा।

लीलापावेला होशेराम को दूसरे दिन की संध्या अपने परिवार के साथ बिताने का निमन्त्रण दे गयी और चली गयी।

होशेराम अब इस अकेले मकान में अपने को एकाकी नहीं पा रहा था। उसे अपने साथ किसी और के होने का भान हो रहा था। एक-एक करके वह अपने मकान के सभी कमरों में घूम आया, मानो अभ्यागत को सभी कमरों से, कमरों में रखी हुई वस्तुओं से, चित्रों से, पुस्तकों से, कपड़ों से--यहाँ तक कि रुपयों-पैसों और बर्तन आदि से भी परिचित करा आया हो; केवल परिचित ही नहीं, अपितु उन सब के संरक्षण का भार तक दे आया हो और निश्चिन्त होकर बाहर के बरामदे में बैठ गया।

* * * *

दूसरे दिन निश्चित समय पर होशेराम लीलापावेला के मकान पर गया और वहाँ के स्वागत-सत्कार के कारण वह इतना अधिक आकर्षित हुआ कि समय क्या है और रात कितनी हुई है इसका उसे ध्यान नहीं रहा।

लीलापावेला के प्रस्ताव पर होशेराम को रात वहीं काटनी पड़ी। अभ्यागत को किसी प्रकार का कष्ट न हो इसलिए लीलापावेला को एक प्रकार से सारी रात जागना ही पड़ा। लीला बीच-बीच में आकर खिड़की से होशे को सोया हुआ देख जाया करती थी। पावेला बीच-बीच में आकर राम को गुदगुदा जाया करती थी और शर्माकर तथा मुस्कुरा कर वापस लौट जाया करती थी।

लीला ने एक बार होशे को जगा हुआ पाया तो अत्यन्त शंकित होकर पूछ बैठी--"क्यों कोई कष्ट तो नहीं है ?"

होशे ने कहा--"नहीं मुझे कोई कष्ट नहीं, लेकिन आप क्यों जगी हैं ? क्या नींद नहीं आ रही है ?"

"नहीं आप हमारे अतिथि हैं और अतिथि का पूरा-पूरा खयाल रखना हमारे यहाँ का रिवाज है, इसीलिए नींद नहीं आ रही है।" लीला ने अत्यन्त स्थिरता से उत्तर दिया।

"सारी रात जागकर भी अतिथि का खयाल रखना पड़ता है ?" होशे ने आश्चर्यपूर्वक यह प्रश्न किया।

उसी दृढ़ता से लीला ने उत्तर दिया--"जी हाँ, सारी रात जाग कर भी।"

होशे ने पलंग पर बैठकर कहा--"अगर कोई हमें इस वक्त देख ले तो क्या होगा ?"

लीला तनिक हँसकर बोली--"मुझ से अधिक मेरे चरित्र पर शंका करनेवाला और दूसरा कोई नहीं। मुझे अपने पर यदि सन्देह नहीं होगा तो और किसी को भी नहीं होगा--आप

(शेषांश पृष्ठ ५६ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनर्जन्म का गीत

केदारनाथ सिंह

★

फिर से, हाँ फिर से
मैं जन्म ले रहा हूँ
अपनी पिछली यादों से
इन दुहरे गीत भरे-गंगा के कूलों पर,
दिन जैसे फूलों पर,
फिर से, हाँ फिर से,

यादें—जिनमें मैंने टूटी जल बंसी में—
ढलते दिन का हिलता छोर पकड़ना चाहा,
यादें—जिनमें मैंने मछुए की जालों में—
पानी की तेज सीटियाँ उलझानी चाहीं,
यादें—जिनमें मैंने गाया..गाया...गाया...
शाखों ने दुहराया,
यादें—जो अब मेरे घर की खिड़की हैं, ताखें हैं, दीवट हैं
उन सब से,
हाँ, आज उन्हीं सबसे
मैं जन्म ले रहा हूँ,
मैं जन्म ले रहा हूँ—
इस क्षण, इस बेला, इस पल
फिर से, हाँ फिर से।

ओ तुम ओ,
जिसको अब तक मैंने—
दूर तलेटी से आनेवाली एक लहर जाना है,
नींद-बनों से आया हल्का-सा गीतों का झोंका—अनुमाना है,
दूर, दूर, दूर....
कहीं किसी गाँव के जलते दिये को परेखा है,
पालों से टकराते सोने के गोल-गोल डैनों को देखा है,
तट के खेतों से आने वाली तानों के संग नावें मोड़ी हैं,
अक्सर जानी-अनजानी हाँकों के संग अपनी हाँकें जोड़ी हैं,
उन महुओं के बन में गेरू के लहरीले डोरे उलझाये हैं,
देर देर तक यों ही—
घाटों के रस्ते आँखों में तैराये हैं,
आज उन्हीं झोंकों से,
आज उन्हीं पालों से—
आज उन्हीं रस्तों से—
जन्म ले रहा हूँ,
मैं जन्म ले रहा हूँ
इस क्षण, इस बेला, इस पल
फिर से, हाँ फिर से।

ओ तुम,
जिसके ताड़ों के बन में मेरा भूला-सा दिन रोज डूब जाता है,
यह लो बंसी मेरी—
इसमें मन के सारे इन्द्रधनुष उलझे हैं,
यह लो जालें मेरी,
इनमें मेरे दिन की हाँक छटपटाती है
(शायद है तुमने भी उसे सुना हो आते-जाते, चलते-फिरते)
यह लो, यह नई फूल की टहनी,
हंसों की नई नई पाँखें—
यह नये जन्म से उमगी पिछली यादों की अंजलि मेरी,
संभव है इसमें दिख जायें—
उन आँखों के सागर की भावभरी ऊषाएँ,
यह लो, यह दर्पण—
यह नया जन्म अपना देता हूँ,
इस क्षण, इस बेला, इस पल
फिर से, हाँ फिर से
इन गंगा के कूलों पर
दिन जैसे फूलों पर
फिर से, हाँ फिर से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपहार

प्रभाकर माचवे

★

सुनते हैं आया वसन्त इस साल भी
काँच के कपाट बन्द करके हम बैठे हैं।
चिल्लाए, कर सके न बाँका एक बाल भी,
क्रान्ति-वीर चुपचाप अपने में ऐंठे हैं।
सुनते हैं, डालियों में बौर महका है, जी,
हम तो यहाँ 'ईवनिंग-इन-पैरिस' सूँघ लेते हैं।
मैंने भी चिट्ठी इस वसन्त पर है भेजी ;
चूड़ी के बाजे बहार गूँज लेते हैं।
सुनते हैं कोकिलाएँ गाती हैं इस मौसिम ;
कोठे पर चाँदनी में, साराम लेटे हैं।
सिनमा में देखे थे काग़ज़ के बड़े फूल ;
परवा क्या, हम अमीर नाना के बेटे हैं।
विंध्य में अनिन्द्य जली किंशुक की ज्वाला है :
जाड़ा है, पाला है, प्रयाग में निराला है !

प्रत्युपहार

शमशेर बहादुर सिंह

★

बहुत अच्छे आये, म्याँ, सॉनेट में ! व्यर्थ की
कविता को रक्खा बालाय-ताक़ : सार्थक,
जीवन का घिरा हुआ नक़ली आनन्द, लख।
प्राप्य तो है वह ! वह सुषमा किस अर्थ की
जिसके लिए कि हमें, अपने सामर्थ की
कोयलों, बौरों औ' किंशुकों की उत्पातक
कू-कू औ' मह-मह औ' तप-तप से ही नाहक़
होड़-सी लेनी पड़े ? अच्छी वर्ड्‌सवर्थ की
"कक्कू" ही उससे तो—पन्त का ही "मधुज्वाल"
और (जाने किसका वह) "बगरो बसन्त" है !
हाला-डोला-सा आ माधव फिर मधु ढाल,
पूछ रहा, कवियों में कौन कलावन्त है ?
औघड़ निराला कहीं बैठा चुप, व्याल-माल
पहने इस युग की : यह सुषमा अनन्त है !

पत्थर बोला

राममनोहर त्रिपाठी

★

पत्थर बोला यह गीत सुनाने वाले से
ये गीत सुनाने के पहले क्या सोचा है
बादल की भी जब उठी जवानी बरस गया
धरती की सारी का हो गया सुरूप नया
बिन बरसे कोसा गया हज़ार ज़बानों से
कब देख सके जग वाले उसकी दया-मया
तब एक दूब ने कहा अभागे बादल से
ये बूँद गिराने के पहले क्या सोचा है
काली रातों में जब रोई लौ की प्रतिमा
औ' बिना बुलाये हुए हजारों शलभ जमा
जल कर सोये दीपक के साथ सभी
अधजले पतंगे का खौला आँसू न थमा
तब तो वह बोला दीप बुझाने वाले से
ये दीप बुझाने के पहले क्या सोचा है
कोयल ने मीठे स्वर से अपनी बात कही
सहमत हो हामी भर बोला कोई बिरही
यह ऊँची बात चन्द्रमा का मन छू लेगी
विश्वास भरी बदली ने जिसकी बाँह गही
विरही बोला तब पागल कोयल से
यह कसक बताने के पहले क्या सोचा है
कोई भी नहीं सहारा पथ हैं अनजाने
कल तक तो आयेंगे कितने ही समझाने
सुनते हैं गीतों से पाषाण पिघलते हैं
पर अन्तर के घावों को दुनिया क्या जाने
तब गीतकार ने कहा बुलाकर ईश्वर से
यह हृदय बनाने के पहले क्या सोचा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

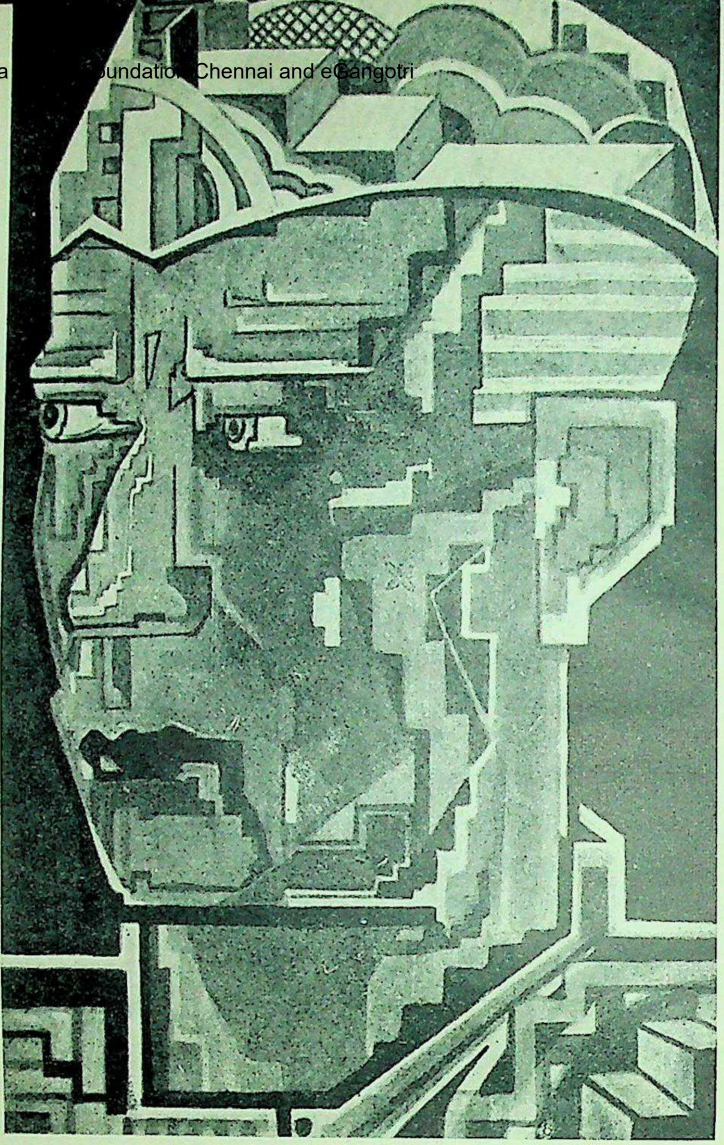

शिल्पी सुभो टैगोर के परम सौजन्य से

हमारे उद्योग-धन्धों की भावी दशा

जवाहरलाल नेहरू

साढ़े छह साल पहिले हमारी सरकार द्वारा औद्योगिक नीति पर दिये गये वक्तव्य में उद्योगों को कुछ खास दरजों में बाँटा गया था। इनमें पहिले दरजे में सुरक्षा सम्बन्धी उद्योग आते हैं जिन्हें पूरी तरह राज्य के एकाधिकार में रखा गया था। इन उद्योगों में हथियार, बारुदखाना वग़ैरा शामिल हैं।

इसके बाद छह या सात उद्योगों का एक दूसरा दरजा था जिन्हें राज्य की ज़िम्मेदारी में सौंपे जाने की बात थी। इनमें कोयला, लोहा और फ़ौलाद, हवाई और पानी के जहाज़ वग़ैरह का सामान, टेलीफ़ोन, बेतार के तार का सामान व रेडियो, और ज़मीन से निकलने वाले तेल शामिल थे। एक तरह राज्य का ही इन उद्योगों पर पूरा अधिकार होना है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि हमें निजी उद्योगों के सहयोग की ज़रूरत नहीं। राज्य अगर राष्ट्रीय हित में समझे तो निजी उद्योगों का सहयोग प्राप्त कर सकता है, मगर उसका इन्तज़ाम केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाये गये नियमों के मुताबिक होगा।

फिर उस वक्तव्य में मौजूदा उद्योगों का ज़िक्र किया गया है और कहा गया है कि राज्य को मौजूदा किसी भी उद्योग को अपने हाथ में लेने का हमेशा हक़ तो बेशक होगा, लेकिन उन्हें इस क़िस्म का भरोसा दिया गया है कि कम से कम १० साल तक इन छह नामों के नीचे आनेवाले किन्हीं उद्योगों को सरकार की ओर से नहीं लिया जायगा और कि १० साल के इस अरसे के बाद इस मामले पर फिर से ग़ौर किया जा सकता है।

इसके बाद इसमें पहिले बताये गये उद्योगों को छोड़कर और ख़ास बुनियादी उद्योगों के बारे में कहा गया है जिनमें राष्ट्रीय हित को नज़र में रखते हुए केन्द्रीय सरकार के आयोजन, इन्तज़ाम व देखभाल की ज़रूरत होगी। ऐसे उद्योगों की काफ़ी लम्बी फ़ेहरिस्त है। निजी उद्योगों के लिए बड़ा क्षेत्र पूरी तरह खुला पड़ा है। दूसरा क्षेत्र वह है जिसमें राज्य के नियन्त्रण और नियमों के अधीन निजी उद्योगों को छूट होगी। इसके अलावा कुछ उद्योग ऐसे हैं जिन्हें राज्य आम तौर पर अपने नीचे ले लेगा।

इस वक्तव्य का मक़सद एक ख़ास क़िस्म की व्यवस्था, समाजवादी व्यवस्था, का विकास करना था। और यह कोई पत्थर की लकीर की तरह न होकर, सभी चीज़ों को

मैं भारत को न सिर्फ़ अन्दर की तरफ़ से ही देखता हूँ बल्कि बाहर से भी। मैं उसे इतिहास की रोशनी में देखता हूँ। और अब तो मैंने भारत और तमाम दुनिया को एक नये दृष्टिकोण से देखना शुरू कर दिया है जो अणुशक्ति की देन है। इस ईजाद की वजह से दुनिया बड़ी अहम तबदीलियों के मोड़ पर खड़ी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मद्देनज़र रखते किसी खास मक़सद तक पहुँचाने का और हालात के मुताबिक़ बदलनेवाला विचार था। वही वक्तव्य आज भी हमारा आधार है।

कभी-कभी प्रजा समाजवादी सख्त एतराज़ करते हैं कि मैं समाजवाद या समाजवादी शब्द का प्रयोग करता हूँ। वे सोचते हैं कि उस पर उनका एक तरह का 'कॉपीराइट' है। यह बड़ी बेहूदा बात है। एक वक्त मैंने मार्क्स को पढ़ा था। मैं उससे बड़ा प्रभावित हुआ था, हालाँकि इतना नहीं कि मैं उसे भारत में काम करने के लिए पथ-प्रदर्शक मान लेता। मेरी समझ में नहीं आता कि ८० साल पहिले योरॅप की भूमिका में मार्क्स की लिखी हुई किताबें ८० साल बाद भारत के हालात पर भी लागू हों। अलबत्ता, मुमकिन है उस वक्त मार्क्स ने जो भारत के बारे में लिखा, वह उससे कहीं ढंग का और सही है जो आज के कम्युनिस्ट लिखते हैं। इसी तरह प्रजा समाजवादी मित्रों को ले लीजिए। वे इस तरह सोचते हैं कि भारत में अगर हरेक चीज़ का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया होता तो हमारी अधिकांश समस्याएँ सुलझ गयी होतीं। मैं यह कहे बग़ैर नहीं रह सकता कि उनके इस तरह के भाव विचारों की और निर्णय लेने की दिमाग़ी परिपक्वता प्रगट नहीं करते।

हमारे सामने बहुत से मसले हैं। लेकिन खास समस्या है मुल्क में उत्पादन बढ़ाना और सही तरीक़े से बँटवारा करना। बे-रोज़गार, अध-रोज़गार या कम रोज़गार में लगे हुए लोगों को धन पैदा करनेवाली इकाइयों में बदलना और फिर उस धन का सही-सही बँटवारा करना एक बहुत बड़ी समस्या है। इस सब का वितरण मौजूदा धन के राष्ट्रीयकरण या वर्तमान उद्योगों को खरीद लेने से ही कैसे हो सकता है? इस तरह वहाँ

यह सच है कि काम करने की भावना जिन्दगी में खास मौक़ों पर ही आती है। जिन्दगी में हर वक्त हम ग़ैर मामूली स्तर पर नहीं रहते। मगर यह भी सच है कि कुल मिलाकर देखा जाय तो स्वराज्य पाने के बाद हम ढीले पड़ गये और सुस्त भी।

रुपया बन्द होकर रह जाता है। नये उद्योगों और नयी योजनाओं के लिए हमारे पास रुपया नहीं बचता। मान लीजिए, जैसा हम चाहते भी हैं हमें फ़ौलाद की ज़रूरत है। तो बजाय इसके कि टाटा के कारखानों को अपने हाथ में लिया जाय, बेहतर यह होगा कि हम जितने चाहें नये कारखाने ही शुरू करदें।

और अगर टाटा से बिना मुआवज़ा चीज़ों को अपने अधिकार में कर लेने की बात सोचते हैं तो उससे व्यवहारिक राजनीति के मसले पैदा होंगे और वह हमारे संविधान और हमारी नीति के विरुद्ध होगी। बिना इन्क़लाब लाये यह सब नहीं कर सकते। अगर आप इन्क़लाब पैदा करना चाहते हैं तो हो सकता है वह ठीक भी है, मगर इससे आप तरक्क़ी में रुकावट डालते हैं, क्योंकि आपको इन्क़लाब लाने में लगना होगा।

आप कह सकते हैं मान लीजिए कि हम भारत को सोवियत संघ जैसा बनाना चाहते हैं इसलिए हमारे मुल्क में भी सोवियत संघ जैसा इन्क़लाब हो। इसका मतलब है इन्क़लाब से पहिले हुआ युद्ध भी हो। पहिले हम दुनिया में जंग पैदा करें और तब गृह-युद्ध करें, और ये सब इसलिए कि तब हम आगे बढ़ने की बात कर सकें। ये सब बड़ा बेहूदा लगता है। मैं न ही उसका (सोवियत संघ का) मुक़ाबला कर रहा हूँ और न ही मेरा मतलब उनकी नुक्ताचीनी करने से है। मैं तो इस बात की ओर इशारा कर रहा हूँ कि इस मुल्क में या उस मुल्क में जो हुआ उसे नक़ल करने की बात सोचना बेहद बेहूदा है। हमारे मुंल्क के लिए यह कहीं फ़ायदेमन्द है कि हम अपने तरीक़ों के मुताबिक़ तरक्क़ी करें अगर आप हिंसा और गड़बड़ी पैदा करनेवाले तरीक़े इस्तेमाल करते हैं तो इसका मतलब है कि पहिले आपका स्तर पहिले से भी नीचा चला जाता है, फिर आप नये सिरे से चलना शुरू करते हैं। यह ठीक नहीं।

इसलिए सबसे पहिले हमारा नज़रिया और रास्ता शान्तिपूर्ण हो। ये नज़रिया प्रजातान्त्रिक हो। प्रजातन्त्र से मेरा मतलब हर वह पुरानी रूढ़ि नहीं जो इसके साथ बँधी रही है। वह आपके रास्ते में आती हो तो उसमें जगह-ब-जगह या इधर-उधर तबदीली कर लें। लेकिन हमें खास तौर से एक शान्तिपूर्ण प्रजातान्त्रिक नज़रिये की ज़रूरत है। और इसलिए मैं कम्युनिस्टों के रास्ते को पूरी तरह अव्यवहारिक समझते हुए बिल्कुल नापसन्द करता हूँ। मेरा मतलब उनके उद्देश्य में समाज की जो आर्थिक व्यवस्था है उससे नहीं; उसे मैं मंजूर करने के लिए तय्यार हूँ।

(शेषांश पृष्ठ ६१ पर)

मैं चीन से प्रभावित हुआ हूँ। लेकिन चीन जाकर आने से मैं अपने देश से भी बहुत ज्यादा प्रभावित हुआ हूँ।

मैं दोनों का मुक़ाबिला नहीं कर रहा, वह नहीं किया जा सकता। मगर मेरा मतलब है कि चीन में जाकर हमने अपने आप में अपने मुल्क के बारे में कोई हीन भावना महसूस नहीं की।

मैं यह नहीं कहता कि मुझे अपने देश पर सन्तोष है, लेकिन मैं यहाँ की बहुत सी चीजों से सन्तुष्ट हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आने वाली पीढ़ी के लिए विशेष विवाह क़ानून ऐसा ज़बरदस्त सहारा होगा कि फिर भारत भी अन्य राष्ट्रों में तनकर खड़ा हो सकेगा और विवाहित जीवन की कोई भी ग्रन्थि जीवन को कड़वा या तीखा नहीं कर सकेगी। हाँ, यह आने वाली पीढ़ी को चाहिए कि अपने अधिकार को पहचाने और कर्त्तव्य के प्रति जागरूक रहे। यही भावी भारत के सुखी व सम्पन्न होने की शर्त है।

आनेवाली पीढ़ी के लिए

सत्यनारायण व्यास

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने जब विधवा-विवाह के समर्थन में आन्दोलन चलाया था और फिर उसे क़ानूनी स्वीकृति दिलाने की चेष्टाएँ कीं थीं तो बंगाल ही नहीं भारत-भर का रूढ़िवादी समाज उनका विरोधी हो गया था। इसी तरह सती-प्रथा को क़ानूनी रूप से बन्द करने पर भी हिन्दू समाज ने घोर विरोध किया था। बाल-विवाह सम्बन्धी क़ानून भी समाज द्वारा व्यावहारिक रूप में अंगीकृत नहीं हो सका; और हिन्दू 'कोड बिल' को तो राजनैतिक रंग भी प्राप्त हो गया।

इस सबसे यह स्पष्ट है कि समाज में क्रान्ति लानेवाले क़ानूनों को प्रायः समाज का पूरा सहयोग नहीं मिल पाता; और इसलिए विधान-निर्णायकों को अपने आत्मविश्वास तथा इनेगिने जागृत सहयोगियों के समर्थन-बल पर ही, विरोधी वातावरण को सहते-सँभालते, ऐसे क़ानूनों की रूपरेखा निश्चित करना होती है जो सामाजिक विकास और निर्माण का पथ प्रशस्त करते हैं।

शासन की गणतन्त्रीय पद्धति में बहुमत ही किसी विषय में अन्तिम निर्णायक होता है। इसीलिए जब विरोधियों की संख्या अधिक होती है तो सामाजिक विकास और हित की दृष्टि से उस विरोध के उचित न होने पर भी, उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। और यही कारण है कि हिन्दू कोड बिल पर अपना पूरा निश्चय रहते भी, प्रधान मन्त्री नेहरू को, विरोधियों से समझौते का मार्ग निकालते हुए, कहना पड़ा कि बिल ऐसे रूप में ही पेश किया जायेगा जिसमें वह जनता को मान्य होगा।

किन्तु उस बिल से अधिक क्रान्तिकारी और रचनात्मक रहते भी, 'विशेष विवाह विधेयक', उसी रूढ़िग्रस्त समाज से बिना संघर्ष ही लोकसभा में बहुमत द्वारा स्वीकृति पा गया। इस विधेयक द्वारा नेहरू सरकार का प्रयत्न है कि आनेवाली पीढ़ियों का समाज अधिक संस्कृत, पुरातनताओं से मुक्त और शोषण की सम्भावनाओं से परे हो। इसमें कितनी सफलता मिलेगी, यह अभी से नहीं कहा जा सकता। पर एक बात से अवश्य आशा होती है, और वह यह कि विधेयक का उपयोग पहिले उन्हीं क्षेत्रों में किया जाना है जहाँ नयी व्यवस्था के लिए उपयुक्त भूमि है, अर्थात् जहाँ शिक्षा का आलोक पैठ चुका है और विकास एवं निर्माण के लिए लगन तथा त्याग भाव हैं।

विधेयक में वर की आयु २१ और वधू की १८ वर्ष मानी गयी है। यह इस आधार पर कि तब तक अपना भला-बुरा विचारने की क्षमता सब को आ जाती है। आचार्य कृपालानी के मत से ३५ वर्ष के पहिले यह क्षमता सम्भव नहीं होती। पर उस उम्र तक कुँआरे रहने की किसी से अपेक्षा नहीं की जा सकती, और ऐसी दशा में क़ानून अव्यवहार्य होकर हास्यास्पद हो जाता। फिर, पुरुष की अपेक्षा स्त्री यों भी वयस्कता जल्दी प्राप्त कर लेती है। इस प्रकार, शारीरिक विकास और मनोविज्ञान दोनों ही दृष्टियों से विधेयक में जो उम्रें मानी गयी हैं, वे उचित ही हैं।

अभी तक विवाह जाति-पाँति के परम्परागत क़ानूनों से चलता था। इस विधेयक ने उन बन्धनों से निकालकर उसे अन्तर्जातीय, अन्तर्प्रान्तीय और अन्तर्राष्ट्रीय धरातल पर रख दिया है। अब विवाह के बारे में कोई भी भारतीय नागरिक अपनी हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई किसी भी जाति के क़ानूनों से बँधा न होकर, स्वतन्त्र रूप से इस विधेयक की धाराओं को ही मान्यता देगा। इस प्रकार समूचे राष्ट्र को एकरूपता देने का प्रयत्न किया गया है; बेशक यह केवल उन्हीं पर लागू होती है जो स्वेच्छा से इस क़ानून के अन्तर्गत अपना विवाह रजिस्ट्री द्वारा करवाना चाहते हैं। हाँ, किसी व्यक्ति को अपनी जातिगत पद्धति से विवाह करने के बाद भी इस विधेयक की पद्धति से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाभ उठाने का पूरा हक़ है। मगर इस पद्धति से लाभ उठाने अर्थात् रजिस्ट्री द्वारा विवाह के बाद फिर वे लोग हिन्दू उत्तराधिकार क़ानून अथवा अन्य जातीय क़ानूनों के लाभ-अलाभ से भी मुक्त हो जायेंगे ; फिर वे हर बात में इस विधेयक से शासित होंगे।

इस प्रकार इस विधेयक का लाभ आज तो महज़ पढ़े-लिखे और समझे-सुलझे लोगों को ही मिलेगा, क्योंकि रूढ़ीग्रस्त समाज इसकी कितनी ही बातों को ग्रहण नहीं करेगा। पर आनेवाली पीढ़ी के लिए इतने भर से ही मार्ग प्रशस्त हो जायगा, और तब आज का यह बीज समाज भर को सुख की छाया देता एक विशाल वटवृक्ष होगा।

गत कई दशाब्दियों से भारत में संयुक्त परिवार का विघटन बड़ी तेज़ी से हो रहा है। इसका मूल कारण जैसा सरकारी तौर पर भी माना जा रहा है, यही स्थिति है कि बड़े-बूढ़ों की रूढ़ीवादी धारणाओं के बीच, नयी रोशनी में पले युवक अपने को रुँधा हुआ पाते हैं : उनमें और इनमें नैतिक, सामाजिक किसी भी विषय-भूमि पर विचार-भावनाओं का समंजस नहीं है। इसलिए परिवार-संस्था के इस टूटते ढाँचे को एक नया, समयानुरूप और स्वस्थ आधार देना जरूरी है। यह विधेयक इस दिशा में बड़ा सहायक है।

इसके अन्तर्गत विवाह करते ही व्यक्ति अपने संयुक्त परिवार से अलग हो जाता है। पैतृक सम्पत्ति में अपने अधिकारों का अब तक उसने जो भी उपयोग किया, इस रजिस्ट्री-विवाह के बाद उसके ये सब अधिकार समाप्त हो जाते हैं। पिता का यदि वह इकलौता पुत्र था तो पिता अब किसी और लड़के को गोद लेने का अधिकारी हो जाता है। उस व्यक्ति का यह विवाह यदि दूसरा है तो पहिले की सन्तान उस परिवार में बनी रह सकती है और संयुक्त परिवार की सम्पत्ति में उसका उत्तराधिकार जातिगत नियमों द्वारा ही शासित होगा।

इसका यह अर्थ कभी नहीं कि रजिस्ट्री-विवाह के बाद व्यक्ति अपने परिवार-कुटुम्ब से टूटकर कहीं बिल्कुल अलग हो जाता है या कि उसका औरों से व्यवहार-सम्पर्क नहीं रह जाता। उसका सबसे नैतिक सम्बन्ध तो अप्रभावित ही रहता है ; केवल पैतृक सम्पत्ति में उसका किसी प्रकार का अधिकार नहीं रह जाता। फिर वह अपने बल पर खड़ा होता और चलता है ; और यहाँ यह विधेयक एक और नवीनता लाता है : कि अब जो कुछ सम्पत्ति इस व्यक्ति की अपनी होती है उसमें उसकी पत्नी और पुत्री भी समान रूप से भाग पाती हैं। इस प्रकार आनेवाली पीढ़ी की समाज का रूप आपोआप सुधर चलता है।

बेशक, इस दशा में उस पत्नी की स्थिति विचारणीय हो जाती है जो रजिस्ट्री-विवाह के बाद संयोग से कुछ ही दिनों में पति-सुख से वंचित हो जाती है। इस विवाह के कारण संयुक्त परिवार का संरक्षण उसे प्राप्त नहीं है : क़ानून से नहीं है यों मिल जाय तो बाधा नहीं है ; पति ने अपनी सम्पत्ति अभी कुछ जुगाई नहीं है ; और विवाह के समय उत्तराधिकारी न होते भी पिता ने प्रसन्नता से पैतृक सम्पत्ति में से जो दिया वह बहुत कम है—तो उसके और बच्चों के निर्वाह का प्रश्न बड़ा अन्धकारपूर्ण और चिन्तनीय हो जाता है।

इस विधेयक के अन्तर्गत पति-पत्नी में मनमुटाव आन पर और साथ रहना असम्भव होने की हालत में दोनों को तलाक का भी समान अधिकार है।

इस सिलसिले में यह तर्क उठाया गया कि पुरुष को तो नहीं पर तलाक पायी हुई स्त्री को फिर जीवन-साथी मिलना बड़ा कठिन होगा : उसे अपेक्षित वातावरण नहीं मिलेगा। और इस प्रकार उसकी आर्थिक परतन्त्रता उसके लिए अभिशाप सिद्ध हो सकती है। पर क़ानून-निर्माताओं ने यह निष्कर्ष ही स्वीकार किया कि प्रथा का प्रचलन होने पर विधवाओं और परित्यक्ताओं के लिए उस अपेक्षित वातावरण की कमी नहीं रहेगी।

गर्भिणी पत्नी को तलाक देने का अधिकार इस क़ानून में पुरुष को किसी भी दशा में नहीं है। मगर नित रोगी, कुरूपा या हत-यौवना पत्नी का तो परित्याग करके वह उसकी स्थिति चिन्तनीय बना ही सकता है। इस स्थिति का कोई उपाय नहीं है, अतिरिक्त इसके कि शासन-व्यवस्था ही उनका संरक्षण करने योग्य सशक्त और समर्थ हो। क्योंकि औसत मध्यवित्ती भारतीय की सीमित आर्थिक स्थिति देखते, क़ानून यदि विशेष परिस्थितियों में परित्यक्ता को उससे इकट्ठा या मासिक के रूप में कुछ धन दिलायेगा भी तो वह न-कुछ ही बैठेगा।

जो हो, किन्तु इन कमियों और कठिनाइयों का यह अर्थ नहीं होता कि पुरानी परम्परागत प्रथाओं को ही आसनारूढ़ रखा जाय। उन प्रथाओं में और उन सामाजिक स्थितियों में विवाहिता स्त्री का जो सम्पूर्ण वास्तविक रूप है वह इससे कहीं अधिक दुखभरा और दयनीय है। रही सीता-सावित्री के उच्चादर्शों के अनुकरण की बात, सो वे किसी भी दशा में बने ही रहेंगे। उन भावनाओं और मान्यताओं को किसी काल का कोई क़ानून कभी रोक नहीं सका। फिर भी इस विवाह विधेयक के निर्माताओं ने पूरी सतर्कता रखी है कि तलाक सस्ता न हो जाय और विवाह प्रयोग की चीज़ ही न बन जाय जसा कि विशेषकर अमेरिका में हो रहा है।

बहरहाल इस तथ्य को छिपाने से लाभ नहीं कि तलाक से उपजनेवाली कितनी ही स्थितियाँ बड़ी दुखदायी हो सकती हैं और हमें उनका सामना करना होगा। यह नया क़ानून जहाँ संयुक्त परिवार के क्लेशों से मुक्ति और आत्म-स्वातन्त्र्य तथा आत्म-निर्भरता के पुजारी युवक-युवतियों को संरक्षण प्रदान

(शेषांश पृष्ठ ५८ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

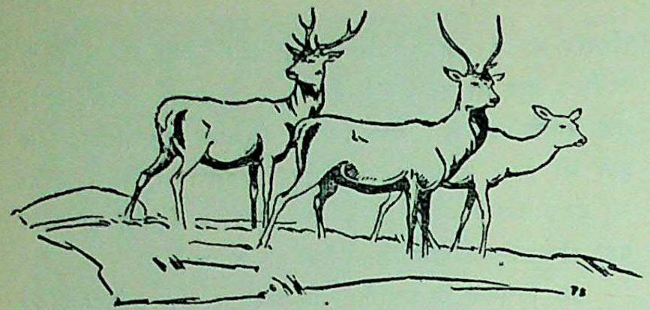

एक इसराज और तीन भटकती हुई आत्माएँ

जनार्दन मुक्तिदूत

और तुम उसके इतनी निकट चल रहे थे जितनी कभी मैं यतीन के साथ चला करती थी। तब हमारे जवान पाँवों में तेज़ फिसलनेवाले स्केट्स होते और आँखों में सतरंगे इन्द्रधनुष उभरते। और जब यतीन बोलता तो लगता जैसे मेरे हृदय की गहराइयों में असंख्य छोटी-छोटी घण्टियाँ बज रही हों––

प्रथम दृश्य

(मध्यवित्त परिवार का कमरा। कोने में तिपाई पर इसराज। झुटपुटा, दीवारघड़ी में पाँच का समय। नरेन्द्र और कान्ति चोरी से बातें कर रहे हैं। कमरे की लालटेन का प्रकाश मद्धिम है, पर बाहिर के प्रकाश के सहारे दोनों की आकृति-रेखाएँ पहिचानी जा सकती हैं।)

कान्ति––(नरेन्द्र के कन्धे पर सिर टिकाये बेंच पर बैठी है) अब तुम जाओ नरेन्द्र। दादा के जागने का समय हो रहा है। **(तभी दीवारघड़ी पाँच बजाती है)।**

नरेन्द्र––हाँ कान्ति, **(बेंच पर बैठे-बैठे ही सहसा सीधे होते हुए)** पर याद रहे कल दो बजे की गाड़ी से हमें बम्बई चल देना चाहिए। यहाँ हमारे दोनों के पिताओं से विवाह के लिए स्वीकृति प्राप्त कर लेना असम्भव है।

(कमरे की दीवार में एक ओर एक खिड़की है। उसमें एक छाया सी नजर आती है, जिसे केवल दर्शक ही देख सकते हैं। छाया कान्ति के पिता दादा की है। वह इन दोनों का षड्यन्त्र सुन लेते हैं; इन दोनों को इसका पता नहीं होता।)

कान्ति––(सोचती हुई) मुझे डर लगता है नरेन्द्र! बम्बई जाये बिना क्या....

नरेन्द्र––(बात काटते हुए) मेरे ऊपर विश्वास नहीं तुम्हें?

कान्ति––(उसके मुंह पर हाथ रखते हुए) ऐसा न कहो नरेन्द्र! तुम पर नहीं तो भला किस पर विश्वास करूँगी!

नरेन्द्र––(उसकी पीठ पर हाथ फेरते) बम्बई पहुँच कर हम जल्द ही विवाह कर लेंगे।

(इसी समय भीतर से दादा के खाँसने की आवाज़ आती है)

दादा––(कान्ति को पुकारते हुए) रानी बेटी, आज क्या अभी नींद नहीं खुली बेटी?

(नरेन्द्र उँगली के इशारे से दो बजे तय्यार रहने की याद दिलाता, विंग में एक ओर ग़ायब हो जाता है।)

कान्ति––हाँ..ऽ दादा; मैं अभी तो जागी। आ जाओ न?

(दादा का प्रवेश। पचास-पचपन के बीच अवस्था। देह: कभी अवश्य स्वस्थ किन्तु अब बिल्कुल झुरी हुई।)

दादा––(बेंच पर बैठते हुए कान्ति के सिर पर दुलार से हाथ फेरते हैं, फिर इसराज की ओर संकेत करते) ला बेटी, ज़रा इसराज तो दे आज।

(कान्ति देती है और दादा के पैरों के पास चटाई पर वहीं खोयी-सी बैठ जाती है। दादा सब ताड़ते हुए इसराज छेड़कर––)

दादा––तू गायेगी न मेरे साथ?

कान्ति––(उसी प्रकार कहीं शून्य में देखती) नहीं दादा, तुम गाओ मैं सुनूंगी। मेरा जी ठीक-सा नहीं लगता।

दादा––(कमानी चलाते से रुककर, एक रहस्यभरी मुस्कुराहट के साथ) मेरी बिटिया, इस गीत से तेरा जी ज़रूर ठीक हो जायगा। संगीत स्वर्गिक वस्तु है न! स्वर्गिक वस्तुएँ सदा आनन्द देती हैं। आओ, गाओ!

(कान्ति गम्भीर होती सिर झुका लेती है। मुस्कुराते हुए दादा अकेले ही गीत आरम्भ करते हैं।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब तक स्वाँसा तब तक आसा
फेंके जा पाँसे पर पाँसा !
जीत बनेगी हार ।
खिलाड़ी, जीवन से मत हार !
यह जीवन तो एक चौंसर है जिसमें सुख के पाँसे कम हैं
मोड़ मोड़ पर भारी ठोकर जिसमें क़दम क़दम पर ग़म है
एक जो पाँसा पड़ता दुख का
जीत हो जाती हार
खिलाड़ी जीवन से मत हार

(कान्ति ज्यों की त्यों खोयी ही बैठी रहती है, इसलिए दादा संगीत बन्द करके पूछते हैं--)

दादा--रानी बिटिया, आज तेरा जी नहीं लगा इस गीत में ?

कान्ति-- **(जैसे प्रत्यक्ष ही अपने को सँभालती हुई)** रोज़-रोज़ वही गीत दादा !

दादा-- **(मुस्कुराते)** इस गीत से बड़ी शान्ति मिलती है बेटी !

कान्ति--पर यहाँ अशान्त है कौन ?

दादा--मेरी रानी बेटी, और कौन ? **(सहसा प्रसंग पर आते हुए)** क्या नरेन्द्र से झगड़ बैठी है तू ? इन दिनों शायद आता नहीं वह ?

कान्ति-- **(सिर नीचे झुकाते)** आते हैं--कभी-कभी ।

दादा-- **(हँसता है)** तेरा चित्त अशान्त है रानी ! इतना घबराने की क्या ज़रूरत है ? वह तो बड़ा अच्छा लड़का है । किन्तु. . .

कान्ति-- **(रुआसी सी होकर)** किन्तु क्या दादा ?

दादा--यही बेटी कि मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। तू विवाह योग्य हो गयी है, निस्सन्देह ; किन्तु अभी तुझमें न जीवन की ज़िम्मेदारियाँ उठाने की शक्ति है न यौवन के मोहजाल से बच निकलने की समझदारी। बेटी, इस जाल के अन्दर की हर चमकती वस्तु सोना ही लगती है।

कान्ति-- **(रुआसे स्वर में)** पर नरेन्द्र तो अभी आपने कहा. . . .

दादा-- **(खाँसते हुए)** सो तो मैं अब भी कहता हूँ कि वह बड़ा अच्छा-होनहार लड़का है। और नरेन्द्र ही क्या, तेरे जीवन में तो जो भी आयेगा, तुझे वह अच्छा ही लगेगा। मैं तुझे उससे मिलने या विवाह करने से रोकता नहीं हूँ, पर तू जो करने जा रही है उससे पहिले मैं चाहता हूँ तुझे अपने जीवन की एक कहानी सुना दूँ। **(कहते-कहते गम्भीर हो जाते हैं, दृष्टि कहीं बहुत दूर जाकर खो जाती है, फिर धीरे से अपने को सम्भालते हैं और फीकी हँसी हँसते हैं।)**

कान्ति--(**घबराती सी)** दादा, दादा! कोई अपराध हो गया मुझसे ? क्षमा करदो अपनी रानी बिटिया को ! **(दादा के गले में बाँहें डाल देती है और आर्द्र हो उठती है।)**

दादा-- **(कान्ति को थपथपाते हुए)** तुझसे अपराध ? ना बेटी ! यह तो हर युवक-युवती जाने-अनजाने करते ही हैं, किन्तु ज्ञान के आलोक में नहीं, अज्ञान के अँधेरे के कारण।

(कुछ देर चुप रहकर)

दादा-- **(इसराज देते हुए)** ले, इसे वहीं रखदे और शान्त होकर यहाँ बैठ।

(कान्ति आकर चटाई पर बैठती है और दादा एक बार दूर सामने शून्य में देखते कहानी शुरू कर देते हैं।)

दादा--तेरी ही तरह मैंने बचपन पार किया तो यौवन से टकरा गया। तब हर बादल सुनहरा था और हर हवा का झोंका गन्ध-भार से लदा मलय पवन। उस समय कोई भी सुन्दरी बोलती तो उसके स्वर सीधे हृदय की गहराइयों में उतर जाते और लगता कि वहाँ छोटी-छोटी असंख्य घण्टियाँ टुनटुना उठी हैं। सबसे पहिले यह घण्टियों के टुनटुना उठने का अनुभव, जानती है रानी, मुझे एक सड़क पर नाचनेवाली के गीत को सुनकर हुआ था। **(कहते-कहते दादा का स्वर गम्भीर हो जाता है और जैसे उनकी समची चेतना दूर शून्य में रमी स्मृतियों पर जा टिकती है)**

दूसरा दृश्य

(स्टेज पर क्रमशः अँधेरा, फिर क्रमशः प्रकाश। सूनी जैसी सड़क का एक भाग । नट जाति की एक रूपसी युवती नाच रही है। कुछ लोग जमा हैं, वाह-वाह कर रहे हैं। वहीं कुँवर प्रभात अर्थात् नवयुवक दादा भी खड़े हैं, एकदम आत्म-विभोर से। नाच समाप्त होते ही फिर वाह-वाह होती है और सब कोई उसे दो आना चार आना इनाम देते हैं। कुँवर प्रभात के सामने भी वह आती है-)

प्रभात-- **(ज़रा चौंक कर)** क्यों, क्या है ?

नर्तकी-- **(मटकती-मुस्कुराती)** इनाम सरकार !

(प्रभात सिहरता है और उँगली से हीरे की अँगूठी उतार कर देता है।)

नर्तकी-- **(सहमती हुई)** भगवान् भला करें कुँवर साहब का !

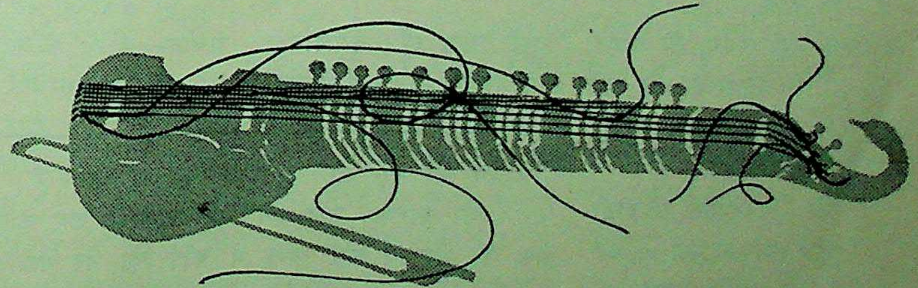

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर सरकार हमारी औक़ात तो चार-आठ आने की ही है; यह तो सरकार को ही शोभेगी।

प्रभात—नहीं, नहीं, अच्छा....

(नर्तकी चल देती है)

प्रभात—अरे, चली कहाँ? सुनो—

(नर्तकी रुक जाती है)

नर्तकी—सरकार!

प्रभात—**(सकुचाते हुए से)** अच्छा, तुम्हारा नाम? नाम पूछना चाहता था मैं।

नर्तकी—**(मुस्कुराती है)** सीरी, सरकार!

प्रभात—सीरी? सीरी क्या?

नर्तकी—**(अंग-अंग मटकाती है)** लौंग सीरी....

प्रभात—**(उसकी ओर देखते हुए क्षीण मुस्कुराहट के साथ)** ओह, लवंग श्री! बड़ा सुन्दर नाम है।

(नर्तकी हँसती है और बल खाती सी चलने को होती है)

प्रभात—**(हाथ का इशारा करते)** ठहरो-ठहरो, तुम्हारा घर कहाँ है लवंग श्री?

लवंगश्री—घर? **(सहज गम्भीर होती)** हमारा घर कैसा कुँवर साहब! हम तो घनचक्कर लोग हैं। बरस में आठ महीने बस्ती-बस्ती नाचते-गाते फिरते हैं, रोटी कमाते हैं, फिर बरखा के चार महीने अपने देश लौट आते हैं, कुछ खेती-पाती करते हैं।

(अनजाने ही इस बीच दोनों एक ओर को साथ-साथ चल दिये हैं। श्री की बात से प्रभात की आँखें चमक-सी उठती हैं।)

प्रभात—अच्छा जीवन है तुम लोगों का, लवंग श्री! बड़े सुख का!

लवंग श्री—नहीं सरकार, पर हमारी बिरादरी का यही चलन है। **(दूर सामने देखते ठिठकती है और इशारे से बताती हुई)** वह सामने हम लोगों का पड़ाव है, अब आप जाइये!

प्रभात—**(उसके इशारे की दिशा में देखते हुए)** लवंग श्री, पता नहीं पर तुम जा रही हो तो ऐसा लगता है जैसे मेरा कुछ खो रहा हो। क्यों लवंग श्री....

लवंग श्री—सरकार, यह आप क्या कह रहे हैं! आपको क्या यह अच्छा....

प्रभात—नहीं लवंग, जी चाहता है तुम्हें देखता रहूँ; तुम बोलती हो तो लगता है जैसे कहीं किसी वीरान मन्दिर में घण्टियाँ टुनटुना उठी हों; छोटी-छोटी घण्टियाँ, और—

लवंग श्री—**(परेशान सी होती हुई)** आप जाइये; वह देखिये हमारे पड़ाव के लोग आ रहे हैं! **(छिटक कर चल देना चाहती है।)**

प्रभात—**(जैसा कुछ सुना ही नहीं)** क्यों लवंग, यहीं कहीं बैठकर दो घड़ी बात नहीं कर सकते हम? मुझे न जाने कैसा लग रहा है! बस दो घड़ी!

लवंगश्री—**(दूर पर आते जनों को देखती और सहज घबराहट के भाव सहित)** वह जान लेगा तो बहुत मारेगा सरकार!

प्रभात—**(अचरज से)** कौन मारेगा? ऐसी अच्छी देवी को कौन मारेगा?

लवंगश्री—**(धरती की ओर एक क्षण को देखकर)** मेरा आदमी, कुँवर साहब। बड़ा मारता है कभी-कभी तो। अच्छा, अब आप सच जाओ! **(वह जैसे जान छुड़ाकर चल देना चाहती है)**

प्रभात—**(बड़े अनुरोध भरे स्वर में)** लवंग श्री!

लवंग श्री—**(चलते-चलते)** बड़े सरकार को पता चल जायगा तो खाल खिंचवा लेंगे हम सबकी। आप जाइये!

प्रभात—**(सतेज)** मैं किसी से नहीं डरता श्री!

(श्री चल देती है। उसके मुँह से इतना ही निकलता है—)

लवंग श्री—हम तो परजा हैं सरकार!

तीसरा दृश्य

(प्रभात का देहात का घर, बड़े जमींदारों का सा। कमरे में पलँग पर प्रभात की बड़ी बहिन वासन्ती, बीमार लेटी है। पास ही पुरानी चाल की छोटी सी मेज़ पर लैम्प जल रहा है, कई छोटी-बड़ी दवा की शीशियाँ रखी हैं। घर का बूढ़ा नौकर लालू दवा लिये खड़ा है।)

लालू—मेरी अच्छी दीदी बिटिया, लो यह पी तो लो! डॉक्टर ने कहा है—

वासन्ती—**(तुनुक कर)** हटा अपने 'डॉक्टर ने कहा है' को। वह तो रोज़ आयेगा, सिर हिलायेगा और फ़ीस लेकर चला जायगा। उसे इससे क्या कि किसी को मर्ज़ क्या है!

(प्रभात का प्रवेश)

प्रभात—**(थका-उदास पलँग पर ही एक ओर को बैठते हुए और लालू से दवा लेकर बहिन को स्वयं पिलाते हुए)** कैसा जी है, दीदी?

वासन्ती—अच्छा है भइया! **(खाँसती है)** आ, मैं तुझे बुलाने ही भेज रही थी। **(फिर खाँसती है)**

प्रभात—हाँऽ; मैं ज़रा डाकखाने तक गया था। कहो, डॉक्टर को फिर बुलवाऊँ?

वासन्ती—नहीं रे! **(खाँसती है)** साँझ में उधर का **(आँखों से सड़क की तरफ़ वाले द्वार की ओर इशारा करती हुई)** दरवाज़ा

हम शेर को मारें तो वह 'आमोद' कहलाता है। मगर शेर हमें मारना चाहे तो वह 'ख़ूँख़ारी' बन जाता है। सच तो, अपराध और न्याय में कोई बड़ा भेद नहीं होता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खुलवाये लेटी थी। **(प्रभात कुछ चौकन्ना होता है)** मैंने देखा **(फिर खाँसती है)** तुम जा रहे हो, तुम्हारे साथ कोई न——

(खाँसी में वाक्य अधूरा रह जाता है। प्रभात उतने से ही घबरा जाता है।)

वासन्ती——(फीकी मुस्कुराहट के साथ) घबरा गया! छिः तेरी उम्र के सभी लड़के इस बात में कच्चे होते हैं। तो वह नर्तकी——

प्रभात——(झेंपता लजाता, वासन्ती के दुबले-पतले हाथों को अपने हाथों में लेकर अपनी आँखों की ओर को उठाते हुए) दीदी, दीदी; पिताजी से मत कहना! तेरे हाथ जोड़ता हूँ! मेरी अच्छी दीदी!

वासन्ती——(खाँसी से हाँफती हुई) नहीं कहूँगी रे, पिताजी से क्यों कहूँगी। तो मैं तुझे बहुत दूर तक उसके साथ जाता देखती रही, देखती रही; और **(फिर खाँसने लगती है, रुक कर दम-सा लेती है; दृष्टि प्रभात के पार और शायद पीछे की दीवार के भी पार कहीं भटकती हुई अटकी है)** और तुम उसके इतना निकट चल रहे थे जितना कभी मैं यतीन के साथ चला करती थी। **(एक साँस लेती है, फिर क्षण भर रुक कर)** तब हमारे जवान पाँवों में तेज़ फिसलने वाले स्केट्स होते और आँखों में सतरंगे धनुष उभरते। और जब यतीन बोलता तो लगता कि मेरे हृदय की गहराइयों में असंख्य छोटी-छोटी घण्टियाँ——

प्रभात——(अचरज से) क्या कहा दीदी, घण्टियाँ?

वासन्ती——(सिर हिलाती हुई) हाँ, छोटी-छोटी चाँदी की सी घण्टियाँ टुनटुना रही हों!

प्रभात——ओह, मेरी दीदी, **(उसके दोनों हाथों को अपने दोनों गालों पर दबाते हुए)** उसके स्वरों में भी घण्टियाँ बोलती हैं। **(आनन्द में विभोर-सा होते)** मेरे कानों में अभी भी गूँज रही हैं। ऐसा क्यों होता है दीदी?

वासन्ती——क्यों होता है! **(क्षण भर को गम्भीर हो जाती है, फिर दाहिने हाथ से कपड़ा सँभाल कर और प्रभात की ओर को करवट लेती हुई)** अच्छा, सुनो!, तुम जीवन की उसी भूलभुलैया में फँस गये हो जिसमें दो बरस पहिले श्रीनगर में मैं फँस चुकी हूँ। उसके घने अँधेरे में मेरा जी निरन्तर घुट रहा है; और तुम? तुम भी उसी में भटकने चले हो। भइया, हम दोनों भटकते हुए प्राणी हैं....

प्रभात——मैं समझा नहीं दीदी; तुम कैसी बातें कर रही हो ये?

वासन्ती——(विकलता में करवट बदल कर फिर पूर्ववत हो जाती है, हाथ माथे पर फेरती है जैसे पसीना पोंछती हो) हाँ प्रभात, मैं स्वयं भी कहाँ समझती थी अपनी ये बातें। और अब जब समझ पायी हूँ तो समय और अवसर इतनी दूर जा चुके हैं कि कुछ सोचना भी व्यर्थ है।

(वासन्ती की आँखों में एक अनन्त सूनापन छलछला आता है, फिर एकाएक खाँसी उठती है, देर तक उसे व्याकुल रखती है, प्रभात कोई और दवा देता है। कुछ क्षण बाद——)

वासन्ती——भइया, मेरी व्यथा तो अब चिरशान्ति पा जायेगी: आज या कल। पर तेरे आगे तो समूचा जीवन पड़ा है: फूल-सा कोमल, संसार-सा विशाल, चाँद-सा सुन्दर। तू समय रहते सब समझ सके तो अच्छा। **(उसके सिर पर हाथ फेरते हुए अपनी ओर को खेंचती है)** हाँ सच प्रभात!

प्रभात——तुम्हें क्या हुआ है दीदी!

वासन्ती——(खाँसती है) क्या हुआ है। हिये की आँखें खुल रही हैं। भइया, यतीन मेरा कोई नहीं और वह श्री भी तुम्हारी कोई नहीं। पर धरती पर कोई किसी का होकर ही तो पैदा नहीं होता। आसमान के तारे एक खेल खेला करते हैं और तुम नहीं जानते इन तारों से हमारे भाग्य बँधे रहते हैं। **(प्रभात की आँखें चमक उठती हैं)** इसी-लिए तो जब दो तारे वहाँ मिल बैठते हैं तो धरती पर भी दो अपरिचित प्राण अपने को एक धागे में गूँथ लेते हैं।

प्रभात——(सिहर कर) दीदी, तब तो श्री मेरी अपनी है। ज़रूर आसमान में हमारे भाग्य के सितारे मिल बैठे होंगे?

वासन्ती——(हल्के से हँसती है पर उस हँसी में निरी निराशा और रीतापन भरे हैं) हाँ, आसमान में सितारों के मिल बैठने में बाधा नहीं। वहाँ कहीं बाधा नहीं; वहाँ सिर्फ़ शून्य है, और हैं छोटे-बड़े सितारे। किन्तु इस धरती पर तो अनगिन बाधाएँ हैं, बन्धन हैं, दीवारें हैं, प्रभात!

प्रभात——(तनिक आवेश में) तुम्हारा मतलब दीदी, कि श्री महज़ एक नर्तकी है जिसका, मनोरंजन के सिवाय, समाज में और स्थान नहीं?

वासन्ती——(भावनाओं के आवेग में हँसती-सी) बावले, यतीन तो महज़ विवाहित ही था। यौवन की उषा जगते ही मैंने देखा उसके बिना मेरा अस्तित्व असम्भव है। मैंने अपने अनुराग के प्रथम पुष्प उसके चरणों में बखेर दिये और तब से आज तक आँसुओं का अर्घ्य ही चढ़ाया करती हूँ।

प्रभात——(सिर झुकाये सोचते हुए) उनकी पत्नी होते भी तुमने ऐसा किया तो इसके लिए पूर्व जन्म के संस्कार ही उत्तर-दायी हो सकते हैं।

(शेषांश पृष्ठ ६१ पर)

हर समझ-बूझ वाला इन्सान भारी धूर्त और भला नागरिक भी होता है। वह क्या है यह उसके चरित्र पर निर्भर करता है, लेकिन वह क्या करता है यह उसकी परिस्थिति पर आश्रित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ तरु ज्वाला धधकती
चातकी कन को तरसती
उन्हीं जीवन-घाटियों की
मैं सरस बरसात रे मन

तुमुल कोलाहल कलह में
मैं हृदय की बात रे मन

*　*　*　*　*

प्रसाद की प्रतिभा

भारत भूषण अग्रवाल, एम० ए०

'कामायनी' में श्रद्धा का एक गीत है :—

तुमुल कोलाहल कलह में
मैं हृदय की बात रे मन!
विकल होकर नित्य चंचल
खोजती जब नींद के पल
चेतना थक सी रही तब
मैं मलय की बात रे मन!
चिर विषाद विलीन मन की
इस व्यथा के तिमिर वन की
मैं उषा सी ज्योति रेखा
कुसुम विकसित प्रात रे मन!

श्रद्धा के इस आशा भरे गीत की प्रतिध्वनि में मानों प्रसाद की प्रतिभा की ही परिभाषा है। भारतीय इतिहास के जिस पीड़ा भरे पहर में प्रसाद की प्रतिभा ने अपनी पलकें खोलीं उसमें उसे अपने चारों ओर यदि 'व्यथा का तिमिर वन' ही दिखायी दिया तो आश्चर्य ही क्या? किन्तु तिमिर की उन काली घड़ियों को चीरकर उनकी प्रतिभा 'उषा की ज्योति रेखा सी' ही हमारे मानस क्षितिज पर उदित हुई, और आज का हमारा 'कुसुम विकसित प्रात' उन्हीं की प्रतिभा के दान का मंगल आलोक बिखेर रहा है।

प्रसाद वास्तव में हिन्दी में नवीन सांस्कृतिक जागरण के रजत-तूर्य थे। राजनैतिक चेतना की अकुलाहट तो हमें भारतेन्दु के स्वरों में ही मिल चुकी थी, पर पराधीनता और राष्ट्रीय निःस्वता में जन-मानस की अतृप्ति-भरी प्रगति-कामना को सबल स्वर छायावाद में ही प्राप्त हुआ जिसके उन्नायकों में प्रसाद अन्यतम थे। प्रसाद का युग वह युग था जब बन्धनों की कठोर कारा से रुँधकर हमारा सामाजिक जीवन दुर्गन्ध-भरा दलदल बन चुका था। प्रसाद की प्रतिभा की प्रथम किरणों ने ही मन की उन रूढ़ियों पर प्रबल आघात किये और सम्वेदनाओं की विभूति से हमारे नयनों में नवीन अंजन लगाया।

ब्रजभाषा के रीति काव्य ने अपने अन्तिम दिनों में स्थूल और कामुकतापूर्ण वासना का जो प्रदर्शन अपनाया था, उसी की प्रबल प्रतिक्रिया के रूप में प्रसाद ने 'प्रेमपथिक' नामक खण्ड-काव्य की रचना की जिसमें व्यक्ति-परक प्रेम को उत्थान और विस्तार प्रदान कर सारी सृष्टि को समा लेने की प्रेरणा निहित थी। समाज की जड़ रूढ़ियों के कारण बिछुड़ने पर विवश किये गये प्रेमी-प्रेमिका जब नियति के संकेत से मिलते हैं, तब वे किसी छोटे से घरोंदे के निर्माण में नहीं लगते, वरन् वे प्रेम को एक नया और गम्भीर अर्थ देते हैं। कवि का सन्देश है.....

पथिक! प्रेम की राह अनोखी भूल भूल कर चलना है
घनी छाँह है जो ऊपर तो नीचे काँटे बिछे हुए
प्रेमयज्ञ में स्वार्थ और कामना हवन करना होगा
तब तुम प्रियतम स्वर्ग विहारी होने का फल पाओगे

व्यक्तिगत जीवन के कष्ट और अभावों से जूझकर समष्टि की प्रगति में योगदान का यह संदेश समयोचित तो था ही, उसमें भारतीय संस्कृति की वह गहरी अन्तर्धारा भी प्रतिध्वनित थी जिसके नवीन परिचय से प्रसाद ने हिन्दी साहित्य को सम्पन्न किया। इसी गहरी संवेदना से उन्हें वह दूरदृष्टि मिली जिसने उनकी कवि कल्पना को मन की सूक्ष्म भावनाओं के अनेक अनोखे चित्र सजाने में समर्थ किया। दैनन्दिन जीवन में पग-पग पर सामने आनेवाली पीड़ा को उन्होंने अनदेखी नहीं किया, बन्दी मन की निष्फल फड़फड़ाहट पर उन्होंने अपने कान बन्द नहीं किये, अपितु इन दृश्यों और ध्वनियों को उन्होंने मार्मिक करुणा से रूपायित किया। साथ ही उनकी करुणा में मानस के भार को बहाकर हल्का कर देनेवाली निर्मलता भी थी। उनकी विख्यात रचना 'आँसू' ऐसे ही करुण उज्ज्वल भावों की चित्रशाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। उसमें ध्वनित 'चिर दग्ध दुखी वसुधा' की आलोक के लिए आर्द्र पुकार प्रसाद के प्राणों को आजीवन टेरती रही, उनकी प्रतिभा को निरन्तर चुनौती देती रही। वर्तमान के भीषण शैलकाय अवरोधों को काटने के लिए उन्होंने भारत के स्वर्णिम अतीत से अनेक वेगवान निर्झर बहाये, जिन्होंने पर्वतों को तोड़-तोड़ कर जन मानस में आशा की हरियाली फैलायी। उनकी दृष्टि अपने बाहरी राजनैतिक बन्धनों तक ही सीमित न थी, वे भविष्य के भारतीय राष्ट्र और उसकी संस्कृति के पुनरुत्थान के भी सपने पाल रहे थे। इसी प्रयत्न में उनके वे नाटक रचे गये जिन्होंने एक ओर तो भारत के सांस्कृतिक और ऐतिहासिक गौरव को मूर्तिमन्त किया, और दूसरी ओर हिन्दी साहित्य को अनुपम निधि प्रदान की। 'विशाख', 'राज्यश्री', 'अजातशत्रु', 'जनमेजय का नागयज्ञ', 'ध्रुवस्वामिनी' एक-एक कर इन नाट्य-कला-कृतियों ने भारतीय अतीत का बहुरंगी पट निर्मित किया जिसमें हम अपने जीवन के उदात्त चित्र प्राप्त कर सके। अपने देश के गौरव की मर्यादा जिसे हम भूल चुके थे, अपनी सम्पन्नता जो हमारा साथ छोड़ चुकी थी, अपने पूर्वजों का कर्तव्य-परायण उदार चरित्र जो हमारे संस्कारों में समाया हुआ था, सब हमारे सामने आये। रंगमंच पर अभिनय की दृष्टि से इन रचनाओं को चाहे हम निर्दोष न कह सकें (और इस बात के यथेष्ट ऐतिहासिक कारण थे) पर यह निर्विवाद और निस्सन्देह है कि प्रसाद ने हिन्दी संसार को एक बार फिर अपने उज्ज्वल अतीत के स्मृति-चित्र देकर हमें नवीन आशा और प्रेरणा दी। यह उनकी प्रतिभा की सूक्ष्म दृष्टि ही थी जिसने चाणक्य के मन में समस्त देश को एक सूत्र में आबद्ध सशक्त राष्ट्र की कल्पना चित्रित की। इस विशाल भारत भूमि को एक सुबद्ध राष्ट्र में परिणत कर देने की इस परिकल्पना के ही बल पर चाणक्य ने अपनी गहरी नीति की नींव डाली और इसी के सहारे उसने एक ओर मगध में निरंकुश नन्द शासन का अन्त कर चन्द्रगुप्त को परिषद्-नियंत्रित शासन का प्रमुख बनाया, और दूसरी ओर छोटे-छोटे राज्यों के साधन और उपकरणों को एकत्र कर यवनों के आक्रमण से देश की रक्षा का उपाय किया। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में लिखे जाने पर भी इस नाटक की प्रेरणा में आधुनिक पराधीन भारत के लिए एक युगानुकूल सन्देश था, तभी तो नाटक में गुँथे हुए गीतों के स्वर हमारे नवीन मुक्तियज्ञ के मन्त्र बन गये। उनका यह आह्वान आज भी हमारे कानों में गूँज रहा है :—

हिमाद्रि तुंग शृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला
स्वतन्त्रता पुकारती

अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो
प्रशस्त पुण्य पन्थ है, बढ़े चलो, बढ़े चलो

असंख्य कीर्ति रश्मियाँ
विकीर्ण दिव्यदाह सी
सपूत मातृ-भूमि के
रुको न शूर साहसी।
अराति सैन्य सिन्धु में सुवाड्वाग्नि से जलो
प्रवीर हो, जयी बनो, बढ़े चलो, बढ़े चलो !

प्रगति पन्थ पर विजय हेतु अग्रसर होने की यह ओजमयी ललकार प्रसाद के प्रदीप्त प्राणों से ही फूट सकती थी। केवल 'चन्द्रगुप्त' ही नहीं, उनके अनेक नाटकों में अतीत की गौरव गाथा के साथ भविष्य के प्रति यह उद्बोधन अत्यन्त कलात्मक रूप में पिरोया गया है। उनके सर्वश्रेष्ठ नाटक 'स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य' में स्कन्दगुप्त मानो भारत की आत्मा का ही जीता-जागता प्रतीक है जो एक ओर विदेशी हूणों के आक्रमण से रात-दिन चिन्तित है और दूसरी ओर आन्तरिक विश्रृंखलता और षड्यन्त्र उसके उपकरणों को संगठित नहीं होने देते। पर मातृभूमि की रक्षा और स्वतन्त्रता के लिए स्कन्दगुप्त भारत की ही भाँति बड़े से बड़ा बलिदान करता है, यहाँ तक कि अपने प्रेम को भी देश की वेदी पर न्यौछावर कर देता है। 'स्कन्दगुप्त' का यह स्थल जितना उज्ज्वल है उतना ही मर्मस्पर्शी।

प्रसाद की रचनाओं की सबसे प्रमुख विशेषता वास्तव में यही है कि वे प्रस्तुत राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं का विचार करने में भी निरन्तर सांस्कृतिक पक्ष की ओर संकेत करती रहती हैं। उनका यह गुण उन्हें गहराई और स्थायित्व दोनों प्रदान करता है, और उन्हें चिन्तन-प्रधान बना देता है। कभी-कभी तो प्रसाद की पूरी रचना ही एक प्रकार का चिन्तन बन उठती है। उनका रूपक 'कामना' इसका बड़ा सुन्दर

एक आधुनिक शिक्षाशास्त्री का कहना है कि पाँच वर्ष का बालक उपयोगितावादी होता है, उसकी सब परिभाषाएँ उपयोग को लेकर बनती हैं।

यह जानकर एक दूसरे शिक्षाशास्त्री ने एक नरसरी स्कूल के बच्चों से कुछ परिभाषाएँ सीखीं। वे इस प्रकार थीं :

—गोद इसलिए है कि आँगन में चलकर गन्दे न हों।
—बिल्ली इसलिए होती है कि उसके बच्चे हों।
—नाक बहने के लिए होती हैं।
—रात में दीखनेवाली चीज़ों में जो अच्छी हो उसे ही स्वप्न कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदाहरण है जिसमें पूर्व सुभद्र के एक कल्पित द्वीप के निवासी एक विदेशी सौदागर के आगमन से पहले त्रस्त होते हैं, फिर उसके स्वर्ण पर मुग्ध होकर पराधीन हो जाते हैं, और अपने सहज, सरल गुण खो बैठते हैं। विदेशी सौदागर विलास है जिसके पाश में सारी भूमि अनाचार और पतन का क्षेत्र बन जाती है। पूरा रूपक भारत की पराधीनता के कारणों की ओर संकेत करता है और एक प्रकार से वर्तमान सांस्कृतिक संकट पर प्रकाश डालता है।

इसी प्रकार प्रसाद की कहानियाँ और उनके दोनों पूर्ण उपन्यास 'कंकाल' और 'तितली' भी समाज के इस पहलू पर विचार उपस्थित करते हैं। 'कंकाल' में सामाजिक अनाचार और अधर्म के कटु-चित्र बड़ी निर्ममता से हमारे सामने उपस्थित किये गये हैं। सम्भवतः उनमें अतिरंजना का पुट है; यह भी हो सकता है कि उनमें जिस यथार्थता का अंकन है, उसे अति-यथार्थवाद या यथातथ्य चित्रण ही कहा जा सकता है। पर वे अनेक सामाजिक कुरीतियों के प्रति हमें चेतावनी देते हैं, हमारे सामाजिक दायित्व को चुनौती बनकर आते हैं। 'तितली' में प्रसाद अपनी कवि-सुलभ-कल्पना से भारत के उपेक्षित अविकसित ग्रामों की ओर हमें ले जाते हैं और ग्रामीण समस्याओं पर अपने विचार उपस्थित करते हैं। 'कंकाल' की अपेक्षा 'तितली' अधिक पुष्ट और सफल उपन्यास है और उसके मार्मिक स्थल मन पर गहरी छाप छोड़ते हैं। ग्रामोद्योग और ग्राम-विकास की उनकी कई योजनाओं में हमें गाँधी-युग की प्रतिध्वनि स्पष्ट मिलती है।

नाटक और कथा-साहित्य के क्षेत्र में प्रसाद की प्रतिभा ने अपना सम्यक् दान दिया है इसमें सन्देह नहीं, किन्तु उसका सर्वोत्तम रूप काव्य में ही प्रस्फुटित हुआ। प्रसाद साहित्यिक से भी अधिक द्रष्टा थे, उन्होंने अपनी असामान्य कल्पना दृष्टि से काव्य में अन्तर्मन के गूढ़ भावों की अत्यन्त विशद व्यंजना की है। सुख-दुख, आशा और कामनाओं की अनुभूतियों को चित्रों के रंग पहनाये हैं। 'आँसू' के बाद उनके काव्य-संग्रह 'लहर' में भावना की ये लघु-लघु लहरें हमारी साहित्यधारा को अमर संगीत प्रदान करती हैं। जग-जीवन के कठोर संघर्षों की ज्वाला में शीतल छाया और आर्द्र करुणा की कामना लहर में अनगिनत भाव-चित्रों की सृष्टि करती है :—

जग की सजग कालिमा रजनी में मुखचन्द्र दिखा जाओ
हृदय अँधेरी झोली इसमें ज्योति भीख देने आओ
प्राणों की व्याकुल पुकार पर एक मीड़ ठहरा जाओ
प्रेम वेणु की स्वर लहरी में जीवन गीत सुना जाओ
स्नेहालिंगन की लतिकाओं की झुरमुट छा जाने दो
जीवन-धन इस जले जगत को वृन्दावन बन जाने दो

लेकिन 'इस जले जगत को वृन्दावन' बनाने की यह कामना प्रसाद ने केवल करुण निष्क्रिय प्रार्थना के रूप में ही व्यक्त नहीं की, ज्यों-ज्यों उनकी प्रतिभा के रंग गहरे होते गये त्यों-त्यों विश्व की पीड़ा का समाधान पाने की उनकी खोज गहरी होती गयी। उसी व्याकुल खोज का फल है उनका महाकाव्य 'कामायनी' जिसमें प्रसाद की प्रतिभा अपने चरमोत्कर्ष पर प्रकाशित हुई और जो आधुनिक हिन्दी साहित्य की सर्वमान्य सर्वोत्कृष्ट काव्य-रचना है। छोटे-छोटे गीतों के स्फुट प्रयासों की किरणें इस प्रगीति महाकाव्य में मानों संगठित होकर प्रदीप्त सूर्य्य का रूप ले उठती हैं। 'कामायनी' में युग के संकट और संघर्ष की गहरी छाप है, उसमें विश्वास और विज्ञान, सामाजिक विकास और व्यक्ति स्वातन्त्र्य एवं भौतिक वैभव और आध्यात्मिक उन्नयन के संघर्षों का विशद चित्रण है। 'कामायनी' की कथा उपनिषदों से ली गयी पौराणिक कथा है जो इस रचना को हमारी सांस्कृतिक परम्परा की जीवन्त शक्ति प्रदान करती है। 'कामायनी' की कथा मनु, श्रद्धा और इड़ा के रूप में अन्तर्मन में निरन्तर विद्यमान श्रद्धा और बुद्धि के संघर्ष का रूपक है जो इस रचना को स्थायित्व और गाम्भीर्य प्रदान करता है। 'कामायनी' की कथा भौतिक वैभव और पार्थिव कर्मों के देश सारस्वत नगर के पतन-उत्थान की और मनु के उसका परित्याग कर हिमालय के शिखरों में आनन्द लोक के दर्शन की कहानी है जो हमारे युग की अशान्ति के लिए एक समाधान प्रस्तुत करती है, यद्यपि वह समाधान व्यक्ति-परक होने के कारण अपूर्ण और अव्यावहारिक ठहरता है। यही नहीं, 'कामायनी' में महाकवि प्रसाद की वाणी सिद्धि-प्राप्त समर्थ कवि की प्रौढ़ वाणी है जो अभिव्यंजना के माध्यमों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर चुकी है। मानव जीवन के अमिट सौन्दर्य से आलोकित उनकी स्वर धारा इस काव्य में निर्झर का वेग और सागर का विस्तार लेकर प्रकट हुई है। महाकाव्य के प्रारम्भ में ही जलप्लावन का विशद चित्र है जिसमें बचकर 'हिमगिरि' के उत्तुंग शिखर पर एक शिला की शीतल छाँह में

(शेषांश पृष्ठ ५७ पर)

उस इन्सान से होशियार रहो जिसका भगवान आसमान में है।

नरक के आँगन का एक-एक पत्थर भले इरादों में ढला हुआ है।

आज की शराफ़त ? बदमाशी का षड्यन्त्र है मौन रहने के लिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयोग का उपयोग

केशव कोठारी

कहा जाता है कि आइन्स्टीन के सापेक्ष्यतावाद के सिद्धान्त को समझनेवाले समूची धरती पर महज़ सात जन हैं। फिर भी 'समझ में नहीं आता' कहकर उसे उड़ा देने की क्षमता कितनों में है? विपरीत इसके, कलाकार की सृष्टि को 'समझ में नहीं आती' कहकर कोई भी उड़ा दे सकता है। कारण, इसके सिद्धान्तों से ऐटम बम्ब नहीं बनते!

आज हिन्दी साहित्य में प्रयोगवाद नाम से एक प्रवृत्ति की चर्चा चल रही है। अपने आप में यह चर्चा न भली है न बुरी। क्योंकि यह प्रयोग, प्रयोजन से चाहे जितना दूर ही क्यों न हो, प्रयोजनहीन प्रयोजन तो है ही। और सम्भवतया प्रयोग की सफलता के लिए प्रयोजनहीनता सबसे बड़ी शर्त है!

अभी कुछ दिन पूर्व शान्ति निकेतन में रहने का अवसर मिला। वहाँ के सुन्दर और सौम्य वातावरण में मन डूबा ही रहा। एक दिन सबेरे-सबेरे एक लैम्प-पोस्ट के सामने पहुँचा। शान्ति निकेतन के ही एक मित्र साथ थे। उनसे पूछा, यह किसने बनाया है? वह बोले, किंकर दा का है।

श्री राम किंकर बैज भारत के प्रमुख मूर्त्तिकार हैं। मैं उनकी कितनी ही मूर्त्तियाँ पहिले देख चुका था। किन्तु यह लैम्प-पोस्ट देखकर चकित रह गया। इस लैम्प-पोस्ट में लैम्प-पोस्ट के तो सभी गुण थे ही किन्तु साथ ही वह एक आश्चर्य-जनक कृति भी थी। उसकी रेखाओं, उसके कोणों, उतार-चढ़ाव और चारों ओर घूमने से मन में आपोआप एक विचित्र प्रक्रिया होने लगती थी। दिवा-स्वप्न की भाँति अनेक बातें मन में उठतीं और विलीन हो जातीं। किन्तु उस कला-वस्तु के द्वारा किसी सामाजिक अर्थ, तथ्य अथवा सत्य तक मैं नहीं पहुँच पा रहा था।

दूसरे दिन किंकर दा से बातचीत हुई। इस लैम्प पोस्ट की भी मैंने बात उठाई। वह बोले—"मुझे जो कहना था, मैंने उस मूर्त्ति में कह दिया। तुम क्या समझे, यह तो तुम्हीं जानो।" किन्तु मेरा इससे सन्तोष होना सम्भव नहीं था। प्रश्न किया कि आखिर ऐसी कला-कृति का मूल्य क्या जो साधारण व्यक्ति के समझ में न आ सके। उनका उत्तर भी अजीब था। बोले, "अवनीन्द्रनाथ ठाकुर भी इस मूर्त्ति के चारों ओर घंटों तक चक्कर लगाते रहे और कोई अर्थ नहीं निकाल सके।" सुनकर चुप हो जाना पड़ा—जहाँ अवनीन्द्र बाबू जैसे महान् चित्रकार और कला-पारखी की भी कल्पना नहीं पहुँची वहाँ आपकी-मेरी क्या बिसात! एक बार तो प्रश्न का वहीं अन्त हो गया। किन्तु मन में शान्ति नहीं थी। इस 'अर्थहीन' प्रयोग में कलाकार कुछ कहना चाहता है, यह तो निस्सन्देह है, क्योंकि किंकर दा जैसा कुशल मूर्त्तिकार व्यर्थ ही कुछ निर्माण करनेवाला नहीं है। किन्तु वह है क्या?

और इस प्रश्न का उत्तर किंकर दा के मुख से नहीं, उनके कार्य से मिला। शान्ति निकेतन में चारों ओर उनकी बनायी हुई मूर्त्तियों की बहार-सी थी। उन सब के विषय साधारण थे, अर्थात् सामाजिक रूप से वे जो भाव मनमें उत्पन्न करना चाहते थे वह हो जाता था। रवि बाबू की कुटी—'श्यामली' के चारों ओर बनी हुई 'रिलीफ़ कृतियाँ', संथाल-परिवार, बुद्ध और गोपा आदि की विराट् मूर्त्तियाँ मन को मोह लेती थीं। ये कला-कृतियाँ बरसों की एकाग्र साधना का परिणाम थीं। और साधना के इसी दौर में वे अपनी भावनाओं को नित नये रूप में अभिव्यक्त करना चाहते थे, उसके लिए नये-नये मार्ग पाना चाहते थे, और उन कृतियों के द्वारा ही वे अपने नये प्रभाव भी उत्पन्न करना चाहते थे।

यहीं एक समस्या खड़ी होती है। जिन रूपों को हम संस्कार, संस्कृति, शिक्षा एवं अध्ययन के रूप में पा जाते हैं, उन्हें तो हम आसानी से समझ लेते हैं, किन्तु उनसे भिन्न जो भी बात कही जाती है वह प्रायः ऑब्स्क्योर (गूढ़) होकर हमसे दूर जा पड़ती है अर्थात् हम उसका अर्थ नहीं समझ पाते—हमारे लिए वह बोधगम्य नहीं होती।

इस प्रकार कला की तीन समस्याएँ सामने आ जाती हैं:

१. कलाकार की समस्या,

२. सामाजिक व्यक्ति की समस्या, और

३. कलाकृति की समस्या।

इन्हीं तीनों के बीच एक प्रकार का समझौता होना आवश्यक होता है, तभी कलाकृति की सार्थकता है; और कलाकृति की सार्थकता के साथ ही समाज और कलाकार की सार्थकता भी आ जुटती है।

परन्तु यहीं एक नया प्रश्न उठ जाता है कि क्या कलाकार उन्हीं तथ्यों तथा रूपों में अपनी बात कहेगा जिन्हें सामाजिक रूप से समझा-बूझा जाता है? अर्थात् क्या वही कलाकृति सार्थक होगी जो सामाजिक-ज्ञान की सीमा में आ सकती है? तब कला में नवीनता और प्रगति का प्रश्न ही कहाँ रहेगा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य की चेतना के विकास को अवसर ही कहाँ होगा? अस्तु, यहीं दूसरे तथ्य की स्थापना होती है कि वह समाज के ज्ञान से परे भी कुछ कहता है—कहना चाहिए—तभी उसकी सार्थकता है।

अब इसके बाद जो प्रश्न उठता है वह है केवल सन्तुलन का—परिवर्त्तन की उस डिग्री का जो सामाजिक रूप से 'संकेत' के क्षेत्र में आ जाती है और उसका जो इस डिग्री को भी पार कर जाती है। इस समाज के ज्ञान की परिधि में ही रहनेवाली कलाकृति और समाज के अज्ञान में प्रविष्ट हो जानेवाली कलाकृति दोनों ही अ-सार्थक और निष्प्रयोजन पिष्ट-पेषण मात्र हैं। किन्तु सार्थकता का यह सन्तुलन पाना किस प्रकार सम्भव हो? यहीं किंकर दा का लैम्प-पोस्ट समझ में आ गया। निश्चय ही ज्ञान की परिधि से बाहर यह प्रयोग प्रभावित हुआ है किन्तु इसका प्रयोजन सामाजिक व्यक्ति की परीक्षा नहीं, कलाकार के मन की अमूर्त्त भावनाओं और मूर्त्ति-कला की परम्पराजन्य स्थिति के बीच का संघर्ष मात्र है।

किंकर दा ने यही प्रयोग किया है कि प्रचलित पद्धतियों और भावों की अभिव्यक्ति के अभाव को वह किस प्रकार पूर्ण करें। यदि नहीं भी कर सकें तो कोई बात नहीं अपनी अन्य कृतियों द्वारा कला के रूपों में नवीनता और इस नवीन गूढ़ता में सामाजिक अर्थ उत्पन्न करेंगे।

कला के क्षेत्र में प्रयोग की वही उपयोगिता है जो श्री राम किंकर के अर्थहीन लैम्प-पोस्ट में है; किन्तु इस क्षेत्र में 'प्रयोग' नाम की वस्तु से ही चौंक पड़ना साधारण बात है। क्योंकि आज 'प्रयोग' की उस गम्भीर प्रयोजनीयता के प्रति न कवि सजग है और न पाठक ही।

कहा जाता है कि आज के युग में जटिलताएँ इतनी बढ़ गयी हैं कि पुराने रूपों, उपमाओं, छन्दों और शैलियों में कवि अपनी भावनाओं को व्यक्त नहीं कर सकता। इस धारणा के समर्थन में कवि अथवा कलाकार दूसरे विज्ञानों की सहायता से तर्कों की झड़ी लगा देता है और तर्क के इसी आधार पर अपनी भावना को वह ऐसी प्रयोग-जन्य जटिलता से अभिव्यक्त करता है कि साधारण पाठक चौंक उठता है या समझ ही नहीं पाता। किन्तु ज्यामिती की भाँति काव्य में समानान्तर का नियम लागू नहीं होता। यहाँ तो मौलिक अनुभूति ही वह आधार रेखा है जिसके समानान्तर काव्यमय अभिव्यक्ति हो सकती है। अब काव्यमय अभिव्यक्ति युग की जटिलता के साथ जटिल हो तो कोई बात नहीं; किन्तु चूँकि युग जटिल है इसलिए अभिव्यक्ति को भी जटिल होना ही पड़ेगा, यह तर्क बिल्कुल उल्टा है। और दुर्भाग्य से हिन्दी में 'प्रयोगवाद' के नाम पर चलने वाली कविताएँ इसी कोटि में आती हैं।

वास्तव में प्रयोग की स्थिति ही तब आती है जब कवि अपने युग की शैलियों में अपने को व्यक्त करने में असफल

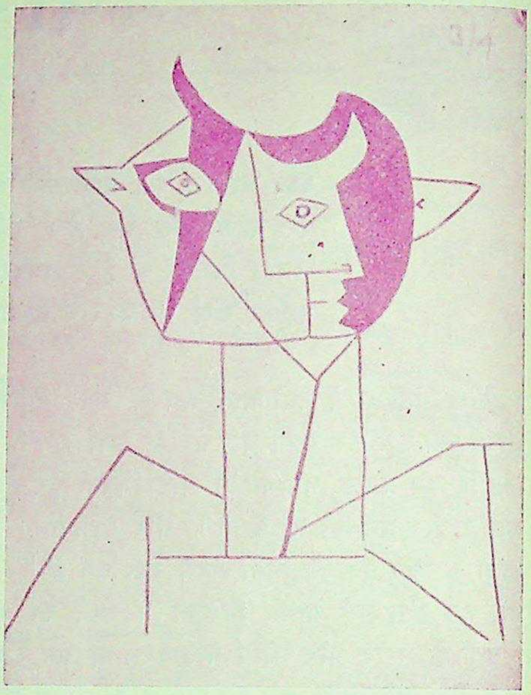

बत्तख

इस चित्र के शिल्पी पेबलो पिकासो विश्व के महान् चित्रकारों में से हैं। यह कृति गत वर्ष कलकत्ते की अन्तर्राष्ट्रीय चित्र-प्रदर्शनी में दिखायी गयी थी।

चित्र का विषय साधारण है: बत्तख। पर उसमें रेखाओं के आश्चर्य-जनक संयोजन द्वारा चित्रकार ने उस विषय से कहीं अधिक कहने का प्रयत्न किया है।

इस चित्र में देखने का ऐंगल, वस्तु की आपेक्षिक स्थिति और उस स्थिति का कम से कम रेखाओं द्वारा चित्रण—आदि कितनी ही समस्याएँ सामने आती हैं। 'रूप' ही यहाँ प्रमुख बन गया है; उसमें जीवन के जटिलतम सत्यों और वैज्ञानिक निरूपण तक पहुँचना पड़ता है।

प्रयोग की यह अवस्था साहित्य के क्षेत्र में भी देखी जा सकती है। हाँ, यहाँ वह सन्तुलन नहीं है जो सहजता से सामाजिक अर्थ का कलात्मक प्रतिपादन कर सके।

पाता है और मन की बात कोई न कोई रूप लेने को बाध्य हो जाती है। तब कविता के लिए प्रयोग लक्ष्य नहीं, आवश्यकता बन जाता है। और उस समय भाषा, भाव, छन्द एवं कल्पना सब कुछ आपोआप एक सन्तुलित अभिव्यक्ति बनकर कला में अवतरित हो जाते हैं। इस बात को यदि अनुभव करना है तो रवि बाबू की कविताओं की ओर जाना होगा। वहाँ अनुभव होता है कि भाव और वस्तु के साथ छन्द, भाषा एवं कल्पना ने स्वयं नये-नये मोड़ लिये हैं कि नये-नये भावों को उद्वेलित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

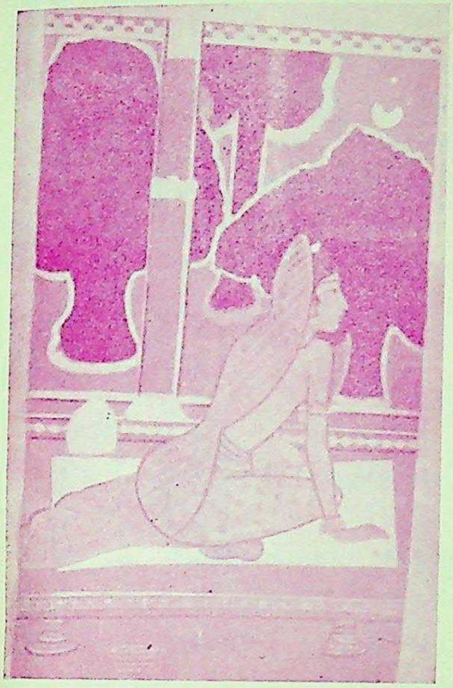

विरह

इस चित्र के शिल्पी आचार्य नन्दलाल बसु भी विश्व के महान् चित्रकारों में से हैं। यह कृति भी गत वर्ष कलकत्ते की अन्तर्राष्ट्रीय चित्र-प्रदर्शनी में दिखायी गयी थी।

चित्र का विषय चिर-परिचित है। इस विषय से और चित्र के भाव तथा रूप से हमारा युग-युगों से, अनन्त परम्पराओं से, सामाजिक-रागात्मक सम्बन्ध है।

शुभ्र निर्मल आकाश है, चन्दा और एक तारा खिले हैं। वातावरण में मधुचन्द्रिका का भावोत्तेजक आलोक घुला हुआ है। वृक्ष-वृक्ष के पात-पात में प्रिय-मिलन की आकांक्षा हिलोरें भर रही हैं। समूचा वातावरण ही विरह भाव को उद्दीप्त बनानेवाला है। नायिका की आतुरता उसके वस्त्रों, बैठने के ढंग, बिखरी अलकों, अनिमेष खुले नयनों और आकुल भाव-मुद्रा से लक्षित है।

यहाँ विषय के प्रतिपादन में वह सन्तुलन मौजूद है जो कला को अर्थ-गाम्भीर्य देते हुए उसे बोध-गम्य भी बना देता है।

करने के लिए काव्य के नये-नये उपकरण स्वयं ही जुटते चले गये हैं।

संघर्षपूर्ण संसार में व्यक्ति अपने जीवन-पथ का स्वयं निर्माण करता है। किन्तु व्यक्ति को बनाने और न बनाने के बीच सोचने का अवसर ही नहीं है यदि अवसर है तो केवल यही सोचने का कि जीवन को सार्थक बनाना है अथवा केवल पशुवत् जीवित रहना है। सार्थक बनाने की चेतना को जागृत करने के लिए मनुष्य के पास सबसे सुन्दर साधन है—साहित्य। कवीन्द्र रवीन्द्र इसी चेतना को जागृत करने के लिए लिखते हैं—

तोर आपन जन छाड़बे तोरे,
ता ब' ले भावना करा च'लबेना।
तोर आशालता प'ड़बे छिड़े
हयतोरे फल फ'लबे ना—
ता बोले भावना क'रा चलबे ना।
शुने, तोमार मुखेर वाणी
आस'बे घिरे बनेर प्राणी
तबु हय तो तोमार आपन घरे
पाषाण हिया ग'लबे ना
ता ब' ले भावना करा चलबे ना।

अर्थात् हे मनुष्य! यदि तेरे सब संगी-साथी तेरा साथ देने से इन्कार कर देते हैं तो उनकी चिन्ता में ही रहने से कोई लाभ नहीं। यदि तेरी आशा-लता मुरझा चुकी हो, उसकी हरीतिमा सूखे तिनकों में बदल गयी हो और उसमें अब कोई फल नहीं फलेंगे तो उसकी चिन्ता में घुलने से तेरा काम नहीं चलेगा। घोर जंगल में भयभीत होने पर तू पूरे कण्ठ से चिल्ला उठेगा। किन्तु तेरी उस आर्त पुकार को सुनकर केवल हिंसक पशु ही तेरे और निकट आने लगेंगे। तेरे अपने साथी कोई नहीं आयेंगे। उनका पाषाण-हृदय नहीं पसीजेगा। लेकिन इसकी चिन्ता से भी कोई काम नहीं चलेगा।

रवि बाबू की चार पदों की कविता है। इसके प्रत्येक पद में एक सार्थक-सांगोपांग कल्पना है। अब इसी भाव को वह दूसरी कविता में दूसरे रूप में व्यक्त करते हैं:—

विपदे मोरे रक्षा करो, ए न हे मोर प्रार्थना,
विपदे आमि ना येन करि भय।
दुःख तापे व्यथित चिते नाइ वा दिले सान्त्वना,
दुःख येन करिते पारि जय।
सहाय मोर ना जदि जुटे निजेर बल ना येन टुटे
संसारेते घटिले क्षति लभिले शुधु वंचन
निजेर मने ना येन मानि क्षय॥

अर्थ है: मेरी तुमसे यह प्रार्थना नहीं है कि मुझे विपदाओं से बचाओ मुझे केवल वह शक्ति दो जिससे विपदा में कभी भयभीत न हो पाऊँ। दुःख में मुझे सान्त्वना की आवश्यकता नहीं, मुझे तो दुःख को विजय करने की शक्ति चाहिए। मेरा कोई सहायक न हो तो चिन्ता नहीं, किन्तु मेरा पौरुष उत्तर न दे। जीवन में यदि हानि उठानी पड़ी और यदि लाभ वंचना ही बना रहा तो भी मन में कोई हानि न मानूँ, मुझे यही शक्ति दो।

(शेषांश पृष्ठ ५४ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

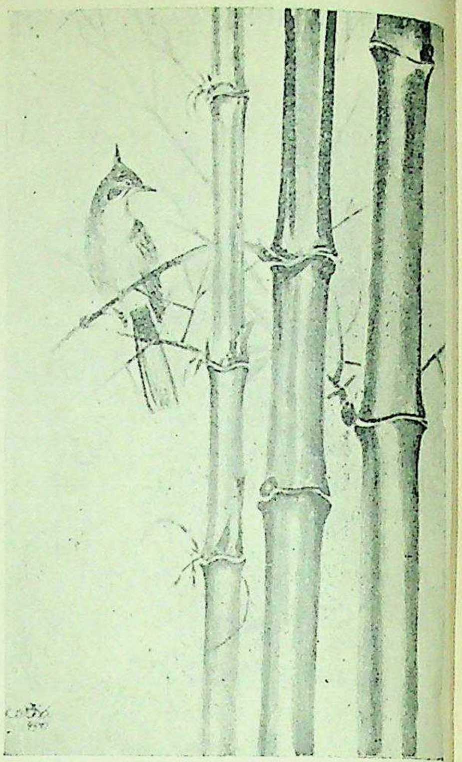

अरथी के तीन तीन इकाइयाँ

लाडली मोहन, एम० ए०

पागल किसे कहते हैं? पता नहीं। डिक्शनरी देखूँगा। शायद बकारों को पागल कहा जाता हो। क्योंकि नौकरी छूटने के बाद से ही तो लोग मुझे पागल कहने लगे हैं। मगर सड़कों पर चलते-चलते न तो मैं कोयले की लकीरें खींचता हूँ न कपड़े फाड़ता हूँ। हाँ, मुस्कुराता हूँ और हलवाई की जलेबियाँ कुतिया को . . .

डोंगरे का बालामृत एक पत्थर का नाम है जो प्रशान्त महासागर में लगभग एक हज़ार फिट की गहरायी पर पाया जाता है।

स्लार्डा, काल्पनिक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा का एक शब्द है जिसका अर्थ है चूहा।

सतयुग एक साप्ताहिक पत्रिका का नाम है जो एक बार देखने में अच्छी लगती है और दूसरी बार देखने में बुरी।

बेकारी हिन्दुस्तान की उस बारहमासी घास का नाम है जो ऊपर के तीनों वाक्यों की तरह निरर्थक होती है। हाँ यदि यह घास किसी व्यक्ति के शरीर से छू जाय तो वह भलामानस खुजलाते-खुजलाते बावला हो जाता है अथवा इससे भी परे आध्यात्मवादी बन जाता है।

मैं सड़क पर चलते-चलते न तो कोयले की लकीरें खींचता हूँ न राल टपकाता हूँ, न कपड़े फाड़ता हूँ, मगर हाँ, मुस्कराता अवश्य हूँ खिलखिलाता भी हूँ। बाज़ार की दुकानों पर बैठे हुए व्यक्ति अक्सर एक दूसरे से कहा करते हैं, "यह गोरा-गोरा आदमी जा रहा है न, यह जज था जज। बेचारा पागल हो गया है। इसके तीन बच्चे हैं उनकी बुरी दशा है।"

अथवा कहते हैं, "जब यह जज था तब इसने किसी ऐसे आदमी को सज़ा दे दी जो एक मिनिस्टर का रिश्तेदार था बात यहाँ तक बढ़ी कि इसे नौकरी छोड़नी पड़ी।

उस दिन टाउनहॉल के चबूतरे पर बैठा हुआ मैं फैसला लिख रहा था—रामसिंह और मोहन को तीन-तीन साल की सख्त कैद। कोई खिलाफ़ सबूत न मिलने के कारण राधारमण बरी किया जाता है। हा...हा...हा...ही..ही..राधारमण मिनिस्टर का भतीजा था....।

"अबे फैसला लिख रहा है", मेरा एक मित्र आकर बोला।

मुझे गुस्सा आ गया। उसे पकड़ कर पुलिस चौकी पर ले गया। और सिपाही से कहा, "देखिये दीवानजी, यह साला हमें अबे कहता है।"

सिपाही ने उसके एक धौल जमाते हुए कहा, "क्यों बे जज साहब को अबे कहता है।"

वहाँ पर एक सिपाही और खड़ा था उसने अपने साथी से कहा, "यह पागल वागल कुछ नहीं है। बनता है बनता। इसके एक बड़ी गजब की लौंडिया है।

मैंने अपने दोस्त से कहा, "चलो हजरत, वह हलवाई का कुत्ता हमें याद कर रहा होगा।

दोस्त ने पूछा, "क्यों जी, पागल किसे कहते हैं।"

"मुझे तो पता नहीं, डिक्शनरी देखूँगा. शायद बेकारों को पागल कहा जाता हो। क्योंकि नौकरी छूटने के बाद से ही लोग मुझे पागल कहने लगे हैं। और भाई सच बात तो यह है कि अब पागल बने रहने में ही लाभ है। नौकरी छूटने के बाद वकालत मेरे बस की नहीं थी, और कोई जगह मुझे मिली नहीं। एक दिन फर्नीचर गया। बच्चों ने पूछा: बाबूजी, यह कुर्सियाँ कहाँ जा रही हैं?"

प्रश्न सुनकर मैंने एक टीस अनुभव की, फिर आँखें भीग आयीं, और मुस्कराते हुए उत्तर दिया, "हमारे एक दोस्त के लड़के का ब्याह है बेटा, वहीं जा रही हैं।"

मगर फर्नीचर आने के लिए थोड़ा ही गया था।

जब पर्दे जाने लगे तब बच्चों ने फिर वही प्रश्न किया जिसके उत्तर में मैंने कहा था, "मैले हो गये हैं न, धोबी के घर जा रहे हैं बेटा।"

परसों ही मझले लड़के ने कहा था, "बाबूजी रोटी!"

उत्तर मैंने एक चाटें से दिया, बोला, "सूअर का बच्चा

(शेषांश पृष्ठ ५६ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोआनी लोक-नृत्य

○ पूर्णेन्दु जोशी ○

आज की ही सांस्कृतिक परम्पराओं की साक्षी है कि गोआ भारत का अंग है और यही होकर रहेगा

गोआ के साम्राज्यवादी शासकों का दावा है कि गोआ उनके पुर्तगाल का अभिन्न अंग है। और इतना ही नहीं, वे यहाँ तक कहते हैं कि गोआ की तो सारी संस्कृति ही भारत की संस्कृति से भिन्न है। सच तो, हम में से कितने हैं जो गोआनी जनता के सांस्कृतिक जीवन से परिचित हैं।

गत वर्ष गणतन्त्र दिवस के अवसर पर दिल्ली में एक विराट् लोक-नृत्योत्सव मनाया गया था। उसमें एक नृत्यमण्डली गोआ से भी आकर शरीक़ हुई थी। उसका नृत्य-प्रदर्शन इस सत्य का प्रत्यक्ष प्रमाण था कि गोआनी संस्कृति सचमुच भारतीय संस्कृति का ही अंग है और कि गोआनी जनता को कोई भी सत्ता अब भारतीय जनता से अधिक काल तक विलग नहीं रख सकती।

एक बार को इस नृत्य-मण्डली की कला ने उन भारतीयों की भी आँखें खोल दीं जो अभी तक गोआनियों को इसी रूप में जानते थे कि विदेशी भोजन बनाने की कला में वे सबसे कुशल और कुशाग्र होते हैं। और जिस हार्दिकता तथा मुक्तता से उस लोक-नृत्योत्सव में उपस्थित हज़ारों भारतीयों ने उन गोआनी कलाकारों का अभिनन्दन किया उससे भी यह सिद्ध होता था कि आज़ादी के लिए लड़नेवाली गोआनी जनता मूलतः और वस्तुतः भारतीय जनता का ही एक अंग है।

इस मण्डली में जितने भी गायक और नर्तक थे सभी ईसाई, कट्टर रोमन कैथॅलिक धर्मावलम्बी थे। किन्तु जो गीत उन्होंने गाया वह पुर्तगाली, गोआनी या अँगरेजी भाषा का नहीं था; वह कोंकणजी का था। कोंकणी भाषा महाराष्ट्र के एक भाग की बोली है। और यह गीत भी कहरवा में बँधा हुआ था। कहरवा समूचे उत्तर भारत में प्रचलित है। वे लोग उसे 'खेरवा' पुकारते थे।

जिस नृत्य विशेष का उन्होंने विशेष रूप से प्रदर्शन किया वह निरा साधारण लोक-नृत्य ही नहीं था, बल्कि भारतीय राष्ट्र की आजीविका के मूल आधार कृषि से सम्बन्धित था। वह फ़सल काटने के समय का निर्धन और शूद्र कोंकणी कुनबी समाज का एक नृत्य था। ये कुनबी लोग उत्तर प्रदेश और बिहार में ही नहीं, काफ़ी संख्या में गोआ में भी पाये जाते हैं।

नृत्य की एक भाव-मुद्रा

विदेशी पुर्तगालियों ने बलपूर्वक इनके प्रदेश पर आधिपत्य जमा लिया और उन्हें जन-बच्चा ईसाई बनने को बाध्य किया। फिर भी, मण्डली के नेता ने गौरव के साथ बताया, पराधीन हो जाने पर भी "हमने अपनी भाषा को बनाये रक्खा और यों अपने नृत्यों-गीतों को बचा लिया। यह हमारा अपने नृत्य, गीत और भाषा से मोह ही है जो आज हमें फ़ासिस्टी पुर्तगाल से आज़ादी के लिए लड़ने और भारत में एक हो जाने के लिए अग्रसर होने की प्रेरणा और शक्ति देता है।"

इस नृत्य का रूप यह था। गाते और ढोल बजाते हुए कुनबियों की एक टोली मंच पर आती है। उनकी देह पर रंग-बिरंगी आधी बण्डियाँ और चेकदार गमछों की घुटनों तक धोतियाँ-सी थीं। उनके उन गीतों में वर्ष की पहिली खेती और फ़सल से धन-धान्य की बढ़ती की कामनाएँ भरी थीं।

इस पुरुषों की टोली के गीत-आह्वान के उत्तर में चोली और चमकीले घाघरे पहिने हुए कुमारियों की एक टोली प्रकट होती थी। और उनके पीछे घास-पात और टोकरियों आदि का ढेर रहता। फ़सल-कटाई की कला में कुशल ये कुमारियाँ एक परम्परागत गीत गातीं। यह गीत तीन मूलभूत स्वरों पर आधारित रहता। और गीत के साथ ही साथ वे फ़सल काटने,

एक दूसरी भाव-मुद्रा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीटने और चालने की क्रियाएँ सहज, सुन्दर और मनोरम नृत्य-चेष्टाओं द्वारा प्रदर्शित करती थीं।

सामने एक ओर को छह किसान गमट और मैडियन आदि वाद्ययन्त्र बजाते रहते थे और एक ग्वाला बाँस की साधारण मुरली पर नृत्य और संगीत के उस प्रदर्शन में दर्दीला प्राण फूंकता रहता था। यह गमट मिट्टी का बना हुआ कोंकणी ढोल होता है जो एक ओर बहुत कम चौड़ा और खुला रहता है और दूसरी ओर बहुत फैला हुआ वृत्ताकार होता है। इस पर गिरगिट की खाल मँढी रहती है।

निरन्तर नृत्य चेष्टाएँ दिखाती वे कुमारियाँ जो गीत गातीं उसमें, उसके स्वरों में, बड़ी व्यथा भरी होती। उसके द्वारा वे प्राकृतिक शक्तियों का आह्वान करती थीं। इस आह्वान का उत्तर वे पुरुष देते। गोआनियों की मान्यता के अनुसार वे प्राकृतिक शक्तियाँ उन पुरुषों की देह में ही अवतरित हुई रहती हैं।

धीरे-धीरे गीत को द्रुत में उठाते हुए वे किसान वादक फिर सबको फ़सल का वैभव बटोरने के लिए बुलाते हैं। तभी चार कुमारियें भोजन की थालियाँ लिये कुमारियों की उस टोली में आकर मिलती हैं। और फिर गीत और नृत्य एक अत्यन्त उल्लासपूर्ण रूप ले लेता है और वे सब किसान कुमारियाँ अपनी अपनी टोकरी उठाकर झुक-झूमती चेष्टाओं के साथ वृत्ताकार घूमती हुई नृत्य-कला का प्रकार-प्रकार से प्रदर्शन करती हैं।

इस नृत्य को सहज सौन्दर्य, कला और प्रभावकता की पराकाष्ठा तक पहुँचाने में भाग लेनेवालों में से सभी का योगदान रहता है। पुरुष लोग उसमें तीन रूपों में आते हैं: गायक, वादक और कुछ किसान दर्शक। बिल्कुल आरम्भ में जो टोली मंच पर आती है वह इन गायक-वादकों की ही होती है। नृत्य की सारी भूमिका कुमारियों पर ही रहती है। वे ही इस नृत्य की, फ़सल कटाई आदि की, सब प्रक्रियाएँ और चेष्टाएँ प्रकार-प्रकार से व्यक्त और प्रदर्शित करती हैं। पुरुषगण तो संगीत और वाद्य के माध्यम से महज़ उन कुमारियों के श्रम की थकान हल्की करते हुए उनमें निरन्तर स्फूर्ति और उल्लास का संचार करते रहते हैं।

नृत्य का यह फ़सल-कटाई अंग समाप्त होते ही फिर सब कोई अपनी इस श्रम-सफलता के आनन्द में विभोर होकर अन्तिम गीत-नृत्य और गीत का प्रदर्शन करते हैं।

इस लोक-नृत्य में जो हाव-भाव वे कुमारियाँ दिखाती हैं, इसके लगभग हैं। और वे यों हैं:—

पहिला: बारहों कुमारियाँ मंच पर एक पाँत में प्रकट होती हैं। हरेक के गले में, स्कार्फ़ जैसा, एक चटकीले रंग का रूमाल बँधा रहता है; और बायें हाथ से कमर पर टोकरी सम्हाले रहती हैं। इस प्रकार वे दायें-दायें बायें बायें नृत्य की पदचाप दिखाती आती हैं।

इसी पदचाप की पुनरावृत्ति करते हुए वे गले से रूमाल खोल कर दाहिने हाथ से हवा में घुमाती फहराती हैं। और तभी पाँत के दोनों सिरों की कुमारियाँ दो वृत्त बनाती अग्रसर होती हैं और फिर एक पाँत हो जाती हैं।

तब रूमाल और टोकरी को धरती पर रखकर वे बैठ जाती हैं और हाथों तथा देह के अन्य अंगों की मनोरम चेष्टाओं द्वारा फ़सल काटने और बटोरने की प्रक्रियाएँ व्यक्त करती हैं।

दूसरा: उन्हीं दायें-दायें, बायें-बायें पदचापों से प्रारम्भ करके समकोण बनाते हुए फिर वे कुमारियाँ दो और उसके बाद चार समानान्तर सरल रेखाओं के रूप में फैल जाती हैं। उनकी कोमल इकहरी देह मनोहर गति से झूमती रहती है जब कि अपने हाथों द्वारा वे काटा और बटोरा हुआ अन्न चालने की प्रक्रिया प्रदर्शित करती हैं।

तीसरा: उन्हीं पदचापों से फिर वे कुमारियाँ दो वृत्त बनाती हुई विभिन्न दिशाओं में अग्रसर होती हैं—जैसे काम पूरा करके अब अन्न ले जा रही हों।

चौथा: इस बार पहिले से बड़े वृत्त का रूप लेकर हाथों को बड़ी सुकुमारता से कमर पर रखे रहती हैं और पदचाप अब दायें-बायें, बायें-दायें बढ़ाती हैं।

पाँचवाँ: इस भाव में उस वृत्त को भंग करके वे सब दो दो की जोड़ी में बँट जाती हैं और दायें-दायें, बायें-बायें पदचाप रखती हैं।

छठा: पदचाप यही रखते वे दोनों हाथों से तालियाँ पीटती जाती हैं और अपने श्रम की सफलता पर हर्ष प्रकट करती हैं।

सातवाँ: फिर वृत्त के रूप में इकट्ठी होकर उसकी परिधि से केन्द्र की ओर को दायें-दायें, बायें-बायें पदचाप से बढ़ती हैं।

(शेषांश पृष्ठ ५५ पर)

नृत्य का एक अत्यन्त भाव-पूर्ण और मनोरम भाग

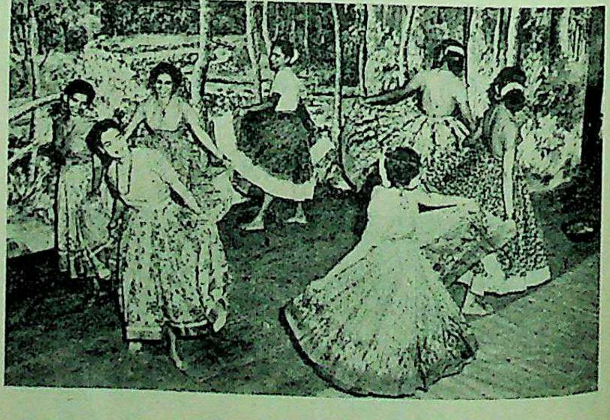

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूर्वादल

जीवन का लेखा

त्रिलोचन

★

जाना था। कण्ठ से कहा, 'अच्छा चलूँ, विदा।'
एक कचोट उठी मन में पर पाँव बढ़ाये
मैंने पथ पर। मुड़ कर देखा, दृश्य से भिदा,
मूर्ति तुम्हारी वहीं अचल थी। चाप चढ़ाये
ममता मेरे पीछे थी, ये पाठ पढ़ाये
किस धन्वी ने सोचूँ तब तक जी भर आया।
मन ने आभूषण कब किस से नहीं गढ़ाये
पर यह तो कुछ और बात थी। हाथ हिलाया,
आशय था, 'जाओ ! जाओ घर' लेकिन पाया
तुम्हें स्तम्भवत्। सूरज को देखा। पथ देखा।
पाँव उठाये। दो डग चला। दीर्घ थी छाया।
मुड़ कर देखा तुम्हें, लिया जीवन का लेखा।

हम मनचाही विदा कहाँ ले दे पाते हैं,
कब जीवन-नौका सागर में खे पाते हैं।

तुम्हें तो

शमशेर बहादुर सिंह

★

तुम्हें तो आसान था जाना कहीं भी—
कौन जाने !
मैं हि दोषी था : तुम्हें उन्मुक्तता थी,
तुम जिसे चाहो वरो; फिर क्यों ठहर कर
तुम्हें हेरा मौन अपनी ओर मैंने,
साध बाँधी समय के बिछुड़े हृदय से ?
तुम, कि थीं उन्मुक्त वातायन हृदय की,
देखता था मैं तुम्हें अभिसार करते
स्वार्थ के अपने भविष्यत् में, मधुरतम
स्वप्न बनते प्रेम-जीवन का। मधुरिमे,
मैं, कि बन्दी भूल का था, प्रेम का था,
मौन का था,
देखता था तुम्हें आठों याम यों ही।

संकेत

शमशेर बहादुर सिंह

★

यों प्रकाशित हो सके, वह तू नहीं
याद का मोती कोई आँसू नहीं।
प्राण कहते हैं : मधुरतम दीप्ति में—
आत्मा की लौ जली, लोहू नहीं।
तू मेरे एकान्त का एकान्त है;
मैं समझता था कि मेरा तू नहीं।
तू नहीं तो एक सुपना है बहार;
तू नहीं तो फूल में ख़ुशबू नहीं।
तुझ बिना सब शून्य है, सब अर्थहीन;
क्या रहा संसार में, जब तू नहीं !
भंगिमाएँ हों बहुत तो क्या हुआ;
व्योम के मेहराब में वह भ्रू नहीं।
ठेठ हिन्दी की ग़ज़ल 'शमशेर', आह,
शब्द में संकेत हैं, जादू नहीं।

गीत

राममनोहर त्रिपाठी

★

करने से कहना यों तो आसान बहुत है
बढ़ो पथिक चलने को रेगिस्तान बहुत है

मन के सोए गीत सदैव जगे लगते हैं
और दूर से जैसे ताड़ सगे लगते हैं
किन्तु निकट पहुँचो तो उनमें छाया कम है
तब कैसा विश्राम अभी मैदान बहुत है

मधुपों की स्तुति से प्रत्येक सुमन खिलता है
बड़ी खोज से मन का साथी मन मिलता है
वैसे दुनिया से कम परिचय ठीक रहेगा
दुनिया के बाहर जिसकी पहिचान बहुत है

पूजो उसको जो अपना बन कर रह जाये
कब पूजा के देव पुजारी के हो पाये
निकल चलो छलिया भगवानों की बस्ती से
जीवन-साथी एक भला इन्सान बहुत है

मन की शंकाएँ व्यवधान बनेंगी पथ में
शायद प्रतिद्वन्द्वी भी हो जायें इति अथ में
तब भूला राही गुरु की क्या खोज करेगा
पथ दर्शन को नभ का नखत निशान बहुत है।

❀

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बरजी मैं काहू की नाहिं रहूँ

कोमल कोठारी, एम० ए०

वह नारी थी और नारी की परवशता लेकर सब कुछ हार चुकी थी। इतिहास ने आज तक पुरुष के ओज के ही गीत गाए हैं। किन्तु पुरुष की इस कीर्ति की घोर गर्जना में मीराँ का स्वर डूबता-उतराता-सा लगता है--पर इस प्रचण्डता में भी इस नारी का कोमल स्वर खो नहीं सका--सारे कोलाहल के ऊपर स्वतन्त्रता का यह स्वर 'बरजि मैं काहू की नाहिं रहूँ'--आज भी सुनाई दे रहा है।

गीतों की सुमधुरता और नारीत्व की सुकोमल भावनाओंसे अलंकृत मीराँ का काव्य मानव जाति को एक अभूतपूर्व सन्देश देता है: वह शाश्वत सन्देश है मनुष्य की अन्ततः स्वतंत्रता का। विपरीत परिस्थितियों और संघर्षों के बीच मनुष्य का विकास एक फूल की तरह हुआ है और विकास की चरम अवस्था ही जीवन का सत्य बनी है। उसका डाल से गिर पड़ना, सूख जाना वास्तविकता भले हो--वही सत्य नहीं है। और मीराँ के पूरे काव्य में इसी कल्पना के ताने-बाने का रंग बना है, बिखरा है।

मीराँ के जीवन काल और जीवन संबंधी घटनाओं के विषय में अनेकों मतभेद हैं और उन पर खूब चर्चा हुई है। और जब तक कि कोई नवीन ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त नहीं हो जाती तब तक मीराँ का काल संवत् १५५५ से १६३० तक ही मान लेना चाहिए। समय के इन दो छोरों के बीच ही मीराँ का पार्थिव शरीर इस दुनिया में रहा और उनके जीवन की लगभग सब प्रचलित घटनाओं का क्रम भी इसमें समा जाता है। तिथियों के मतभेद में इतिहास को अधिक चिंता करने की आवश्यकता है, काव्य-क्षेत्र में तिथियों की सार्थकता अपने आप में जितनी अधिक नहीं है, उतनी उस समय की प्रवृत्तियों के खोजबीन की है। और मानवीय प्रवृत्तियों के इतिहास के चरण वर्षों के नहीं, युगों के होते हैं। इसलिए मीराँ के जीवन काल की परिस्थितियों और उस समय के वातावरण को समझना ही हमारा उद्देश्य हो सकता है।

शून्य, सहज, रहस्य, चिर और शाश्वत आदि की कितनी ही कल्पनाएँ क्यों न की जायँ, वस्तुतः कविता की आधारभूमि मनुष्य की भौतिक, सांसारिक और दैनन्दिन परिस्थिति-जन्य अनुभूति ही है। इन परिस्थितियों के परिवर्तन और तत्संबंधी भावनाओं के परिवर्तन में एक अविच्छेद सम्बन्ध है। इसीलिए तो मनुष्य के मानसिक विकास के साथ शाश्वत ब्रह्म के चिरन्तन स्वरूप में भी परिवर्त्तन होता रहा। महाभारत के नीतिज्ञ कृष्ण, आभीरों के वन देवता कृष्ण, माध्वाचार्य और निम्बार्काचार्य के राधामय कृष्ण, जयदेव और विद्यापति के शृंगारी राधा-कृष्ण--निश्चय रूप से कृष्ण के विकास पूर्ण दार्शनिक स्वरूप हैं। इस परिवर्तन की तह में मनुष्य की बदलती हुई आवश्यकताएँ और परिस्थितियाँ हैं।

परिस्थितियों की इस प्रमुखता के कारण मीराँ के काव्य का संवेदन-स्वर अत्यन्त तीखा, उग्र और चुनौती का बनता चला गया है। राणा और उनके परिवार के स्पष्ट विरोध ने मीराँ की साधना को भौतिक अनुभवों की कठोर आधार-शिला पर ला दिया था। विद्वानों ने मीराँ सम्बन्धी जन-श्रुतियों को इधर-उधर कतर-ब्योंत करके तर्क की कसौटी पर ठीक उतरने योग्य बना लेने में कसर नहीं रखी, किन्तु इससे एक ओर जीवन और काव्य का सम्बन्ध दूर जा पड़ा और दूसरी ओर एक असंभव कल्पना की असंगति को भी स्वीकार करना पड़ा। आज ज़हर का अमृत हो जाना, यदि वह वास्तव में ज़हर है तो, अथवा सर्प का शालिगराम या नवलखे हार का फूल की माला हो जाना--विश्वास की परिधि में यह सब बातें आती नहीं हैं। आज सोचा भी नहीं जा सकता। हाँ, इतना अनुमान किया जा सकता है कि राणा विक्रमादित्य ने मीराँ का संकल्प तोड़ने के लिए, अपने परिवार की शान को निभाने के लिए मीराँ को मार डालने का भरसक प्रयत्न किया होगा। इस विषय में यह चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं कि ज़हर का प्याला या साँप का पिटारा या मीराँ के जीवन को समाप्त करने का प्रयास इस राणा ने किया या उस राणा ने किया अथवा उसके मन्त्री बीजावर्गी ने किया। यह सत्य तो निश्चित है कि उस सामन्ती परिवार और व्यवस्था में मीराँ जैसे स्वतंत्र व्यक्तित्व की नारी को स्वीकार नहीं किया जा सकता था। उस समय की संपूर्ण व्यवस्था ही मानो हलाहल का प्याला लेकर मीराँ के पदों को कुंठित करने के लिए खड़ी थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीराँ किसके इन्कार किये, अपने साध्य को भुला देती? जिसके जीवन ने रुकना नहीं जाना, वह रुकने को कैसे तैयार होती? सखि को सम्बोधित करके वे सारे समाज को सुना देना चाहती हैं कि साधु-संगति में बैठकर ही वे हरि-स्मरण का असीम सुख लेंगी। वह साधु चाहे कोई भी हो––नीचा हो, ऊँचा हो, अमीर हो, गरीब हो, निरगुणिया हो या सगुणिया हो। वे तामसिक समाज से दूर एक सात्विक भावनाओं वाले लोक में विचरण करेंगी। सब कुछ लुटाकर, अपना सिर न्यौछावर करके अपने ईश को स्मरण करती रहेंगी। उनका दृढ़ निश्चय है: "बरजि मैं काहू कि नाहिं रहूँ।" ससीम जीवन मीराँ के लिए मृत्यु से बढ़कर है। गीतों की स्वच्छंद गति में बाधा उन्हें स्वीकार नहीं। यदि किसी ने प्रश्न किया तो उसका सीधा और सरल उत्तर है––तुम्हारे 'बरजने' से मैं चुप नहीं रह सकूँगी और इससे आगे वे गाने लगती हैं, 'दरस बिन दूखण लागे नैन।' परन्तु इन दुःखी नैनों की प्रतीक्षा कभी समाप्त नहीं हुई। पिया मिलन की प्रतीक्षा में 'प्रीतम' को लुभाने के लिए आत्म-विस्मृत अभिमान के साथ गा उठती हैं:––

कहो कुसुम्बी सारी रंगावाँ, कहो तो भगवा भेस।
कहो तो मोतियन माँग भरावाँ, कहो छिटकावाँ केस।।

"तुम कहो, वही रूप बना लूँगी। तुम्हारी इच्छा, अभिलाषा मुझमें साकार होना चाहती है। मुझे सुहागिन बनाना चाहते हो तो प्रेम की कुँसुम्बल सारी पहिन लूँ। कहो तो मोतियों से माँग को सजाकर सौन्दर्य की रानी बन जाऊँ! नहीं, नहीं, तुम्हें यह स्वरूप कहाँ लुभाता है? भगवे वस्त्रों में योगिन बन जाऊँ, तुम्हारे लिए! और केशों को अपनी चंचलता में बिखर जाने दूँ?" लेकिन मीराँ का जन्म एक सामन्ती परिवार में हुआ था। वह राजकुमारी और रानी थीं। और वैधव्य ने उन्हें शीघ्र ही ग्रस लिया था। सांसारिक पति को खोकर नारी ने अपना जीवन खो दिया था।

साधुओं की संगति में बैठना चाहती थी, जन-समाज के निकट जाकर उनके सुख-दुःख की साझीदार बनना चाहती थी। जीवन में शील और संतोष धारण करके समता का वरदान प्राप्त करना चाहती थी––'शील संतोष धरूँ घट भीतर, समता पकड़ रहूँगी।' मीराँ इतना कहकर ही चुप नहीं रह जाती। इस समता का जो कोई विरोध करता है, मीराँ उन्हीं का विरोध करती है। यदि इस कार्य में शिशोदिया रूठे तो अपना राज ही तो रखेंगे? मीराँ तो उस गोविन्द के गुण गाती रहेंगी। जिसकी दृष्टि में सम्पूर्ण चराचर समान है। मीराँ को हरि के रूठने से भय अवश्य है, वह व्यर्थ के देशाचार और लोकलाज के घूँघट के परे अपने जीवन-लक्ष्य को पाने के लिए तत्पर रहेंगी। युद्धों के डंकों के बीच पली मीराँ ने मनुष्य की भूमि-विजय-यात्रा में उल्लास नहीं पाया। मनुष्य की आक्रमणात्मक प्रवृत्ति से मीराँ को घृणा थी। लेकिन प्रेम के 'निसाँण को घुराने' में उन्हें अथाह आनन्द प्राप्त होता था। विजयी सेना की प्रत्येक डंके की चोट में विश्वास की ध्वनि निकलती है और मीराँ के निर्भय प्रेम के डंके में उससे भी अधिक विश्वास का 'अनहद नाद' ध्वनित होता है:

सीसोद्यो रूठ्यो तो म्हारो काँई कर लेसी।
म्हें तो गुण गोविंद रा गास्याँ हो माय।।
राणोजी रूठ्यो, वारों देश रखासी।
हरि रूठ्याँ कुम्हलास्याँ हो माय।।
लोक लाज की काण न मानूँ।
निरभै निसांण धुरास्याँ हो माय।।

प्रेम की निर्भयता का यह डंका मीराँ को सस्ते भाव नहीं मिला, बहुत मँहगा मिला था। सस्ती वस्तु को मँहगे भावों में खरीदकर कौन छिपाने का प्रयत्न नहीं करता? परन्तु बजते हुए ढोलों के बीच अपने को प्रेम-दीवानी उद्घोषित करती हुई, मन्दिर में चुटकियाँ देकर नाचनेवाली मीराँ ने

सामन्ती समाज में नारी के पाँवों में परतंत्रता की सबल बेड़ियाँ पड़ चुकी थीं। अरस्तू के शब्दों में वह आत्मा-विहीन शव हो चुकी थी। नारी की स्वतंत्र सत्ता थी ही नहीं। बाल्यकाल में पिता के अधीन, यौवनकाल में पति के अधीन और वृद्धावस्था में पुत्र के अधीन––स्त्री के लिए यही व्यवस्था हिन्दू समाज में मनु कर गये थे। तब मीराँ की इस उच्छृंखलता को कौन बरदाश्त करता? एक ओर नारी की यह शास्त्र-सम्मत निरीहता और दूसरी ओर राजस्थान के राजपूतों का युद्धों में तल्लीन रहना। आज राव दूदाजी से मेड़ता छीन लिया गया, कल राणा रत्नसिंह को चित्तौड़ से भागना पड़ा। इस हालत में स्त्रियों की अवस्था बहुत करुणापूर्ण थी। कहा जाता है कि संवत् १५९३ के लगभग चित्तौड़ के युद्ध में १३ हजार स्त्रियों को सती होना पड़ा था। नारी पूर्णतया मनुष्य पर निर्भर थी। उसका अस्तित्व, जीवन, मान्यताएँ, भक्ति-भावना, व्यक्तित्व सब कुछ मनुष्य की कृपा पर निर्भर था। ऐसी हालत में विधवा मीराँ ने कृष्ण को अपना पति माना था। पति ही नहीं माना था––उसे साधना का लक्ष्य बनाकर,

(शिल्पी पुलिन दत्त के सौजन्य से)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, H...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज के कृत्रिम बन्धनों को अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व के बल पर तोड़ दिया था। यों तो मीरा के पदों द्वारा समाज और परिवार का विरोध, संघर्ष के रूप में स्पष्ट होकर नहीं आता। पर मीराँ को अपनी कविताओं और जीवन के आदर्श को प्राप्त करने के लिए कितना संघर्ष करना पड़ा होगा, उसका आज बीसवीं शताब्दी में बैठकर अनुमान किया जा सकता है! एक क्षण के लिए कल्पना कीजिए—'राजस्थान का एक मध्य- युगीन परिवार, सामन्ती रीति-रिवाज और उस पर भी राजपूतों का एक राज्य-परिवार, उत्तरी भारत में लगातार युद्धों की स्थिति; स्त्रियों की सुरक्षा का प्रबन्ध केवल धधकती हुई चितायें; ग्यारह-बारह वर्ष की अर्ध-विकसित कलियों का विवाह, क्योंकि आजकल दिन खराब हैं, पर्दे की घोर प्रथा—नाखून भी पर-पुरुष न देख सकें; विधवाओं की स्थिति—उठते हुए यौवन में काले वस्त्रों में सुसज्जित, त्याग की प्रतिमूर्त्ति नवयुवती; इन सब बातों के पश्चात् एक राजघराना जहाँ दास-दासियों की चहल-पहल, सांसारिक सुखों की विराट आयोजना, वीरत्व की कथाएँ और वृद्धावस्था में थोड़ा कुछ धर्म भाव भी (राव दूदाजी वैष्णव भक्त थे और मीराँ को इन्हीं से भक्तिभाव उत्तराधिकार में मिला था) किसी भी खाते-पीते परिवार में थोड़ा-बहुत भक्तिभाव होना ही तो चाहिए। 'सबहि भुलाना पेट के धंधा' यह तो कोई ठीक बात नहीं! लेकिन जहाँ यह धर्मभाव समाज के व्यवहारिक सम्बन्धों को अस्वीकार करके आगे बढ़ना चाहता है तो खलबली मचती है। ऐसी ही कुछ मीराँ के परिवार की स्थिति थी। मीराँ का पीहर राजस्थान के प्रमुख सामन्ती सरदार का था और ससुराल तो राजस्थान के इतिहास में प्रसिद्ध घर शिशौदिया वंश में था। इन घरों में पली एक स्त्री ने सब स्त्रियों और मनुष्यों के बीच—उस समय की सब मान्यताओं, विश्वासों और संस्कारों को अस्वीकार करके—वीरत्व और सतीत्व की अतिशयोक्तिपूर्ण कथा-कहानियों के पार एक सम्पूर्ण मानव सत्य को पहिचानने का प्रयत्न किया था। जहाँ तत्कालीन युद्धों की विभीषिका नहीं थी, जहाँ जीवों को सताया नहीं जाता था, जहाँ मनुष्य प्रेम की डोर में बँधा एक-दूसरे का सहायक था, जहाँ नारी के चरणों में पायल की रुनझुन के नाम पर भारी लोहे के लंगर नहीं पड़े थे, जहाँ समाज के पिटारे में बन्द 'लोक लाज' के सर्प भी फूलों का हार बन जाया करता था, जहाँ 'कुलकानि' का विष भी अमृत बनकर होठों को तृप्त कर जाता था। मीराँ ने ऐसा ही संसार बनाया था!

> **अपराध ? जिसे हम थोक में ताजीरात कहेंगे उसी का अपराध एक फुटकर विभाग है।**
>
> ❀
>
> **जब तक ये जेलें हैं तब तक यह तो सोचना ही नहीं चाहिए कि हम में से कौन वहाँ बन्द कर दिया जाता है ?**

मीराँ के पदों से आध्यात्मिक और रहस्यात्मक स्वरूप हटा लेने पर यही शुद्ध, सुन्दर और स्वस्थ संसार शेष रह जायगा क्योंकि कृष्ण प्रेम के आवरण में उनके सामाजिक बन्धनों के तिरस्कार का स्वर इतना ऊँचा है कि बार-बार लौकिक अवस्था की ओर ही दृष्टि जाती है। कृष्ण के साथ फागुन माह में होली के चार दिनों को विविध प्रेमरंगों में खेलकर बिताने के बाद, मुरली, चंग और डफ की कथा कह देने के पश्चात, नैनों के लोभ की अकथ कहानी कह लेने के उपरान्त मीराँ को कहना ही पड़ता है—'लोक कुटुम्बी बरजि बरजँहि बतियाँ कहत बनाई।' समाज का नकारात्मक रौद्र रूप और मीराँ का दृढ़ प्रत्युत्तर—'बरजि मैं काहू कि नाहि रहूँ।'

जीवन के अनुभव की इसी कठोर शिला पर रचा गया काव्य मीराँ को अन्य कृष्ण भक्तों से पृथक कर देता है। विद्यापति ने कृष्ण और राधा के माधुर्य स्वरूप पर सरस कविताएँ रची हैं—उनकी अनुभूति, भक्ति, कल्पना और स्त्री-पुरुष के मिलन की आतुरता पर निर्भर है। वे राधा और कृष्ण की लीलाओं के सहृदय अभिव्यक्ता हैं। उनके काव्य में भावना और कल्पना का सुन्दर सामंजस्य है—सौन्दर्य ही उनका लक्ष्य है; परन्तु मीराँ के पदों में सामाजिक अनुभवों का कड़ुवा स्वाद रहता है। वे जिस पथ पर जाना चाहती हैं वहाँ बाधाओं का संसार साथ चलता है। विद्यापति को काव्य-प्रतिभा के साथ रचना-कौशल वंश-परम्परा से मिला था। इनके पिता गणपति ठाकुर ने 'गंगा-भक्ति-तरंगिनी' नामक पुस्तक लिखी थी। विद्यापति जिस वातावरण में उत्पन्न हुए, उस वातावरण में विद्यापति-सी प्रतिभा रखने वाले को उच्च-कोटि का कवि होना ही चाहिए था। लेकिन इधर मीराँ का वातावरण तो युद्धों का, नारी की परवशता का, लोक-लाज का वातावरण था। विद्यापति का कार्य महाराज शिव सिंह के राज दरबार में कविता करने का था और इधर समाज के नियमानुसार मीराँ का कर्त्तव्य शिशोदिया वंश की विधवा बहू बनकर किले की कठोर चहारदीवारी में अपनी प्रतिभा को कुंठित कर लेने में था। विद्यापति की शिक्षा-दीक्षा उन्हें विद्वान और कवि ही बना सकती थी; परन्तु मीराँ की शिक्षा-दीक्षा चाहे उन्हें लक्ष्मीबाई बना देती या चिता में प्राणों की आहुति देनेवाली पद्मिनी ही बना सकती थी। मीराँ जो कुछ बनी उससे साफ है कि उन्होंने साधारण स्त्री का मार्ग छोड़कर, अपने स्वतंत्र निर्भीक व्यक्तित्व से नया ही मार्ग बनाया था। इन सबसे ऊपर एक और महत्व की बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि वे नारी थीं। गौतम बुद्ध की सिद्धि और तपस्या के लिए उनका पुरुष होना एक बड़ी सार्थकता थी। बुद्ध को महानिभिष्क्रमण के लिए उचित रात्रि ही चुननी पड़ी और नये जंगलों तथा नयी साधु संगति में जाने का अवसर मिल गया। मीराँ का ऐसा ही निभिष्क्रमण कैसा होता? यदि घर छोड़कर निकल भी जाती तो इस नारी को कौन और कहाँ स्थान देता? जंगलों में भटकती हुई एक स्त्री, साधु-संगति में एक अकेली अबला, चारों ओर से नारी की दुर्बलता पर समाज की क्रूर व वक्र दृष्टि और अन्त में समाज से बहिष्कृत, अनादृत और अभिशप्त होकर जीवन से थकी हुई एक निस्तेज, आभाहीन आत्मा ही शेष रह जाती! पर मीराँ को यह स्वीकार नहीं था। प्रेम का उत्साह, जीवन की अपार लालसा, मिलन की परम उत्कंठा, भक्ति के प्रत्येक क्षण की सार्थकता और मन्दिरों में नाचते-गाते हुए मीराँ ने उस समय के आभिजात्य समाज के कृत्रिम बन्धनों को अस्वीकार कर दिया था। इसके अतिरिक्त एक नारी कर ही क्या सकती थी? उसके विद्रोह का स्वर अन्य किस प्रकार अभिव्यक्त हो सकता था?

कृष्ण काव्य के शिरोमणि सूर और विद्यापति की परिस्थितियों में भी भिन्नता थी। जन-साधारण के बीच सूर को कवि के रूप में स्थान बनाना था; परन्तु विद्यापति को प्रतिभा के आधार पर उतनी कठिनाई नहीं थी। सूर की यह कठिनाई वल्लभाचार्य की सहायता से सुलझ गयी। उत्तरी भारत में वल्लभाचार्य की ख्याति और मत का काफी प्रचार हो चुका था। लेकिन इधर मीराँ के जीवन की विडंबना ही और थी। राजघराने में उत्पन्न होकर भी राज्य-परिवार का संबल नहीं; कृष्ण-काव्य की कवित्री होकर भी कृष्ण-भक्तों में नारी होने के कारण स्थान नहीं। "चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता" में मीराँ का उल्लेख अत्यन्त निम्न कोटि के शब्दों में आया है। वल्लभाचार्य के मतानुयायियों को खूब खुले शब्दों में मीराँ से बचने की सलाह दी गयी है। 'वार्त्ता' में आये हुए निम्नलिखित अवतरणों से यह स्पष्ट हो जायगा :

(१) गोविन्द दुबे साचोरा ब्राह्मण तिनकी वार्ता

और एक समें गोविन्द दुबे मीराँ बाई के घर हुते तहाँ मीरा बाई सों भगवद्वार्त्ता करत अटके। ......ब्रजवासी ने आय के वह पत्र (**गुसाईंजी का**) दीनों सो पत्र बाँचि के गोविन्द दुबे तत्काल उठे, तब मीराँ बाई ने बहुत समाधान कीयो परि गोविन्द दुबे ने फिर पाछें न देखौ।

(२) अथ मीराँबाई के पुरोहित रामदास तिनकी वार्ता

......तब रामदास जी ने कह्यौ मीराँबाई सों जो अरे दारी रांड यह कौन को पद है। यह तेरे खसम कौ मूँड़ है जो जा आज से तेरौ मुहड़ौ कबहूँ न देखूँगो। ... तब घर बैठे भेंट पठाई सोई फेरि दीनी और कह्यौ जो रांड तेरों श्री आचार्य जी महाप्रभून ऊपर समत्व नाहीं जो हमको तेरी वृति कहा करनी है।

(३) अथ कृष्णदास अधिकारी तिनकी वार्ता

......कृष्णदास ने तौ आवत ही कही जो हूँ तो चलूँगौ। तब मीराँबाई ने कही जो बैठो तब कितनेक मोहर श्रीनाथ जी को देन लागी सो कृष्णदास ने न लीनी और कह्यौ जो तूँ श्री आचार्यजी महाप्रभून की सेवक नाहीं होत ताते तेरी भेंट हम हाथ ते छूवेंगे नाहीं सो ऐसे कहिकें कृष्णदास उहाँ ते उठि चले।

इन अवतरणों से मीराँ के प्रति उस समय के कृष्णभक्तों के विचार ज्ञात हो जाते हैं। इस व्यवहार के दो कारण ही हो सकते हैं। एक तो यह कि राजस्थान में मीराँ की कृष्ण-साधना से वल्लभाचार्य के मत-प्रचार में बाधा पड़ती हो और दूसरा यह कि पुष्टिमार्ग के मतानुयायियों को स्त्री की यह स्वतंत्र प्रकृति रुचिकर प्रतीत नहीं हुई हो। उपर्युक्त अंशों से प्रचार में बाधा तो ध्वनित नहीं होती बल्कि वल्लभ मतानुयायियों द्वारा मीराँ को अपने मत में दीक्षित करवाने की प्रबल इच्छा मालूम पड़ती है और गोविन्द दुबे श्री गुँसाई का श्लोक पढ़ते ही तत्काल उठकर चल दिये; यहाँ यह ज्ञात नहीं होता कि गुँसाई जी ने श्लोक में लिखा क्या था? किन्तु रामदास जी की वार्ता में यह स्पष्ट हो जाता है जब वे कहला भेजते हैं कि 'जो रांड तेरो श्री आचार्य जी महाप्रभून ऊपर समत्व नाहीं जो हमको तेरी वृति कहा करनी है।' कृष्ण- दास भी यही बात कहते हैं "जो तू श्री आचार्य जी महाप्रभू की सेवक नाहीं होत ताते भेंट हम हाथ से छूवेंगे नाहीं।'

इससे यही ज्ञात होता है कि मीराँ ने पुष्टिमार्गियों का शिष्यत्व स्वीकार नहीं किया। यह ठीक है कि इन भक्तों में यह धारणा रही होगी कि यदि मीराँ इस मत को स्वीकार कर ले तो उनको मत-प्रचार की काफी सुविधा मिल सकती है। लेकिन इससे यह अनुमान लगाना कि मीराँ द्वारा पुष्टिमार्ग के प्रचार में बाधा उत्पन्न हो रही थी—ग़लत होगा। क्योंकि न तो मीराँ स्वयं प्रचार के लिए जाती थीं, न उन्होंने

विवाह का चलन बहुतकर इसलिए है कि उसमें भरपूर प्रलोभन और भरपूर अवसर का संगम है।

❀

त्याग-भाव अपने में गुण नहीं है, वह तो महज शैतानियत पर समझदारी का प्रभाव है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई अपना पंथ ही बनाया था और न ही उनका अपना स्पष्ट दार्शनिक मत ही था जो वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैतवाद को चुनौती देता। उनका सारा जीवन और काव्य प्रेम की एकान्तिक साधना में तन्मय था। इस साधना में उन्हें स्वयं पर अटल और अपार विश्वास था। इसी विश्वास के आधार पर उन्होंने परिवार, समाज और धर्म-गुरुओं से लोहा लिया था। मीराँ का स्वतंत्र व्यक्तित्व कभी किसी के साथ समझौता नहीं कर सका। चाहे वह शिशोदिया हो, चाहे मेड़तिया हो या वह स्वयं कृष्ण का महान् भक्त ही क्यों न हो। मीराँ भक्तों का आदर करती थी, सेवा-सत्कार करती थी, स्नेहालाप करती थी, साधु-संगति में बैठकर गीत गाती और सुनती थी लेकिन ज्योंही उनके स्वतंत्र व्यक्तित्व को छीनने का प्रयास होता—वहाँ वे दूर बहुत दूर चली जाती थी। यही सबसे बड़ा कारण है कि वल्लभाचार्य के शिष्यों से उन्हें गालियाँ सुननी पड़ीं। अन्यथा मीराँ-सी भक्त कवित्री के लिए किसकी जिह्वा से 'रांड' शब्द निकलेगा। जिस मीराँ ने नश्वर पति से विवाह करने में अनास्था दिखाकर 'अमर चुड़ला' पहिन लिया था, जिसने रीति-रिवाजों के सागर को कृष्ण की नाम-रूपी नौका में बैठकर पार कर लिया था, जिसके पदों में सत्कर्मों और दुष्कर्मों का सम्पूर्ण लेखा-जोखा नष्ट हो गया था—'जनम जनम के खत पुराने, नामहि लेत फटे रे' उसी मीरा को क्यों कोई गाली देगा? परन्तु मीराँ का जीवन संघर्षों की सान पर चढ़कर प्रतिदिन उज्ज्वलतर और तीक्ष्ण होता गया।

मीराँ ने समाज के बीच रहकर एक गोपिका बनना चाहा है। वह राधा का अवतार बनना चाहती थी। शिव रूप सृष्टि में शक्ति बनकर समाज में नारीत्व की सुदृढ़ नींव डालना चाहती थी। लेकिन समकालीन व्यवस्था में प्रतिबंधित व्यक्ति इस आदर्श को शास्त्रों में, बहस में और कलाओं में स्वीकार करते हुए भी दैनिक जीवन में स्वीकार नहीं करना चाहता था। साहित्य के माध्यम से कोई भी सहृदय 'परकीया' नायिका के हाव-भावों और कृत्यों में आनन्द उठाने में कोर-कसर नहीं रखता; किन्तु जब घर की स्त्री परकीया बनकर दूसरे प्रियतम को लुभाने चलती है तो डंडे की ओर दृष्टि उठती है। पर साहित्य में यह क्षम्य है। सूर की गोपिकाओं के विरह में आनन्द की अनुभूति होती है क्योंकि वह साहित्य है—वहाँ लोकलाज और कुल कानि की गहरी खाई नहीं है। परन्तु पगली मीराँ साहित्य या काव्य को जीवन में उतारना चाहती थी! वह स्वयं मनुष्य के साथ कंधे से कंधा मिलाकर समाज के आत्मिक उत्थान में प्रयत्नशील होना चाहती थी! किन्तु सामन्ती समाज में स्त्रियों के लिए लज्जा की बेड़ियाँ हैं, परिवार की इज्जत के बन्धन हैं, आत्मा के पंखों को कतरने के लिए विकराल कैंचिया है, प्रेम के गीतों के लिए जहर और सर्प के पिटारे हैं! मीराँ ने जीवन और काव्य की इस कृत्रिम दूरी को, कथनी और करनी के इस विभेद को दूर करने में अपना सब कुछ दाव पर लगा दिया था।

मीराँ के काव्य के विषय कृष्ण हैं, धर्म है, अध्यात्म है, ईश्वर का रहस्यात्मक स्वरूप है; मीराँ के पदों को कृष्ण-काव्य की विभिन्न धाराओं में कीर्तन की कोटि में भी रखा जाता है; मीराँ को राधा का अवतार माना जाता है; मीराँ को प्रेम-साधना की प्रमुख कवियित्री कहा जाता है, कृष्ण के मधुर स्वरूप की अमर गीतिकाकार समझा जाता है लेकिन मीराँ को इतने से ही समझना भूल होगी; क्योंकि मीराँ के जीवन में यह सब साधन थे, उपलक्ष्य थे—साध्य और लक्ष्य नहीं! मीराँ को अपने जीवन काल में ही नारी की पराधीनता मिली थी और स्वतंत्र-चेत्ता मीराँ को यह पराधीनता स्वप्न में भी सुख नहीं दे सकती थी। समाज में समय समय पर ऐसे व्यक्तित्व उत्पन्न हुए हैं, जिन्होंने सामाजिक अवस्था को जीवन-आदर्शों के अनुकूल न पाकर परिवर्तन के लिए अनेकों प्रयत्न किये हैं। प्रयत्नों का स्वरूप चाहे कैसा ही क्यों न हो। उस समय के समाज में किसी स्त्री का साधुसंगति और जन-साधारण के बीच बैठना स्वीकार नहीं किया जाता था, उस समय पति की मृत्यु के पश्चात् विधवा नारी के जीवन का कोई प्रयोजन ही नहीं रह जाता था; उस समय ईश्वर की भक्ति में तल्लीन होकर नाचा भी नहीं जा सकता था; उस समय देशाचार की अनेकों कुरीतियाँ स्त्रियों के जीवन-विकास में बाधाएँ देती थीं—इन्हीं सब समस्यायों को मीराँ ने देखा था और समझा था। पर वह नारी की इस परवशता के विरोध में विद्रोह का स्वर उठाती तो कहाँ से? उनकी शिक्षा और वातावरण के आधार पर उन्हें एक ही मार्ग संभव था और वह था कृष्ण की स्वच्छन्द भक्ति का। इस भक्ति के आरंभिक अंकुरों को, मीराँ के वैधव्य को देखते हुए किसी ने रोकने का प्रयास नहीं किया। लेकिन जब रोग बढ़ने लग गया तो मीराँ की औषधि केवल 'साँवलिया' के पास ही रह गयी। यही कारण है कि मीराँ के पदों में वे ही पद अधिक हृदय-स्पर्शी बन पाये हैं जहाँ लौकिक संघर्षों की गहरी अनुभूति अभिव्यक्त हुई है।

मीराँ के सम्पूर्ण काव्य में नारी की परवशता का करुण इतिहास है। लोकलाज की सब कृत्रिम शृंखलाओं को तोड़कर उन्होंने प्रियतम मिलन की तैयारी आरम्भ कर दी थी। जगदीश-मिलन के सुखद-स्वप्नों में एक नया ही जीवन पाने के लिए मीराँ के पद आकुलतर हो उठे थे। प्रियतम मिलन के स्वप्नमात्र ही नहीं सँजोये मीराँ ने, प्रियतम मिलन की सारी दुनिया ही बसा ली थी:

(शेषांश पृष्ठ ५५ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तारे गाते हैं, गंगा बहती है

हरिनारायण वर्मा

कवियों की कल्पना है कि दूर टिमटिमाते हुए ये तारे गीत गाया करते हैं। तारों के गीत की बात चाहे सच्ची न हो पर उनकी कल्पनातीत दूरी और उनका विराट रूप तो सच्चा है ही

संगीत में गति और लय महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। स्वरों के उतार-चढ़ाव के आधार पर ही संगीत-रचना की जाती है। संगीत में फ़ॉर्म (स्वरूप : उतार-चढ़ाव) पूर्णता प्राप्त करने लगता है, अतः उसे श्रेष्ठ कला कहा जाता है। तारों की जगमग अथवा आँख-मिचौनी, क्षण भर चमक और दूसरे ही क्षण मन्द आलोक--यह भी फ़ॉर्म ही है, स्वरों का उतार-चढ़ाव है। तारों के संगीत का शायद यही अर्थ हो। तारे गाते हों या नहीं, इतना तो निश्चित है कि तारों को विषय-वस्तु बनाकर अनेक गीतों की रचना की गयी है और प्रायः हरेक देश में, हरेक काल में। रात में आकाश पर दृष्टि डालने से इसका गूढ़ अर्थ आप शीघ्र ही समझ सकते हैं। विरहिणी की आकुलता निश्चय ही इनसे कम हुई होगी, तभी तो कवि सुनसान अँधेरी रात में, तारों-भरी रात में साजन का आह्वान करता है। सर्द आहों और तारों में गहरा सम्बन्ध है। किन्तु इनकी गणना हमारे आपके वश की नहीं।

एक बार किसी से पूछा गया, सब तारे कितने होंगे? उत्तर मिला : जितने सिर में बाल। किन्तु शायद यह उत्तर ठीक नहीं। नाई का उस्तरा सिर के बालों की गिनती कर सकता है, तारों की गणना करने वाला कोई नहीं। साधारण तौर पर आप दो हज़ार तारे देख सकते हैं। यदि किसी छोटे दूरबीन से देखें तो आप दस लाख तारे देख सकते हैं और बड़ा दूरबीन अधिक से अधिक दस करोड़ तारे भी दिखा सकता है। लेकिन ये सब तारे तो केवल हमारी आकाश-गंगा के हैं; इस तरह की कई आकाश-गंगाएँ हैं जिनमें से हरेक में दस करोड़ से लेकर दस अरब तक तारे हैं। इन आकाश-गंगाओं का पाताल या मर्त्य-लोक की गंगा से कोई सम्बन्ध नहीं। मर्त्य-गंगा बहती है और आकाश-गंगा घूमती है। आकाश-गंगा बहुत बड़ी है।

आकाश में कुछ स्थानों पर तो तारों का जमघट दिखाई देता है और कुछ स्थान रिक्त दिखाई देता है या फिर वहाँ बहुत ही कम तारे दिखते हैं। बात यह है कि आकाश-गंगा एक डिस्क की तरह है, उसमें के तारे तो दिखाई दे जाते हैं बाहर के नहीं दिखते। यहाँ-वहाँ छिटके तारे भी अवश्य दिखाई दे जाते हैं, पास होने के कारण इनकी चमक भी हमें दिख जाती है। लेकिन इनका पास होना कोई लाख दो लाख मील की बात नहीं। मीलों में तो हम इनकी दूरी बता ही नहीं सकते। यह दूरी हम प्रकाश-गति में बतायेंगे। ध्यान रहे, प्रकाश-किरण एक सेकण्ड में १,८६,००० मील पहुँचती है! इस प्रकार चन्द्रमा पृथ्वी से एक प्रकाश-सेकण्ड दूर है। अर्थात् चन्द्रमा से पृथ्वी तक आने में प्रकाश एक सेकण्ड लेता है। अर्थात् चन्द्रमा पृथ्वी से १,८६,००० मीलं दूर है। सूर्य ८ प्रकाश मिनट दूर है। पास के तारे ३ प्रकाश-वर्ष दूर हैं। दूरबीन से हम हज़ार प्रकाश वर्ष से अधिक दूर का तारा देख सकते हैं।

आकाश-गंगा के तारों के बीच हमें खाली जगह दिखाई देती है, किन्तु वास्तव में बात कुछ और ही है। इनके बीच अन्तर्ग्रहीय गैस होती है। यह मुख्यतः हाइड्रोजन है। धूल कणों के कारण हम गैस में से देख नहीं पाते, मुश्किल से सौवाँ भाग हमें दिखाई देता है। अन्तर्ग्रहीय गैस तारों से कहीं अधिक भारी होती है। यही, न कि तारे, आकाश-गंगा पर शासन करते हैं। यही तारों की गति पर नियन्त्रण करती है। यही उनका जीवन और विकास भी निर्धारित करती है। हमारा सूर्य और ग्रह इस डिस्क के एक कोने में हैं अतः हम डिस्क का केन्द्र नहीं देख सकते। रेडियो तरंगों से हम इसका अनुमान लगाते हैं। आकाश-गंगा का व्यास ६० हज़ार-प्रकाश-वर्ष है। यह एक विशाल चक्र की भाँति घूम रही है।

तारे आकाश-गंगा को केन्द्र मानकर घूमते हैं। सूर्य और ग्रह भी घूमते हैं--१,०००,००० मील प्रति घण्टे के हिसाब से। आकाश-गंगा का पूरा चक्कर लगाने में इन्हें २००,०००,००० वर्ष लग जाते हैं। भ्रमण का यह विचित्र चक्र है। हम पृथ्वी की पोलर धुरी पर १००० मील प्रति घण्टा भ्रमण करते हैं, पृथ्वी सूर्य का ७०००० मील प्रति घण्टा तथा सूर्य १०००००० मील प्रति घण्टा से आकाश-गंगा का चक्कर लगा रहा है।

प्रत्येक आकाश-गंगा में कई ग्रह हैं जिनमें से हरेक में १००,००० से भी अधिक तारे हैं। इनमें से अधिकतर डिस्क के बाहर हैं। यदि इनमें से कभी कोई तारा उस भाग में से गुज़रा है जिसमें कि हम हैं तो हज़ारों तारे दिखाई देने लगेंगे, शायद चन्द्रमा जैसा प्रकाशवान तारा भी दिखाई दे जाय। जब तारा डिस्क में से गुज़रता है तो सारी व्यवस्था ही भंग

(शेषांश पृष्ठ ५४ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक साहित्यकार की उलझनें

० प्रो० रामपूजन तिवारी ०

ज्यों-ज्यों मानव के सम्बन्ध विश्व के साथ, प्रकृति के साथ, राष्ट्र के साथ, समाज के साथ, जीवन के साथ और स्वयं व्यक्ति के साथ जटिल होते जाते हैं त्यों ही त्यों उसकी अभिव्यक्ति की समस्या भी जटिलतर होती जा रही है। विज्ञान के युग के उलझनदार भुल-भुलैया के बीच साहित्यकार को अपना पथ बनाना है। उलझन है तो; लेकिन साहित्य का प्रकाश कहाँ से उलझन को सुलझा लेगा। यही सार-सत्य है।

आज के साहित्यकार की उलझनों की चर्चा अपने आप में कम उलझनदार नहीं है।

आज का साहित्यकार अपने को एक ऐसे चौराहे पर खड़ा पाता है, जहाँ से किसी भी एक मार्ग को पकड़ने में उसे नाना प्रकार की बाधाओं, नाना प्रकार की अनिश्चितताओं का सामना करना पड़ता है। वह ठीक-ठीक समझ नहीं पाता कि उसे किस ओर बढ़ना चाहिए।

इस साहित्यकार को जब हम समझने की चेष्टा करते हैं, तो सहज ही हमारा ध्यान दो बातों पर चला जाता है। प्रथम तो यह कि जीवन के प्रति साहित्यकार का दृष्टिकोण क्या है और द्वितीय यह कि वह कौन-सी प्रेरणा है, जिससे परिचालित होकर वह साहित्य की सृष्टि में प्रवृत्त होता है।

जब हम इन बातों की छान-बीन करने लगते हैं, तो एक साथ हज़ारों प्रश्न हमारे सामने आ उपस्थित होते हैं। हम सोचने लगते हैं कि आखिर यह मानव-जीवन है क्या? इसका कुछ लक्ष्य भी है या यों ही बिना किसी लक्ष्य के खाना-पीना और मर जाना है। इस जीने का रहस्य क्या है? वह कौन-सी ऐसी वस्तु है, जिसके लिए जिया जाय? ये मूल प्रश्न हैं और इस तरह के और भी बहुत-से प्रश्न हैं।

इन प्रश्नों पर नाना प्रकार से लोगों ने विचार किया है। नाना प्रकार से इन प्रश्नों को सुलझाने के प्रयत्न हुए हैं। लेकिन 'इस सुलझाने के प्रयत्न' ने इन प्रश्नों को और भी उलझनदार और जटिल बना दिया है। इन प्रश्नों के समाधान की चेष्टा में संगति और मतैक्य तो है ही नहीं, उल्टे उसमें असंगति और परस्पर-विरोध का जमघट लगा हुआ है।

पहले का साहित्यकार इस मामले में सौभाग्यशाली था कि उसका समाज मान्यताओं की भी सृष्टि करता था और साहित्यिक तथा कलात्मक रूढ़ियों का भी सर्जन करता था, जिन्हें कम या बेशी सभी लोग स्वीकार करते थे। वैसे यह नहीं कहा जा सकता कि उस काल में एक सर्वसम्मत मत प्रचलित था। बराबर से नाना प्रकार की विचारधाराएँ आती गयी हैं और चलती गयी हैं और वह काल भी इसका अपवाद नहीं रहा है। फिर भी उस काल की एक परम्परा अवश्य थी और विकास की दिशा भी प्रायः उस परम्परा के मेल में ही थी। उस परम्परा से बहुत दूर चले जाने की बात कोई नहीं सोचता था। उस काल की विभिन्न कलात्मक कृतियों में वैचित्र्य देखने को मिलता है, लेकिन वे एक स्वीकृत ढाँचे के भीतर ही रहतीं, उससे अलग नहीं जा पड़तीं। यह वैचित्र्य भाषा, शैली, छन्द आदि के संशोधन-परिवर्तन में ही दीख पड़ता है मूलभूत सिद्धान्तों से विच्छिन्न होने में नहीं।

इसे कुछ और भी स्पष्ट रूप से समझने की हम कोशिश करें। भारतीय साहित्यकार और पाठक आधुनिक युग के पहले तक जीवन के लक्ष्य और उसकी उपलब्धि को लेकर किसी प्रकार के संशय में नहीं थे। उनका सहज, सरल विश्वास था कि यह जगत् किसी शक्ति द्वारा परिचालित हो रहा है और वह शक्ति निरपेक्ष है, सर्वशक्ति मान है और अपने ही नियमों तथा इच्छा के अनुसार वह कार्य करती है। चाहने पर वह अवतार भी ले सकती है। वह न्यायी है, दयालु है। उस परम शक्ति के रूप और गुण के सम्बन्ध में नाना प्रकार के मत-मतान्तर हैं, लेकिन इसमें साधारणतः सभी एक मत हैं कि इस समस्त सृष्टि का परिचालन करनेवाली एक शक्ति अवश्य है। दूसरे उनका विश्वास था कि मनुष्य अपने किये हुए कर्म का फल पाता है चाहे वह इस जन्म में हो अथवा आनेवाले जन्म में। इस प्रकार से तत्कालीन समाज के भीतर जीवन के प्रति एक आस्था थी और वह इस विश्व-जगत् को एक निरुद्देश्य, भौतिक शक्तियों का केवल मात्र परिणाम नहीं समझता था। सम्पूर्ण समाज की कम या बेशी इसी प्रकार की धारणा थी और साहित्यकार भी इसी समाज का अंग था।

पहले के साहित्यकार को इसीलिए अपनी बात पाठक तक पहुँचाने में न किसी प्रकार की कठिनाई ही होती थी और न अपनी बात कहने में वे किसी प्रकार की द्विधा या कुंठा का ही बोध करते थे। समाज साहित्यकार के मनोभाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को ठीक-ठीक समझ पाता था और साहित्यकार भी समाज के मन को जानता था कि वह किस प्रकार से अपनी बात उन तक पहुँचाये। कहनेवाले और सुननेवाले अथवा पढ़नेवाले के बीच परम्परामुक्त प्रतीक और व्यञ्जनाएँ थीं जो दोनों के लिए एक कड़ी के समान थीं। काव्यगत रूढ़ियाँ दोनों के लिए समान भाव से परिचित थीं अतएव पाठक और साहित्यकार के बीच वैसी कोई खाई नहीं थी। यही कारण है कि जब कवि कहता है:

जाहि अनादि अनन्त अखण्ड अछेद अभेद सुवेद बतावें।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाँछ पै नाच नचावें।

तो पाठक को उसमें कोई असंगति नहीं दीख पड़ती है और वह इसका पूर्ण रूप से रसास्वादन करता है।

पहले की दुनिया से आज की दुनिया की तुलना जब हम करने बैठते हैं, तो देखते हैं कि दोनों में बहुत बड़ा अन्तर हो गया है। आज की दुनिया के सोचने के ढंग में आमूल परिवर्तन हो गया है। विज्ञान ने आज की दुनिया में बहुत बड़ा परिवर्तन ला दिया है। आज विज्ञान केवलमात्र विद्या नहीं रह गया है जिसका अध्ययन और मनन कर सन्तोष कर लिया जाय। इसने आज हमारे समस्त जीवन को प्रभावित किया है। केवल इतना कहना कि इसने 'प्रभावित किया है' कुछ नहीं कहने के बराबर है क्योंकि विज्ञान ने हमें एक विशेष रूप से सोचने के लिए बाध्य किया है। इसने हमारे सोचने के ढंग को बदल दिया है। हमारी दृष्टिभंगी ही पहले से कुछ और की और हो गयी है। विज्ञान के चमत्कार, उसके आविष्कार इस प्रकार से अभिभूत करनेवाले हैं कि उसके परिणामों को हमारे लिए आँख मूँद कर मान लेने के सिवा दूसरा कोई चारा नहीं रह जाता। मज़े की बात यह है कि इसी वैज्ञानिक युग ने दूसरी ओर एक ऐसी स्थिति ला दी है कि हम किसी चीज़ को बिना सोचे-समझे आँख मूँदकर मान लेने के लिए तैयार नहीं होते।

इस वैज्ञानिक युग के पहले स्थिति कुछ दूसरी ही थी। उस समय किसी भी विचार या चिन्ताधारा में संशोधन अथवा परिवर्तन आसान था चूँकि वे किसी विशेष चिन्ता अथवा कल्पना द्वारा उत्पन्न हुई थीं। उनकी सत्यता प्रमाणित करने के लिए ऐसे तथ्य नहीं थे, जिन्हें अकाट्य समझा जाय। ये तथ्य या प्रमाण ऐसे नहीं थे जिनका परीक्षण आज की नाईं किसी लेबोरेट्री में किया गया हो। अतएव उस विचार या चिन्ता-धारा में अगर किसी प्रकार की अपूर्णता दीख पड़ती अथवा उसे समाज के लिये हितकर नहीं समझा जाता तो उसे बिल्कुल छोड़ देने में अथवा उसमें संशोधन करने में किसी प्रकार की हिचक नहीं होती। लेकिन विज्ञान के तथ्य उसके प्रत्यक्ष प्रमाण के प्रकाश में केवल तर्क द्वारा उड़ाये नहीं जा सकते।

विज्ञान ने कुछ ऐसा कर दिया है कि हम किसी चीज़ को बिना तर्क की कसौटी पर कसे मानने को तैयार नहीं होते। उसने हमें सन्देहालु बना दिया है। किसी भी वस्तु को हम तभी स्वीकार करने के लिए तैयार होते हैं जब हम उसे तर्कसंगत समझते हैं, इसलिए नहीं कि लोग बहुत पहले से उसे स्वीकार करते आये हैं। आज के जगत में प्रत्येक वस्तु के आगे प्रश्न का चिन्ह लगा हुआ है बल्कि यों कहा जा सकता है कि वर्तमान सभ्यता अपने आप में एक बड़े प्रश्नचिन्ह के समान है। इस प्रकार आज की दुनिया में नाना प्रकार की उलझनें पैदा हो गयी हैं। आज की दुनिया प्रत्येक वस्तु को विज्ञान के आलोक में समझना चाहती है फलस्वरूप पुरानी मान्यताओं और विश्वासों के प्रति आस्था नहीं रह गयी है। पुराने विश्वासों को तो हम खो चुके हैं लेकिन नये की तलाश अभी हमारी चल ही रही है। वर्तमान का यही सब से बड़ा प्रश्न हो उठा है। क्या सही है? क्या ग़लत? जिस परमात्मा और सामाजिक सम्बन्धों को लेकर पहले के लोग निश्चिन्त थे, वही आज तर्क के विषय हो गये हैं उनमें अनास्था प्रकट की जाती है। जीवन में अथवा साहित्य में सर्वत्र हमें इस अनास्था के दर्शन हो रहे हैं।

वर्तमान उलझनों की प्रतिच्छाया शैली में देखी जा सकती है। पहले का कवि अथवा कलाकार अपनी रचनाओं में वैचित्र्य और वैशिष्टय तो लाता था फिर भी उसके प्रतीक, कवि-प्रसिद्धि, रूपक आदि प्रायः सर्वमान्य और समाज के लिए सुपरिचित थे। लेकिन आज की भागदौड़ में जैसे सब कुछ टूट रहा है, सब कुछ बिखर रहा है। आज की दुनिया में विभिन्न मान्यताओं और विश्वासों का जैसे मेला लगा हुआ है। उनकी आपस की भिन्नता कुछ ऐसी है कि बहुत समय वे मान्यताएँ विपरीत दिशाओं में जाने का निर्देश करती हैं। उनमें से कितनी तो एक दूसरे की विरोधी भी हैं। अतएव आज के कलाकार अथवा साहित्यकार के लिये उन मान्यताओं और विश्वासों के जंगल में खो जाना कुछ आश्चर्य की बात नहीं। ऐसी हालत में इस बात की आशा नहीं की जा सकती कि सभी कलाकार, सभी साहित्यकार एक ही प्रतीक या शैली का सहारा लेंगे। आज भाषा और शब्दों के प्रयोग, प्रतीकों की योजना कुछ इस ढंग से होने लगी है जिसमें निर्वैयक्तिकता का प्राधान्य

डेनमार्क के एक नये बन्दरगाह का उद्घाटन करने के लिए वहाँ के सम्राट को आमन्त्रित किया गया। सम्राट के स्वागत में पथ के दोनों ओर स्कूल के बच्चों की कतार लगी हुई थी। उछलते-कूदते बालक सम्राट को नजर भर कर देख लेना चाहते थे। सम्राट ने आश्चर्य से कहा: "ओफ्फोह! इतने सारे बच्चे आये कहाँ से?" मेयर ने श्रद्धा सहित उत्तर दिया: "हुजूर! हम इस शुभ दिन के लिए कितने ही वर्षों से प्रयत्न कर रहे थे!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो उठा है। प्रतीकों की यह योजना हृदय की सरस वृत्तियों को हमारे सामने उतना नहीं लाती, जितना कि मस्तिष्क के शुष्क विचार-चित्रण को। आज की भाषा तथ्यात्मक अधिक हो गयी है और उससे सरसता खवित हुई है। शब्दों के प्रयोग, कहने के ढंग तथा प्रतीकों की सृष्टि में आज का कलाकार अत्यधिक स्वतन्त्रता का परिचय दे रहा है। इसका फल यह हुआ है कि सब समय उन्हें समझ लेना आसान नहीं होता और काव्य की भाषा दुरूह और अपरिचित-सी हो गयी है। आज चरण को कमल की अपेक्षा नहीं और न आँखों को मृग की या मीन की और न मुख को चन्द्रमा की। अतएव यह कोई आश्चर्य नहीं कि आज के कवि या साहित्यकार की भाषा को समझनेवालों की संख्या उनकी अपनी गोष्ठी तक ही सीमित है।

आज के साहित्यकार तथा पाठक के बीच जैसी खाई दीख पड़ती है, वैसी आज के पहिले नहीं थी। आज के साहित्यकार के सामने सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि वह अपने को एक ऐसे समाज में पाता है जो सब समय उसकी बातों और उसकी दृष्टिभंगी के प्रति सहानुभूति नहीं रखता। ऐसा नहीं है कि जानबूझ कर पाठक ऐसा करता हो लेकिन परिस्थिति कुछ ऐसी हो गई है कि वह चाह कर भी सब समय अपनी सहानुभूति नहीं दे पाता। वास्तव में होता यह है कि जब हम अपनी बात कहते हैं तो स्वभावतः उसके दो पहलू होते हैं: एक तो यह कि जो कुछ हम कह रहे हैं उसे अपनी दृष्टि से ठीक और उचित मानते हैं अतएव हमारा कथन एक प्रकार से उस विषय पर हमारा निर्णय ही है; दूसरा पहलू यह है कि अपने कथनों द्वारा हम सुननेवालों को भावावेगों से स्पन्दित करना चाहते हैं। लेकिन आज का संसार कुछ कुछ ऐसा हो गया है कि न हम साहित्यकार के सभी निर्णयों को मानने को तैयार हैं और न हम उन भावावेगों से ही अभिभूत होते हैं जिनसे वह स्वयं अभिभूत होता है और दूसरों को भी अभिभूत करना चाहता है। आज की दुनिया में यह कोई जरूरी नहीं कि किसी एक विशेष परिस्थिति से सभी समान भाव से प्रभावित हों। आज न सभी चीज़ों को तौलने का एक ही मानदण्ड है और न एक ही बटखरा है।

आज का समालोचक जो व्यापक दृष्टि से उदार मन लेकर साहित्यकार को नहीं देखना चाहता वह नाना भाव से उसे छोटा करना चाहता है और उसकी हँसी उड़ाने से बाज़ नहीं आता। वह समझता है कि साहित्यकार अपनी अक्षमता और प्रतिभा के अभाव के कारण चतुर्दिक फैली हुई अराजकता का शिकार हो जाता है। आलोचक चाहता है कि साहित्यकार को ऊपर उठकर समाज को देखना चाहिए और जो कुछ वह समझता है, जो कुछ उसके मन में भाव आते हैं, उन्हें निर्भीकतापूर्वक उसे प्रकट कर देना चाहिए। ऐसा कहना तो बिल्कुल आसान है लेकिन हम जब यह कहते हैं तब प्रायः भूल जाते हैं कि जिस प्रतिभा, जिस सृजन-शक्ति की हम उससे अपेक्षा रखते हैं, वह सम्भवतः प्राचीन साहित्यकारों में भी नहीं थी। वैसे इससे एक बात का पता चल जाता है कि लेखक से पाठक किस बात की उम्मीद रखता है तथा उसके व्यक्तित्व की कैसी कल्पना उसके मन में है। साहित्यकार में पाठक यह देखना चाहता है कि उसमें विचार-स्वातंत्र्य है, ऊपर उठकर देखने की शक्ति है, भावाभिव्यक्ति की निर्भीकता है तथा उसका यह दृढ़ विश्वास है और सबसे बढ़कर उसमें स्वतंत्र-चिन्तन की क्षमता है।

आज का समाज उपर्युक्त सभी बातों में साहित्यकार को सहायता पहुँचाना तो दूर उसे और भी उलझन में डालनेवाला है। और इसका कारण यह है कि आज का समाज स्वयं उलझनदार हो गया है, उसकी स्वयं की ठोस भित्ति नहीं रह गई है। विश्वासों और मान्यताओं को लेकर उसमें स्वयं एक अराजकता फैली हुई है। इस स्थिति में कितने ऐसे साहित्यकार हैं जो युग की इस चुनौती को स्वीकार कर एक नूतन संदेश देने बैठ जाते हैं लेकिन उनकी दशा और भी दयनीय हो उठती है और चूँकि वे अपने को संदेश देने में सक्षम समझते हैं, इसलिए उनके भीतर अहम्मन्यता का आ जाना स्वाभाविक है।

आलोचकों का दल मौक़े-बेमौक़े साहित्यकार को उपदेश देने में कोर-कसर नहीं रखता। लेकिन मुश्किल यह है कि उस दल में एक स्वर से किसी बात पर स्वीकृति नहीं मिलती। उनमें एक जो कहता है संभव है दूसरा उसके ठीक विपरीत कहता हो। अपने-अपने दृष्टिकोण को सामने रखकर वे साहित्यकार का पथ-प्रदर्शन करना चाहते हैं। इस प्रकार वे साहित्यकार को सहायता पहुँचाने के बदले वे उनके लिए उलझनें पैदा करते हैं, उनके मार्ग में बाधा की सृष्टि करते हैं।

सब कुछ मिलाकर आज के साहित्यकार की स्थिति कुछ ऐसी हो गयी है कि उसे पद-पद पर एक अन्तर्द्वन्द्व का सामना करना पड़ता है। उसे एक ओर तो बाहर की सामाजिक शक्तियों का सामना करना पड़ता है और दूसरी ओर उसके

(शेषांश पृष्ठ ६९ पर)

लम्बी 'क्यू' में एक व्यक्ति खड़े थे उनकी खोपड़ी थी बिल्कुल सफाचट। पीछे से धक्का आया तो उन्हें के पीछे खड़ा हुआ लड़का उनसे भिड़ गया। चाँदवाले महानुभाव ने तड़क कर कहा—"क्या सिर पर चढ़ोगे?"

लड़के ने उन्हें ऊपर से नीचे तक देख कर कहा, "आप के सिर चढ़कर मुझे फिसल कर मरना नहीं है!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूअर के बच्चे

मूल : प्रीस्ट्ले——अनु० गोस्वामी

उस दिन अचानक ही मैं उधर जा निकला। और संयोग की ही बात कि वहीं घाट से लगे जहाज़ पर ही मार्कर से भी भेंट हो गयी।

मार्कर मेरा पड़ोसी है, अधेड़ उम्र का है, और प्रायः उदास-उदास सा रहा करता है। मगर सूअर की नस्ल का बड़ा पारखी है वह। क्या मजाल कि कोई बाज़ी ले जाय उससे इस मामले में, इस कला में! और जब देखिए तब एक नयी नस्ल उसके बाड़े में तय्यार दिखती है।

वहाँ उसे देखते ही मैं समझ गया कि नीचे डेक पर लॉरियों-मोटरों के बीच घेरे में जो कोड़ी सवा-कोड़ी सूअर मैं अभी देख आया हूँ वे उसी के हैं। और अगले ही क्षण मुझे ध्यान आया कि उसकी लड़की की शादी आ लगी है और दहेज़ का बन्दोबस्त इन सूअरों को बेचकर किया जायगा।

सहज ही मैं फिर नीचे के डेक पर उतर गया। बड़ा शोर मचा रक्खा था उन सूअरों ने। पहिले तो उनकी आवाज़ में कुछ समझ-बूझ पड़ा नहीं, मगर दो ही चार मिनिट में लगा कि उस आवाज़ में के कुछ शब्द तो सचमुच शब्द हैं जो दिमाग़ में बैठ भी गये। फिर तो कुछ ही मिनटों बाद जो कुछ वे आपस में कह रहे थे म सब समझ चला। वे जान चुके थे कि उनके साथ अब कोई विशेष घटना होनेवाली है, और यही उनकी उस बातचीत, या ठीक-ठीक कहूँ तो, बहस का विषय था।

एक दबंग डीलडौलदार सूअर कह रहा था, "तो दोस्तों, आपका नेता होने के नाते मैं अब बताऊँगा कि मैंने आपके लिए क्या सोचा है। मैं, जैसा कि आप सब जानते हैं एक असाधारण सूअर हूँ। भाग्य मेरी मुट्ठी में है। और अपने इस ग़ोल का आप लोगों ने मुझे बरसों से सरदार बना रक्खा है। इस समय यह हमारा यहाँ से जाना मेरी एक बहुत दिनों की योजना का अंग है। आप लोग मेरे कहे अनुसार चलेंगे तो फल अच्छा ही होगा। आपका जो भविष्य मुझे दीख रहा है वह सचमुच सुन्दर और सुखभरा है। इस सबके लिए मुझे धन्यवाद देने का यह समय नहीं है। यह समय तो आप सबके मेरे प्रति सच्चे बने रहने का है और हम सभी के उस उद्देश्य के प्रति भी सच्चे बने रहने का है जिसके लिए हमारा बाड़ा सब कहीं विख्यात है।"

थोड़ी देर वह रुका कि सब कोई खुर-तालियाँ बजालें। तभी एक मटमैले रंग के सूअर ने घबराने से स्वर में पूछा, "पर इस कठिन यात्रा के बाद हमें मिलेगा क्या?"

"तुम्हें क्या चाहिए, मित्र?" नेता ने बड़प्पन के साथ उत्तर में प्रश्न किया।

"भरपेट दाना-खली ही तो। और क्या चाह सकते हैं, हम लोग।"

बड़े क़ायदे के साथ मुस्कुराया नेता, और बोला, "मित्र, इसीका तो बन्दोबस्त किया है मैंने। खाने-पीने की कमी अब बीती बात होगी। अब तो केवल तुम्हारे सच्चे और पूरे मन के सहयोग की आवश्यकता है। वह उधर पश्चिम की तरफ़ देखो, जहाँ हम जा रहे हैं——सब कैसा हरा-भरा सुनहला देश है!" और एक प्रसन्नता का चीत्कार उसने किया और आँखें मूँदकर पड़ गया।

"एकदम वाहियात", एक दुबले-से दोग़ले सूअर ने आवाज़ उठायी, "उस सूअर का व्यक्तित्व है, यह मैं मानता हूँ। पर घोर आत्मवंचना से पीड़ित है वह; एकदम आउट ऑव डेट। हम लोगों की यह यात्रा क्या उसकी योजना पर है; यह तो सार्वजनिक आन्दोलन पर हो रही है।"

"तुम्हारा मतलब," एक भारी देहवाले ने कहा, "तुम्हारा मतलब, हम सभी ने यह यात्रा करना तय किया? क्योंकि—— क्योंकि——एँ?"

उस दोग़ले ने ही घृणा भरे भाव से उत्तर दिया, "नहीं, यह नहीं। आप ज़रा चुप होकर बैठें और इन छोटे-छोटे पिलुओं को भी चुप रखें तो मैं सारी बात समझा दूँ। देखिए, यहाँ से पश्चिम की तरफ़ बड़ी हरियाली है, यह हम सभी जानते हैं——"

"कहाँ, कैसे जानते हैं?" उस मटमैले रंगवाले ने टोका।

"टोको मत," दोग़ला कहता गया, "वहाँ हरियाली है, इसी अनुमान को तो आधार बनाकर हम चल रहे हैं। तो उस तमाम हरियाली की गन्ध हवा में फैलती है और अपनी विशेष घ्राण-शक्ति के कारण, हम उसका सहज ही ज्ञान पा जाते हैं। उस ज्ञान की प्रतिक्रिया एक सीमा तक पहुँचते ही हम सबके सब, सार्वजनिक आन्दोलन के रूप में उस गन्ध की दिशा में आपोआप चल देते हैं।"

भारी देह वाला उठा और गरदन ज़रा टेढ़ी करके बोला,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

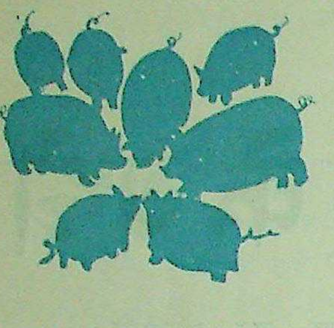

"गन्ध? मुझे तो कोई गन्ध नहीं आयी। और मेरी नाक भी किसी से कम लम्बी नहीं. आप ये सब––"

दोगला झल्लाया, "देखिये, नाक और ध्यान की बात ये नहीं है। प्रतिक्रिया, आन्दोलन और फिर यात्रा आपोआप होती है। यहाँ इच्छा को गुंजाइश नहीं। हम प्राकृतिक नियमों से बँधे हैं। बेशक, हमारा विकास हुआ है और हम सूअर लोग ज्ञान, बुद्धि और इच्छा में धरती पर किसी दूसरी जीव-जाति से पिछड़े हुए नहीं हैं, किन्तु प्राकृतिक––"

"भला, भला, भला!" एक पकी उम्र का विशालकाय सफ़ेद सूअर, जो अभी तक सोया पड़ा था और अब भी मुश्किल से ही चेता था, बोला, "मैं तो समझा था कि प्राकृतिकता की यन्त्रवादी बातों का युग बीत गया।"

बिगड़ते हुए दोगले ने जैसे चुनौती दी, "ये आपके उपदेश देने का समय नहीं है जनाब!"

विशालकाय इतमीनान से हँसा, "इससे अच्छा भी कोई समय होगा? जब सब परेशान, खोये-खोये-से हों और अपनी सूअर जाति के लिए विधाता का विधान जानना चाहते हों तभी तो उपदेश की आवश्यकता होती है। स्वाभाविक यही है कि जब हम कहें हमें उपदेश नहीं चाहिए तभी तो सचमुच भीतर ही भीतर हम उसे खोजते होते हैं। जब हम––"

"मेरा प्रस्ताव है ये सब व्यर्थ की परस्पर विरोधी बातें तत्काल बन्द कर दी जायँ", एक नयी उम्र के फ़ुर्तीले सूअर ने खड़े होकर कहा।

"ज़रूर! ज़रूर! ज़रूर!" कई तरफ़ से आवाज़ें आयीं।

उसी तरह मुस्कुराते हुए विशालकाय ने एक बार चारों ओर सिर घुमाकर देखा और फिर गम्भीर होते हुए कहा, "मित्रों, बात बड़ी सीधी है। हम सब भगवान् की सन्तान हैं। उसी ने हमारी रचना की है। हमें उसने वचन दिया है कि हम यदि सच्चे मन से उसकी शरण चाहेंगे तो वह कभी निराश नहीं करेगा। इस समय यदि उसकी यही इच्छा है कि हम अपना यहाँ का प्रिय और परिचित स्थान छोड़कर इस विचित्र और निरन्तर झकोले खाते सचल बाड़े के आसरे रहें तो हमें उसके

दिव्य उद्देश्यों में आस्था बनाये रखना चाहिए। वह जानता है हम सबका कल्याण––"

"सबके नहीं, अपने ही कल्याण की कहिए।" एक ओर से एक दुबला-पतला, साँवले रंग का और चिन्तनशील आँखों वाला सूअर बोला जो अभी तक बिल्कुल मौन था, "हमें आपकी ये सब युगों पुरानी गपोड़ें नहीं चाहिए। मैं मानता हूँ प्राकृतिकता का यन्त्रवाद निरी बकवास है, लेकिन ठीक ऐसी ही तो तुम्हारी यह सर्वदर्शी-दयालु भगवान् की कल्पना भी है। मैं यह नहीं कहता कि ऐसा कोई भगवान् है ही नहीं। मेरा मतलब महज़ इतना है कि उस भगवान् का यहाँ इस धरती पर कहीं नियन्त्रण नहीं जहाँ हम सूअरों ने प्रगति और विकास के लिए संघर्ष किये–– मगर सदा दुःख ही बढ़ता हुआ पाया। सच यह है कि जो शक्ति हमारा संचालन कर रही है वह कोई दुष्ट शक्ति है। उसी के दूत हमें इस यात्रा पर लिये चले जा रहे हैं। उस बाड़े में भले ही हम अनेक बार असन्तोष की चर्चा चलाते थे, पर वास्तव में हमें वहाँ जीवन का आनन्द मिल चला था। यही बात उस दुष्ट शक्ति के दूतों को सहन––"

"प्रिय सूअर भाई," एक ओर से एक नयी आवाज़ उठी, "देखिये, अब हम से यह तो आशा मत कीजिये कि आपकी ये जूनी-पुरानी बातें हम सुनते ही रहेंगे। हममें से कितने ही सूअर शिक्षित भी हैं। हम कह सकते हैं कि वह भगवान् या यह शैतान कोई भी हमारी इस यात्रा के लिए जवाबदार नहीं है। हमारी मूलभूत आर्थिक आवश्यकताएँ ही हमारे जीवन का संचालन करती हैं। हमारी माँग और उसकी पूर्ति के नियम ही दरअसल हमारा शासन करते हैं। मेरे पास ये कुछ आँकड़े हैं जो निस्सन्देह प्रभावित करते हैं कि––"

लेकिन वे आँकड़े सुनाये नहीं जा सके। सूअर समाज समूचा ही उनके विरोध में कोलाहल कर उठा। ज़रा शान्ति हुई तो एक और ही आवाज़ ने सबका ध्यान खींचा। स्पष्ट ही यह आवाज़ ऐसे सूअर की थी जिसकी शिक्षा आदि पर बहुत खर्च किया गया होगा। उसका कहना था कि, "आर्थिक-तत्त्व सदा सनातन है। पर औरों की तरह, हमारे इन मित्र ने अब इसे आवश्यकता से अधिक महत्त्व दे दिया। अपने बाड़े से हटा कर हमें इस यात्रा पर क्यों ले जाया जा रहा है, यह आप सचमुच जानना चाहते हैं क्या? मैं बताऊँ। सूअर जाति के इतिहास को आपने कभी यदि देखा और समझा है तो आपको याद होगा कि एक स्थान से दूसरे स्थान के लिए इस प्रकार की यात्राएँ समय-समय पर बराबर ही होती हैं। हम जानते हैं कि एक नियत पद्धति है और एक निश्चित आवश्यकता जिनका समय पर सदा फेरा लगता है और सदा पश्चिम की दिशा में हमारी यात्रा हुआ करती है। इस प्रकार––"

"एक सेकण्ड महोदय," एक साफ़-सुथरा सफ़ेद सूअर खड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था जो अभी भी जैसे किसी गम्भीर चिन्तन में डूबा था; स्वर गम्भीर था और एक-एक शब्द धीरे-धीरे निकल रहा था, "यही हम किस आधार पर मान लें कि हम यात्रा पर हैं, चल रहे हैं? मैं एक दार्शनिक की हैसियत से बोल रहा हूँ। मेरा सुझाव है कि हमारे पास यात्रा का, चलने का, कोई वास्तविक प्रमाण नहीं है। बेशक, हम अपने उस बाड़े में इस समय नहीं हैं। लेकिन मैं कह देना चाहता हूँ कि यह महज़ प्रतीति की बात है। हमारी चेतना पर एक विशेष क्रम में कुछ धारणाएँ पड़ती हैं और हमें उनके अनुसार ही देखना, सोचना, मानना और करना पड़ता है। उस क्रम में कोई परिवर्तन हुआ है, यह मैं मानता हूँ। मैं यह भी मानता हूँ कि इस परिवर्तन में सृजनात्मक मन का भी योग रहता है। लेकिन यह 'मन' है क्या? मेरे व्यक्तिगत मन और —ध्यान रहे, मैं अभी यह मानने को तय्यार नहीं हूँ कि आप लोगों के भी मन हैं!—तो मेरे व्यक्तिगत मन और उस 'केवल'—"

"चलिये, चलिये!" एक उभरती उम्रवाले ने पुकारा, "बहुत पण्डित न बनिये, सूअर हैं सूअर ही रहिये, और सूअर की तरह ही इस मामले को समझिये भी। यह 'कैवल्य' का राग अलापना सिड़ीपन है। वह निरा वाग्भ्रम है, यथार्थताओं से उसका कोई वास्ता नहीं। इन सूअरों के मार्ग-दर्शन के लिए अब विज्ञान का आलोक है, हमें उसका उपयोग करना चाहिए। प्राण-शक्ति का सिद्धान्त जो मेरे मित्र ने, कुछ दिनों पहिले वह मेरे सहकारी भी थे, बड़े आत्मविश्वास के साथ आप सबके सामने रक्खा वह बड़ी चतुराई की बात है। मगर उसको पूरा समादर करते भी मेरा निवेदन है कि उससे हमारी समस्या का हल नहीं होगा। हमें इस विश्व को निकट से देखना चाहिए, और उसमें मेरा ज्ञान-अध्ययन बड़ा सहायक होगा। अब यह तो हम जानते ही हैं कि यह सारा विश्व महज़ एक दूसरे से साँकल की तरह जुड़े हुए ऊर्जा के क्षेत्र हैं जो—"

"जी, आप जानते होंगे", एक भारी भरकम सूअर बोला, "हमने तो सुना भी—"

"ख़बरदार!" तमतमाया हुआ वह धर्म-पण्डित सफ़ेद सूअर बोला, "बन्द करो यह ऊर्जा की चर्चा! यह हमारे सूअर विधाता का और समूची सूअर सृष्टि का सरासर अपमान है! मैं आपको बता देना चाहता हूँ कि हम में से हरेक सूअर के अन्दर भगवान् की दिव्यता भरी है। हम यदि विश्वास के साथ—"

"ठीक कहा," नींद से जागते हुए नेता ने कहा, "यही तो आप लोगों से मैं चाहता हूँ। मेरे ऊपर विश्वास रखो, मेरी आज्ञा मानो, और नेता के नाते सबकी दाना-खली पहिले मेरे आगे आये! याद रखो, मेरे दोस्तों, मेरी योजना के अनुसार जिधर हम जा रहे हैं उधर सब सुनहला है, हरा, हरा है...."

"हाँ, इसीलिए तो, इसीलिए तो।" कई तरफ से कई सूअरों ने एक साथ सिर और खूर हिलाकर नेता का अनुमोदन किया।

तभी इतिहास-कुशल बोला, "और, और, मैं यह नहीं समझ पाता हूँ कि आख़िर इस यात्रा पर हमें इतना अचरज और सोच-विचार क्यों हो रहा है। यात्रायें तो सदा से होती आयी हैं। मैं अध्ययन के आधार पर—"

"ठीक कहा आपने, उसे ही तो हम लोग प्राण-शक्ति का खिंचाव कहते हैं।"

"वही ऊर्जा के क्षेत्रों में भी होता है।"

"तो, एक शब्द में," दार्शनिक ने बड़ी गम्भीर वाणी में कहा, "न कुछ हुआ, न होने को है। वह 'कैवल्य' ही था और रहेगा।"

"सचमुच, उसी भगवान की दया पर तो सब कोई टिके हैं। भगवान्! भगवान्!" और धर्म-पण्डित ने खूर से मस्तक और कन्धे आदि छूते हुए अपना धर्मचिन्ह स्मरण किया।

तभी उन सूअरों के कितने ही किलुए-पिलुए एकाएक सब तरफ़ से शोर मचा उठे। और उनमें से एक ने खड़े होकर कहना भी शुरू किया, "आप सूअरों की तरह मैं न बहुत चतुर हूँ न पढ़ा-लिखा। फिर भी, मुझे आप माफ़ करेंगे, अगर मैं कहूँ कि आप लोगों ने इतनी देर जो भी कहा मुझे वह नहीं पतियाया। देखिये, निश्चित रूप से तो हम लोग अभी इतना ही जानते हैं कि हमें अपना स्थान छोड़ना पड़ा है और अब कहीं ले जाये जा रहे हैं। इस पर आप लोगों की तरह मैं भी यदि अन्दाज़ दौड़ाऊँ तो मैं तो यही कहूँगा कि यह सारा मामला एक मायने बहुत उलझा हुआ है और एक मायने एकदम आसान। उलझा हुआ इसलिए कि यह विश्व बहुत बहुत बड़ा है और उसमें हमारी सूअर जाति की कोई गिनती नहीं है। इस विश्व में ऐसे असंख्यों जीव रहते हैं और अनगिनत ऐसी घटनाएँ हर घड़ी हो रही हैं जिन्हें हममें से चतुर से चतुर सूअर की खोपड़ी भी समझ नहीं सकेगी। और आसान इस मामले को मैं इस मायने में कहता हूँ कि मुमकिन है हमारी यह यात्रा आप लोगों के सोचे हुए किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी बुद्धि की माप-जोख

बहुत पहिले की बात, आज की बात और आगामी कल की बात

* * * *

आज से बहुत पहिले की बात है। एक दिन ग्रीनविच की वेध-शाला में बैठे दो वैज्ञानिक एक ही आकाशीय-वस्तु का निरीक्षण कर रहे थे और आश्चर्य की बात यह थी कि दोनों के समय-माप में सेकण्ड के छोटे से अंश का अन्तर आ रहा था। जब गणित के नियम एक, गणना के तरीक़े एक, साधन एक और यहाँ तक कि वेधशाला भी एक—तब फिर यह गलती कैसी? उनकी समझ में यह 'सूक्ष्म' अन्तर किसी भी प्रकार नहीं आया। अन्त में, हार कर उन्होंने इस अन्तर का कारण 'व्यक्तिगत-भेद' मान लिया जो निरीक्षक की व्यक्तिगत विशेषताओं के कारण उत्पन्न हो सकता है। यही व्यक्तिगत भेद बाद के मनोविज्ञान में 'व्यक्तिगत समीकरण' के नाम से पहिचाना जाने लगा। एक बार जब 'व्यक्तिगत समीकरण' की स्थापना हो गयी तो पता लगा कि इसके भी अनेक कारण हो सकते हैं जिनमें मनुष्य के मानसिक, बौद्धिक, शारीरिक आदि-आदि अनेक तत्व क्रियाशील रहते हैं। किन्तु इस घटना विशेष में जो बात सबसे प्रमुख बनकर आयी वह थी ध्यान का निर्देश— (Direction of attention)

सेव के नीचे गिरने की छोटी-सी बात से एक दिन गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त की खोज की जा सकी—उसी प्रकार इस घटना ने मनुष्य के मस्तिष्क में नयी-नयी बातों को खोजने का श्रेय प्राप्त कर लिया। व्यक्तियों के बौद्धिक-स्तर के अन्तर को यों हम साधारण जीवन में प्रतिदिन ही अनुभव करते हैं। बात छोटी ही है किन्तु उसके परिणाम बहुत बड़े हो सकते हैं और होते हैं। हम पाते हैं कि कुछ लोग 'जड़ बुद्धि' हैं—वे समाज पर एक बोझ के समान लदे रहते हैं—न वे अपना काम स्वयं कर पाते ह और न हो समाज के किसी काम के हैं। उल्टे समाज को ही अपने उपयोगी भाग को उन्हें पालने-पोषने में लगाना पड़ता है। इसलिए हमें इन समस्याओं का सामाजिक रूप से अध्ययन करके, वैज्ञानिक हल निकालने चाहिए। यहाँ यह कह देना भी अनुचित नहीं होगा कि निम्नतम बौद्धिक विकास वाले बालक अपने कपड़े नहीं पहिन सकते, दैनन्दिन के कार्य नहीं कर पाते और पढ़ने में पाँच-छह के अंक से आगे नहीं जान पाते।

मनुष्य का दिमाग अत्यन्त जटिल वस्तु है। उसको नापने का प्रयत्न समुद्र की लहरों को गिनना और वातावरण की चंचल हवा को तोलने के प्रयत्न से कम नहीं है। सम्भवतया इससे भी कहीं अधिक कठिन है। किन्तु विज्ञान के युग में असम्भव क्या है?

प्राचीन काल से ही मनुष्य जाति को बुद्धि के आधार पर तीनबड़े वर्गों में बाँटा गया है:

१. औसत बुद्धिमान : न अत्यधिक न अत्यल्प बुद्धिशाली।
२. औसत से अधिक बुद्धिमान ।
३. औसत से कम बुद्धिमान।

इन तीन बड़े वर्गों के पाँच उपवर्ग भी हो सकते हैं, यथा १. औसत, २. औसत से अधिक, ३. औसत से अत्यधिक, ४. औसत से अल्प और ५. औसत से अत्यल्प। यह बुद्धि का पंचांगी वर्गीकरण कहलाता है। बुद्धि के इस अन्तर को स्पष्टतया ही देखना-समझना हो तो किसी भी स्कूल की एक क्लास में चले जाइये—बुद्धि-भेद का अनुभव आपको उसी समय हो जायेगा।

सन् १९०५ में फ्रान्स की सरकार ने स्कूल के विद्यार्थियों को बुद्धि के अनुसार वर्गीकृत करने के लिए एक कमिटी बनायी। इस परिषद के एक सदस्य थे—आल्फर्ड बीने। बहुत परिश्रम और प्रयोगों के पश्चात् ३० प्रश्नों की सूचि बनाई जो क्रमशः कठिनतर होती गयी। १९०८ में पहली बार मानसिक परीक्षण का संशोधित और निखरा रूप प्रकाशित किया गया। इन प्रश्नों को वयानुसार विभक्त किया गया था। इसको समझने के लिए एक उदाहरण आवश्यक है: यदि आठ वर्ष का बालक कुछ कार्यों के ६० से ९० प्रतिशत कार्य कर सकता है तो उन कार्यों को आठ वर्ष के लिए सहज और औसत समझा जायगा। इसी अनुभव के आधार पर आल्फर्ड बीने ने ३ वर्ष से लगाकर किशोरावस्था तक के बालकों के लिए प्रश्नों को खोज निकाला। इसमें संशोधन और वैज्ञानिक काँटछाँट के पश्चात् उन्होंने 'बुद्धि-वय' के सिद्धान्त को स्थापित किया जो आज भी एक महानतम देन मानी जाती है।

बुद्धि-वय, एक बालक की कालानुक्रमीय वय (Chronological age) से भिन्न वह संख्या है जो बालक के बौद्धिक विकास की द्योतक है और जिसे परीक्षण द्वारा मालूम किया जाता है। (१) यदि क, जिसकी कालानुक्रमीय आयु (शारीरिक आयु) ८ वर्ष है और वह उन कार्यों को सुविधा पूर्वक हल कर सकता है जो १० वर्ष के बालक के लिए सहज हैं तो उसकी बुद्धि-आयु १० वर्ष होगी; यद्यपि उसकी कालानुक्रमीय आयु ८ वर्ष ही है। अतः क अपने वर्ष के औसत बालकों से अधिक बुद्धिमान हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) अगर ख, जिसकी आयु १० वर्ष है और वह ८ वें वर्ष के लिए बनाये हुए परीक्षण को ही कर सकता है और ९ या १० वर्षों के सहज प्रश्नों को हल करने में असफल रहता है तो उसकी बुद्धि-वय ८ वर्ष ही है, यद्यपि उसकी कालानुक्रमीय आयु १० वर्ष है। फलतः ख अपने वर्ष के औसत बालकों से अल्प-बुद्धिशाली हुआ।

यह बुद्धि-वय का विचार (Concept) बालक के बौद्धिक विकास को समझने में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। परन्तु कई बालकों में तुलना करने के लिए हमें बुद्धि-वय व कालानुक्रमीय-वय का अनुपात मालूम करना होगा अन्यथा बुद्धि-वय से मालूम हुए तथ्य व्यर्थ हैं। ऊपर के उदाहरण में क या ख में कौन किससे कितना बुद्धिशाली है, इसका अनुमान सहज ही नहीं हो सकता। अतः एक मनोवैज्ञानिक-स्टर्न (Stern) ने 'मानसिक-लब्धि' द्वारा नया अनुपात खोज निकाला। इसी को बाद में टरमन ने 'बुद्धि-लब्धि' (Intelligent Quotient) का नाम दिया। बुद्धि-लब्धि (I.Q.) ज्ञात करने का फार्मूला निम्न-लिखित है:

$$\text{बुद्धि-लब्धि} = \frac{\text{बुद्धि-वय}}{\text{कालानुक्रमीय-वय}} \times १००$$

इससे जो संख्या प्राप्त होगी वह १०० से ऊपर या नीचे होगी। १०० वह आदर्श संख्या है जहाँ से ऊपर या नीचे जाने पर बौद्धिक स्तर बढ़ेगा या कम होगा।

अब क और ख में तुलना करना काफी सरल है।

(१) क की बुद्धि-लब्धि $= \frac{१०}{८} \times १०० = १२५$

(२) ख की बुद्धि-लब्धि $= \frac{८}{१०} \times १०० = ८०$

इन दोनों राशियों का १०० से अन्तर जानने पर दोनों का बौद्धिक विकास पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है।

सुविधा के लिए बुद्धि लब्धि के अनुसार बौद्धिक विकास का निम्न श्रेणी के अनुसार वर्गीकरण किया गया है:

बुद्धि-लब्धि १४०—१६९ या ऊपर	अत्यन्त मेधाशाली
१२०—१३९	प्रतिभावान्
११०—११९	औसत से ऊपर
९०—१०९	सामान्य, औसत
८०— ८९	औसत से अल्प बुद्धि
७०— ७९	दोषमय
३० से नीचे—	दोष-पूर्ण-बुद्धि (mentally deficient)

आल्फ्रेड बीने के १९११ के संशोधित परीक्षण में से कुछ उदाहरण नीचे उद्धरित किये जाते हैं:

वय २ वर्ष : अपने नाक, कान, मुँह बताना; अपना पारिवारिक नाम बताना आदि।

वय ६ वर्ष : प्रातःकाल व दोपहर का अन्तर बताना; १३ सूज़ (फ्रान्सीसी सिक्कों) तक गिनना इत्यादि।

वय १५ वर्ष : वाक्य दुहराना; चित्रों की व्याख्या करना इत्यादि।

बीने के इन बुद्धि परीक्षणों को देखकर अन्य देशों को भी इस ओर बढ़ने की प्रेरणा मिली। कई देशों में बीने के व्यक्ति-परीक्षणों (यह व्यक्ति परीक्षण हैं क्योंकि इसमें एक व्यक्ति, बालक या किशोर की परीक्षा ही एक समय की जाती है) का अपनी-अपनी भाषाओं और आवश्यकताओं के अनुरूप संशोधन हुआ। संशोधन इसलिए कि किसी भी देश के परीक्षण हूबहू दूसरे देश के काम में नहीं लाए जा सकते क्योंकि बालकों के मानसिक विकास में राष्ट्र की अपनी अनेक विशेषताओं का प्रभाव पड़ता है। जैसे देश की भाषा, उसके रीति-रिवाज़, उसका सामाजिक ढाँचा, शिक्षण पद्धति और संस्कार आदि।

पहिले विश्वविग्रह के समय एक नयी समस्या खड़ी हुई। सेना की भर्ती के लिए बुद्धि-परीक्षण आवश्यक महसूस किया गया। और वह परीक्षण ऐसा हो जो कम से कम समय में अधिक से अधिक मनुष्यों की परीक्षा कर सके। बीने की व्यक्ति-परीक्षण की पद्धति अच्छी थी पर उसमें समय बहुत लग जाता था। अतः समूह-परीक्षण पद्धति का विकास हुआ। ये समूह-बुद्धि-परीक्षण कुछ ऐसी योग्यताओं पर निर्भर होते हैं जिनको हम औसत बुद्धि के अन्तर्गत मानते हैं जैसे १. शब्दार्थ जानने की योग्यता २. निर्देश (directions) समझने की योग्यता (जैसे, इस लाइन का तीसरा अक्षर काट दो अगर वह 'त' हो तो ठीक, अगर वह 'त' न हो तो दूसरे 'न' के चारों ओर गोला बनाओ) ३. रिक्त-स्थान पूर्ति (जैसे, वह बालक — बुद्धि है; वह कपड़े स्वयं नहीं — सकता।) ४. सम्बन्ध दर्शक— (पुरुष और स्त्री में वही अन्तर है जो लड़के और — में है)

हाल में ही बीकानेर के औद्योगिक एवं शैक्षिक मार्ग-निर्देश-केन्द्र के मनोवैज्ञानिक श्री प्रयाग मेहता ने हिन्दी में १० से १७ वर्ष के बालकों के लिए मौलिक समूह-बुद्धि-परीक्षण की रचना की

"ओह, पागलखाने के लिए चन्दा? मेरे पतिदेव को ले जाइए।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। वे इसके स्थायीकरण (standardization) के लिए प्रयास कर रहे हैं। आशा है वे शीघ्र ही अपने काम में सफल होंगे।

हिन्दी के इस बुद्धि-परीक्षण के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :

१. दाहिनी ओर के तीन शब्दों में जो शब्द बाँयी ओर के शब्द के ठीक विपरीत हों उसके नीचे निशान लगादो :—

लाभ .... उपार्जन, व्यय, क्षति

२. जो सम्बन्ध बायीं ओर के दो शब्दों में है वही सम्बध दाहिनी ओर के प्रथम शब्द और बाकी में से किसी एक शब्द में है, उसके नीचे निशान लगाओ :—

सर : बाल .... अँगुली—लिखना, त्वचा, नख।

३. नीचे एक प्रश्न के चार उत्तर हैं। ठीक उत्तर के नीचे निशान लगाओ :—

पानी नीचे की ओर क्यों बहता है ?

१. क्योंकि पानी से बर्फ तैयार होता है।
२. क्योंकि पानी पीने से प्यास मिटती है।
३. क्योंकि पानी तरल पदार्थ है।
४. क्योंकि पानी का रंग नहीं होता है।

४. दाहिनी ओर के एक ऐसे शब्द के नीचे निशान लगाओ जो प्रश्न का सही उत्तर हो :—

पक्षी के पास हर समय क्या रहता है ?

— संगीत, घर, अण्डा, या पंख।

दुनिया का सबसे ऊँचा पहाड़ ?

—आण्डिग, अरावली, हिमालय।

५. नीचे लिखे अव्यवस्थित शब्दों को व्यवस्थित करके, अगर वाक्य सही हो तो 'सही' के नीचे और गलत हो तो 'गलत' के नीचे निशान लगाओ :—

नदियाँ पाई जाती हैं अनेक रेगिस्तान में — सही, गलत

६. अंक-माला की स्थान-पूर्ति दिए हुए अंक से कीजिए :—

— २, ४, ८, ... १२. — (१० या ११)

७. नीचे लिखी हुई वस्तुओं में से एक ऐसी है जो अन्य वस्तुओं से नहीं मिलती, उसके नीचे निशान लगाओ :—

— पक्षी ; हवाई-जहाज ; पतंग ; रेलगाड़ी।

८. नीचे एक मूर्खतापूर्ण बात है और उसके ऐसे होने के कुछ कारण नीचे दिये गये हैं उनमें से सही कारण के नीचे निशान लगाओ :—

राम और मोहन पास-पास सो रहे थे। कुछ समय सोने के पश्चात् मोहन ने राम से पूछा, 'क्यों नींद आगयी ?' राम ने जवाब दिया—'हाँ, मैं तो कभी का सो गया'— यह बात मूर्खतापूर्ण है क्योंकि :—

१. सोते वक्त बोलना नहीं चाहिए।
२. पास-पास नहीं सोना चाहिए।
३. नींद में आदमी जवाब नहीं दे सकता।
४. वह जग रहा था।

९. नीचे लिखे प्रश्न के सही किसी एक उत्तर के नीचे निशान लगाओ :—

शंकर के एक बहिन शान्ति है, एक भाई वसन्त है, एक चचेरा भाई सोम है तो :—

१. शंकर के कितनी बहिनें हैं ?—एक भी नहीं ; एक ; दो ;
२. सोम शान्ति का क्या हुआ ?—भाई ; बहिन ; चचेरा भाई ;
३. सोम की कितनी बहिनें हैं ?—एक ; दो, ठीक नहीं कह सकते ; एक भी नहीं।

इन प्रश्नों के उत्तर से बालक की मानसिक अवस्था का पता लगाया जा सकता है। इन प्रश्नों में भारतीयता और भारत के बालक के वातावरण का पूरा ध्यान रखा गया है। परन्तु भारत खुद ही बहुत बड़ा देश है और वास्तव में इस एक ही देश में अनेक देश समाए हुए हैं इसलिए विभिन्न राज्यों में विभिन्न परीक्षण नियत करने होंगे। अब वह समय आ गया है जब हमें भारत के बालक की मानसिक शक्ति को पहिचान कर उसको सही मार्ग पर, निर्माण के पथ पर लगाने के लिए कटिबद्ध हो जाना चाहिए।

बुद्धि परीक्षण केवल बुद्धि का मनोविलास बनकर न रहे, वह हमारी राष्ट्रीय समस्याओं को हल करने वाली महान् - शक्ति बने : यही मनोविज्ञान का सबसे बड़ा लक्ष्य और आदर्श है।

❀

च्यांग ने चीन को चुनौती दी है...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ज्ञानचक्र नं० १ का सर्व शुद्ध हल तथा विजेताओं के नाम पृष्ठ ५६ पर देखिए

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा और साहित्य के ज्ञान-विकास में नया प्रयोग

ज्ञान-चक्र प्रतियोगिता नं० ३ द्वारा

१०१ रु० अवश्य जीतिए

नगद-पुरस्कार तथा साथ ही साथ—

० शब्द-भण्डार का निर्माण ० शब्दों का सही उपयोग ० विशेषणों के सही प्रयोग से भाषा-सौंदर्य ० मनोरंजन के साथ ज्ञान-वर्द्धन ० ज्ञान-वर्द्धन से बुद्धि का विकास

ज्ञानोदय के हर अंक में हम अपने पाठक-पाठिकाओं के मनोरंजन, ज्ञानवर्द्धन, विचारोत्तेजना तथा शब्द-भण्डार निर्माण और शब्दों के सही प्रयोग से भाषा-सौंदर्य के लिए एक नया ज्ञान चक्र प्रतिमास उपस्थित करते है। विश्वास यह है कि यह प्रतियोगिता-क्रम साधारण पाठक से लेकर छात्र-छात्राओं, महिला-बालक तथा काम-काजी व्यवसायी सभी के लिए समान रूप से उपयोगी सिद्ध होगी। लीजिए अब ज्ञानचक्र नं० ३ हल कीजिए।

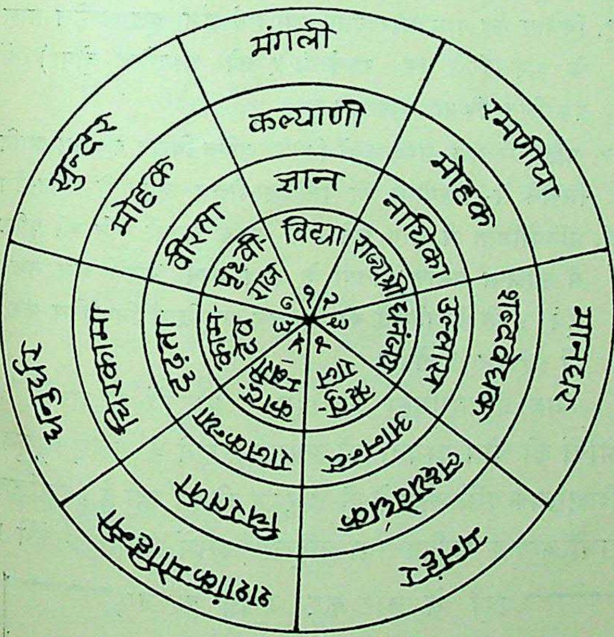

इस पहेली को आप कैसे हल करेंगे

साथ छपा 'ज्ञान-चक्र' सात खानों में विभाजित है। केन्द्र के पास के ७ खानों में विद्या, राज्यश्री आदि विषय-संज्ञाएँ निर्धारित स्थान पर रखी हैं, इनके क्रम और स्थान में परिवर्तन नहीं होगा। इसीलिए कूपन में ये नाम छाप दिये गये हैं।

केन्द्र के प्रत्येक खाने के ऊपर मध्य के खाने में सातों विषयों में से किसी एक का गुण अस्त-व्यस्त ढंग से रखा है। किस विषय के लिए कौन-सा गुण उपयुक्त होगा यह आपको स्थिर करके गुण-भाव वाले बीच के खाने में, छपे नाम के ऊपर, लिखना है। ज्ञान-चक्र के बाहरी खानों में उसी प्रकार प्रत्येक विषय के दो-दो विशेषण अस्त-व्यस्त रखे हैं। आपको प्रत्येक के दो उपयुक्त विशेषण चुनकर प्रत्येक विषय के ऊपर विशेषण के खानों में लिखने हैं।

उदाहरण : केन्द्र के १ संख्यक कोष्ठक में विषय-संज्ञा है 'विद्या' : जिसके अर्थ स्पष्ट ही हैं। उसके ऊपर मध्य कोष्ठक में गुण-भाव-वाची है 'ज्ञान' और बाहरी दो कोष्ठकों में दो विशेषण 'कल्याणी' तथा 'मंगली' हैं। इस प्रकार कूपन के १ संख्यक खाने की सही पूर्ति कूपन में छपे अनुसार हुई।

इसी प्रकार पूरे कूपन की पूर्ति कर, अंतिम तिथि तक कार्यालय में भेजनी चाहिए।

संभव है आपका ही हल सही हो !

नियम और प्रतियोगिता कूपन अगले पृष्ठ पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस कूपन पर ही उत्तर भेजिए

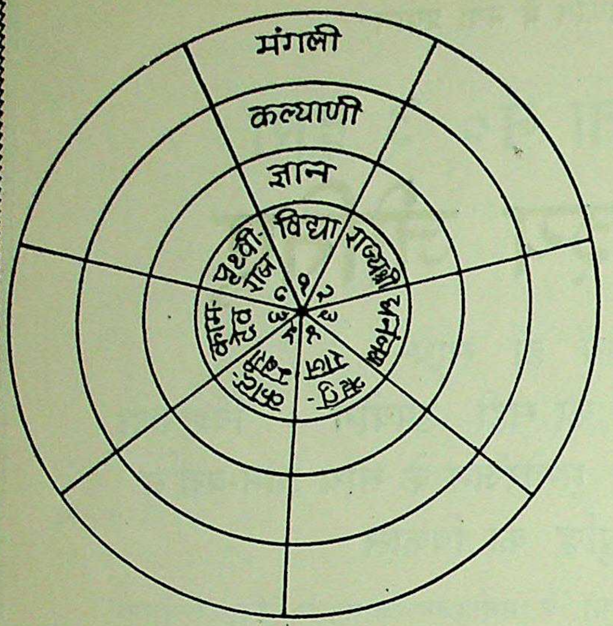

इस प्रतियोगिता में निर्णायक-समिति का निर्णय मुझे अंतिम तथा वैधानिक रूप से मान्य होगा ।

नाम

पूरा पता

(कृपया स्पष्ट अक्षरों में स्याही से ही लिखिए ।)

ज्ञान-चक्र नं० ३

यह पूर्ति सोमवार २८ फ़रवरी १९५५ तक पहुँच जानी चाहिए । इसके बाद आयी पूर्तियाँ अस्वीकृत हो जायेंगी ।

यहाँ से काट कर अलग कीजिए

नियम और शर्तें

१. ज्ञान-चक्र प्रतियोगिता में कोई प्रवेश-शुल्क नहीं है परन्तु ज्ञानोदय के पाठक-पाठिकाएँ ही इसमें भाग ले सकेंगे ।

२. ज्ञानोदय में प्रकाशित प्रतियोगिता-कूपनों पर ही पूर्तियाँ स्वीकार की जायँगी ।

३. गन्दी, अस्पष्ट, पेंसिल से लिखी या काट-छाँट की गयी पूर्तियाँ अस्वीकृत कर दी जायँगी । अक्षर स्पष्ट तथा स्याही से लिखे जाने आवश्यक हैं ।

४. सभी पूर्तियाँ "ज्ञानचक्र प्रतियोगिता नं ३, ज्ञानोदय कार्यालय, ११ क्लाइव रो, कलकत्ता–१" के नाम आनी चाहिए ।

५. कार्यालय में इस प्रतियोगिता की पूर्तियाँ प्राप्त होने की अन्तिम तिथि २८ फ़रवरी है । इसके बाद आई प्रतियोगिता-पूर्तियों पर विचार नहीं होगा ।

६. प्रत्येक कूपन पर भेजने वाले का नाम और पूरा पता स्पष्ट लिखा जाना चाहिए । नाम-पता ठीक न होने पर सही पूर्तियाँ भी रद्द हो जायँगी ।

७. डाक में कूपन गुम हो जाने या देर से प्राप्त होने का कोई उत्तरदायित्व ज्ञानोदय कार्यालय पर न होगा ।

८. ज्ञानोदय का कोई कर्मचारी या उससे सम्बन्धित व्यक्ति इस प्रतियोगिता में भाग न ले सकेगा ।

९ निर्णायक समिति के हल से अक्षरशः मिलने वाले सर्व शुद्ध उत्तर पर १०१ रुपए नगद पुरस्कार स्वरूप दिए जायँगे । एक से अधिक शुद्ध हल आने पर पुरस्कार-राशि बराबर बाँट दी जायगी ।

१०. सर्व शुद्ध हल न आने पर न्यूनतम अशुद्धियों वाली पूर्ति या पूर्तियों पर ही पुरस्कार दे दिया जायगा ।

११. विजेता का नाम और पता तथा सर्व शुद्ध हल अप्रेल मास के अंक (जो १९ मार्च '५५ को प्रकाशित होगा) में प्रकाशित किया जायगा ।

१२. प्रतियोगिता के सम्बन्ध में किसी व्यक्ति विशेष को पत्र आदि लिखने से प्रतियोगी की पूर्ति अस्वीकृत कर दी जायगी ।

१३. प्रतियोगिता में भाग लेने वाले पाठक अपनी पूर्ति की पुष्टि में संक्षिप्त प्रमाण पूर्तियों के साथ नत्थी करके भेज सकते हैं । इससे निर्णायकों को न्यूनतम अशुद्धियाँ निर्धारित करने में सहायता मिलेगी ।

यह प्रतियोगिता ज्ञानोदय के पाठकों में शब्दों के भावों की बोध-गम्यता को अग्रसर कराने के लिए विशुद्ध शिक्षात्मक दृष्टिकोण से ही आरम्भ की जा रही है । इसलिए सभी आयु के व्यक्ति तथा महिलाएँ इसमें भाग ले सकेंगे ।

यहाँ से काट कर अलग कीजिए

ज्ञान-चक्र प्रतियोगिता नं ३
ज्ञानोदय कार्यालय,
११ क्लाइव रो,
कलकत्ता-१

यह अंश काट कर अपनी पूर्ति के लिफाफे पर चिपकाइए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वन - पराग

गीत

जितेन्द्र कुमार

१

प्यार-प्रीति के सूक्ष्म-तन्तु को सहज तोड़ देना क्या संभव ?

फूलों का मृदु-हास, तितलियों
का उल्लास भरा मृदु - नर्तन,
प्रेम-प्रणय का कुसुमित - कानन,
फूलों की बाँहों का बन्धन,
आकांक्षा की व्योम - पटी में
अंकित इन्द्रधनुष की छाया,
इस रंगीन स्वप्न-संसृति को सहज छोड़ देना क्या संभव ?
प्यार-प्रीति के सूक्ष्म-तन्तु को सहज तोड़ देना क्या संभव ?

जो कि पराजित करते हों,
निज चपल चरण से मुक्त पवन को,
जो कि नाप आते हों क्षण में,
अकस्मात् ही भूमि - गगन को,
जो कि हतप्रभ करते हों,
चंचलतम विद्युत्-गति-धारा को,
उन इच्छाओं के अश्वों को सहज मोड़ देना क्या संभव ?
प्यार-प्रीति के सूक्ष्म-तन्तु को सहज तोड़ देना क्या संभव ?

जिस अन्तर में उठते हों
संगीत राग के रजनी वासर,
जिस अन्तर में जगती हो
साकार राग की मूर्ति मनोहर,
जिस अन्तर में दीपशिखा-सा
राग सतत जगता रहता हो
एक विराग-सूत्र से उसको सहज जोड़ देना क्या संभव ?
प्यार-प्रीति के सूक्ष्म-तन्तु को सहज तोड़ देना क्या संभव ?

जो होती हो प्रतिपल प्राणों
के ममता-जल से अभिषेकित,
जो होती हो अन्तर के
अर्चना-कुसुम से पूजित-अर्चित,
जो समस्त आकर्षण
आराधन-साधन की केन्द्र-बिन्दु हो,
उस मोहक प्रतिमा को पल में सहज फोड़ देना क्या संभव?
प्यार-प्रीति के सूक्ष्म-तन्तु को सहज तोड़ देना क्या संभव ?

२

जीवन के ताने-बाने में सुख-दुख को उलझाया तुमने ।

तुमने चाहा तो वसन्त का
वैभव बरसा वन-उपवन में,
तुमने चाहा तो अनुचर
मलयानिल डोला भूमि-गगन में,
तुमने चाहा तो कुंजों में
कोकिल की वंशी-ध्वनि फूटी,
नद-निर्झर, सरिता-सागर ने क्या गाया ? हाँ, गाया तुमने ।
जीवन के ताने-बाने में सुख-दुख को उलझाया तुमने ।

तुमने चाहा तो भू की
तृष्णा धन बन नभ में मँडराई,
तुमने चाहा तो दिशि-दिशि में
पावस की ध्वनि-प्रतिध्वनि छाई,
तुमने चाहा तो युग-युग का
ताप मिटा भू के प्राणों का,
अपनी इच्छा का अखण्ड साम्राज्य विराट् बसाया तुमने ।
जीवन के ताने-बाने में सुख-दुख को उलझाया तुमने ।

जग का रूप भला क्या ?
तुमने चाहे जिसे बनाया, तोड़ा,
तुमने चाहे जिसे गिराया
चाहे जिसे सँवारा, छोड़ा,
तुमने चाहे जिसको जैसा
रूप दिया औ' रंग दिया है,
सब रूपों में, सब रंगों में अपना रूप दिखाया तुमने ।
जीवन के ताने-बाने में सुख-दुख को उलझाया तुमने ।

मालिक मेरे जग की इच्छा
का क्या कुछ भी मोल नहीं है ?
क्या नितान्त है विश्व निःस्व यह ?
क्या इसका कुछ तोल नहीं है ?
यदि अशक्त यह यदि परवश यह
इतना, तो मेरे निर्माता ।
क्यों अपनी निष्ठुर क्रीड़ा का कन्दुक इसे बनाया तुमने ।
जीवन के ताने-बाने में सुख-दुख को उलझाया तुमने ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषधर का विष-यंत्र

रामेश बेदी

साँप का विष मनुष्य के लिए मौत का पैग़ाम है—लेकिन इस विष का प्रयोजन आक्रमण न होकर—हमेशा स्व-रक्षात्मक हुआ करता है।

सर्पशालाएँ

कोलाहल और मानवीय चहल-पहल से दूर अपनी प्रयोगशाला की नीरवता में विभिन्न देशों के धैर्यवान् और साहसी वैज्ञानिक असाध्य रोगों की दवा ढूंढ़ निकालने के प्रयत्न में साँप और उसके घातक विष से विस्तृत खोजें और भयानक परीक्षण करने में लगे हुए हैं। ये लोग मानों मृत्यु और जीवन से खिलवाड़ कर रहे हैं। प्रकृति के गूढ़तम रहस्य निश्चय ही धीरे-धीरे अपने आप को प्रकाश में ला रहे हैं। खोजें इतने बड़े पैमाने पर हो रही हैं कि साँपों की सदा बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के लिए दुनिया के प्रमुख नगरों में सर्पशालाएँ खुल गई हैं। लण्डन, पेरिस, न्यूयॉर्क, ब्राज़ील, पोर्ट एलिज़ाबेथ, बम्बई, कलकत्ता और बेंगकोक आदि में विषैले साँप बड़ी संख्या में रखे जाते हैं। उन्हें आरामदेह स्थान दिया जाता है और उनकी अच्छी तरह परवरिश की जाती है। साँप सुख का जीवन बसर करते हैं। मृत्यु से सम्बन्धित अपने विशिष्ट अंग को आवश्यकता पड़ने पर सचेष्ट रखने के अतिरिक्त इनका वहाँ और कोई काम नहीं होता।

विष दुहना—एक खतरनाक मनोरंजक कार्य

आधुनिक सर्पशाला में विष निकालना एक मनोरञ्जक विधि है। निस्सन्देह यह बड़े खतरे का काम है। एक घड़ी की सहायता से साँप को अपने सुखप्रद घर में से बाहर फ़र्श पर फेंक दिया जाता है। कुण्डलियों के समूह को सचेष्ट हो जाने के लिए यह इशारा होता है। अपने रक्षक के इस कठोर व्यवहार से क्रुद्ध होकर जीव आवेश में ज़ोर से फुंकार उठता है। परन्तु वहाँ कौन परवाह करने वाला! और, दूसरी विरोधसूचक फुंकार निकलने से पूर्व ही एक चतुर हाथ मशीन की सी फ़ुर्ती से गुदगुदे चिकने प्राणी के शरीर पर से फिसलता हुआ गरदन को मज़बूती से दबोच लेता है। अब वह ज़मीन पर से ऊपर उठा लिया गया है। गरदन अब भी हाथ ने ज़ोर से भींची होती है। इसके बाद उसके मुख में शीशे का पात्र (पेट्रि डिश) डाला जाता है। मुख में पात्र के जाते ही साँप अपने डरावने दाँतों से उस पर गुस्से में काटता है। दंश का दबाव विष की थैलियों में से विष को बाहर निकाल फेंकता है। खोखले दाँतों में से होता हुआ विष पात्र में गिर जाता है। पहले प्रवाह के बन्द होने पर रक्षक अपने हाथ को दाबता हुआ साँप के सिर की ओर ले जाता है। गौ के थनों को जिस प्रकार दुहा जाता है, उसी तरह वह बचे हुए विष को निचोड़ लेता है। सारा द्रव उगल दिया जाने पर कुछ बून्दें ही बनता है।

साँप का दाँत

अब इस परेशानी के लिए, जो प्राणी को थोड़ी देर के लिए उठानी पड़ी, उसे दूध या कुछ अण्डे दिये जाते हैं और कभी-कभी इस भोजन में चूहा भी सम्मिलित कर लिया जाता है। भोजन द्रव हो तो शीशे की नली या पीक द्वारा उसके गले के नीचे उतार दिया जाता है। चूहा देना हो तो उसे साँप के साथ ही पिंजरे में फेंक दिया जाता है। इन सब क्रियाओं को कुछ ही मिनिट लगते हैं। फिर, साँप कुछ क्षण पूर्व की आप-बीती का भयानक स्वप्न लेने के लिए पिंजरे में वापिस रख दिया जाता है। अपनी प्रकृति को शान्त करने और पोटलियों को विष से भरने के लिए वह कुछ दिनों तक पड़ा रहता है जिससे एक बार फिर अपने अवाञ्छनीय कार्य को सम्पन्न करने के लिए वह तय्यार हो सके।

जीवित पिचकारी

साँप के विषयन्त्र की हम इंजेक्शन देने की पिचकारी से तुलना कर सकते हैं। यह जीवित पिंचकारी घातक विष का भण्डार है। आक्रमण किये गये प्राणी के शरीर में साँप इस यन्त्र द्वारा अपना घातक द्रव पहुँचाता है। साँप किस तरह शरीर में विष उँडेलता है इसे समझने के लिए यन्त्र को कार्य

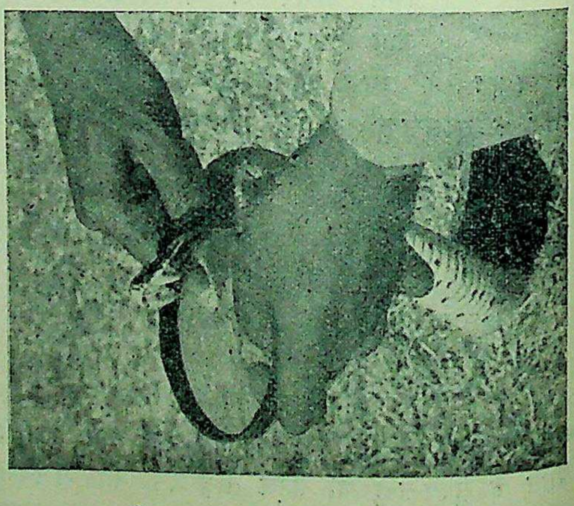

लेखक विष निकाल रहा है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते समय ग़ौर करना चाहिए। पिस्टन से युक्त एक प्रणाली की कल्पना कीजिये। प्रणाली एक खोखली सुई के साथ संयुक्त है जिसकी नोक पर एक छिद्र है। शरीर में उँडेला जाने वाला पदार्थ पहले प्रणाली में इकट्ठा होता है और यहाँ से सुई के छिद्र द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है। साँप अपने विष को ठीक इसी तरह फेंकता है।

विषयन्त्र की रचना और कार्य

ऊपर के जबड़े के दोनों ओर आँख के नीचे और पीछे विषस्रावी ग्रन्थियों का एक जोड़ा रखा रहता है। दोनों ग्रन्थियाँ मूर्ध्वहन्वस्थियों में लगे हुए विषैले दाँतों की प्रणाली के साथ सम्बन्धित होती हैं। इन ग्रन्थियों (जिन्हें विष की पोटलियाँ भी कहते हैं) में विष इकट्ठा रहता है। शंख प्रदेशों (कनपटियों) में पैरोटिड ग्लैण्ड्स के साथ स्थित ये ग्रन्थियाँ काटने की प्रक्रिया में कार्य करती हैं। इनके ऊपर लगी हुई कनपटियों की मांस-पेशियाँ इनके कार्य को नियन्त्रित करती है। इस प्रकार ये पिस्टन का स्थान ले लेती हैं। जिस समय साँप काटता है ये मांसपेशियाँ दबती हैं, ग्रन्थियों को निचोड़ती हैं और तुरन्त ही इनमें विद्यमान विष ग्रन्थियों के साथ लगे हुए खोखले दाँतों में वेग से पहुँचा दिया जाता है। पोटली की प्रणाली और दाँतों के खोखले में से गुज़रता हुआ विष दाँत के सिरे पर विद्यमान छिद्र पर पहुँचता है और अन्त में घाव के अन्दर चला जाता है। साँप के काटने की बस यही प्रक्रिया है।

मलय प्रदेश में मिलने वाले दो साँपों में विष की पोटलियाँ दूसरे साँपों से भिन्न प्रकार की होती हैं। इनमें से एक सफ़ेद धारियों वाला और दूसरा पट्टियों वाला मूँगिया साँप है। कन-पटी में स्थित होने के बजाय इन साँपों में पोटलियाँ दोनों पार्श्वों में इनके शरीर की लम्बाई के लगभग एक-तिहाई तक पहुँच जाती है। सिर के नीचे की ओर जाती हुई ये ग्रन्थियाँ

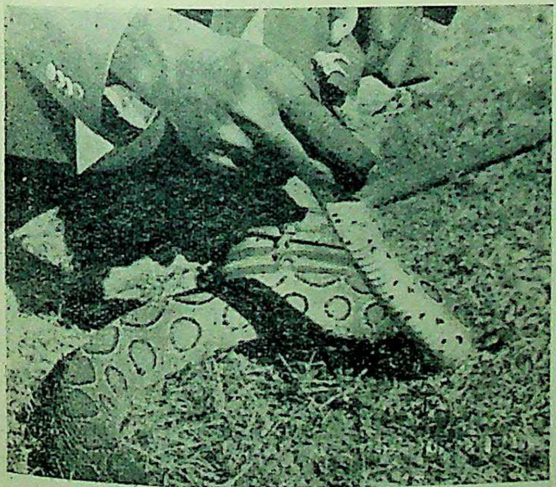

लेखक विष-यन्त्र का अध्ययन कर रहा है

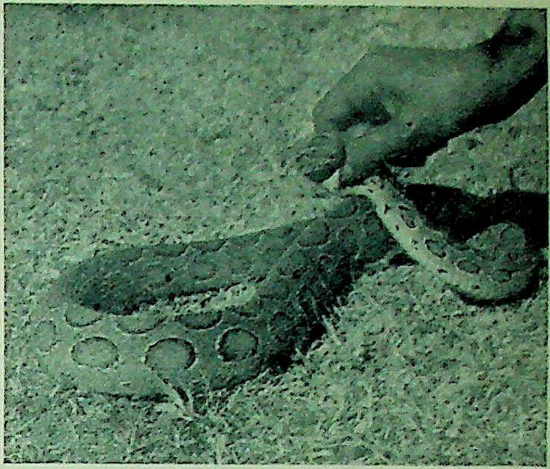

अत्यन्त भयानक साँप---वाइपर---लेखक ने इस तरह पकड़ा है कि उसका गला भी न दबे, पर प्रहार भी न कर पाये!

क्रमशः मोटी होती जाती हैं और हृदय के सामने मोटे सिरे में समाप्त हो जाती हैं। इन ग्रन्थियों के विस्तार के कारण इन साँपों में हृदय दूसरे साँपों की अपेक्षा अधिक पीछे होता है। शरीर के दूसरे तिहाई हिस्से में हृदय-प्रदेश अपेक्षाकृत मोटा होता है जो इन ग्रन्थियों की उपस्थिति को सूचित करता है और इस प्रकार पेट को बिना चीरे ही विष की पोटलियों को अनुभव किया जा सकता है। ये साँप जानते हैं कि इनकी विष ग्रन्थियाँ पेट में हैं। जब ये काटते हैं तो शत्रु के चारों ओर ज़ोर से लिपट जाते हैं जिससे विष की थैलियों पर दबाव पड़कर विष बाहर फेंका जाय।

साँप का विष हलके पीले रंग का स्वच्छ पारदर्शक लसदार द्रव होता है। फनिधर के विष का रंग सरसों के तेल जैसा होता है। शेषनाग का विष अधिक पीले रंग का होता है। प्रत्येक साँप का विष ग्लिसरीन या मुख की लार की तरह सर्वथा नीरंग भी हो सकता है। अधिकतर विष ऐसे होते हैं जिनमें न कोई स्वाद होता है और न गन्ध। कुछ अन्वेषकों के मत में अनुवीक्षक (माइक्रोस्कोप) में देखने से ताज़े विष में एपिथेलियम के कुछ कोष्ठ और कुछ जीवाणु, जो वास्तव में गति में होते हैं, नज़र आते हैं। इसमें तीस प्रतिशत ठोस पदार्थ होते हैं, परन्तु यह घनता की अवस्थानुसार भिन्न-भिन्न होता है। पानी जैसा पतला और अण्डे की सफ़ेदी के समान गाढ़ा भी विष होता है। हवा में पड़ा रहने से सूख जाता है और उसके स्फटिक या कीकर के गोंद की तरह पपड़ियाँ बन जाती हैं। सूखे विष में ताज़े विष के सब गुण विद्यमान रहते हैं। ठीक तरह रखा जाय तो सूखा विष कभी खराब नहीं होता। पानी में यह जल्दी घुल जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पृष्ठ २९ का शेषांश)

एक ही भाव-तथ्य को दो रूपों में अभिव्यक्त करना कवि की आत्मा की वह खोज है जिससे वह मनुष्य की चिरन्तन गति को काव्य की भाषा में उतार देना चाहता है। यहाँ बात कहने के बाद भावना नहीं है बल्कि भावना की उर्वरा भूमि से ही बात के सुन्दर सुमन खिले हैं।

ठीक इससे विपरीत उदाहरण भी देखिए :—

सुबह हुई होने को
नीड़ों में पर फड़के
पन्छी जागे
एक एक कर लगे टूटने
किलबिल किलबिल मनहूसी छा गयी
दर्द टीसने लग गया
अलस्सबेरे बहुत मुलायम हाथ
चना पीसने लग गया।

इस कविता में न मालूम कौन-सा चित्र है जो कवि के मन पर अंकित हुआ और कौन-सा चित्र कवि अपने पाठक के मन पर उतारना चाहता है? कुछ पता नहीं लगता, न अनुभूति के क्षेत्र में इसका प्रभाव ही है।

इस चित्र में न प्रभात का मनोरम चित्र है, न प्रभावपूर्ण चित्र है, न भावपूर्ण चित्र है—यदि कोई चित्र है तो कवि के एक 'मूड' का विकृत चित्र—जो पाठक के मन में कोई प्रतिक्रिया उत्पन्न नहीं कर पाता। छन्द, कल्पना दोनों ही असार्थक हैं। लगता है कि कवि प्रभात के साथ आने वाली जीवन की उदासीनता की ओर इशारा करना चाहता है। किन्तु जीवन की मॅनोटॅनी को सही-सही अभिव्यक्ति मिल सकी है इस कविता में यह कहना ठीक नहीं होगा। यहाँ यह सोच लेने की बात है कि कविता की अच्छाई 'आज के जीवन की वास्तविक उदासीन परिस्थिति' के तर्क-वितर्क में नहीं है, बल्कि उसकी अभिव्यंजना मात्र में है। अस्तु, यहाँ प्रयोग की भा वना प्रबल होने के कारण ही कवि की अभिव्यंजना सफल नहीं रही।

इस प्रकार के छिछले प्रयोगों में शैली के निर्माण की प्रौढ़ता और पाठक को आकर्षित कर लेने की सामर्थ्य नहीं होती। यह कहना सम्भवतया बड़ा 'पुराणपन्थी' लगे कि कवि को भी 'काव्य' के विषय में शिक्षित होना पड़ेगा। और यह शिक्षा उसकी मौलिक अनु भूति और मौलिक अभिव्यक्ति में उसे उसी प्रकार बाधा नहीं पहुँचायेगी जिस प्रकार कवि के अक्षर-ज्ञान ने उसके स्वतन्त्र-मानस के विकास में बाधा नहीं पहुँचायी। उस अभ्या स के पथ पर ही उसे प्रयोग की सार्थकता के दर्शन होंगे। वास्तव में साहित्य के विकास के निश्चित पद-चिन्ह तो वे ही हैं जहाँ कोई न कोई मौलिक प्रयोग हुआ है। और साहित्य का इतिहास इन्हीं प्रयोगों का उल्लेख मात्र है।

साहित्य में प्रयोग का वही उपयोग है जो विज्ञान के क्षेत्र में है। और जिस प्रकार अनेक असफल प्रयोग कर लेने के बाद ही प्रसिद्ध वैज्ञानिक एलबर्ट आईन्स्टीन अपने सापेक्षतावाद के सिद्धान्त की स्थापना कर सके—किन्तु उससे असफल प्रयोगों की सार्थकता से कौन इन्कार कर सकता है —उन प्रयोगों का उपयोग सम्भवतया अन्तिम सफल प्रयोग से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण था। प्रयोग के इस असीमित क्षेत्र को स्वीकार कर लेने के साथ ही यह चेतावनी भी है कि हम साहित्य के क्षेत्र में किन-किन साहित्यकारों को (वैज्ञानिकों की भाँति) प्रयोगशाला में जाने का अधिकार देते हैं!

(पृष्ठ ३९ का शेषांश)

हो जाती है, गैस फिर अपनी मूल अवस्था में पहुँच जाती है। इस तरह नये तारे भी बन रहे हैं। जब तारा धूल के बादलों में से गुज़रता है तो धूल के छोटे-छोटे बण्डल बन जाते हैं। यही पुच्छल तारे हैं। कभी-कभी दो तारे मिलकर एक भी हो गये हैं। ये तारे जन्मे कैसे?

आरम्भ में आकाश-गंगा में तारे नहीं थे। चारों ओर गैस थी। डिस्क के किनारों पर कुछ गड़बड़ हो जाया करती थी। यह गैस बादलों के रूप में बनी, उससे अलग हटी। अब इन बादलों में गड़बड़ हुई, यह क्रम जारी रहा और तारा बन गया। जब तारे की सिकुड़न समाप्त हो जाती है तो यह सूर्य जैसा बन जाता है। तारा गैस में रहता है और आकाश-गंगा का चक्कर लगाता है, कभी-कभी गैस भी लेता रहता है। जब तारा गैस में ३,००,००० मील प्रति घण्टा चलने लगता है तब यह गैस लेना बन्द कर देता है।

आकाश-गंगा में सूर्य जैसे बड़े तारे कम हैं। सूर्य अभी भी गैस ले रहा है। सूर्य जिस लीक में घूम रहा है वह सूर्य से १००० गुना बड़ी है। आरम्भ में (लगभग २००,०००,००० वर्ष पूर्व) जब सूर्य केवल ५००० मील प्रति घण्टा घूमता था तब यह लीक बहुत चौड़ी रही होगी। यदि कभी सूर्य का आकार (मास) ३,४ गुना बढ़ा तो इसकी चमक से पृथ्वी ही पिघल जायगी, जीवन भुन जायेगा। यदि कभी ऐसा अवसर आया तो तारों का संगीत और गंगा का बहाव सभी रुक जायेंगे, समाप्त हो जायेंगे। शायद यही पृथ्वी के लिए नरक होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पृष्ठ ३८ का शेषांश)

माई म्हाँने सुपने में परण गया जगदीश--

साधना की इस तल्लीनता में स्वप्नावस्था और जागृतावस्था में कोई अन्तर शेष नहीं रह गया था :

अंग अंग हल्दी में करी जी, सुधै भीज्यो गात,
माई म्हाँने सुपने में परण गया दीनानाथ।
छप्पन कोट जहाँ जान पधारे, दूल्हा श्री भगवान।।

यह था मीराँ का अलौकिक स्वप्नवत् विवाह! स्वप्न में ही छप्पन कोटि बरातियों के बीच सजे हुए कृष्ण दूल्हा बनकर आये थे--स्वप्न में ही तोरण बँधा था और स्वप्न में ही अचल सुहाग की मेंहदी लग चुकी थी। ऐसी अमर सुहागिन को संसार में अब कौन विधवा कहेगा!

प्रेम की पुजारिन मीराँ के पास समाज को बदलने के लिए चन्द्रगुप्त की सबल सेना नहीं थी, अशोक-सा साम्राज्य नहीं था, हर्ष के समान अपार धन-राशि देने की शक्ति नहीं थी, उसके पास तो समाज में हेय दृष्टि से देखा जाने वाला नारीत्व था--वैधव्य था और उसका एक-तारा था जिस पर प्रेम के गीतों की मनुहार भरी सामाजिक परिवर्तन की माँग मुखरित होकर गूँजती रहती है। वह नारी थी और नारी की परवशता लेकर सब कुछ हार चुकी थी--इतिहास के आरम्भ से आज तक मनुष्य को ही सिकन्दर, चन्द्रगुप्त और अशोक, नेपोलियन, अकबर, प्रताप और वर्तमान युग के गाँधी बनने का अवसर मिला है—उन्हें ही समाज ने परिवर्तन की उत्ताल तरंगों का नियामक माना है। मनुष्य के इस कीर्ति की घोर गर्जना में मीराँ का स्वर डूबता उतराता-सा लगता है; परन्तु उसका स्वर इस प्रचंडता में खो नहीं सका--सब कोलाहलों के ऊपर आज भी स्वतंत्रता का यह शंखनाद "बरजि मैं काहू कि नाहिं रहूँ" निरंतर सुनाई दे रहा है।

(पृष्ठ ३२ का शेषांश)

आठवाँ : इसमें वे एक-दूसरे का हाथ पकड़े हुए वृत्त के रूप में कभी दायें झुककर और कभी बायें झुककर चक्कर काटती हैं; और अब उनका अपने दिन भर के श्रम की सफलता पर हर्ष और मोद का सामूहिक प्रदर्शन आरम्भ होता है।

नवाँ : इस समय वे अपने हाथों को मुक्त करके अपने अपने घाघरे की झालर के दो छोर पकड़ लेती हैं और उसे घुमाती हुई दायें-दायें, बायें-बायें पदचाप द्वारा वृत्त में बड़ी तीव्र गति से चक्कर काटती हैं। यहीं नृत्य की पराकाष्ठा होती है।

दसवाँ : अन्तिम भाव में वे फिर एक पाँत का रूप लेती हैं और करतल ध्वनि करते कृषकों तथा वादकों आदि की टोली के साथ अपनी-अपनी टोकरी और रूमाल उठाकर उत्साह-उमंग से एक बार दायें एक बार बायें झुककर पदचाप बढ़ाते हुए अदृश्य हो जाती हैं।

आदि से अन्त तक कला और श्रम का यह प्रदर्शन सौन्दर्य और आनन्द से लबालब रहता है।

गीत : जो गीत उस प्रदर्शन में गाया गया था वह, संगीत की दृष्टि से भी, कम प्रभावशाली न था। उसमें यह शक्ति थी कि कठिन श्रम में बझे कृषकों में भी मस्ती और विस्मृति उपजा दे। और गीत के शब्दों में तो प्राण और जीवन रहे ही होंगे तभी तो विदेशी आधिपत्य हो जाने पर भी वह सुरक्षित बना रहा। और गोआनियों के होठों पर आज भी जीवित है।

ढोल-वादकों की टोली का गीत :

सूरज पश्चिम में डूब गया है। चाँद का आकाश में उदय हुआ है। और भरपूर फ़सल की समृद्धि के साथ मेरे देवता ने तुम्हारे घर में प्रवेश किया है।

उधर की झील का लाल कमल मुरझा गया है और वन-प्रान्तर के एकोएक पेड़ पर पतझड़ आ बसा है। लेकिन भरपूर फ़सल की समृद्धि के साथ मेरे देवता ने तुम्हारे घर में प्रवेश किया है।

दक्षिण से आँधी चली आ रही है और सागर में तूफ़ान उमड़ रहा है। उस तूफ़ान की तरंगों के साथ और उस बाढ़ के वेग के साथ मेरे देवता जलने तुम्हारे धार में प्रवेश किया है: भरपूर फ़सल की समृद्धि ने तुम्हारे घर में प्रवेश किया है।

सूरज पश्चिम में डूब गया। आकाश में चाँद का उदय हुआ है। भरपूर फ़सल की समृद्धि के साथ मेरे देवता ईश्वर ने तुम्हारे घर में प्रवेश किया है।

ढोल-वादकों द्वारा आह्वान

ओ किसानों आओ, ओ किसानों आओ!

आओ, वर्ष की पहिली, फ़सल काटने के लिए आओ! आओ, किसानों आओ!

फ़सल काटने वालों का गीत

ओ पाताल लोक की अप्सराओं, तुमने क्या अपने वस्त्रों में मेरे लाड़ले बच्चे के खिलौने छिपा लिये हैं?

अप्सराओं का उत्तर

हाँ, हमने छिपा लिये हैं, पर अपने अच्छे-से प्यारे-प्यारे बच्चों से कहो हमारी भूलभुलैया की पहिली सीढ़ी से उतर कर हमारे पास आयें और अपने खिलौने ले जायें!

फ़सल काटने वालों का नृत्य

लो, यह साल की पहिली बुआई के पहिले धानों की फ़सल! लो! धान के इन पूलों को बाँध लो!

बीज की चार कुण्डियों (**एक माप**) के बदले ये धान के आठ कुम्ब (**अस्सी कुण्डियाँ**) हमने पाये हैं, और साल की फ़सल आठ कुम्ब के बराबर है। आओ फ़सल काटने वाली कुमारियों आओ, हमने धन के छह बोझ इकट्ठा किये हैं। आओ!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४ प्रतियोगियों को १०१ रुपए पुरस्कार

निर्णायकों द्वारा स्वीकृत सर्व शुद्ध हल

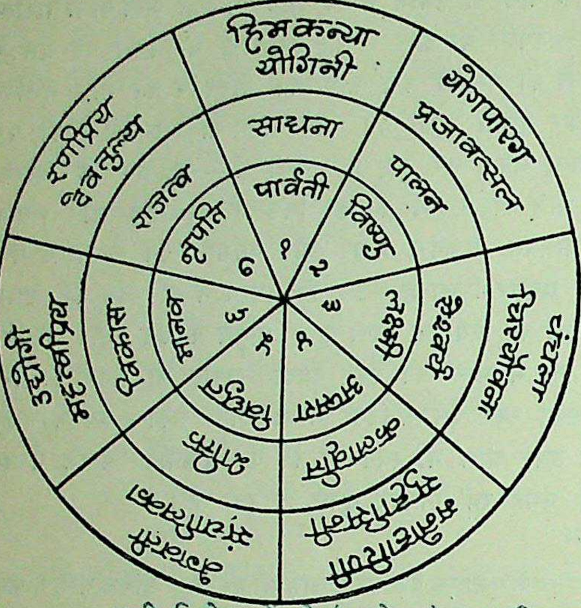

ज्ञानचक्र प्रतियोगिता नं० १ का हल

ज्ञानचक्र प्रतियोगिता में कुल चार सर्व शुद्ध हल प्राप्त हुए पुरस्कार-द्रव्य १०१) रु० निम्नांकित चारों विजेताओं में वितरित कर दिया गया।

प्रत्येक विजेता को २५।) रु० दिये गये

१ : श्री पी. आर. रुक्मांगद राव, मन्त्री, हिन्दी प्रचारक संघ, १३७।५ नंजुण्डराव गार्डन्स, मद्रास--४

२ : श्री मिश्री प्रसाद एम. एस-सी., बी. टी., गयादीन जायसवाल हायर सेकेण्डरी स्कूल, पो० खुरासों (आजमगढ़)

३ : श्री आत्माराम अग्रवाल, २५।१ बी. रतन सरकार गार्डेन स्ट्रीट, कलकत्ता--७

४ : श्री कृष्णदत्त त्यागी, नवजीवन इण्टर कॉलेज, पो० फरुंखनगर (मेरठ)

सभी विजेताओं को 'ज्ञानोदय' का अभिनन्दन तथा आगामी प्रतियोगियों को शुभ कामनाएँ

(पृष्ठ ३० का शेषांश)

जज का बेटा होकर रोटी माँगता है अबे अंगूर और सेव माँग, अंगूर और सेव।"

"कल पत्नी पड़ोस की एक स्त्री से कह रही थी--बहन अब बताओ मैं क्या करूँ। इनका तो दिमाग़ ख़राब हो गया है। घर का सब कुछ बिक चुका। रिश्तेदार कोई है नहीं। भीख माँग नहीं सकती। रोज़-रोज़ इनकी मार खाने को रह गयी हूँ। बच्चों की भूख मुझसे नहीं देखी जाती।

पश्चात् बहुत देर तक रोती रही। मैं हँसता रहा। खुशी में नाचता रहा। मेरे तीन बच्चे हैं, एक पत्नी। मैंने अपने से प्रश्न किया, "क्यों जी मैं नाच क्यों रहा हूँ?" उत्तर मिला, "क्योंकि मेरा दिमाग़ ख़राब हो गया है।"

जब हलवाई की दुकान आ गयी तो दोस्त बोला, "देख तेरी लुगाई बैठी है। मैंने लुगाई को गोद में उठा लिया। वह पूँछ हिलाने लगी। मैंने उसका प्यार लिया, वह जीभ फाड़े गरम-गरम जलेबियाँ देख रही थी। मेरी इन्हीं हरकतों पर लोग मुझे पागल कहते हैं। फिर कोई कुत्ता आ गया और वह बेवफ़ा औरत की तरह गोद में से उतर गयी।" मैं अपने साथी से बोला, "मैं घर जा रहा हूँ। आज देर हो गयी है। नहाना है। कपड़े पहरने हैं। आज कोर्ट है और मुझे राधारमण के मुकदमे का फ़ैसला लिखना है।"

"घर मत जइयो बे, वहाँ तेरी औरत और बच्चे मरे पड़े हैं। वहाँ तो बड़ी भीड़ लग रही है। जब मैं उधर से होकर तेरे पास आया था, तब तेरी ढूँढ़ मच रही थी। लोग कहते थे उन्होंने ज़हर खा लिया है।

मुझे बड़ा मज़ा आया, पूछा, "क्या सब ने ज़हर खा लिया?"

"हाँ।"

"यानी मर गये!"

"हाँ।"

"मेरा टुन्नू भी?"

"हाँ।"

और बेला भी?"

"हाँ"

और गप्पू?"

"वह भी।"

"तो चलो तमाशा देखेंगे। देखेंगे कि वह छोटे-छोटे कीड़े मरे हुए कैसे लगते हैं। चुनमुनिया से हाथ। और उनकी अम्मा....बड़ा अच्छा हुआ साले मर गये। मुझे दुखी कर रखा था। लोगों को हाथों पर वजन भी कम ले जाना पड़ेगा। सबके पेट खाली होंगे। क्योंजी क्या वाकई मेरी ढूँढ़ मच रही थी?"

"हाँ"

तब तो मैं नहीं जाउँगा। तुम ज़रा कोर्ट चले जाओ, कहना आज साहब नहीं आयेंगे। पेशकार से कहना कि वह राधारमण के मुकदमे की कोई और तारीख लगा दे। फिर बगिया में चलेंगे, साधू के पास। उससे सट्टे का दड़ा पूछेंगे, शायद तैंतीस हो,--अरथी के तीन-तीन इकाईयाँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पृष्ठ २६ का शेषांश)

बैठकर एकाकी मनु विगत वैभव और उसके विनाश पर चिन्ता प्रकट कर रहे हैं :—

चिन्ता करता हूँ मैं जितनी
उस अतीत की, उस सुख की
उतनी ही अनन्त में बनती
जातीं रेखायें दुख की
आह ! सर्ग के अग्रदूत ! तुम
असफल हुए, विलीन हुए
भक्षक या रक्षक जो समझो
केवल अपने मीन हुए
मणिदीपों के अन्धकारमय
अरे ! निराशापूर्ण भविष्य !
देवदम्भ के महामेघ में
सब कुछ ही बन गया हविष्य
अरे अमरता के चमकीले
पुतलो ! तेरे वे जयनाद
काँप रहे हैं आज प्रतिध्वनित
बनकर मानो दीन विषाद

प्रकृति की शक्तियों से पराजित देवों के विनष्ट वैभव पर चिन्तन करते मनु जब कुछ शान्त होते हैं तभी कामायनी श्रद्धा उनके सामने प्रकट होती है :—

कौन तुम ! संसृति जलनिधि तीर
तरंगों से फेंकी मणि एक
कर रहे निर्जन का चुपचाप
प्रभा की धारा से अभिषेक
मधुर विश्रान्त और एकान्त
जगत् का सुलझा हुआ रहस्य
एक करुणामय सुन्दर मौन
और चंचल मन का आलस्य ?

और इस आकस्मिक अप्रत्याशित मिलन से मनु सहसा प्रश्न कर उठते हैं :—

कौन हो तुम वसन्त के दूत
विरस पतझड़ में अति सुकुमार
घन तिमिर में चपला की रेख
तपन में शीतल मन्द बयार
नखत की आशा किरण समान
हृदय के कोमल कवि की कान्त
कल्पना की लघु लहरी लोल
कर रहीं मानस हलचल शान्त

अपने जीवन में श्रद्धा पाकर मनु के मानस की हलचल शान्त हो जाती है, वे फिर कर्म में लग जाते हैं, एक बार फिर जीवन का व्यापार चल पड़ता है। पर कालान्तर में मनु के हृदय में श्रद्धा के प्रति वितृष्णा उत्पन्न होती है, और वे उसे छोड़कर चल देते हैं। अन्त में वे उजड़े सारस्वत प्रदेश में पहुँचते हैं जहाँ की अधिष्ठात्री बुद्धि की प्रतीक इड़ा उनका स्वागत करती है, और उन्हें विज्ञान और पुरुषार्थ के सहारे पार्थिव ऐश्वर्य प्राप्त करने का उद्बोधन देती है :—

हाँ, तुम ही हो अपने सहाय ?
जो बुद्धि कहे उसको न मानकर फिर किसकी नर शरण जाय
जितने विचार संस्कार रहे उसका न दूसरा है उपाय
यह प्रकृति परम रमणीय अखिल ऐश्वर्य भरी शोधक विहीन
तुम उसका पटल खोलने में परिकर कसकर बन कर्मलीन
सबका नियमन शासन करते बस बढ़ा चलो अपनी क्षमता
तुम ही इसके निर्णायक हो, हो कहीं विषमता या समता
तुम जड़ता को चैतन्य करो, विज्ञान सजग साधन उपाय
यश अखिल लोक में रहे छाय।

इस प्रकार विज्ञान और कर्म के सहारे मनु सारस्वत प्रदेश को फिर समृद्ध बनाते हैं, नियमों की सृष्टि कर राज्य का संचालन करते हैं। पर अपने मन पर अभी उनका शासन नहीं है। अधिकार मद में वे नगर की अधिष्ठात्री इड़ा पर भी प्रभुत्व चाहते हैं। तब उनकी प्रजा विद्रोह करती है और वे संघर्ष में आहत होकर श्रद्धा की याद करते हैं। श्रद्धा उन्हें खोजती हुई उनके पास जाती है :

इसी खोज में श्रद्धा को इड़ा मिलती है जो उसे मनु के पास ले जाती है। उसके साथ उसकी सन्तान मनु-पुत्र कुमार भी है। मनु श्रद्धा को पाते ही कातर विनय कर उठते हैं :—

श्रद्धा ! तू आ गई, भला तो,
दूर, दूर ले चल मुझको
इस भयावने अन्धकार में
खोदूँ कहीं न फिर तुझको
हाथ पकड़ ले चल सकता हूँ
हाँ कि यही अवलम्ब मिले
वह तू कौन, परे हट, श्रद्धे !
आ कि हृदय का कुसुम खिले।

मनु की इस पुकार में आज का युग ही मानो अपनी सारी पीड़ा और संकट से शान्ति पाने की याचना करता है। 'कामायनी' की पूरी कथा ही इस लाक्षणिक अर्थ से भरी है, और उसकी यही शक्ति उसे मर्मस्पर्शी बनाती है। 'कामायनी' के अन्त में श्रद्धा-प्रेरित मनु हिमालय की गोद में आनन्द लोक का सन्धान पाते हैं, और उसका अनुकरण कर इड़ा एवं कुमार भी वहीं पहुँच जाते हैं। आनन्द लोक की यह प्राप्ति इस काव्य को रहस्य भावना और अन्तर्मुखी वृत्ति की ओर ले जाती है, परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूरी 'कामायनी' की संघर्ष-भरी विकलता हमारी पृथ्वी की वर्तमान यन्त्रणा की सफल प्रतिनिधि है। और उस विकलता के ऊपर छाया करने वाली कामायनी श्रद्धा की यह गीत-लहरी विश्व को आशा का अमर संदेश देती है जो प्रसाद की प्रतिभा की मूल आत्मा है :—

जहाँ मरु ज्वाला धधकती
चातकी कन को तरसती
उन्हीं जीवन घाटियों की
मैं सरस बरसात रे मन!

पवन की प्राचीर में रुक
जला जीवन जी रहा झुक
इस झुलसते विश्व दिन की
मैं कुसुम ऋतु रात रे मन!
चिर निराशा नीरधर से
प्रतिच्छायित अश्रु सर से
मधुप मुखर मरन्द मुकुलित
मैं सजल जल जात रे मन!
तुमुल कोलाहल कलह में
मैं हृदय की बात रे मन!

(पृष्ठ १६ का शेषांश)

करके नये समाज के नये निर्माण का वचन देता है, वहाँ वह 'सिर देकर स्नेह ले जाने' की बात भी कहता है। इसके अन्तर्गत विवाह करने वालों को पारिवारिक सम्पत्ति का लोभ त्यागना होगा, तलाक की सम्भाव्य कटु परिस्थितियों को सहना-सँभालना होगा और यदि विवाह जाति-बाहिर किया गया है तो दूसरे पक्ष की मान्यताओं, धारणाओं और संस्कारों के प्रति परम सहिष्णु रहना होगा।

* * * *

यह क़ानून विवाह करने वालों की अपनी-अपनी धार्मिक प्रवृत्तियों पर कोई आघात नहीं करता। सच तो, परम्परागत प्रथाओं के वर्तमान विवाहों में भी धार्मिक मान्यताओं के बहुत भेद रहते हैं। पति वैष्णव और पत्नी शैव ही नहीं, पति मांसाहारी और पत्नी शुद्ध शाकाहारी भी होते हैं। इस क़ानून में धार्मिक सहिष्णुता और उदारता और भी प्रोत्साहित हो जायगी। कारण, एक दूसरे की सभी बातें पहिले ही सोच-समझ और मान कर वे रजिस्ट्रार के सामने जायेंगे।

यह सत्य है कि आज के प्रचलित विवाह जिन उम्रों में होते हैं वे इस क़ानून की उम्रों से कच्ची ही होती हैं। लेकिन सत्य यह भी है कि इन क़ानून की उम्रें ही वह काल है जब मानवी चंचलताएँ और कामवेग प्रबलतम होते हैं। व्यवहार-ज्ञान और अनुभव आदि भी तब आरम्भिक अवस्था में ही रहते हैं। किन्तु इस क़ानून का उपयोग शिक्षित क्षेत्रों में ही किया जायगा, कुछ बरसों तक तो कम से कम यही होगा। इसलिए यह आशा करना बहुत भारी भूल न होगा कि विवाह करने वाले अपना भला-बुरा सोचकर ही यह पग उठायेंगे। स्त्री जाति की सहज प्रकृति इस विषय में उसकी निश्चित रूप से और भरपूर सहायता करेगी।

* * * *

इस क़ानून के अन्तर्गत जो विवाह होंगे, वे अत्यन्त सीधे-सादे ढंग से होंगे और उनका आर्थिक पहलू भी तदनुसार ही होगा। विवाह-रजिस्ट्रेशन शुल्क एक रुपया मात्र है।

क़ानून के अनुसार इन विवाहों की सन्तति सब तरह वैध और जायज़ मानी जायगी। अपनी पैतृक सम्पत्ति पर उसका पूरा अधिकार होगा। हाँ, यदि माता-पिता विभिन्न धर्मों के हैं तो उसके धर्म का प्रश्न उठता है।

विधेयक के निर्माताओं को सुझाया गया था कि इस बारे में विवाह करते समय ही सारी बात स्पष्ट करके उसे लिखित रूप दे दिया जाय। किन्तु विशेषज्ञों का यही निर्णय रहा कि बालक की प्रवृत्तियाँ माता की गोद और लालन-पालन में ही बनती-खिलती हैं, इसलिए बचपन में वह आवश्यक रूप से माता की प्रवृत्तियों के प्रभाव में रहेगा, किन्तु समझ आने पर वह अपने धर्म का आपोआप निर्णय कर लेगा। क़ानून में ऐसी कोई धारा नहीं रखी गयी जिसके आधार पर बालक के धार्मिक संस्कारों की व्यवस्था की जाय, वह माता-पिता के आपसी समझौते पर छोड़ दिये गये।

* * * *

भारत में सबसे पहिला विवाह विधेयक १८७२ ईस्वी में पास हुआ था। वह भारतीय क्रिश्चियन विवाह विधेयक था। फिर १९३६ में पारसी विवाह विधेयक पास किया गया था। अखिल भारतीय और समस्त जातियों के सम्मिलित रूप में कोई विधेयक यह अभी ही लोकसभा के गत अधिवेशन में पास हुआ है। गत दो दशाब्दियों से जो आवश्यकता तीव्र से तीव्रतर रूप में अनुभव होती आ रही थी वह इस प्रकार सन्तोष पा गयी।

विधेयक की अनेकों कमजोरियाँ भी प्रत्यक्ष हैं। किन्तु इससे विधेयक का महत्व नहीं घटता। आने वाली पीढ़ी के लिए यह विधेयक ऐसा ज़बरदस्त सहारा होगा कि भारत भी फिर विश्व के अन्य राष्ट्रों के बीच सामाजिक रूप से तन कर खड़ा हो सकेगा और विवाहित जीवन की कोई भी ग्रन्थि जीवन को नष्ट नहीं कर सकेगी। हाँ, यह आने वाली पीढ़ी को चाहिए कि अपने अधिकार को पहिचाने और कर्त्तव्य के प्रति जागरूक रहे। यही भावी भारत के सुखी और सम्पन्न होने की शर्त है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पृष्ठ ८ का शेषांश)

सभी पराधीन देशों के स्वाधीन होने पर साम्राज्यवाद की समाधि पर पश्चिमी लोक-साधना की एकांगिता का असत्य प्रस्फुटित होगा। साम्राज्यवाद के वैभव और ऐश्वर्य पर पल्लवित होने वाली पश्चिमी संस्कृति जब अपने देशों के सीमित साधनों पर लोक-जीवन का निर्वहण करने के लिए बाध्य होगी, वह पश्चिमी सभ्यता की लोक-मुखी दृष्टि की परीक्षा का समय होगा।

उस दिन पश्चिम की ऐहिक साधना एक असफल संस्कृति का आश्वासन मात्र रह जायगी, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि पराजित भारत का अध्यात्म एक आश्वासन भर रह गया। ठीक उसी प्रकार वे बाह्य उपकरण एक असफल जीवन से पलायन के साधन रह जायेंगे, जिस प्रकार उपासना और अध्यात्म भारत में रहे। यह भी सम्भव है कि जिस प्रकार असफल अध्यात्म की शून्यता से ऊबे हुए भारत में पश्चिम की लौकिक समृद्धि के उपकरण पूर्णता की प्रतीति के साधन बने, उसी प्रकार पश्चिमी देशों में एकांगी होने के कारण असफल लोक-साधना का असन्तोष भारतीय अध्यात्म में आश्वासन खोजने लगे। यह जीवन की दो एकांगी और अपूर्ण सरणियों की असत्यता और असफलता की चरम विडम्बना होगी। जिस प्रकार पूर्व के असफल अध्यात्म की शून्यता से पलायन का मार्ग पश्चिम की लौकिक समृद्धि के उपकरण बने, उसी प्रकार पश्चिम की असफल लोकमुखी संस्कृति की शून्यता से पलायन का मार्ग पूर्व का अध्यात्म होगा। दोनों ने संस्कृति की मूल कल्पना में जिसकी उपेक्षा की उसे वे पलायन में पायेंगे। जिस दिन पूर्व और पश्चिम दोनों के पलायन का अन्त सम्मिलन के एक बिन्दु पर होगा, उसी दिन दोनों को जीवन का पूर्ण सत्य विदित होगा।

उस पूर्ण सत्य में लौकिक श्रेय और शक्ति की भूमिका में अध्यात्म की प्रतिष्ठा होगी। जीवन का सत्य पलायन नहीं साधना है। किन्तु अपूर्ण और एकांगी होने पर इस साधना का अन्त पलायन में होता है जैसा कि पूर्व के अध्यात्म के विषय में हो चुका है और पश्चिम की लोक-साधना के विषय में अवश्यम्भावी है। इस साधना का साध्य शान्ति और आनन्दपूर्ण आध्यात्मिक स्थिति है जिसके प्रथम प्रतिपादन का श्रेय पूर्व को हीं मिलेगा। लौकिक श्रेय और शक्ति उसकी प्रतिष्ठा के उपकरण हैं। तर्क-दृष्टि से इन्हें साधन कहना भी कठिन है, किन्तु इन उपकरणों के अभाव में अध्यात्म साधना भंग हो सकती है अतः अपेक्षा की दृष्टि से इन्हें अवान्तर साधन कहा जा सकता है। पूर्व का इतिहास इनकी उपेक्षा का प्रायश्चित्त कर चुका है। किन्तु अभी पश्चिम को इन साधनों को ही सर्वस्व मान लेने की भूल का प्रायश्चित्त करना शेष है। लौकिक उपकरण जीवन के साधन हैं साध्य नहीं। साधनों को साध्य बना लेना पश्चिमी सभ्यता की मूलगत भूल है, यद्यपि साधनों की उपेक्षा करके साध्य की आराधना भी भूल है। पूर्व का अध्यात्म इसी भूल के कारण असफल हो चुका है। जीवन का सत्य साध्य के साथ साधनों का समन्वय है। मानव-जीवन भौतिक शरीर में आत्मा का अवतार है। लौकिक साधन शरीर के स्वास्थ्य और संरक्षण के हित प्रेय हैं। लौकिक श्रेय और शक्ति की समुचित भूमिका में ही अध्यात्म की प्रतिष्ठा हो सकती है। अध्यात्म के अलौकिक श्रेय का आनन्द इस भूमिका की कृतार्थता है। लौकिक श्रेय की भूमिका में अलौकिक अध्यात्म की प्रतिष्ठा ही जीवन की पूर्णता है। पूर्व और पश्चिम दोनों के पलायन की परिणति जीवन के इस पूर्ण सत्य के उद्घाटन में होगी। यही पूर्णता पलायन से श्रान्त विश्व के लिए जीवन की शान्तिमय साधना और आनन्दमय सार्थकता का शाश्वत मार्ग होगी।

(पृष्ठ १३ का शेषांश)

निश्चित होकर सो जाइये।"

होश कुछ समझा और कुछ नहीं भी समझा लेकिन वह सो गया।

० ० ० ० ० ० ०

राम ने एक बार पाबेला को पकड़ लिया, वह उसे जगाना चाहती थी।

उसने पूछा--"आपके घर में अतिथी का इसी प्रकार सत्कार होता है क्या? इस प्रकार रात में आने-जाने से कोई देख लेगा तो क्या होगा?"

अत्यन्त विनम्र होकर पाबेला बोली--"मेरे सम्माननीय अतिथी! आप मुझ पर सन्देह न कीजिये मैं इतनी बड़ी हो गयी हूँ और डाक्टर भी हूँ, अपना अच्छा-बुरा स्वयं सोच सकती हूँ। मेरे माता-पिता ने मुझे जो शिक्षा दी है उसके बाद वे मुझे यहाँ पर देख कर कुछ भी सन्देह नहीं करेंगे।"

राम लज्जित हो गया, बोला--"मुझे क्षमा कीजियेगा, किन्तु मैं आपके जागे रहने का कारण जानना चाहता हूँ।"

पाबेला ने उसी मधुर स्वर में कहा--"आपका स्पर्श मेरे लिए दैवी वरदान है, और जब आप मेरे ही घर पर हैं तो मैं उसका लाभ क्यों न उठाऊँ? फिर भी आप चिन्ता न कीजिये मैं अपने सम्माननीय अतिथी को किसी प्रकार क्षति नहीं पहुँचाऊँगी। मैं अपने घर के रिवाज के मुताबिक ही कर रही हूँ। आप सो जाइये।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम कुछ समझा और कुछ नहीं भी समझा लेकिन वह सो गया।

० ० ० ० ० ० ०

प्रातःकाल के हल्के वायु ने प्रेमी-प्रेमिका के जीवन में मादकता टपका दी। दिन का आगमन मानो वर्षों की तपस्या का फल था।

रामहोशे ने विदा के समय सारे परिवार को अपने यहाँ भी एक रात बिताने के सुअवसर का निमन्त्रण दिया, किन्तु कार्य की अधिकता और बीमारी आदि के कारण औरों ने अशक्तता प्रकट की केवल निमन्त्रण की स्वीकृति लीलापाबेला ने ही प्रदर्शित की।

होशेराम गत रात की मधुर स्मृति में तैरता-उतराता जा रहा था और आनेवाली रात्रि के सुख-स्वप्न की कल्पना कर रहा था। उसे अपनी इतनी बड़ी सफलता पर विश्वास नहीं हो रहा था। जीवन कितना फीका था और एक दिन में कितना रङ्गीन हो गया था। भूले हुए ईश्वर को आज बार-बार याद करने को चाहता था। तर्क, सन्देह और हिचकिचाहट का स्थान उसके दिल से समाप्त हो चुका था। लीलापाबेला को उसके निमन्त्रण को स्वीकार करना ही सन्देह और हिचकिचाहट की जड़ पर कुठाराघात था। आवश्यकता से अधिक उसने अपने घर को सजा दिया था। कर्मचारियों में भी एक नवीन उत्साह की ज्योति जगमगा उठी थी। जीवन के संचित स्वप्न को इस आकस्मिक रूप में सार्थक होता हुआ देख उसका हृदय आनन्द की मादकता से मस्त हो रहा था।

लीलापाबेला ने यथासमय आकर होशेराम का आतिथ्य स्वीकार किया। भोजनोपरान्त बहुत अधिक रात्रि तक बातचीत का सिलसिला बँधा रहा। अपने-अपने जीवन के बहुमूल्य अनुभवों से एक ने दूसरे को परिचित कराया।

और तब होशेराम ने लीलापाबेला को आज की मधुर रात्रि के अमूल्य प्रहरों को जीवन की रंगीन धारा में डुबो देने का प्रस्ताव किया। वह उन्मत्त था। उसने लीलापाबेला का हाथ पकड़ लिया।

कुछ दूर छिटक कर लीला ने कहा—"हमारे देश में यह अपराध है। मेरा भावी पति भी यदि विवाह से पहले इस प्रकार का प्रस्ताव करे तो उसे भी दण्ड का भागी बनना पड़ता है।"

होशे ने कहा—"मैं इसके लिए क्षमा प्रार्थना करता हूँ किन्तु यदि मैं विवाह का प्रस्ताव करूँ तो....?"

बात काट कर लीला बोली—"मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकती मेरा विवाह मेरे ही देशवासी से होगा। इसी को मैं अधिक उपयोगी समझती हूँ।"

० ० ० ० ० ० ०

पाबेला ने अपना हाथ राम के ही हाथों में रहने दिया और मुस्कराती हुई बोली—"आपके देश में क्या इसे अपराध नहीं समझा जाता?"

राम ने कहा—"अपराध तो अवश्य है किन्तु यदि कोई देख ले या जान ले तब?"

पाबेला ने कहा—"हम दोनों का ही जानबूझ कर पाप करना क्या अपराध नहीं—हम स्वयं अपने पाप को क्या नहीं देखेंगे या जानेंगे?"

राम ने कहा—"मैं इसके लिए क्षमा चाहता हूँ किन्तु मैं समझ रहा था, हम दोनों एक दिन विवाह-सूत्र में बँधेंगे ही।

पाबेला ने बात काटकर कहा—"लेकिन मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकती। मैं जिस युवक से प्रेम करती हूँ उसके साथ विवाह-सूत्र में बँधने की अपने माता-पिता से स्वीकृति प्राप्त कर चुकी हूँ और वह युवक इस समय युद्ध में एक सैनिक अधिकारी है, युद्ध से लौटते ही मेरी उससे शादी सम्पन्न होगी।"

० ० ० ० ० ० ०

लीलापाबेला की अस्वीकृति ने जहाँ होशेराम को क्षणिक अशान्ति में डाल दिया वहाँ दूसरे ही क्षण उसे नारी की इस स्वेच्छा मर्यादा से अत्यन्त सन्तोष भी मिला और वह तत्काल लीलापाबेला के पैर छूने को लपक पड़ा।

लीलापाबेला ने उसके हाथ थाम कर कहा—"मैं आपको एक कलाकार समझकर मिली थी और कलाकार की निर्लिप्त भाव पवित्रता पर मुझे पूर्ण विश्वास है और अब उसी विश्वास को हृदय में धारण करके अन्तिम रूप में आप से मिलकर अपने घर लौट रही हूँ। नमस्कार!

होशेराम स्थाणुवत् वहीं खड़ा रहा। लीलापाबेला अर्धरात्रि के उस घने अन्धकार में चुपचाप अपने घर की ओर चल पड़ी।

(पृष्ठ ४५ का शेषांश)

भी कारण से न हो बल्कि इसलिए हो कि हमसे कहीं अधिक चतुर और बलवान् कोई और ही व्यक्ति या बात है जिसकी यह योजना है और हम उसके बारे में कुछ नहीं...."

"मारो, मारो इसे! इसका यह मुँह!" और सभी बड़े सूअर उस पिलुए की खरी बात पर क्रोध से गरजते हुए उसे काटने-खसोटने के लिए लपके।

मेरा मित्र पास ही खड़ा था। अपने गोल में जो उसने यह ऊधम देखा तो डण्डा सँभालते हुए बोला, "यह सूअर के बच्चे सदा ऐसे ही रहेंगे!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पृष्ठ १७ का शेषांश)

ये मैंने चीन या रूस की नक़ल करने की बात कही। अब दूसरे पहलू, अमेरिका की नक़ल करने का जिक्र करूँगा। मुझे अमेरिका की बहुत-सी चीजें पसन्द हैं और बहुत-सी चीजें हैं जिन्हें मैं दिल से नापसन्द करता हूँ। बात यह है कि अपने आपको बनाने में अमेरिका को क़रीब-क़रीब १५० साल लगे हैं। हमारे पास उतना वक्त ही कहाँ है। अगरचे रुपये की भी अहमियत है, मगर निर्माण सिर्फ़ रुपये का ही सवाल नहीं। हमें इन्सान पैदा करने हैं, राष्ट्र में ठोस गुण पैदा करने हैं, और ये रुपये से कभी पैदा नहीं होते। अक्सर उन लोगों में गुण पैदा होते हैं जिनके पास दौलत नहीं होती, क्योंकि उन्हें संघर्ष करके अपने आपको खुद बनाना होता है। राष्ट्र और व्यक्ति अपना निर्माण अपने आप ही करते हैं।

ये बड़ी अजीब बात है, मगर याद रखने क़ाबिल है कि दुनिया के देश जो विदेशों से धन हासिल करते हैं, उनमें से कुछ ऐसे हैं जो काफ़ी कुछ तरक्क़ी नहीं कर सके और खुशहाल नहीं बन सके। अपने पड़ोसी पाकिस्तान को ही ले लीजिए: वह राजनीतिक और आर्थिक रूप से तरक्क़ी की तरफ़ नहीं बढ़ रहा है। वह चाहेगा तो और अधिक रुपया उसे मिलेगा, लेकिन कोई और चीज़ है जिसकी ज़रूरत है। वह है: दूसरों से मदद लेते हुए उन पर मुनहसिर न रहना, आत्म-निर्भरता की भावना।

इस प्रकार मैं इस नतीज़े पर पहुँचता हूँ कि कुल मिलाकर अमेरिकी तरीक़ा और अमेरिकी नज़रिया भारत पर लागू नहीं होता। वह भारत के लिए नुकसानदेह होगा। और समूचा का समूचा लागू किया जाय तो कम्युनिस्ट नज़रिया भी भारत के लिए हानिकारक है। ये दूसरी बात है कि मैं कुछ चीजें अमेरिका से, कुछ चीन से और कुछ रूस से लूँ। कुल मिला कर हमारी समस्याएँ चीन की समस्याओं से मिलती हैं। क़ुदरती तरीक़े से हम दोनों बड़े महान् देश हैं जो औद्योगिक रूप से पिछड़े हुए होने के कारण औद्योगीकरण में लगे हुए हैं। दोनों की बहुत-सी बातें एक जैसी हैं: मुझे यक़ीन है हम उनसे बहुत कुछ सीख सकते हैं और मेरे विचार में वे हमसे भी कुछ सीख सकते हैं। लेकिन हमें अपनी समस्याओं का हल निकालने के लिए अपने आप सोचना होगा।

हम अणु-युग के किनारे खड़े हैं। हमारे स्कूल-कॉलेजों में पढ़ाया जानेवाला अर्थशास्त्र पूरी तरह बेवक्त हो गया है। वह मौजूदा स्थिति पर लागू नहीं होता और आनेवाले युग पर तो और भी कम लागू होगा। आर्थिक समस्याओं पर अभी तक ज्यादातर यूरोप या अमेरिका के नज़रिये से विचार किया गया है। हमारा नज़रिया तो अलग है; क्योंकि हमारे हालात अलग हैं। लेकिन इस सबके अलावा ज्यादातर लोग इस बात को महसूस करते हैं कि निजी उद्योगपतियों को समाज का प्रभु बना देने का आज कोई मतलब नहीं है। हरेक को समाज-वाद की दिशा में जाना होगा। और खास तौर से भारत जैसे कम विकसित देशों को इस रास्ते पर चलना ही होगा।

और इस दिशा में जाने के दौरान, मेरे खयाल के मुताबिक़, हमें समाज के सभी तत्वों का सहयोग लेना चाहिए। इन तत्वों से मेरा मतलब उद्योगपतियों, पूँजीपतियों तथा दूसरों से है। पूँजीपति शब्द एक प्रकार की गाली बन गया है। यह बेहूदा बात है। सभी पद्धतियों की, चाहे वे राजनीतिक हों या आर्थिक, ज़रूरत का एक खास वक्त होता है। अपने जमाने में वे अच्छी और बेहतर होती हैं, लेकिन फिर वे बेवक्त भी हो जाती हैं। बेशक अपने जमाने में सामन्तवादी निज़ाम भी अच्छा था, बाद में वह समाज के लिए अच्छा न रहा और समाज उसे छोड़कर दूसरे किसी निज़ाम की तरफ़ बढ़ गया। इसी तरह बुराई और भलाई के होते हुए पूँजीवादी व्यवस्था ने भी दुनिया के इतिहास में एक खास मक़सद पूरा किया। लेकिन चीज यह है कि अब वह वक्त बीत चुका है या यह कहो कि क़रीब-क़रीब बीत चुका है और अब इन्सान को दूसरा क़दम उठाना होगा।

(पृष्ठ २५ का शेषांश)

वासन्ती—(**अन्तर की विकलता में छटपटाती-सी**) पूर्व-जन्म और पर-जन्म मैं नहीं जानती, पर यह मानती हूँ कि यतीन और मैं मिलेंगे जरूर—आसमान के तारों की तरह, शून्य में।

प्रभात—(**चिहुँक कर**) तो श्री भी इस जीवन में नहीं मिलेगी मुझे?

वासन्ती—(**खाँसती है, शान्त होने पर**) श्री? श्री, मेरे भइया, तुम्हारे लिए एक बोझिल नक्षत्र है। उसे तुम्हारा भाग्य न झेल सकेगा। उस मोह-जाल से अभी ही बच निकले तो देखोगे कि जीवन में कितनी ही श्री बालू के कणों की तरह सूर्य के आलोक में चमचमा उठेंगी। (**फिर खाँसती है**)

प्रभात—दीदी, तुम सो जाओ। मैं तुम्हारी भूलभुलैयाँ समझ गया। पर एक बार श्री के पास अभी और जाऊँगा, उसका गीत सुनने। ओह, उसका स्वर मेरे हृदय की गहराइयों में असंख्य घण्टियों को टुनटुना देता है।

वासन्ती—(**कुछ क्षण प्रभात की ओर देखती है, फिर धीरे-धीरे उठकर सहारे से बैठ जाती है**) ला प्रभात, मेरा इसराज उठादे। आज तुझे अन्तिम गीत सुनाऊँगी। हाँ, इसमें घण्टियों का गुंजन न होगा। उन घण्टियों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यतीन चुरा ले गया। मैं न रहूँ तो इस इसराज को तू अपने पास रखना। दुख-दर्द में इसकी झंकार विरक्ति जगाती है और सुख-वैभव में आसक्ति। ला! **(प्रभात इसराज उठाने के लिए आगे बढ़ता है।)**

(स्टेज पर क्रमशः अन्धकार, फिर जब प्रकाश होता है तो एक निर्जन से स्थान में श्री और प्रभात खड़े बातें कर रहे हैं। प्रभात के हाथ में इसराज है।)

चौथा दृश्य

प्रभात—बोलो श्री, चल सकती हो मेरे साथ?

श्री—**(हँसती है)** हाय-हाय, कुँवर साहब, आपको हो क्या गया है? मैं किसी के साथ क्यों जाऊँगी? मेरा आदमी है, मेरा छोटा-सा बच्चा है। आप इस तरह क्यों सोचते हैं?

प्रभात—**(अचरज करते हुए)** आदमी....बालक....यानी?

श्री—**(फिर हँसती है, हाथ नचाती है)** हाँ, कहा था न उस दिन। मैं व्याही-ठियाई हूँ।

प्रभात—फिर गली-गली नाचकर लोगों को क्यों मोहा करती हो?

श्री—**(ठठाकर हँसती है)** किरसुनजी भी तो बंसी से गोपियों को मोहा करते थे, पर स्वयं क्या कभी मोह में आते थे। मैं भी दूसरों को ही मोहा करती हूँ। यही हमारा चार पैसे का धन्धा है, सरकार।

प्रभात—**(गम्भीर होता है)** समझा, श्री! जाओ; पर कभी मेरी याद तो आयेगी न?

श्री—**(आँचल का छोर उँगली पर लपेटती हुई)** हीरे की अँगूठी देने वाले कुँवर साहब को कैसे भूल जाऊँगी! **(मुस्कुरा कर उनकी ओर देखती हुई)** तीसरे साल फिर आऊँगी सरकार।

प्रभात—तीसरे साल?

श्री—हाँ, सरकार। **(मटक कर)** और राम ने चाहा तो बहूरानी के भी दरसन पाऊँगी। **(हँसती है)** नन्दनपुर के वह ऊँची हवेली वाले हैं न? मैं तो नाच आयी हूँ टीके के दिन। चाँद का टुकड़ा है बहूरानी, कुँवर साहब। **(मटकती है)**

(प्रभात मौन खड़ा सुनता रहता है, श्री चली जाती है, देर बाद प्रभात वहीं बैठ जाता है और इसराज छेड़ता है, गाता है। धीरे-धीरे स्टेज पर अँधेरा होता है और दादा के गीत की आवाज सुनाई देने लगती है। जब प्रकाश होता है तो दादा अपने असली रूप में कान्ति के पास बैठे इसराज बजाते होते हैं।)

पहिले दृश्य में वापिस

(दादा और कान्ति उसी प्रकार बैठे हैं; दादा अपनी कहानी सुना रहे हैं—)

दादा—**(एक आँसू आँख की कोर से निकल कर गाल पर बह गया है)** और श्री चली गयी। पता नहीं अब जीवित भी है या नहीं। आज प्रसंगवश उसकी याद आ गयी। और बासन्ती दीदी! वह भी हैं। उन्होंने ग़म को जीत लिया। याद है न, पाँचेक साल हुए आयी थीं? उनका व्याह हुआ था और आज सुखी-सम्पन्न हैं।

कान्ति—**(मुग्ध-सी सुनती हुई)** और यतीन? यतीन को फिर याद नहीं करतीं कभी?

दादा—**(एक दीर्घ श्वास छोड़ते और अन्तर्मुखी होते हुए)** बेटी, यही तो बताना चाहता हूँ। जीवन में तात्कालिक सुखों की चादर पिछले दुखों को सहज ही ढक लेती है। कौन जाने, दीदी को भी प्रसंगवश कभी यतीन की याद आ जाती हो। और **(आकृति और कण्ठ की गम्भीरता बढ़ जाती है, आँख की कोर से आँसू भी कुछ देर वहीं अटक कर गाल पर कों लुढ़क जाता है)** जैसा श्री ने कहा था, बड़ी धूमधाम से तेरी माँ भी इसी घर में आयी। वह श्री के वर्णन से भी सुन्दर थी। **(कुछ क्षण को मौन हो जाते हैं, कान्ति एक टक उनकी ओर देख रही है और एक क्षीण अन्तर्द्वन्द्व की छाया उसके मुख पर साफ़ झलकती है)** और बेटी, उसके स्वर में भी असंख्य घण्टियों की टुनटुनाहट थी। आज वह **(दूर अन्तरिक्ष में टिकी दृष्टि धीरे-धीरे नीचे को झुक जाती है, कण्ठ स्वर भारी-आर्द्र हो जाता है)** नहीं है, किन्तु सूक्ष्म रूप से तेरे-मेरे बीच वह अवश्य ही यहाँ मौजूद है। बेटी— **(चेष्टा-पूर्वक वह अपने को सँभालते हैं और इसराज उठाने के लिए तिपाई की ओर हाथ बढ़ाने झुकते हैं)**

कान्ति—**(विकल-सी)** दादा, दादा, मेरा चित्त बड़ा अशान्त है।

दादा—**(उठाकर इसराज देते हुए)** हाँ बेटी, और यह अब उस कहानी का अन्तिम चरण है। **(इसराज देता है)** ले, इसे बजा और कुछ गा। यह दीदी से मुझे मिला था, आज तुझे सौंपता हूँ। दुख-दर्द में इसकी झंकार विरक्ति जगाती है और सुख-वैभव में आसक्ति। बजा, तेरी अशान्ति भी शान्ति में बदल जायगी।

(दादा की दृष्टि फिर दूर सामने शून्य में जा अटकती है। हाथ की उँगलियाँ रह-रह कर काँपती-सी घुटनों पर यों ही पड़ी हैं। कान्ति अनमने भाव से इसराज लेकर छेड़ती है। पर कुछ ही देर में, ज्यों-ज्यों स्वर उठते और फैलते हैं, उसकी मुद्रा बदल चलती है: पलकों से दो बूँद आँसू ढलकते हैं। फिर सहसा—)

कान्ति—**(इसराज रख देती है और दादा का कन्धा झकझोरती हुई-सी)** दादा, मैं नरेन्द्र के साथ नहीं जाऊँगी। दादा, मुझे क्षमा करदो। मेरे अच्छे दादा! **(गले से लिपटने की करती है)** मुझे क्षमा करदो।

दादा—मेरी रानी, मेरी बिटिया।

❀

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास बन रहा है

पूरनचंद्र जोशी

आज के विश्व-संघर्ष और 'शान्ति की नीति' के पोषकों पर नवम्बर मास के अन्त में एक प्रमुख पत्रकार ने कहा था, "ये लोग ऐसा सभी कुछ कर रहे हैं जिससे राष्ट्रों की एकता और शान्ति में बाधा पड़े। मगर अब इस तरह का बहुत कुछ करना चाहते भी वे कर नहीं पाते" क्योंकि इधर जो सब हुआ है "उस पर परदा नहीं डाला जा सकता" और न ही "भारत की शान्तिवाणी ही दबायी या डुबायी" जा सकती है।

यह सचाई श्री राजगोपालाचारी के एक हाल के वक्तव्य से, जो एक प्रसिद्ध अमेरिकी दैनिक में निकला था, और भी साफ़ और पक्की हो जाती है। उन्होंने कहा है कि उन लोगों (अमेरिका आदि) को चाहिए कि अपने ऐटॅम और हाइड्रोजन बम्ब अब महासागर के गर्भ में विसर्जित करदें। राजाजी कुछ बरस पहिले तक नेहरू मन्त्रीमण्डल में थे, और उनके उस समय के विचारों को याद करते उनका ही यह वक्तव्य भारी महत्त्व की बात बन जाता है।

तीन साल पहिले शिकागो विश्वविद्यालय के श्री हैन्ज़ जे० मौरगैन्थाँ ने भी अपनी पुस्तक 'इन डिफ़ेन्स ऑव नैश्नल इन्टरेस्ट' में इसी ओर संकेत करते हुए कहा था कि उन लोगों के सामने आज केवल युद्ध अथवा समझौते द्वारा शान्ति का मार्ग है और यदि अमेरिका ने दूसरे मार्ग को नहीं अपनाया तो शनैः-शनैः वह अपनी सौदे की ताकत को भी खो देगा। और एक दिन उस स्थिति पर पहुँच जायगा जब विश्व-युद्ध को प्रारम्भ करने का अपराधी भी उसे ही बनना पड़ेगा।

जर्मनी का पुनः शस्त्रीकरण

गत-युद्ध से ध्वस्त यूरॅप के देश आज नये सिरे से जर्मनी के शस्त्रीकरण को आसानी से गले नहीं उतार पा रहे हैं। और दूसरी तरफ़ अमेरिका यूरोपियन-डिफन्स-कम्यूनिटी की योजना को असफल देखकर किसी भी प्रकार लन्दन और पेरिस के समझौतों को मनवाने के लिए उतावला हो रहा है। इन नई योजनाओं में पहिली योजना के सारे प्रतिक्रियावादी तत्व मौजूद हैं—यथा :

(१) एक राष्ट्रोपरि कौंसिल का निर्माण—जो सदस्य राष्ट्रों के ऊपर फौजी मामलों की निर्णायक होगी अर्थात् सदस्य राष्ट्रों की सार्वभौमिक-सत्ता अस्थिर हो जायेगी।

(२) 'नेटो' के कमांडर्स के नेतृत्व में एक राष्ट्रोपरि सैनिक कमाण्ड होगा। इस कमाण्ड का उद्देश्य, स्वयं 'नेटो' के कमाण्डर मोंटगुमरी के शब्दों में "एटम बम तथा आणुविक शक्ति को युद्ध में काम लेने के पूर्व की 'ऑपरेशनल प्लानिंग' है।"

आज यह सारे विश्व को ज्ञात है कि अणुशक्ति का प्रयोग केवल एक विश्व शक्ति ही नहीं कर सकती। दोनों शक्तियों के पास एटम बम हैं—अतः एक ओर से बम का प्रयोग दूसरे को भी उसी प्रयोग पर बाधित करेगा और सारी मानव संस्कृति विध्वंस के विषैले प्रभाव से छिन्न-विछिन्न हो जायगी। इसलिए स्वयं यूरॅप के निवासी और जर्मनी के निवासी भी इस नये खतरे के प्रति जागरूक होकर नये कदम उठाने के लिए क्रियाशील हो रहे हैं।

जर्मनी के पुनः शस्त्रीकरण के विषय में भी यह जानना जरूरी है कि नये समझोतों के अनुसार अब जर्मनी में कितनी शस्त्रों से सुसज्जित सेना रहेगी।

१. हिटलर के ताकत में आने के पूर्व जर्मनी में जितनी सेना थी उसकी पाँच गुना सैनिक-शक्ति अब निर्मित की जायगी।

२. वेमेअर रिपब्लिक में १००,००० सैनिक थे। और इसी शक्ति के बल पर चांसलर वॉन पेपन ने वहाँ के जनतान्त्रिक अधिकारों को कुचल कर, हिटलर का तानाशाही राज्य स्थापित किया था। और आज पश्चिमी फ़ेडरेल रिपब्लिक (जो वेमेअर रिपब्लिक से बहुत छोटी है) में हिटलर के ही पुराने कमाण्डर्स को ५००,००० की सेना दी जा रही है।

पश्चिमी जर्मनी के प्रधान मन्त्री डॉ० एडेनियोर ने यूरोपीय सुरक्षा के लिए पेरिस के समझौते की खूब प्रशंसा की है और लाभ का लोभ दिखाया है। किन्तु विश्व राजनीति के विद्यार्थी यह नहीं भूल सकते कि इस नये शस्त्रीकरण से विश्व के तनाव में वृद्धि होगी जो कि आज की परिस्थिति में काफी कम हो चुकी है और समझौतों द्वारा शान्ति की दृढ़ नींव पड़ चुकी है।

पेरिस-समझौते को फ्रान्स की पार्लमिण्ट ने स्वीकार तो किया लेकिन उसकी प्रतिक्रिया की विवेचना करते हुए न्यूयार्क टाइम्स के पेरिस-संवाददाता

डॉ० एडेनियोर : चुप-चुप सारी तैयारी करते रहो।
बस, अब पेरिस समझौते की देर है। समझे !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फारमूसा की नस-नस का संचालन
अमरीकी धागों से होता है

ने लिखा कि फ्रान्स की हालत ठीक उस दूल्हे के समान थी जिसने अपने हाथ में बन्दूक रख कर विवाह तो किया लेकिन जो विवाह से (नये सम्बन्ध से) सुख नहीं पा सका।

शस्त्रीकरण को लेकर इंगलैण्ड के ईडन और चर्चिल का रुख भी युद्ध-परस्त रहा। बल्कि दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि चर्चिल और ईडन का समर्थन पाकर ही अमरीका पेरिस समझौते का मसविदा बनाने के लिए साहस एकत्रित कर सका। इस नये समझौते पर ब्रिटेन के एक प्रमुख पत्र 'न्यू स्टेटमेन' के द्वारा वहाँ के लोकमत को जाना जा सकता है:

"पेरिस-समझौते के कारण शीत-युद्ध में एकदम गर्मी आ जायगी। और इसके साथ ही वह मार्ग भी अवरुद्ध हो जायगा जिसके द्वारा पुनः एक संगठित जर्मनी का निर्माण किया जा सकता था। इस शस्त्रीकरण के द्वारा हम रूस से समझौते की आशा से हाथ धो बैठेंगे।"

रूस ने अपने सरकारी वक्तव्य में कहा है कि पेरिस-समझौते को यदि ब्रिटेन और फ्रान्स मान्यता देता है तो रूसो-फ्रान्स और रूसो-ब्रिटेन की सन् २५ की संधियाँ भंग हो जायँगी। रूस की इस प्रतिक्रिया ने यूरॅप के राष्ट्रों को नये सिरे से सोचने के लिए मजबूर कर दिया है।

इन परिस्थितियों में दो बातें बिल्कुल स्पष्ट होकर अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता पा चुकी हैं। प्रथम है: जर्मनी के पुनः शस्त्रीकरण से भावी युद्ध के अवसरों में वृद्धि होगी। और दूसरी है: इस नये युद्ध का सारा उत्तरदायित्व पश्चिमी शक्तियों पर होगा।

तईवान—भावी युद्ध की भूमि और भूमिका

एशिया के दो महान देशों के प्रधान मन्त्रियों ने मिलकर जिन दिनों 'पंचशिला' द्वारा विश्व-शान्ति के व्रत को स्वीकार कर लिया उन्हीं दिनों से एशिया की समस्याओं का रूप ही बदल गया। एशिया-वासियों के मन में शान्ति की आकांक्षाएँ जाग उठीं। लेकिन राजनीति उतनी सरल नहीं होती। शान्ति के विरोध में ही एक दूसरा गठबन्धन भी बनता जा रहा था और वह आज स्पष्ट होकर सामने आ गया है। वह गठबन्धन है अमरीका और च्यांग काई शेक का। च्यांग के साथ हाल ही एक नई सन्धि अमेरिका ने की है जिसके अनुसार फारमूसा के रक्षा का भार तो अमेरिका पर होगा ही, परन्तु साथ ही वहाँ की जल, थल और वायु सेना को सहायता व शिक्षा देने का उत्तरदायित्व भी होगा। यह सारी तैयारी किस लिए? और किसके लिए है? यदि नये चीन पर हमला नहीं करना है तो?

तईवान पर नये चीन का ठीक वही अधिकार है जो भारत की केन्द्रीय-सरकार का निज़ाम के हैदराबाद पर था या आज भी गोआ पर है। श्री नेहरू ने हाल ही की एक प्रेस कान्फ्रेंस में कहा कि दुनिया में तईवान नाम का कोई राज्य नहीं है; मैं तो ऐसे किसी राज्य को जानता नहीं, जिसे 'तईवान' कहकर पुकारा जाता हो। श्री नेहरू के ये शब्द समूचे एशियाई महाखण्ड की भावना को व्यक्त करते हैं। स्वयं नेहरूजी ने अपनी प्रेस-कान्फ्रेंस में आगे कहा कि बोगोर-कान्फ्रेन्स के किसी भी सदस्य ने तईवान को एक राज्य की भाँति स्वीकार नहीं किया।

भारत के एक शान्ति-इच्छुक नेता ने च्यांग-अमरीकी समझौते को विश्व-शान्ति के लिए खतरनाक समझौता कहा है। उन्होंने अपने वक्तव्य में कहा कि इस समझौते द्वारा फारमूसा ने अपने स्थल पर अमरीकी सैनिक हस्तक्षेप, जल में अमरीका की सातवीं फ्लीट और आकाश में अमरीकी बम मारों को उड़ते रहने का स्थायी अधिकार दे दिया है। और आज भी तईवान के छोटे से भूखण्ड से चीन के विस्तृत भूखण्ड पर बराबर हमले किये जा रहे हैं। इस पेक्ट द्वारा यह भी स्पष्ट हो जाता है कि चीन पर जो छुट पुट हमले हो रहे हैं वे अमरीकी पेंटेगोन (युद्ध-विभाग) की दृष्टि से पूरे नहीं पड़ते और उसके पास इससे बड़ी कोई न कोई बड़ी योजना है। यदि यह भय सही है तो एशिया-वासियों का कर्त्तव्य और भी अधिक हो जाता है कि वे हर सम्भव प्रयत्न करें जिससे युद्ध की विभीषिका को बचाया जा सके।

अमेरिका के जोइंट-स्टाफ के एडमिरल रेडफोर्ड पिछले मास तईवान पहुँचे थे। वहाँ उन्होंने फौजी-सन्धि को ठोस रूप देने का प्रयत्न किया और तईवान से सीधे वे जापान पहुँचे। जापान में उनका प्रयत्न था कि वहाँ की सैनिक शक्ति को ३५०,००० तक बढ़ाया जाय। न्यूयार्क टाइम्स के जापान-स्थित प्रतिनिधि क्यूडास ने इस वृद्धि की रिपोर्ट के साथ यह भी लिखा कि दक्षिणी-पूर्वी एशिया में सैनिक-नीति और कूटनीति—दोनों ही दृष्टियों से यह वृद्धि अमेरिका में अत्यन्त आवश्यक समझी जा रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोगोर कांफ्रेन्स

विश्व इतिहास में बीसवीं शताब्दी का यह काल एशिया के महान नव-जागरण के रूप में लिखा जायगा। आज से पहिले एशिया में यह एकता, यह संगठन और एक सशक्त वाणी कभी भी नहीं रही। हमारा सौभाग्य है कि जहाँ पश्चिमी-देश एशिया को एशिया-वासियों के विरुद्ध लड़ा देने की फिराक़ में थे, वहाँ हम न केवल उस स्थिति से ही बाहर निकल आये बल्कि ठीक उसके विपरीत एक ऐसे संगठन बनाने की ओर झुक चले जो विश्व-शान्ति को निश्चय रूप से सारी दुनिया पर थोप सकेगा। और उधर 'जागरुक यूरॅप ही' अपनी उलझनों में उलझता चला जा रहा है।

इस नव जागरण को व्यवस्थित और व्यवसायिक रूप दिया गया हाल की बोगोर कान्फ्रेंस में। इस कान्फ्रेंस में कोलम्बो-शक्तियों ने भाग लिया और भविष्य के लिए एशिया में शान्ति, सहयोग और आज़ादी का पथ प्रशस्त बना दिया। इस कान्फ्रेंस के बाद अप्रल में एक कान्फ्रेंस और होगी जिसमें अफ्रीका भी सम्मिलित होगा और इस प्रकार एक नई शक्ति का जन्म होगा जो एशिया-अफ्रीका के निकट सम्पर्क से उत्पन्न होगी। इस कान्फ्रेंस में नये चीन को भी आमन्त्रण दिया गया है। वास्तव में एशिया का कोई भी सम्मेलन तब तक सम्पूर्ण नहीं हो सकता जब तक कि उसमें चीन भाग न ले। बोगोर कान्फ्रेंस की बहुत-सी सफलताओं में एक महान सफलता यह भी है कि प्रत्येक प्रति-क्रियावादी प्रयत्न के बावजूद चीन को निमन्त्रण मिला है। यह कान्फ्रेंस इण्डोनेशिया में होगी जिसमें ये २५ राष्ट्र भाग लेंगे: अफ़गानिस्तान, कंबोडिया, सेंट्रल अफ्रीकन फेडरेशन, चीन, इजिप्ट, इथियोपिया, गोल्ड कोस्ट, ईरान, ईराक़, जापान, जोर्डन, लाओस, लेबनान, लाइबेरिया, लिबिया, नेपाल, फिलिपाइन्स, दक्षिणी अरेबिया, सूडान, सिरिया, थाईलेण्ड, टर्की, जनवादी वियतनाम, दक्षिणी वियतनाम, तथा येमेन।

संक्षेप में इस कान्फ्रेंस के उद्देश्य होंगे:

१. एशिया और अफ्रीका के बीच सद्भावना और सहयोग की भावना को बढ़ाना। समान हित की समस्याओं तथा पारस्परिक सम्बन्धों को विस्तृत करना। सदस्य राष्ट्रों के बीच मैत्री भाव और पड़ोसी धर्म की भावना को मज़बूत बनाना।

२. राष्ट्रों की सामाजिक, आर्थिक, एवं सांस्कृतिक समस्याओं पर विचार करना और नये सम्बन्धों को स्थापित करना।

३. एशिया एवं अफ्रीका की विशिष्ट हित की समस्याओं पर विचार करना। सदस्य राष्ट्रों की सार्वभौमिक सत्ता, वर्ण-भेद-वाद तथा उपनिवेशवाद की कठिनाइयों पर ध्यान देना।

श्री नेहरू द्वारा शांति-क्षेत्र का निर्माण

४. एशिया एवं अफ्रीका वासियों की वर्तमान स्थिति का विवेचन तथा उन प्रयत्नों की खोज जिनके द्वारा यहाँ के निवासी विश्व-शान्ति एवं विश्व-सहयोग में अपना महत्वपूर्ण भाग अदा कर सकें।

यह तो है आगे आने वाली कान्फ्रेंस की आशाएँ। और बोगोर कान्फ्रेंस की सफलता को देखते हुए यह सन्देह नहीं रहता कि अवश्य ही यह एशियाई-अफ्रीका कान्फ्रेंस पूरी तरह सफल होगी। यहाँ यह कह देना भी अनुचित नहीं होगा कि बोगोर कान्फ्रेंस ने एशियाई एकता और सद्भावना को मज़बूत बनाने में कोई कसर नहीं रखी है। इस कांफ्रेंस ने बहुत से दृढ़ कदम लिए हैं; यथा:

१. पश्चिमी ईरियान पर डच-साम्राज्यवादी अपना कब्जा बनाना चाहते थे लेकिन इस कान्फ्रस ने इण्डोनेशिया के अधिकार का सही एवं दृढ़ समर्थन किया है।

२. ट्यूनिशिया एवं मोरक्को की राष्ट्रीय आज़ादी और राष्ट्र

(शेषांश पृष्ठ ६९ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा राम जैन, एम० ए०

संस्कृति के संकेत

कला के आदान-प्रदान द्वारा राष्ट्रों के बीच जो सम्बन्ध बनते हैं, उन सम्बन्धों द्वारा चाहे भौगोलिक सीमाओं पर परस्पर अधिकार न भी बन पाये, लेकिन राष्ट्र की एक दूसरी सम्पत्ति है उस पर तो आधिपत्य जम ही सकता है और वह अमूल्य सम्पत्ति है—राष्ट्र का मन।

मानव इतिहास में आज तक वे ही सम्बन्ध चिरंतन बन पाये हैं, जिनमें राष्ट्र के मन को जीतने की शक्ति रही है। सदियों पूर्व बुद्ध की एक कल्याण-कल्पना चीन की भूमि पर पहुँची और सारे चीन के मन को अपने में समाहित करती हुई वहाँ के जीवन और मन पर छा गई। भारत का यह साम्राज्य आज भी चीन से कोई नहीं छीन सका।

युग-युगों बाद एशिया के दो महान देशों—चीन और भारत—ने अपनी संस्कृतियों को फिर से अभिमान और गौरव की आँखो से देखना प्रारम्भ किया है। अभी हाल ही चीन का एक सांस्कृतिक-मण्डल भारत आया। उस मण्डल में संगीतज्ञ थे, वाद्ययन्त्र-वादक थे, नृत्यकार थे और विदूषक थे। स्त्री-पुरुष दोनों ने ही एक साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चीन की लोक-परम्परा और शास्त्रीय-परम्परा के गीत, नृत्य और गीतिनाट्य भारतीय जनता के सामने रखे।

इस सांस्कृतिक मण्डल ने कलकत्ता में तीन दिन प्रदर्शन किया। ज्योंही चीनी संगीत के प्रथम स्वर कानों से टकराये—वे बिल्कुल परिचित से लगे, उनका विकास, उतार-चढ़ाव, सब कुछ ही मानों अपने थे। जब वहाँ का लोक-नृत्य देखा तो उसका ओज, तीव्र गति, भावों की अभिव्यंजना और छोटे नगारों की कर्णप्रिय गूंजती हुई ध्वनि में भारत के किसी भी प्रदेश के लोक नृत्य आँखों में सजीव हो उठे। एक वादक ने 'शन्नो'—जिसे हम शहनाई कहते हैं—की तान छेड़ी। वास्तव में संगीत प्रकृति की विभिन्न ध्वनियों की एक अमूर्त भावपूर्ण अभिव्यंजना ही तो है। यह बात इस 'शन्नो' को सुनने से ज्ञात हुई। वादक ने जंगल के अनेकों पक्षियों की ध्वनि को अपने स्वरों में मुखरित कर दिया। हर श्रावक ने अनुभव किया कि सम्भवतया वह एक ऐसे प्रभात में आँखें खोल रहा है जिसमें अनेकों पक्षी अपने कलरव में मनुष्य का संगीत भर कर चहचहाने लगे हों। इसी प्रकार वहाँ का 'कमल नृत्य' एक शास्त्रीय कोटि का अत्यन्त सुन्दर नृत्य था। सारी सजावट, अलंकरण, वर्णों का विभाजन—सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति था।

इस सब विवेचन का अर्थ? केवल यही कि संगीत, नृत्य, साहित्य और संस्कृति का आदान-प्रदान सारी सीमाओं को तोड़ता हुआ बढ़ चले। आज चीन के संगीत से, कल इण्डोनेशिया के नृत्य से, परसों कोलम्बो के गीति-नाट्य से और इसी प्रकार अन्य एशियाई राष्ट्रों से हम रागात्मक और मन का सम्बन्ध स्थापित करते चलें। इस प्रकार संस्कृति के अन्तर से जिस एकता का जन्म होगा वही तो मनुष्य का लक्ष्य है, और मानव जाति का श्रेय है।

ये अखबार हमें क्या दें !

आज की दुनिया बहुत छोटी हो गई है। वाशिंगटन, इंग्लण्ड, मोसको व देहली के बीच की दूरी लगभग समाप्त हो गयी है। यह हुआ है यात्रा की सुविधा के कारण। लेकिन जनसाधारण या प्रत्येक व्यक्ति देशाटन के लाभ जानते हुए भी विश्व यात्रा के लिए नहीं निकल सकता। और दुनिया में ऐसे ही व्यक्तियों की संख्या अधिक है। किन्तु इन बहुसंख्यक लोगों के लिए भी दुनिया का विस्तार सिमट-सिकुड़ गया है। और इसका कारण है दैनिक-पत्रों का अस्तित्व।

भारत में दैनिक पत्रों की अवस्था अभी सौ वर्षों से कम है। और हिन्दी पत्रों की अवस्था तो और भी कम है। भारत के अंग्रेजी पत्रों व हिन्दी पत्रों के बीच भी गहरी खाई है। जितने भी

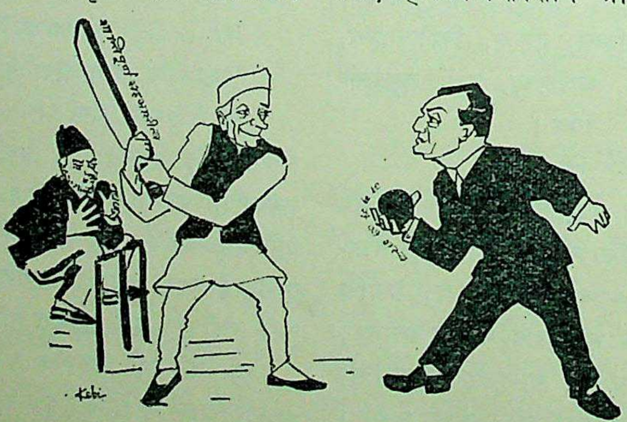

श्री मोहम्मद अली की अमरीकी-फौजी-गेंद शान्ति के बल्लेकी चोट खाकर दूर कहीं विलीन तो नहीं हो जायेगी ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी पत्र हैं वे अपने-अपने सहयोगी अंग्रेजी पत्रों के अनुवाद या छाया मात्र हैं। अंग्रेजी पत्रों की ध्वनि होने के कारण उनका अपना व्यक्तित्व, अपनी नीति और अपनापन नहीं हो पाता। विदेशी पत्रों के सम्पादकीय, प्रतिनिधि की रिपोर्ट और नीतिकारों के लेखों को उस देश की सरकार, वहाँ के जागरूक नागरिक और दूसरे राष्ट्रों के अध्येता—सब ही गम्भीरता से लेते हैं। उस नीति की समालोचना-आलोचना करते हैं। किन्तु हिन्दी में आज भी ऐसे निर्भीक, सशक्त और व्यक्तित्ववान पत्रों की आवश्यकता है। यह सही है कि इस राष्ट्रीय उत्तरदायित्व को निभाने के लिए अतुल साधनों की आवश्यकता होगी। जैसे : हिन्दी पत्रों को महत्वपूर्ण स्थानों पर अपने प्रतिनिधि भेजने होंगे ताकि वे सही, मौलिक और सजीव रिपोर्ट भेज सकें; (उन प्रतिनिधियों के सोचने का तरीका भी हिन्दी में होना चाहिए तथा हिन्दी के पाठकों और उनके स्तर का उचित ज्ञान भी होना चाहिए) प्रत्येक महत्वपूर्ण समस्या पर विभिन्न विद्वानों का समूह एकत्रित करना होगा। आजकल जिस प्रकार प्रत्येक विषय पर प्रत्येक व्यक्ति कलम घसीट लेता है; यह परम्परा समाप्त करनी होगी। यह तो पत्र के कलेवर, उसके विषय के सुधार की ओर प्रयत्न करने होंगे। दूसरी तरफ हमें पत्रों के टेकनिकल पक्ष में भी सुधार करने होंगे। टेकनिकल पक्ष की ओर सबसे पहिली समस्या है नागरी के दूर-मुद्रक मशीन का निर्माण। हाल ही सरकार के डाक-तार विभाग के इंजीनियर्स के प्रयत्नों द्वारा इस यंत्र को एक सफल रूप मिला है। अभी तक रोमन लिपि के अनुसार ही यन्त्र बना था। लेकिन नये मोडल के अनुसार ११८ वर्णों एवं मात्राओं का 'की-बोर्ड' हो सकेगा जिसमें ऊपर-नीचे की मात्राओं की भी समुचित व्यवस्था होगी। इस नये यन्त्र द्वारा हिन्दी में सन्देश भेजने की गति में भी तीव्रता आ सकेगी।

जितना शीघ्र हो सके हिन्दी पत्रकार जगत को अपनी राष्ट्रीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पूरी लगन से लग जाना चाहिए।

वे जो अब नहीं है !

हिन्दी-पत्र और पत्रकार जगत की चर्चा करते समय आज की एक महान हानि की बात कहे बिना कथा अधूरी रहेगी। श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर जी बहत्तर वर्ष की अवस्था को पार कर १२ जनवरी को सुबह साढ़े तीन बजे हमसे विदा हो गये। यही एक व्यक्ति थे जिन्होंने अपने बनारस के पत्र 'आज' में एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व, एक स्वतन्त्र नीति, एक निर्भीक सशक्त वाणी की रचना की थी। इनके सम्पादकीय कभी हल्के नहीं रहे। ब्रिटिश-काल में उनके संपादकीय, उनके लेखों को भारतीय जनता की वाणी के रूप में स्वीकार किया गया। उनकी भाषा का रूप एक पहाड़ के झरने की तरह था; उज्ज्वल, शुभ्र, बहता हुआ, सुन्दर और जीवन से भरा उछलता-कूदता। इसी शुभ्र भाषा के वस्त्रों में सज्जित उनके विचार सुलझे और भविष्य-मार्ग-दर्शन की प्रेरणा थे। वे हिन्दी पत्रकार जगत में जो जगह खाली छोड़ गये हैं, उसे पूरी बनाने के लिए हर हिन्दी भाषा-भाषी को प्रयत्नशील होना चाहिए। उन्हें विनम्र श्रद्धांजलि !

आवड़ी कांग्रेस का नया रुख

कांग्रेस भारत की सबसे बड़ी राजनैतिक पार्टी है। इस पार्टी के निश्चयों द्वारा भारत का वर्तमान स्वरूप बनता है, अथवा बिगड़ता है। अतः इस पार्टी के निश्चयों पर प्रत्येक भारतवासी को गम्भीरता से मनन-चिन्तन करना चाहिए।

आवड़ी में होनेवाली कांग्रेस ने प्रथम बार यह स्पष्ट घोषणा की है कि भारत में समाजवाद की स्थापना करनी है। इस समाजवादी व्यवस्था का माध्यम समाज का क्रमिक विकास होगा। यह सही है कि जब तक हम समाज के प्रत्येक व्यक्ति को आर्थिक रूप से स्वतन्त्र नहीं बना देंगे तब तक उसकी अन्य स्वतन्त्रताएं केवल पुस्तकों की या कल्पना की बात होगी। समाजवाद की स्थापना के द्वारा व्यक्ति को वह दृढ़ आधार मिलेगा जिससे वह अपने भविष्य को स्वयं बनाने का केवल कानूनी अधिकारी ही नहीं अपितु व्यवहारिक जीवन में इस सुख को भोगनेवाला भी बन सकेगा।

यह बात आज भारत का प्रत्येक जागरूक नागरिक जानता है कि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत की शान्तिपूर्ण वाणी का अपूर्व महत्व है। किन्तु इस अपूर्व शान्तिवाणी के पोषण के लिए हमको अपनी राष्ट्रीय नीति में भी हेर-फेर करने होंगे। नेहरूजी ने कितनी ही बार कहा कि जब तक हमारी राष्ट्रीय नीति सबल और अच्छी नहीं होगी तब तक अच्छी अन्तर्राष्ट्रीय नीति का निर्माण होना संभव नहीं। इस बात को भी पहिली बार कांग्रेस की महासमिति ने अनुभव किया। अतः अन्तर्राष्ट्रीय आवश्यकताओं और उत्तरदायित्व को पूरी तरह से निभाने के लिए कितने ही वांछनीय परिवर्तन स्वीकार किये। समाजवादी अर्थनीति की स्थापना भी आज की वैदेशिक नीति के लिए आवश्यक है।

नेहरू और टीटो तटस्थता की राग द्वारा 'दो दुश्मनों' को रिझाने में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशन सत्कार

कवि भारती : (आधुनिक हिन्दी काव्य का प्रतिनिधि संचय),
सम्पादक : सुमित्रा नन्दन पन्त, बालकृष्ण राव, नगेन्द्र।
मूल्य : १५ रुपया, पृष्ठ ७३६।
प्रकाशक : साहित्य सदन, चिरगाँव (झाँसी)

राजस्थान के एक गाँव नारनौल में एक बात सुनी थी : पहाड़ का पसीना छलक कर बहता है। यही अवस्था आज के समृद्ध राष्ट्रभाषा-काव्य की है। वह समुन्नत स्वयं तो हुआ ही है, लेकिन उसे कर्त्तव्य-पद पर पदारूढ़ कर एक रसवन्ती प्रेरणा ने ऐसा भाव-उद्गम दे दिया है, जो उसे निरन्तर सशक्त मन्त्रों से अभिमण्डित करता जा रहा है। साहित्य-सदन जैसे प्रकाशक ने अपनी एकांतिक मोहाच्छन्नावस्था का त्याग कर प्रस्तुत संग्रह के रूप में साहित्य-क्षेत्र में उसी रसवन्ती प्रेरणा को जो रूप दिया है, उसके लिए बधाई का पात्र है।

प्रस्तुत संचय आधुनिक खड़ी बोली के कवियों की प्रतिनिधि रचनाओं का अतुल रसास्वादन देने में समर्थ हुआ है। सम्पादक-त्रय ने रूप, रङ्ग और रेखा इन तीन वर्गों में पुराने और नये काव्यों की प्रवृत्तियों को विभक्त किया है। पन्त जी स्वयं हमारे युग-प्रतिनिधि कवि हैं, अतः वे इस चयन को विश्वास के साथ सुन्दर बनाने में सफल हुए हैं, इसमें सन्देह की गुंजाइश नहीं है।

इस समय अहिन्दी भाषी भी हिन्दी के साहित्य का पारायण करने के लिए जिज्ञासु हैं। और यह पहला संग्रह है जो कि उन्हें एक ही पुस्तक में समूचे खड़ी बोली के काव्य से परिचित करा सकेगा।

पुस्तक का मुद्रण सुचारु ढंग से हुआ है। लेकिन जिस उपादेयता को लेकर यह कृति प्रस्तुत की गयी है, उसमें पहिला अभाव यह है कि कवियों का परिचय नहीं दिया गया है।

प्रस्तुत संग्रह का प्रचार सर्वत्र हो, यह आग्रह है।

काले नगर में : **(उपन्यास)**
लेखक—श्री कमल शुक्ल : प्रकाशक—ओरियण्टल बुक डिपो, दिल्ली पृष्ठ संख्या १३८ ; मूल्य २।)

प्रस्तुत कृति लेखक की कलम से 'तीसरे प्रयास' के रूप में प्रस्तुत की गई है। निम्न-मध्यवर्ग आजकल एक ऐसे पिछड़े हुए तबक़े के रूप में विद्यमान है जो नगरों और वहाँ की आर्थिक प्रतारणाओं के अधिक निकट होते हुए भी मानसिक उत्थान के क्षेत्र में गाँवों के अधिक निकट है, लेकिन जिसे गाँवों की मानसिक जड़ता का वरदान नहीं ही दिया गया है। भारतीय कलाकारों ने इस वर्ग को अपनी सहानुभूति देने में कृपणता नहीं की है।

'काले नगर' में एक युवक अध्यापक की दयनीय आर्थिक अवस्था का मर्मभेदी चित्रण है। लेखक ने काफी निकट से पात्रों का अध्ययन किया है और अपने लक्ष्य-भेद में उन्हें सहज-सरल भाषा के माध्यम से अभिनयात्क कथानक भी बना दिया है। युवक अध्यापक की विधवा बहिन की असामयिक मृत्यु के होते ही मानसिक असन्तुलन-जनित प्रलाप आज की एक कड़वी सचाई है; किन्तु कहना पड़ेगा कि लेखक ने इस वर्ग के साथ अधिक न्याय किया होता, यदि वह इस कृति में, इसी वर्ग के कुछ अधिक शोपित पात्रों को भी पतनोन्मुख ह्रास को दर्शाने की छूट दे देता।

निम्न मध्य वर्ग को आज एक चीज अनिवार्य रूप से चाहिए। वर्तमान सामाजिक विकास के शिथिल क्रम में वह चीज इस वर्ग को बहुत बाद जाकर भी मिल सकेगी, इसमें भी सन्देह होता है। वह वस्तु वर्तमान का जीवटदार लेखक दे सकता है। वह है : स्वस्थ मानसिक सन्तुलन। प्रस्तुत कृति में सिर्फ यही कलात्मक संतुलन लेखक की शीघ्रता में रह गया है।

मौल श्री : **लेखक—श्री कमल शुक्ल। प्रकाशक : ओरियण्टल बुक डिपो दिल्ली। मूल्य ६) रु०। पृष्ठ ४०४।**

आज का जीवन जहाँ एक ओर जन-निर्माण से प्रेरित होकर अपने नये युगों के स्वप्नों से जाग्रत होता जा रहा है, वहाँ कुछ ऐसे भी क्षेत्र हैं (कस्बे और ग्राम) जहाँ नयी दुनिया का प्रकाश नहीं पहुँचा है। ऐसी स्थिति में इस वर्ग के मानवी स्पन्दन की गाथायें क्यों मुखर न हो सकें, इस चुनौती को स्वीकार करते हुए कुछ गल्पकार इन्हीं पात्रों को लेकर रचना करने में विश्वास करते हैं। मौल श्री इसी का ताजा उदाहरण है।

लेखक ने अपने अन्य दो उपन्यासों में जहाँ परिश्रम किया है, वहाँ इस कृति में निश्चय ही उसकी निष्ठा कुछ अधिक पुष्ट अनुभूतियों को चरितार्थ नहीं कर सकी है। यद्यपि लेखक में लेखनी का प्रचुर चातुर्य है और उसने बड़े विस्मयाजनक रूप से कथा का स्तुत्य अन्त किया है और वह लोक-कल्याण की समष्टि का भी संकेत दे सका है लेकिन अपने पात्रों को वह भाग्यवाद और पुरुषार्थवाद जैसे नीरस प्रश्नों के संकीर्ण दायरे में घेर कर निरर्थक ही वाचाल बना रहा है।

हमारा समाज ऐसे मनुष्यों से और मानवी मूर्तियों से ही घिरा हुआ है, यह एक सत्य है। किन्तु इस सत्य का पिष्टपेषण करना नये स्वर कैसे दे पायेगा? मौल श्री उपन्यास यदि सतर्क सम्पादन से एक छोटी कृति बना ली जाती, तो यह एक बहुमूल्य रचना सिद्ध होती।

हम श्री कमल शुक्ल से भविष्य में कुछ अधिक मँजी हुई रचनाओं की आशा करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पृष्ठ ५५ का शेषांश)

अन्तर की स्वातंत्र्य-वासना है। उसका अन्तर एक प्रकार की स्वतंत्रता चाहता है और बाहरी परिस्थितियाँ उसे एक विशेष मार्ग पकड़कर चलने को बाध्य कर रही हैं। इस प्रकार से बाहरी कारणों से उत्पन्न उसकी मजबूरियाँ उसके भीतर की स्वातन्त्र्य-लिप्सा को प्रतिफलित नहीं होने देतीं। वह जो चाहता है उसे उसको बाहरी परिस्थितियों के कारण संयमित करना पड़ता है। इस प्रकार से जहाँ पहले का साहित्यकार एक अदृश्य शक्ति—भाग्य—के सामने पराजय स्वीकार करता था वहाँ आज के साहित्यकार को सामाजिक, आर्थिक बाधाओं के सामने नत होना पड़ता है। परिणाम-स्वरूप उसके भीतर जो प्रतिक्रिया होती है, वह उसे विचलित और उद्विग्न कर देती है। यह प्रतिक्रिया उसके भीतर एक ऐसी तटस्थता ला देती है कि वह अपने को मात्र एक असहाय दर्शक मानने लगता है।

साहित्यकार की इस मन:स्थिति का परिचय हमें आज के साहित्य में मिलता है। विफलता, वेदना, नैराश्य आदि प्रचुर मात्रा में आधुनिक साहित्य में देखने को मिल जाते हैं। आज का अधिकांश साहित्य विवाद, नैराश्य, पराजय का चित्रण कर ही अपने को सफल मानता है। आज के उपन्यासकार के भीतर वह आस्था नहीं रह गयी है जिससे अनुप्राणित होकर वह ऐसे चरित्रों की अवतारणा करे जो जीवन को आनन्द, आशा, उत्साह से पूर्ण कर दे। उसके चरित्र नाना प्रकार के दुर्गुणों से भरे हुए, निराश, असंतुलित मनवाले ही हमारे सामने आने लगे हैं। ऐसे चरित्रों को हम कम ही देख पाते हैं, जिनमें तेजस्विता हो तथा जो प्राणवान हों। ऐसे चरित्र कम ही दीख पड़ रहे हैं जो हमारे भीतर आशा का संचार करें और जीवन को महत् बनाने का संदेश दें।

वर्तमान परिस्थिति का एक और भी फल हुआ है। साहित्यकार आज अपनी उद्भावना-शक्ति पर अधिक निर्भर करने लगा है और उसी के बल पर वह नयी शैली, नये विषय उपस्थित करने लगा है। किसी प्रकार की रूढ़ि या परम्परा में नहीं बँधे रहने के कारण आज का साहित्यकार सब दिशाओं में नयापन लाने की चेष्टा करने लगा है। अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए नये ढँग, नई वाक्य-योजना, शब्दों के विचित्र प्रयोग वह काम में लाने लगा है। सब समय इसका परिणाम अच्छा ही हुआ है ऐसा नहीं कहा जा सकता। मौलिकता-प्रदर्शन में उसने खब्तीपने का भी परिचय दिया है।

आधुनिक साहित्य में एक शक्ति का परिचय तो अवश्य मिलता है लेकिन उसमें विश्वास का अभाव है या उसकी अतिरंजना है। अपनी तीव्रता से आज का साहित्य दिमाग़ को झनझना तो देता है लेकिन हृदय को स्पर्श नहीं करता।

(पृष्ठ ६५ शेषांश का)

के आत्मनिर्णय के जन्म-सिद्ध अधिकार का शक्तिशाली समर्थन।

३. पश्चिमी शक्तियों को आगाह किया कि भविष्य में एशियाई समुद्र में वे अणुबम के कोई भी विस्फोटक प्रयोग न करें। क्योंकि उन प्रयोगों द्वारा एशिया के राष्ट्रों को आज जो खतरा पहुँचता है वह तो है ही किन्तु लम्बे अर्से के बाद होने वाले कुप्रभाव इससे भी भयंकर हो सकते हैं जिससे एशिया-वासियों के जीवन और सभ्यता को स्थायी हानि होने की सम्भावना है।

४. आर्थिक दृष्टि से एशिया का महाखण्ड पिछड़ा हुआ है और उसे बहुत ही कम समय में उन्नति करना है। इस उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि राष्ट्रों एवं निवासियों के बीच योजना-बद्ध आर्थिक उन्नति के कार्य हों। इस प्रकार राष्ट्रों के सब साधनों का सर्वोचित और पूरा-पूरा उपयोग किया जा सकेगा।

ये निश्चय यदि अडिग रहे तो एशिया की धरती पर अवश्य ही शान्ति, सुख और समृद्धि का साम्राज्य कोई बहुत दूर की कल्पना नहीं होगी।

अप्रैल माह में होनेवाले एशिया और अफ्रीका के राष्ट्रों का यह सम्मेलन जब इन्हीं निश्चयों को आगे बढ़ाने का प्रयत्न करेगा तो अवश्य ही सारे विश्व की राजनीतिक परिस्थिति में आशापूर्ण परिवर्तन आयेगा। बोगोर कान्फ्रेंस में राष्ट्रों के सह-अस्तित्व की भावना को ताक़त मिली—वही अगले सम्मेलन में और भी मज़बूत होगी और जब एशिया एवं अफ्रीका के राष्ट्र राष्ट्रसंघ में अपनी आवाज़ को एक साथ उठायेंगे तो विश्व की शान्ति-पसन्द शक्तियों को बल मिलेगा। विश्व की राजनीति में इस आवाज़ का वज़न शान्ति के संतुलन को दृढ़तर बनाने में होगा। और वह दिन भी दूर नहीं हो सकता जब कि पूरे निश्चय के साथ सम्पूर्ण विश्व कह सकेगा कि अब किसी भी युद्ध की सम्भावना शेष नहीं रही। तभी सुख, शान्ति और क्रियात्मक आज़ादी की साँस लेकर, मनुष्य अपने भाग्य के चार-चाँद लगाने में तल्लीन हो सकता है।

इस महान लक्ष्य को पाने के लिए भारत को कितने ही ऐतिहासिक निर्णय लेना शेष हैं जिससे कि एक शान्तिपूर्ण और समृद्ध विश्व का निर्माण हो सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

HOT TODAY?

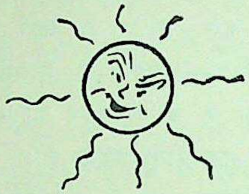

COOL TOMORROW

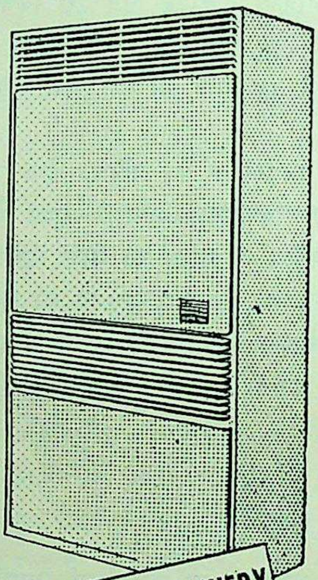

Buy a Worthington Packaged Air Conditioner NOW — the finest cooling unit ever built.

See this Air Conditioner that gives you everything for home, shop, office, restaurant or factory.

Listen to it. No hum. No clatter. That's because the new cooling unit is a marvel of mechanical balance.

Touch it. No vibration. That means more efficiency, less wear, longer life.

Look at it. Its modern design will be a credit to your good judgement.

IMMEDIATE DELIVERY
3 TON & 5 TON UNITS

WORTHINGTON

864

Distributors:

BLUE STAR

BLUE STAR ENGINEERING CO. (Calcutta) LTD.
7 HARE STREET, CALCUTTA 1
Also at BOMBAY, MADRAS, AHMEDABAD

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तार : टेक्स उड़ीसा

टेली फ़ोन : सिज़ १७०२

उड़ीसा टेक्सटाइल मिल्स, लिमिटेड

चौदवार

जिला - कटक

* *

कलकत्ता—कार्यालय

३३, चित्तरंजन एवेन्यू

पोस्ट बॉक्स नं० ७८४३

कलकत्ता—१२

* *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शंकर ब्राण्ड सीमेंट

* *

उत्पादक

इण्डिया सीमेंट्स लिमिटेड

११।१२, सेकेण्ड लाइन बीच

मद्रास-१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

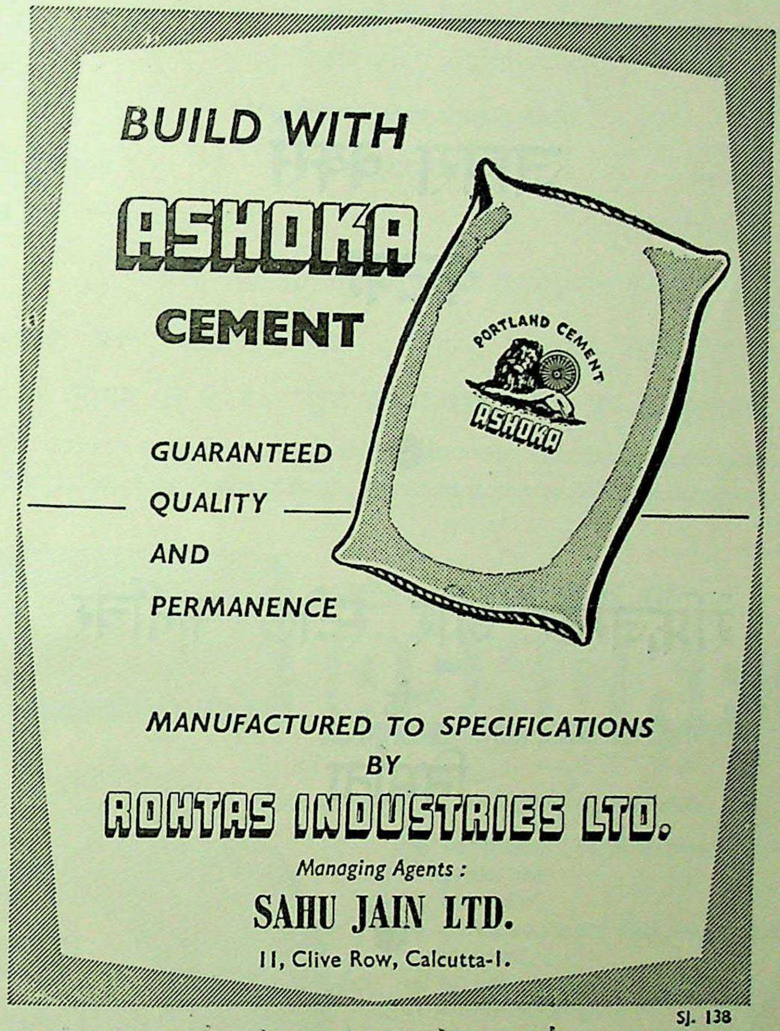

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलिंग रेफ्रिजरेटर्स कॉर्पोरेशन, लिमिटेड

●

जाबरा वर्क्स
कटक

●

रेफ्रिजरेटर और स्टील फ़र्नीचर
के
निर्माता

●

२३, चितरंजन एवेन्यू
क ल क त्ता

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हर प्रकार के बीमों के लिए कृपया

रूबी जनरल इन्श्योरेंस कम्पनी, लिमिटेड

(चेयरमैन : बी० एम० बिड़ला)

से परामर्श कीजिए

अधिकृत और प्रार्थित मूलधन ...	... १,००,००,००० रु०
प्राप्त मूलधन ...	... ३२,००,००० रु०
सम्पत्ति (दिए अंकों से अधिक) ...	... ३,३०,००,००० रु०

प्रधान कार्यालय :

९, ब्रेबोर्न रोड, कलकत्ता–१

प्रधान निविष्ट जीवन-बीमा कार्यालय :

२१, दरियागंज, दिल्ली

बम्बई कार्यालय :
इम्पीरियल बैंक आनेक्सी बिल्डिंग, फ़ोर्ट

मद्रास कार्यालय :
३२।३३ लिंगी चेट्टी स्ट्रीट जी० टी०

शाखाएँ तथा प्रतिनिधि भारत के सभी प्रमुख केन्द्रों में

विदेशीय शाखाएँ : अदन, चटगाँव, कोलम्बो, कम्पाला, नैरोबी, पेनांग, रंगून और सिंगापुर

बोनस पूरे जीवन पर ९ रु० और अवधि-बीमे पर ७ रु० प्रति हज़ार प्रति वर्ष

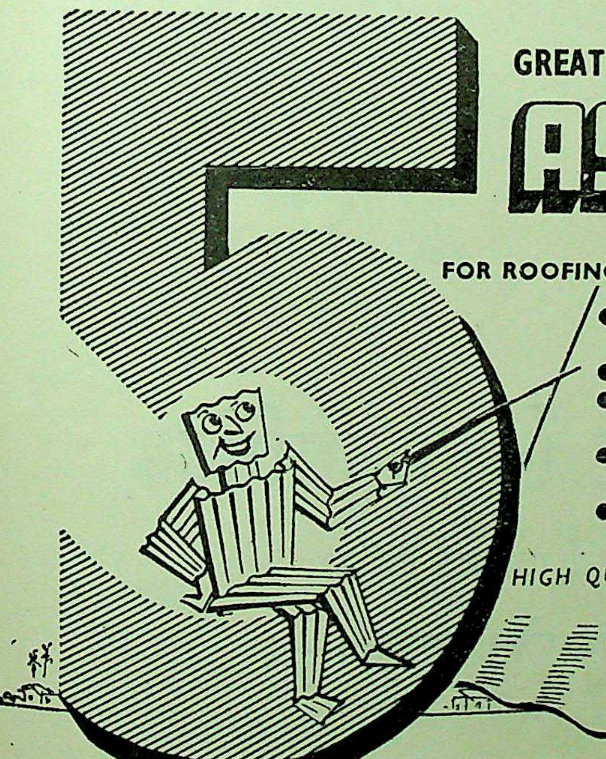

GREAT ADVANTAGES OF

ASHOKA ASBESTOS CEMENT SHEETS

FOR ROOFING AND SIDE-CLADDING.

- *Permanent durable all-weather protection.*
- *Low Cost.*
- *Quick and easy fixing—no skill required.*
- *No maintenance — no painting — no corrosion.*
- *Attractive in appearance and line.*

HIGH QUALITY CORRUGATED SHEETS IN STANDARD SIZES

ROHTAS INDUSTRIES LTD.
Dalmianagar, Bihar.

Managing Agents: **SAHU JAIN LTD.**

9, Dalhousie Square,
East, Calcutta.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दी ओरिएण्ट पेपर मिल्स, लिमिटेड

— निर्माता —

पैकिंग के लिए :

क. एम० जी० रिब्ड क्राफ्ट
ख. एम० एफ० अनरिब्ड क्राफ्ट
ग. वाटरप्रूफ क्रैफ्ट
घ. क्रीप क्रैफ्ट

लिखने और छपाई के लिए :

क. ह्वाइट प्रिण्टिंग
ख. क्रीम - लेड
ग. सेमी - ब्लीच्ड
घ. अनब्लीच्ड

पैकिंग और रैपिंग के लिए :

ब्राउन रैपिंग

बाक्स, कार्टन्स आदि बनाने के लिए :

क. कार्टन बोर्ड
ख. एम० जी० ग्रे बोर्ड
ग. एम० एफ० ग्रे बोर्ड
घ. ट्रीप्लेक्स

च. डुप्लेक्स
छ. कार्टिज
ज. टिकेट बोर्ड
झ. कवर बोर्ड

ओरिएण्ट पेपर मिल्स, लिमिटेड

मैनेजिंग एजेन्ट्स—बिरला ब्रदर्स लिमिटेड

८, रायल एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता—१

ओरिएण्ट पेपर आपकी और आपके उद्योग की सेवा करता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धैर्य और उद्योग से ही समृद्धि तथा उन्नति प्राप्त होती है।

किसी भी कार्यक्षेत्र में सफलता या विफलता मानवीय अध्यवसाय तथा उस धैर्य पर निर्भर है जो मनुष्य किसी निश्चित कार्य के सम्पादन में लगाता है।

इसकी प्रतीक हैं विभिन्न बहुमुखी परियोजनाएँ जो पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत बहुत व्यय तथा मानवीय परिश्रम द्वारा कार्यान्वित की जा रही हैं और जो अन्ततः इस देश के करोड़ों मनुष्यों के लिए उच्चतर जीवनस्तर तथा वैभव के नये युग का निर्माण करेंगी।

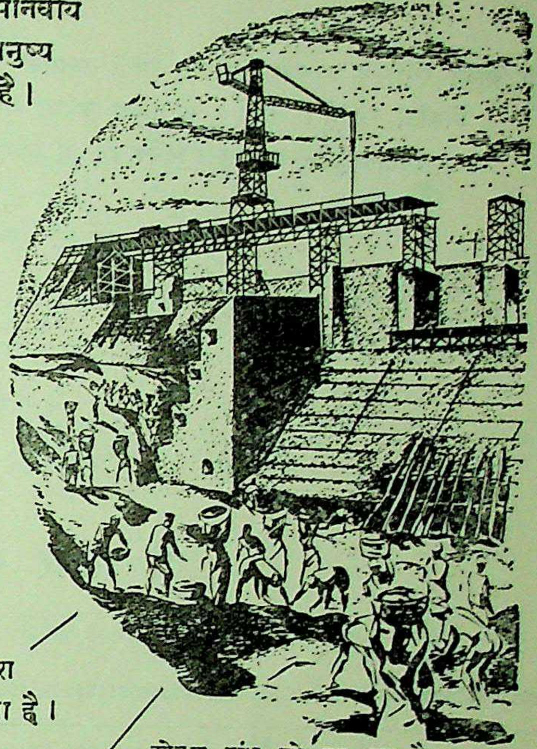

कोनार बांध जो बन रहा है।

औद्योगिक क्षेत्र में साहू जैन लिमिटेड की विशाल तथा विस्तृत कार्यपरता उनके वर्षों के पूर्वायोजित अध्यवसाय का ही परिणाम है। इससे सिद्ध होता है कि पूँजी और प्राकृतिक पदार्थ के साथ मनुष्य के परिश्रम का आयोग देश की आर्थिक शक्ति एवम् समृद्धि का निर्माण करता है।

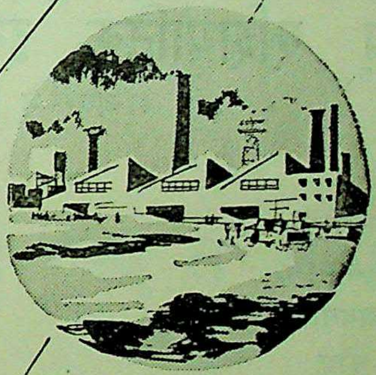

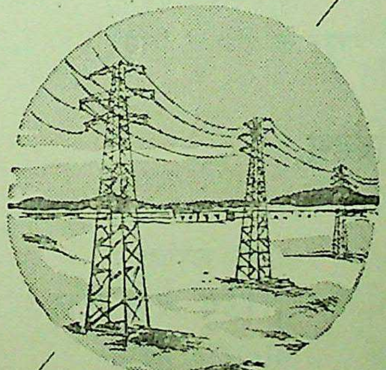

साहू जैन लि॰ ११, क्लाइव रो, कलकत्ता १

निम्न लिखित कम्पनियों के मैनेजिंग एजेन्ट्स :—

रोहतास इंडस्ट्रीज लि॰, डालमियानगर, बिहार।
एस॰ के॰ जी॰ शूगर लि॰, हथुआ ऐंड लौरिया।
एस॰ के॰ जी॰ डिस्टिलेरी, हथुआ।
भारत कौलिअरीज लिमिटेड।
न्यु सेंट्रल जूट मिल्स कम्पनी लि॰, हवड़ा।
ऐलबियन जूट मिल्स कम्पनी लि॰, बजबज, कलकत्ता।
ऐलबियन प्लाइवुड लि॰, बजबज, कलकत्ता।
डेहरी रोहतास लाइट रेलवे कम्पनी लि॰।

SJ 75/H

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत में प्रथम — एकमात्र अग्रणी
टैण्डम और आयर नॉन फ़ेरस ऐलॉय

दी श्रायर स्मेल्टिंग कम्पनी लिमिटेड आधी शताब्दी के पूर्व से ही संयुक्त राज्य में नॉनफ़ेरस ऐलॉय के अग्रणी निर्माता रहे हैं। १९१० में पहला जहाज भारत में आया और १९३१ में भारतीय कारखाने की स्थापना हुई—इस प्रकार प्रत्येक बट्टे के साथ ६० वर्षों का अनुभव ढ़ला हुआ रख सकते हैं।

टैण्डम ह्वाइट ऐण्टी-फ्रिक्शन बेयरिंग मेटल्स

गन मेटल्स — फ़ॉस्फ़र ब्रॉन्ज

स्टिक और कोर्ड सोल्डर्स

सोल्डरिंग फ्लक्स

सोल्डर पेण्ट्स और क्रीम

दी आयर स्मेल्टिंग लिमिटेड

कलकत्ता

न्यू एशियाटिक इन्श्योरेंस कम्पनी, लिमिटेड

चेयरमैन : एल० एन० बिड़ला

बोनस

आजीवन बीमा	...	...	१५) रु० प्रति हज़ार प्रति वर्ष
सावधि बीमा	...	...	१२) रु० प्रति हज़ार प्रति वर्ष
चालू व्यवसाय	...	...	१६,००,००,०००) से अधिक
जीवन कोष	...	...	३,५०,००,०००) से अधिक

जीवन, आग, जलयान, दुर्घटना आदि हर प्रकार के बीमे के लिए

प्रधान कार्यालय :

न्यू एशियाटिक बिल्डिंग,

कनाट सर्कस, नई दिल्ली.

बम्बई कार्यालय :
इण्डस्ट्री हाउस
१५९, चर्च गेट रिक्लेमेशन, बम्बई—१

मद्रास कार्यालय :
२८९, लिंग चेट्टी स्ट्रीट
जी० टी० मद्रास

कलकत्ता कार्यालय : ८ रॉयल एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता ।

शाखाएँ तथा उप-शाखाएँ भारत के सभी प्रमुख नगरों में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दि पंजाब नेशनल बैंक लि०

(स्थापित १८९५)

प्रधान कार्यालय : ८ अंडर हिल रोड, दिल्ली

अपने ३०० कार्यालयों तथा समस्त संसार में अपने प्रतिनिधियों द्वारा बैंकिंग तथा एक्सचेंज की पूर्ण सुविधाएँ प्रस्तुत करता है

डिपॉज़िट्स ...... ७० करोड़ रुपए से अधिक

लेनदारी .... ८६ करोड़ रुपए से अधिक

(जून ३०, १९५४ के अनुसार)

बी० एन० पुरी

जनरल मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तम चीनी के व्यापार में

अग्रणी

* *

राजेन्द्र एन्ड कम्पनी

* *

चीनी के व्यवसायी तथा कमीशन एजेण्ट

६, राम कुमार रक्षित लेन, कलकत्ता—७

* *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैकलियॅड एराड कंपनी लिमिटेड

मैकलियॅड हाउस - ३ नेताजी सुभाष रोड - कलकत्ता

जूट मिल्स ● रेल्वेज़ ● चाय के बाग

बीमा कंपनी

●

प्रमुख एजेन्ट्स :

लॉ यूनियन एण्ड रॉक इन्श्योरेंस कं० लि०
दि ब्रिटिश इण्डिया जनरल इन्श्योरेंस कं० लि०
लंडन एण्ड लंकाशायर इन्श्योरेंस कं० लि०

इन्जिनियरिंग

●

मैनेजिंग एजेण्ट्स :

ब्रिटेनिया इन्जिनियरिंग एण्ड कं० लि० टीटागढ़

उत्पादक :

जूट मिल और चाय की मशीनें,
रेल्वे इंजिनियरिंग का सामान,
मशीन के औज़ार,
'कोल-फिक्स' बिटपेन एमलसन फॉर रोड ड्रेसिंग

●

वितरक :

'लेजली' बॉलबेयरिंग,
जूट स्पिंडल्स,
"होटफिक्स" होट एसफाल्ट
रोड ड्रेसिंग मेटिरियल

एजेण्ट्स

अमेरिकन प्रेसिडेण्ट्स लाइन्स लि०
गिलमेन एण्ड कं० लि०

◆

एजेंसियाँ

जोसेफ हिबर्ट एंड कं० लि०	---	जूट साइज़िंग मशीन्स
ईबोयडेल एंड कं० लि०	---	'मुईर-हिल' डम्पर्स, लोड्स और शटिंग
सी० एम० विल्सन एंड कं० लि०	---	ट्रेक्टर्स, ओइल एंजिन्स
बन्टन्स (मशल बर्ग) कं० लि०	---	ब्राइट एम० एस० शेफ्टिंग
कोपर पेगलर एंड कं० लि०	---	मलेरिया व पाले विरोधी दवाइयों को उड़ाने की मशीन।
ट्रूमीटर कं० लि०	---	औद्योगिक कार्यों के लिए औटोमेटिक काउंटिंग और नापने के औज़ार।
टी—लाइन पेपर	---	टी चेस्टर पेपर लाइनिंग।
डबल्यू० जी० बेगनॉल, लि०	---	भाप व डिज़ेल के लोकोमोटिव्स

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
Regd. No. C 3610

यह तो केवल उत्तम रुची की बात है ...

रोहतास

व न स्प ति

३६ और १० पौण्ड के टिनों में प्राप्त

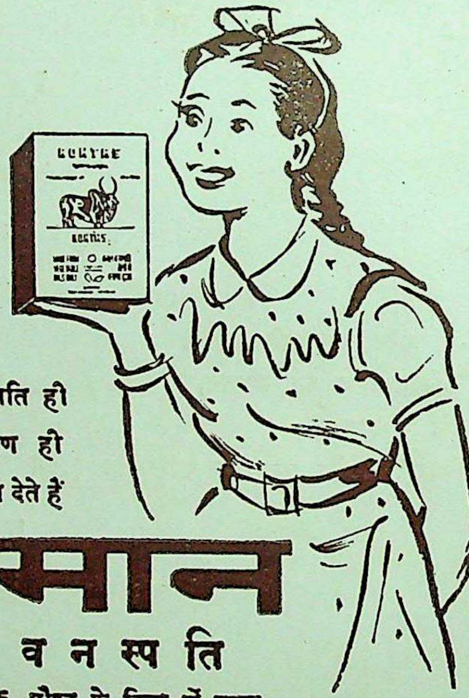

आजकल ग्राहक के चुनाव के लिए अनेक प्रकार के उत्पादन उपलब्ध हैं फिर भी यदि अधिकाधिक परिवार हनूमान और रोहतास वनस्पति ही व्यवहार करते हैं तो केवल उनके विशेष गुणों के कारण ही जो भोजन को सचमुच सुस्वादु सुपाच्य और विशिष्ट बना देते हैं

हनूमान

व न स्प ति

३६ पौण्ड के टिना में प्राप्त

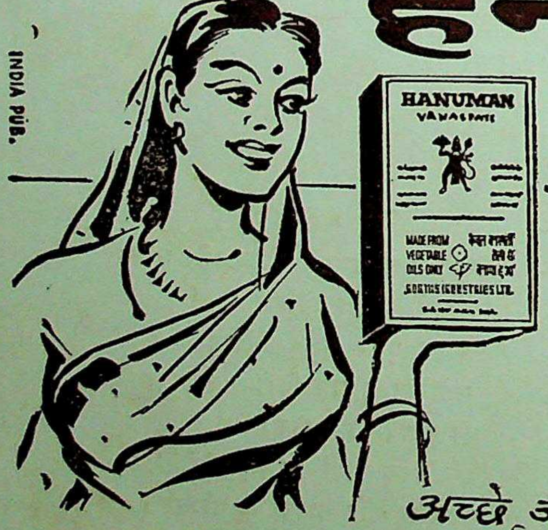

INDIA PUB.

प्रस्तुतकारक :

रोहतास इन्डस्ट्रीज़ लिमिटेड

डालमियानगर, बिहार

मेनेजिंग एजेन्ट्स :

साहू जैन लि०

११ क्लाइव रो, कलकत्ता—१

अच्छे जीवन के लिए अच्छा भोजन

मुद्रक तथा प्रकाशक श्री[illegible] द्वारा भारतीय ज्ञानपीठ काशी के लिए बिनानी प्रिण्टर्स लिमिटेड
३८, स्ट्राण्ड रोड कलकत्ता–१ में मुद्रित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

HOT TODAY?

COOL TOMORROW

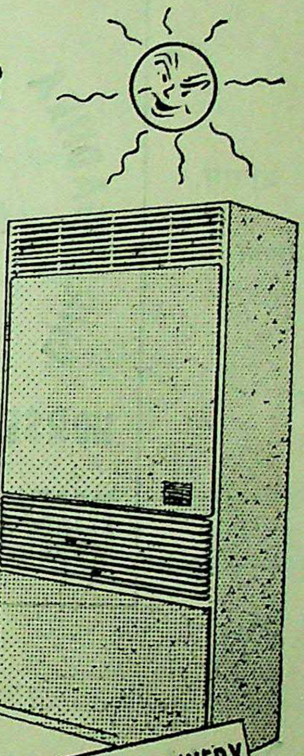

Buy a Worthington Packaged Air Conditioner NOW – the finest cooling unit ever built.

See this Air Conditioner that gives you everything for home, shop, office, restaurant or factory.

Listen to it. No hum. No clatter. That's because the new cooling unit is a marvel of mechanical balance.

Touch it. No vibration. That means more efficiency, less wear, longer life.

Look at it. Its modern design will be a credit to your good judgement.

WORTHINGTON

IMMEDIATE DELIVERY
3 TON & 5 TON
UNITS

864

Distributors:

BLUE STAR ENGINEERING CO. (Calcutta) LTD.
7 HARE STREET, CALCUTTA 1
Also at BOMBAY, MADRAS, AHMEDABAD

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टेलिफोन : २६५१८-९ टेलिग्राम : साहूजैन

ध्रांग्ध्रा केमिकल वर्क्स् लिमिटेड, ध्रांग्ध्रा

DHRANGADHRA CHEMICAL WORKS LTD.

HORSE SHOE BRAND

DHRANGADHRA

पश्चिम बंगाल, आसाम, बिहार एवं उत्कल के वितरक

मेसर्स अशोका मार्केटिंग लिमिटेड,
११, क्लाइव रो,
कलकत्ता-१

सोडा ऐश ★ सोडा बाइ-कार्बोनेट ● कैलशियम क्लोराइड

विशेष विवरण के लिए लिखिए

(१) साहू ब्रदर्स (सौराष्ट्र) लिमिटेड
मैनेजिंग एजेन्ट्स
ध्रांग्ध्रा

(२) ट्रेडर्स लिमिटेड
१५।ए एलफ़िन्स्टन सर्कल
फ़ोर्ट बम्बई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत में प्रथम — एकमात्र अग्रणी
टैण्डम और आयर नॉन-फ़ेरस ऐलॉय

दी आयर स्मेल्टिंग कम्पनी लिमिटेड आधी शताब्दी के पूर्व से ही संयुक्त राज्य में नॉनफ़ेरस ऐलॉय के अग्रणी निर्माता रहे हैं। १६१० में पहला जहाज भारत में आया और १६३१ में भारतीय कारखाने की स्थापना हुई—इस प्रकार प्रत्येक बट्टे के साथ ६० वर्षों का अनुभव ढला हुआ रख सकते हैं।

टैण्डम व्हाइट ऐण्टी-फ्रिक्शन बेयरिंग मेटल्स

गन मेटल्स — फ़ॉस्फ़र ब्रॉन्ज

स्टिक और कोर्ड सोल्डर्स

सोल्डरिंग फ्लक्स

सोल्डर पेण्ट्स और क्रीम

दी आयर स्मेल्टिंग लिमिटेड
कलकत्ता

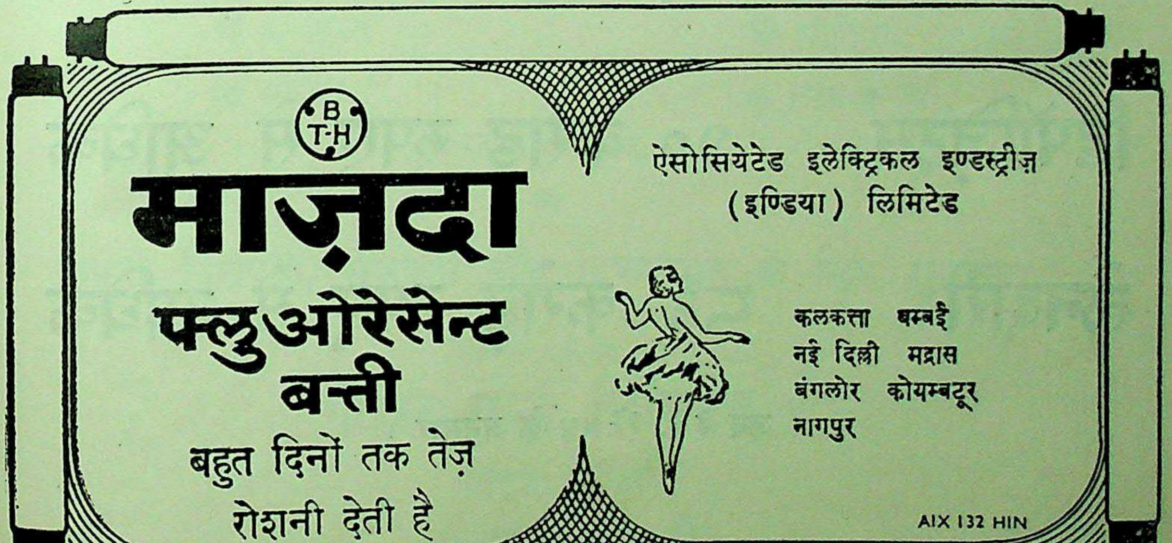

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दि पंजाब नेशनल बैंक लि०

(स्थापित १८९५)

प्रधान कार्यालय : ८ अंडर हिल रोड, दिल्ली

अपने ३०० कार्यालयों तथा समस्त संसार में अपने प्रतिनिधियों द्वारा बैंकिंग तथा एक्सचेंज की पूर्ण सुविधाएँ प्रस्तुत करता है

डिपॉज़िट्स ...... ७० करोड़ रुपए से अधिक

लेनदारी .... ८६ करोड़ रुपए से अधिक

(जून ३०, १९५४ के अनुसार)

बी० एन० पुरी

जनरल मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी लोकप्रियता का रहस्य

अपने परिवारमें वही सब से ज्यादा सर्वप्रिय क्यों ? केवल उसकी सुशीलता और असाधारण व्यक्तित्वही नहीं बल्कि उसकी अत्युत्तम केश तैलकी पसन्द ही उसकी लोकप्रियताका रहस्य है। वह हमेशा बिड़ला कटेली चम्पा केश तैल ही व्यवहार करती है जो बालों को गिरनेसे बचाता है तथा बालों को बढ़ाता है। यह तैल अपनी भीनी व स्थायी मधुर सुगंधसे सब को मोहित कर लेता है।

आज ही एक बड़ी बोतल खरीदें

बिड़ला
कटेली
चम्पा
केश तैल

बिड़ला लेबोरेटरीज़ · कलकत्ता

ASP BL 24

दी पोद्दार मिल्स लिमिटेड बम्बई

प्रस्तुतकारक

- ग्रे ड्रिल्स
- धोतियाँ
- शर्टिंग्स
- लाँग क्लाथ

ल्योपार्ड आदि

अपनी विशेषता, मज़बूती और टिकाऊपन के लिए सुप्रसिद्ध

मैनेजिंग एजेन्ट्स

पोद्दार सन्स लिमिटेड

'पोद्दार चेम्बर्स'
१६ पारसी बाज़ार ट्रीट
फ़ोर्ट, बम्बई

टेलिग्राम :
PODARGIRNI

टेलिफ़ोन :
ऑफ़िस : २७०६५ (६ लाइनें)
मिल्स : ४०१४२६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धैर्य और उद्योग से ही समृद्धि तथा उन्नति प्राप्त होती है।

किसी भी कार्यक्षेत्र में सफलता या विफलता मानवीय अध्यवसाय तथा उस धैर्य पर निर्भर है जो मनुष्य किसी निश्चित कार्य के सम्पादन में लगाता है।

इसकी प्रतीक हैं विभिन्न बहुमुखी परियोजनाएँ जो पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत बहुत व्यय तथा मानवीय परिश्रम द्वारा कार्यान्वित की जा रही हैं और जो अन्ततः इस देश के करोड़ों मनुष्यों के लिए उच्चतर जीवनस्तर तथा वैभव के नये युग का निर्माण करेंगी।

औद्योगिक क्षेत्र में साहू जैन लिमिटेड की विशाल तथा विस्तृत कार्यपरता उनके वर्षों के पूर्वायोजित अध्यवसाय का ही परिणाम है। इससे सिद्ध होता है कि पूँजी और प्राकृतिक पदार्थ के साथ मनुष्य के परिश्रम का आयोग देश की आर्थिक शक्ति एवम् समृद्धि का निर्माण करता है।

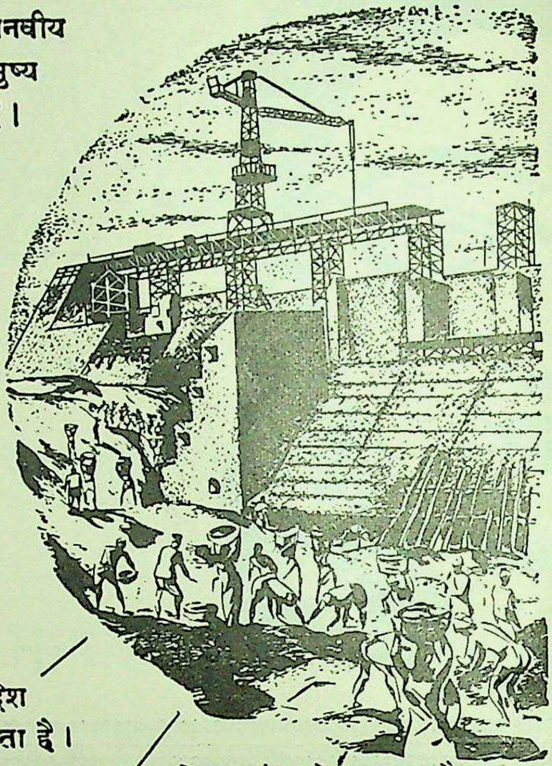

कोनार बांध जो बन रहा है।

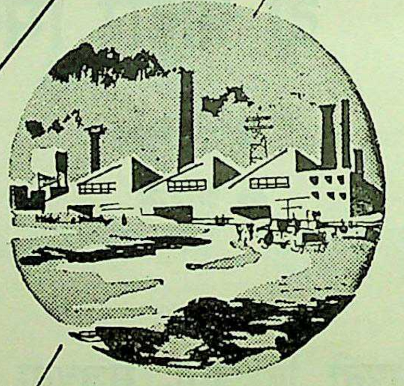

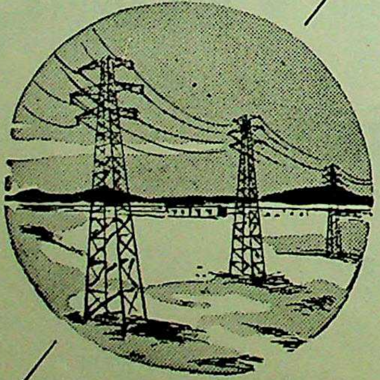

SJ 75/H

साहू जैन लि० ११, क्लाइव रो, कलकत्ता १

निम्न लिखित कम्पनियों के मैनेजिंग एजेन्ट्स :—

रोहतास इंडस्ट्रीज लि०, डालमियानगर, बिहार।
एस० के० जी० शूगर लि०, हथुआ ऐंड लौरिया।
एस० के० जी० डिस्टिलेरी, हथुआ।
भारत कौलिअरीज लिमिटेड।
न्यु सेंट्रल जूट मिल्स कम्पनी लि०, हवड़ा।
ऐलबियन जूट मिल्स कम्पनी लि०, बजबज, कलकत्ता।
ऐलबियन प्लाइवुड लि०, बजबज, कलकत्ता।
डेहरी रोहतास लाइट रेलवे कम्पनी लि०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हार्दिक शुभकामनाओं के साथ

कलिंग ट्यूब्स

लिमिटेड

पोस्ट चौदवार

जिला कटक

शीघ्र ही

गैलवैनाइज्ड ट्यूब

निर्माण करने वाले हैं

आकार : १।२" से २" तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५०० टन प्रतिदिन

कोनारक सीमेन्ट

राजगंगपुर की उड़ीसा सीमेण्ट फैक्टरी नियमित रूप से ५०० टन सीमेण्ट प्रति दिन तय्यार करने की क्षमता रखती है। यह सभी जनता के उपयोग के लिए सुलभ है। आपके अंचल में हमारे जो स्टाकिस्ट हैं उनसे अपनी आवश्यकताओं के लिए कृपया अवश्य मिलें।

उड़ीसा सीमेण्ट फैक्टरी
राजगंगपुर उड़ीसा
मैनेजिंग ऐजेण्ट्स :
डालमिया जैन एजेन्सीज लि०

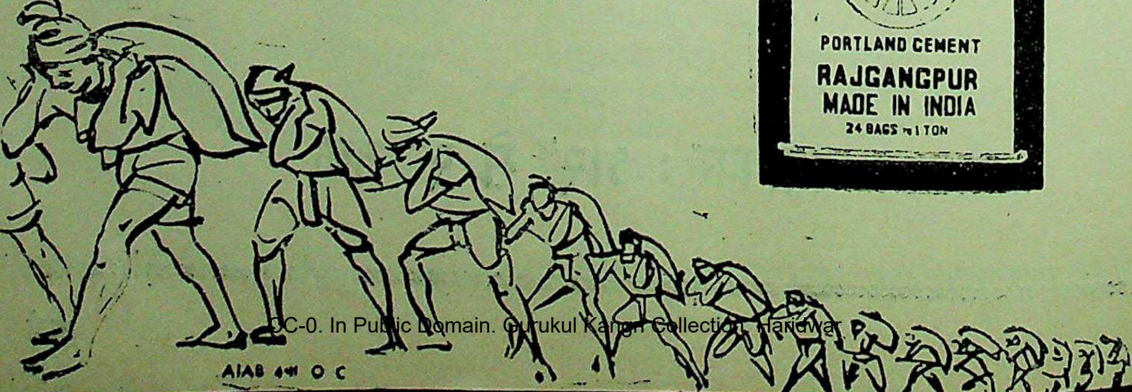

AIAB 4/41 O C

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वसुधैव कुटुम्बकम्

ज्ञानोदय

जीवन जागरण का सजग
सजीव सरस परिचायक

देश के दश राज्यों द्वारा मान्यता प्राप्त

वर्ष ६ : अंक ६ : मार्च १९५५
८) वार्षिक : ।।।) प्रति

इस अंक में

★

आलोक
१. ज्ञान का आलोक .. .. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य ३
राजनीति परिचय
२. कि तीसरा महायुद्ध न हो .. दीपक रॉय ४
विकास-निर्माण की दिशा
३. फिर पाप का अस्तित्व क्यों .. अनाम दार्शनिक ७
कला-गाथा
४. भारतीय चित्रकला की आत्मकथा कमल बोस १४
इतिहास के निर्माण-संकेत
५. रघु और गौतम के युगों में .. प्रह्लाद प्रधान १७
साहित्य विवेचन
६. हिन्दी का नया गीति-काव्य .. विश्वम्भर मानव एम. ए. १९
कहानियाँ
७. ईस्वी सन् ३००० .. .. स्टीफ़ेन लीकॉक १०
८. बूँदें पड़ रही थीं .. .. नरेन्द्र नाथ मित्र २२
९. मूँछ का बाल .. .. आनन्द प्रकाश जैन ३३
एकांकी
१०. रेडियो की मुसीबत .. .. श्री कृष्ण ४३
व्यंग्य कथा
११. पहेली का हल .. .. जोय अन्सारी १३
कवितायें
१२. बनफूल .. .. कु. रमा सिंह, डॉ. जगदीश १६
१३. फूल और पत्ते .. .. मनोहर वर्मा, रामदरश मिश्र २५
राजेन्द्र किशोर
१४. चेकोस्लोवैकियन कवितायें .. सुरेन्द्र कुमार दीक्षित २३
मनोविज्ञान
१५. मन की कन्दरा .. .. सन्हैयालाल ओझा २९
विज्ञान वार्ता
१६. मृत्यु की अंग-रचना .. .. रामचंद्र तिवारी, सिद्धि तिवारी ३६
देश के नगर
१७. महलों-मीनारों का देश : हैदराबाद .. ईश्वर दत्त वर्मा २६
अश्रुांजलि
१८. दिवंगत पराड़करजी .. .. लक्ष्मी शंकर व्यास ३९
धरती और आकाश
१९. समुद्र की लहरें .. .. विराज ४१
स्तम्भ
२०. इतिहास बन रहा है .. .. पूर्णचन्द्र जोशी ४५
२१. आर्थिक जगत् .. .. सोहनराज मोहनोत ४८
२२. युग पथ दिशा .. .. क० ला० मिश्र प्रभाकर ५३
२३. प्रकाशन सत्कार .. .. शल्य ६६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मध्य एशिया की मरुभूमि में जिन पर्यटकों ने प्राचीन युग के चिन्हों की खोज की है उन्होंने देखा है कि वहाँ कितने ही समृद्ध जनपद आज रेती में दब कर बिला गये हैं।

"किसी समय उन स्थानों में पानी का संचय था, नदी की रेखायें अब भी मिलती हैं। परन्तु मालूम नहीं कब रस सूखने लगा और मरुभूमि एक-एक पग करके आगे बढ़ने लगी, और मालूम नहीं कब उसने अपनी सूखी जीभ से हमारे हृदय को चाटना शुरू कर दिया कि आज लोकालय का अन्तिम हस्ताक्षर तक असीम पाण्डुरता में विलीन हो गया।

"असंख्य ग्रामों को लेकर जो हमारा देश है, उस देश की मनोभूमि में भी रस का उद्भव आज रुक गया है। जो रस बहुत समय से नीचे के स्तरों में व्याप्त हुआ पड़ा है वह भी दिनों दिन खुश्क हवा की गरम साँसों से उड़ जायगा। और अन्त में प्राणनाशा मरुभूमि आगे बढ़-बढ़ कर तृष्णा-रूपी अजगर की तरह हमारे इस ग्रामों से गुँथे हुए देश को ग्रास करती रहेगी।

"मरुभूमि का यह आक्रमण हमारी निगाह में नहीं आता। क्योंकि एक विशेष शिक्षा की वजह से देश की देखने वाली आँखें हमने खोदी हैं। झरोखे की लालटेन के उजाले के समान हमारी सम्पूर्ण दृष्टि का लक्ष्य केन्द्रीभूत हो गया है सम्पन्न, संस्कृत और शिक्षित समाज की ओर।"

गुरुदेव का संकेत सही है। वही युगद्रष्टा बापू का भी भाव था। और वही तो यथार्थ-स्थायी साहित्य का भी लक्ष्य होना चाहिए।

ज्ञानोदय अपने विनम्र रूप में इसी लक्ष्य का एकान्त साधक है। जीवन-जागरण का आलोक देश के घर-घर और जन-जन तक ले जाने के लिए वह निरन्तर सजग-सचेष्ट है। इस प्रयत्न की सफलता को ही वह अपनी सिद्धि समझेगा।

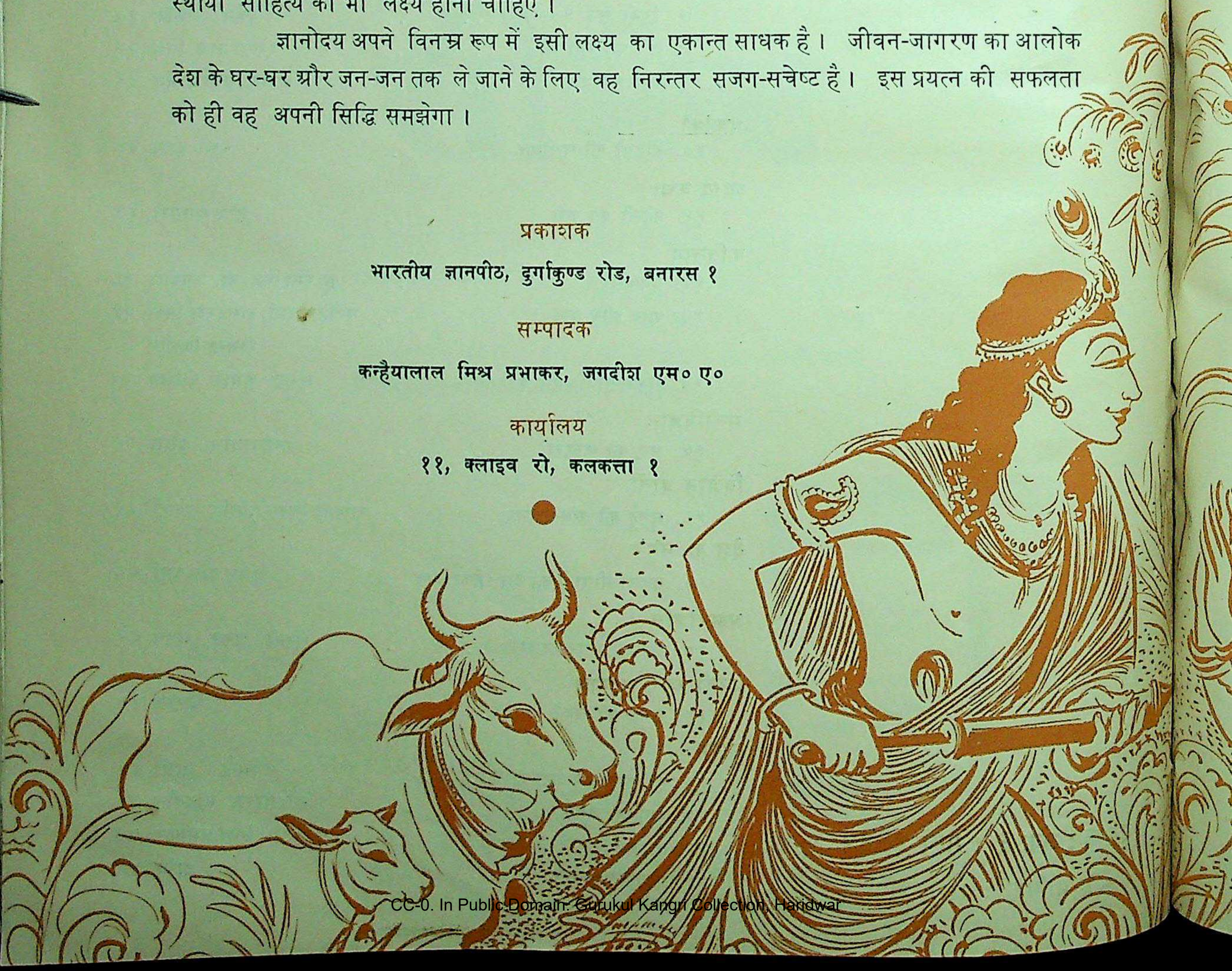

प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस १

सम्पादक

कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, जगदीश एम० ए०

कार्यालय

११, क्लाइव रो, कलकत्ता १

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान का आलोक

महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य

भोजन बेला थी। भिखारी ने सद्दाल कुम्हार के द्वार पर अपनी दीन दशा उघारी। सद्दाल ने झिड़का, "तो मैं क्या करूँ। तेरी यही दशा होनी थी! जा और द्वार देख।" बेचारा लौटा, पर दुर्बलता में वहीं रखे कच्चे घड़ों पर ढह पड़ा। फूट गये कई घड़े। सद्दाल चिल्लाया, "अन्धे कहीं के! दो दिन की मेहनत मिट्टी करदी। ठहर तो!" भिखारी मार के भय से काँप उठा।

तभी नाथपुत्त चर्या के लिए पहुँचे। उन्हें देख भिखारी में बल आया। बोला, "बाबा, मैंने क्या किया? इनकी यही दशा होनी थी!" और नाथपुत्त को सारी बात सुनाते कहा, "प्रभु, नियति क्या एक ही के लिए है?" वह बोले, "सद्दाल, यह ठीक कहता है। इसका भीख माँगना नियत था तो घड़े फूटना भी। पर तुम क्या घड़ों में अपना कर्तृत्व मानते हो? यदि हाँ, तो रेत का भी बना सकोगे?"

सद्दाल ने माना, "नहीं। द्रव्यों की पर्यायें नियत हैं। पुरुष कुछ नहीं कर सकता। जब जो होना है, होगा ही।" अपने ही तर्क में फँसा खड़ा था वह! विनयनत होकर बोला, "भगवन्, मैं भ्रान्त हूँ, मुझे इसका रहस्य समझाइये।"

तब नाथपुत्त ने गम्भीर वाणी में समझाया, "देखो, सांसारिक पदार्थों में कुछ के परिणमन नियत हैं कुछ के नहीं; हाँ प्रत्येक पदार्थ की योग्यता नियत है। घड़ा, कपड़ा आदि पुद्गल के परिणमन हैं; पर मिट्टी, ही घड़ा बनेगी और सूत ही कपड़ा। रेत में अभी घड़ा बनने की योग्यता नहीं, अतः पुरुषार्थ करके भी उसका घड़ा नहीं बनेगा। हाँ, मिट्टी का भी तुम घड़ा बनाओ या कुछ और, और घड़ा ही बनाओ तो सादा या सुन्दर, यह तुम्हारे पुरुषार्थ पर है। पुरुषार्थ का क्षेत्र यही है कि पदार्थ के सम्भाव्य परिणमनों में से अपने अनुकूल परिणमन के निमित्त जुटा कर उसे प्रस्तुत करदे। ये निमित्त जुटाने के लिए पुरुषार्थ करना चाहिए। नहीं तो जो समर्थ निमित्त सामने होगा उसके अनुसार परिणमन हो जायगा, और यदि कोई न रहा तो द्रव्य निजी योग्यता के अनुसार परिणत होता रहेगा।"

नाथपुत्त के ये वचन सुनकर सद्दाल का मन भींग उठा। बोला, "भगवन्, आज मैं समझा नियति और पुरुषार्थ का रहस्य।" वह गद्गद् था। भिखारी भी हर्ष-विभोर था: उसने कर्मों के फल को पुरुषार्थ द्वारा सुधारने की दृष्टि पायी और श्रम का महत्त्व समझा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि तीसरा महायुद्ध नहीं

० दीपक रॉय ०

विधाता की लाड़ली मानव जाति एक बार फिर भूल-भटक कर ज्वालामुखी के किनारे जा पहुँची है। कितने ही तथ्य हैं जो भय और आशंकाओं से रोम रोम को सिहरा देते हैं। किन्तु अगले ही क्षण अखिल मानवता का भावना-पुरुष भी सजग दिखता है और—

बात तो बड़ी है पर है सही। दूर सामने क्षितिज पर कुछ ऐसी बनती मिटती रेखायें झलक चली हैं कि विधाता की धरती फिर एक साँस ले सके।

सह-अस्तित्व या सह-विनाश का जो सिहरा देनेवाला नारा एक दिन स्टैलिन ने उठाया था, आज वही नेहरू नीति के रूप में नया भाव, नया तेज, नयी भूमि, नयी दिशायें पकड़ गया है। जो लोग जन्मजात अविश्वासी थे वे भी अब मान रहे हैं कि परिस्थिति सुधरी है और महायुद्ध की जोखिम १९५५ में ही घहरा पड़ने से तो टल गयी।

यही नहीं, पश्चिम के महान् विश्व की राजनैतिक शतरंजी पर शक्ति और प्रभुत्व के तोड़-जोड़ बिठाने-उठाने में अभी तक सदा अपने को ही महान् देखते आये थे। आज वे अचकचा कर देख रहे हैं कि नेहरू, यूनू और शास्त्रोमिद्जोजो के प्रबल आत्म-विश्वास की धुरी पर सारी दुनिया ही अजीब तरह से बदलती चली जा रही है।

सबसे बड़ा अचरज तो पूर्व और पश्चिम को तब हुआ जब मार्शल टीटो भी भारत आये। टीटो का इतिहास आँखों देखे का है। स्वतन्त्र सत्ता और सोवियत सत्ता के बीच झकोले लेकर बड़ी चतुराई से वह स्वतन्त्र सत्ता की ओर बढ़े और साहस पूर्वक जम कर बैठ गये। आज भी वह युद्ध और शान्ति के झुटपुटे में झूला झूलते मन का खेल सजा सकते थे। मगर वह भारत आये और नेहरू नीति के दूर तक के संकेत समझे।

पिछले दिनों इण्डोनीशिया में जो बोगोर कॉन्फ़रेन्स हुई थी वह सभी राजशक्तियों और राजनीतियों के शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व की राह सीधी और साफ करने की दिशा में एक ठोस व्यावहारिक पग था। इस प्रकार ईसवी सन् १९५५ का नया सवेरा अपने साथ उजाला ही नहीं लाया नेहरू नीति की उगती-फैलती नरम-नरम धूप भी लाया!

मगर यह बोगोर कॉन्फ़रेन्स तो सचमुच महज भूमिका थी महान् ऐफ्रो-एशियन कॉन्फ़रेन्स की जो लगभग दो महीने में होने वाली है और जिसने दिशा, नीति और वर्ण के भेद भुला कर प्रायः हरेक समझने-सोचने वाले व्यक्ति के अन्तर में एक कुरेदबुन उकसादी है। भले ही उस कुरेदबुन का रूप कहीं आशा का है तो कहीं आशंका का, कहीं आश्वासन का है तो कहीं हताशा का।

बहरहाल वास्तविकताओं की इस धूपछाँही झिलमिली से देखकर कोई भी सहज ही समझ सकता था: यह धरती की धूप है, वह महज आकाशी चन्दा। और फिर तो एक दूसरे को समझ-सँभार कर भारत, चीन, बर्मा, इण्डोनीशिया जिस प्रकार निश्छल हार्दिकता और पारस्परिकता की गोद में को सिमट आये (ध्यान रहे किसी पैक्ट के द्वारा किसी दल के रूप में नहीं!) उससे एशिया सहज ही बड़ा बल पा गया।

अर्थात्, दूसरे शब्दों में, इस स्थिति से धरती पर नैतिकता ने सहारा पाया और पशुबल को हठात् रुकना और सोचना पड़ा। मानव और उसके यथार्थ नेताओं की सबके शान्तिपूर्ण जीवन के

मात्र होमरूल
योर एक्सेलेन्सी!

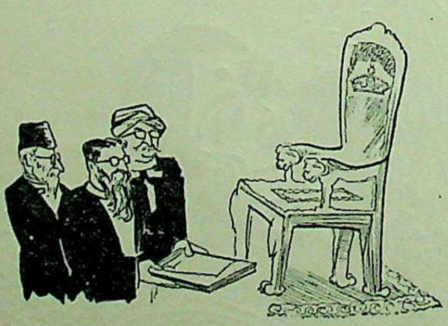

स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है

कांगरेस के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए हार्दिक भावनायें जो अभी तक बरबस मूक पड़ी थीं अब एकाएक मुखर और सक्रिय हो उठीं। और इसी में तो होने वाली ऐफ्रो-एशियन कॉन्फ़रेन्स की सफलता और विजय भी है। सच तो, उस कॉन्फ़रेन्स की भाव-कल्पना ही अपने में एक भारी सिद्धि है: युद्धवादियों को उतने से ही कड़ी ठेस पहुँच गयी और शान्ति-क्षेत्र के निर्माताओं को काफ़ी सहारा हो गया।

इस प्रकार, बोगोर कॉन्फ़रेन्स, जो दरअस्ल कोलम्बो शक्तियों--पाकिस्तान, भारत, लंका, बर्मा, इण्डोनीशिया--की कल्पना और कृति थी, दो बड़े काम सफलता से कर गयी। एक ओर उसने एशियाई विचारधारा को खुलेआम भरपूर प्रकाश में ला दिया और दूसरी ओर स्वयं उसके संयोजक शान्तिकामियों को अपनी विचार-चेष्टाओं के लिए अखूट बल दे दिया। इस आधार पर, अर्थात् बोगोर कॉन्फ़रेन्स की भूमि से, हम इस निर्णय पर आते हैं कि --

एक--शीघ्रगामी समझौता नामुमकिन नहीं ;

दो--एक-दूसरे को तनिक निकट आकर समझने से आपसी भेद मिटाये या भुलाये जा सकते हैं ;

तीन--धरती पर एक नये भाव की विचारधारा सचमुच बह चली है ;

चार--एशियाई एकता के लिए राष्ट्रों के निजी आत्म-त्याग की आवश्यकता घोषित करके नेहरुजी सहज ही अन्तर्राष्ट्रीय समस्यायें सुलझाने के लिए उपयुक्ततम पात्र प्रमाणित हो गये ; और

पाँच--यह आशंका थोथी साबित हो गयी कि आपस की ग़लतफ़हमियाँ तो बनी ही रहेंगी और समझौता असम्भव होगा।

स्वाभाविक था कि बोगोर कॉन्फ़रेन्स और उसके आगे के लिए संकेत अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रान्स को अखरते। यह विशेषकर इसलिए और भी कि इस कॉन्फ़रेन्स के बाद सारी दुनिया ने देखा कि सभी कॉन्फ़रेन्सें धूम-धड़ाका ही करके खत्म नहीं हो जातीं और कि संयुक्त राष्ट्र संघ के राजनीतिज्ञों की तरह सभी राजनीतिज्ञ ऐसे नहीं होते जो पसोपेश और आपसी उलझनों में ही बहकते-भटकते समय बितादें!

कॉन्फ़रेन्स की समाप्ति पर ऐफ्रो-एशियन कॉन्फ़रेन्स के लिए आमन्त्रित राष्ट्रों की सूची घोषित हुई। सन् १९४७ में पण्डित नेहरू ने जो दिल्ली में एशियन रेलेशन्स कॉन्फ़रेन्स संयोजित की थी और जो आधुनिक युग के इतिहास में अपने प्रकार की एक ही रही, उसके बाद यह ऐफ्रो-एशियन कॉन्फ़रेन्स ही दूसरी कॉन्फ़रेन्स है जिसके आमन्त्रणों में मूल भाव यह नहीं रखा गया कि 'किसे-किसे उसमें न बुलाया जाय' बल्कि यह रखा गया कि 'किसे और बुला लिया जाय'।

इस सूची को देखते और उस कॉन्फ़रेन्स के बारे में जो विचार प्रस्ताव इस कॉन्फ़रेन्स में आये उन्हें ध्यान में रखते ऐफ्रो-एशियन कॉन्फ़रेन्स और उसके परिणामों की कल्पना की जा सकती है। कुछ प्रश्न जो इस सिलसिले में ख़ास तौर से उभर कर सामने आते हैं, ये हैं--

एक : अगली कॉमनवेल्थ कॉन्फ़रेन्स में, अर्थात् लण्डन में अभी जो समाप्त हुई है, उसमें नेहरू का रुख क्या रहता है और उसका किस पर क्या प्रभाव पड़ता है?

दो : पाकिस्तान के प्रधान मन्त्री और गवर्नर-जेनरल क्या अब भी वॉशिंग्टन और लण्डन के इशारे मानेंगे?

तीन : क्या अमेरिका और ब्रिटेन यह सब देख-समझ सियेटो में नया दम भरने की चेष्टायें चौगुनी करेंगे?

चार : क्या एशियाई शान्ति के लिए अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन अपना वह रूप अब बन्द कर देगा जो बर्मा में चलाया गया?

ध्येय का अथ और इति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये प्रश्न हैं जो यथा-समय अपना उत्तर पायेंगे, या फिर लेंगे। पर किसी भी दशा में कॉमनवेल्थ कॉन्फ़्रेन्स में पण्डित नेहरू को यह देखना है कि उनके वहाँ के साथी उनकी नीति को कहाँ तक मान देते हैं और कहाँ तक कौन-कौन क्यों नहीं।

इस भूमिका में कॉमनवेल्थ कॉन्फ़्रेन्स के सामने जो महत्त्व की समस्यायें होंगी, ये हैं—

एक : लाल चीन के प्रति अन्तर्राष्ट्रीय रुख ;

दो : नेहरू-चाऊ तथा नेहरू-टीटो घोषणायें और कॉमनवेल्थ ;

तीन : ऐफ्रो-एशियन कॉन्फ़्रेन्स ;

चार : अमेरिकी वैदेशिक नीति का कुछ नरमाई की ओर को परिवर्तन ;

पाँच : सोवियत नीति की भी समझने-सुलझाने की नयी प्रवृत्ति ; और

छह : अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की योजनाओं में सक्रिय योगदान के दावों के साथ-साथ सियेडो जैसी सन्धियों की सदस्यता।

सियेडो सचमुच पश्चिमी कूटनीति की एक बहुत बड़ी कृति है। किन्तु जहाँ एक ओर वह यह है वहाँ दूसरी ओर वह अब इस हक़ीक़त का भी जीता-जागता सबूत है कि कूटनीति कितनी भी चतुर हो, धरती की शान्ति के लिए की गयी ईमानदारी, सचाई और सहयोग की कोशिशों के आगे वह निस्तेज ही रहेगी। कैसा अजेय दैत्य-सा लगता था सियेडो का रूप, भाव और घेरा जब वह जादूगर की कल्पना से निकल कर आँखों आगे आया! मगर नेहरू-चौ समझौता, फिर बोगोर कॉन्फ़्रेन्स : और सियेडो की नियति पर यम की मोहर लग गयी! साथ ही चारों ओर बढ़ता हुआ अन्तर्राष्ट्रीय तनाव भी ढीला पड़ गया।

आज यह तो जब तब बहुतों को लग सकता है कि धरती के इस भाग पर सियेडो का प्रेत मँडरा रहा है। मगर यह निश्चित है कि मँडराने वाला सियेडो नहीं, उसका प्रेत है, और कि वह इसलिए नहीं मँडराता कि कहीं बस जाय बल्कि इसलिए कि अब किधर जाय। बेशक, उसके जन्मदाता, अमेरिका और ब्रिटेन आज भी तरह-तरह से कोशिशें करेंगे कि वह फिर अपना पूर्व रूप पा सके। मगर यह राजनीति है, इतिहास नहीं। इतिहास अपने को दोहरा सकता है, पर राजनीति तो मकड़ी का स्राव है जो उलझता-उलझाता फैल ही सकता है, न लौट सकता है न सिमट ही सकता है।

दरअस्ल चुनाव सियेडो या सियेडो के प्रेत में नहीं है। न ही चुनाव करने वाले अमेरिका-ब्रिटेन हैं। चुनाव है युद्ध या शान्ति का ; और चुनाव करना है धरती को, उसके अनगिन जन-मानवों को। नेहरू-नीति, बोगोर कॉन्फ़्रेन्स और आनेवाली ऐफ्रो-एशियन कॉन्फ़्रेन्स सब इसी दिशा की राह के मील के पत्थर हैं। और क्योंकि इन पत्थरों की नींवों में समझ-सूझ ही नहीं, समूची मानवता के प्रति हित-भावना भी मिट्टी-सिलमिट बनकर भरी है, यह राह जगेगी ही, चलेगी ही।

ऐफ्रो-एशियन कॉन्फ़्रेन्स पर अमेरिका-ब्रिटेन की ये प्रतिक्रियायें देखने के साथ ही, दूसरी ओर सोवियत रूस का भी भाव यदि जान लिया जाय तो ठीक ही होगा। सोवियत रूस निर्भ्रान्ति रूप से दो सत्यों को देख और मान चुका है। एक कि नेहरू का प्रभाव इस समय वास्तविक, असाधारण और सर्वव्यापी है। और दो : कि नेहरू ने, और उनके संग-साथ औरों ने भी, चीन और इण्डोचीन को सचमुच अपनाया और काफ़ी सहारा दिया।

इसके परिणाम-स्वरूप सोवियत रूस के यथार्थवादी राजनीतिज्ञ नेहरू-नीति को खुला सहयोग दे रहे हैं। सोवियत सरकारी पत्र प्रावदा ने नेहरू की ऐफ्रो-एशियन कॉन्फ़्रेन्स की कल्पना को सरेआम सराहा है। और ज़ाहिर है कि सराहनायें भी सोवियत की वैसी ही प्रचण्ड होती हैं जैसी कि उनकी आलोचनायें। इस प्रकार नेहरू को उन सभी देशों का पूरा-पूरा सहयोग प्राप्त है जो सचमुच शान्ति और सबका भला चाहते हैं या जो सोवियत विचारधारा के हैं। इनके अलावा उन्हें उन देशों का भी हिलता-डुलता सहयोग प्राप्त है जो कॉमनवेल्थ के सदस्य हैं या जो अमेरिका के विरोधी हैं।

इन देशों का भाव यों तो सहयोग का है। पर अमेरिका- ब्रिटेन से उनके और-और भी नाते और लेने-देने हैं। इसीलिए उनका यह सहयोग भाव भी 'हिलता-डुलता' ही है। इन देशों की संख्या थोड़ी ही है। पर किसी भी तोड़ के मौक़े पर कुछ परेशानी वे खड़ी कर ही सकते हैं। बहरहाल, भारत-चीन-बर्मा-इण्डोनीशिया इन शान्ति-चेष्टाओं में एक-दूसरे के साथ हैं और लगता है रहेंगे भी।

एक और भी बात है इस कॉन्फ़्रेन्स के सम्बन्ध की जिस पर ध्यान आना ज़रूरी है। कॉन्फ़्रेन्स में, जैसा उसके नाम से ही जाहिर है, कुछ अफ़्रीकी देश भी होंगे : अर्थात् अफ़्रीका के वे देश जिनकी जनता काली है और मालिक गोरे। कॉन्फ़्रेन्स में इन देशों का रहना ज़रूरी था। मगर इसीलिए तो कुछ समस्यायें भी बढ़ गयीं।

(शेषांश पृष्ठ ६२ पर)

ऐफ्रो-एशियन कॉन्फ़्रेन्स की बात अमेरिका-ब्रिटेन के लिए महज सिरदर्द ही नहीं, बल्कि——

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

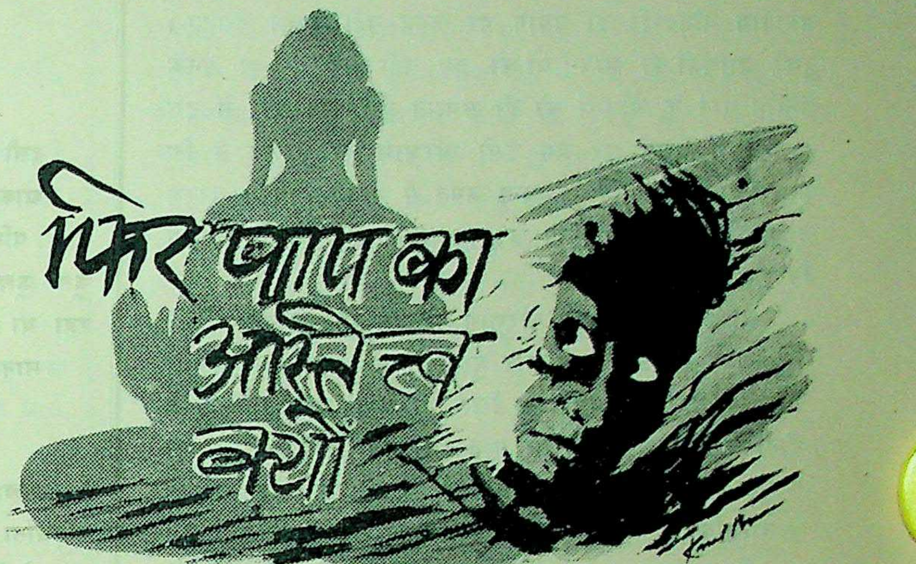

फिर पाप का अस्तित्व क्यों

० अनाम दार्शनिक ०

विधाता की धरती पर इतना पाप क्यों? मानव की समाज में भलों को ही अधिक दुःख-कष्ट क्यों? और सचमुच जीवन ही ऐसा व्यथाभरा-नीरस क्यों कि सब कोई उसे एक बरबस ढोने का भार समझें? एक विचार, भावना और तर्क-शील प्रतिभा का मानवीय उत्तर है—

इस प्रश्न के इस उत्तर से बुद्धि को सन्तोष नहीं होगा कि यह ईश्वरीय रहस्य है जो अगम्य है और इसलिए जिसे श्रद्धा पूर्वक स्वीकार ही कर लेना चाहिए। इस उत्तर से भी सन्तोष नहीं होगा कि इस लोक में भोगे हुए कष्ट यदि अनुचित हैं तो उनके बदले परलोक में सहस्रों गुने सुख मिलेंगे।

यह कहकर भी इस प्रश्न से पीछा नहीं छुड़ाया जा सकता कि मानव की पाप-बुद्धि का दायित्व ईश्वर पर नहीं, क्योंकि उसके सिवाय और किसे पायेंगे उत्तरदायी! न ही अपने को इस भ्रम और भ्रान्ति में रखा जा सकता है कि संसार में पाप है ही नहीं; वह तो पग-पग पर बिछा पड़ा है।

तब? प्रश्न को समझने और सुलझाने के लिए दूसरा ही उपाय करना होगा। थोड़ी देर के लिए तीन अवस्थाओं की कल्पना कीजिये : कि जीवन को होना है और उसकी संसृति को इस धरती पर ही रहना है, कि जीवन पूर्ण से आरम्भ नहीं हुआ बल्कि उसे पूर्ण की ओर को प्रगतिशील होना है, और कि जीवन में बुरा-भला पहिचानने और उचित चुनाव-निर्णय करने की सहज शक्ति है।

अब यदि जगत की कल्पना इस व्यवस्था के अन्तर्गत करें तो कई अवश्यम्भावी परिणाम सामने आयेंगे। जैसे यह, कि मनुष्य में चुनाव करने की शक्ति मानते ही उसके भूल करने की सम्भावना भी माननी पड़ेगी। और जहाँ भूल होगी वहाँ सज़ा में दुःख और कष्ट भी होंगे ही। इसलिए अपना भला-बुरा निर्णय करने का दायित्व मनुष्य यदि आप उठाता है तो उसे हरेक कार्य को लेकर हर क्षण चुनाव करना होगा। किसी भी कारण इसमें भूल होते ही व्यक्तिगत या सामाजिक रूप से उसे परिणाम में कष्ट भरना ही होगा। यह कर्म करने की स्वतन्त्रता का आवश्यक मूल्य है।

इसी तरह, यदि जीवन-जन्म होना है तो मृत्यु भी होगी ही। क्योंकि ऐसे जगत् की तो एक बार को भले ही कल्पना की जा सकती है जहाँ न जन्म हो न मृत्यु, मगर ऐसे की नहीं की जा सकती जहाँ एक हो दूसरा नहीं। और यदि अमरता की कल्पना करते हैं तो यह मानना होगा कि जीवन का आरम्भ पूर्णत्व से हुआ और फिर जगत् की प्रगतिशीलता भी नहीं रह जायगी। यह माना नहीं जा सकता, क्योंकि प्रकृति का कण-कण प्रगति की योजना का साक्षी है। इस योजना का स्वाभाविक तक़ाज़ा है कि एक पीढ़ी के बाद दूसरी उन्नत पीढ़ी आये। इस प्रकार जीवन में 'मृत्यु' का एक विशेष महत्त्व हो जाता है, वह दुःख या कष्ट का रूप नहीं रह जाती। बेशक, यन्त्रणा से मृत्यु हो तो उसमें कष्ट जरूर है; पर सामाजिक दृष्टि से वह सदा श्रेयस्कर ही है।

यहाँ ही शारीरिक पीड़ा को भी लें। यह भी दुःख और कष्ट का एक रूप है, इसका भी पाप और पुण्य से सहज लगाव है। पीड़ा पर विचार करने से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि पीड़ा का लोप तभी हो सकता है जब मनुष्य अमर हो जाय। और यह तो जैसा ऊपर बताया गया, अस्वाभाविक है। फिर पीड़ा सम्बन्धी शारीरिक व्यवस्था, अर्थात् देह में कहीं भी कुछ होते ही शिराओं के जाल द्वारा उसकी सूचना का तत्काल मस्तिष्क तक पहुँचना और फिर मस्तिष्क की पीड़ा के रूप में उस पर प्रतिक्रिया, तो सचमुच अभिशाप नहीं वरदान है। वह हमें ऐसी परिस्थिति की सूचना देकर सावधान करती है जो, ध्यान न दिये जाने पर, पता नहीं कितनी क्षति पहुँचाती। इस प्रकार, यथार्थ रूप में देखने पर पीड़ा भी कष्ट नहीं बैठती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रसंग में पल भर के लिए जन्तु जगत् पर भी दृष्टि डालें। यह कहा जाता है कि एक दूसरे को मारना-खाना ही वहाँ का नियम है और इससे धरती पर पाप के अस्तित्व की ओर को ही पलड़ा अधिक झुकता है। वास्तव में हमें अपने मानवीय मापदण्डों का प्रयोग हर जगह नहीं करना चाहिए। दूसरे प्राणियों की भावनाओं को हम नहीं जानते, न ही उनके सन्तोष पाने के साधनों को ही समझते हैं। सब ओर से इस सम्बन्ध में देखने पर हम इसी परिणाम पर पहुँचते हैं कि हमारी यह आम राय कि जन्तु जगत् में जीवन-संघर्ष के कारण दुःख, उत्पीड़न और पाप का ही राज्य है, वास्तविकता से बिल्कुल भिन्न है।

तो इस प्रकार जिस परिणाम पर हम आते हैं वह यही है कि जीवन के लिए जन्म और मृत्यु समान रूप से आवश्यक हैं और कि दोनों ही प्रगति के लिए भी आवश्यक हैं। जहाँ ये दोनों न हों या जहाँ केवल मृत्यु न हो ऐसी कोई व्यवस्था की कल्पना असम्भव है। जिसे हम दुःख, कष्ट, पाप कहते-समझते हैं वास्तविकता की दृष्टि से देखने पर वह उस प्रकार नहीं है।

किन्तु यह सब कह देने और समझ लेने से इति नहीं हो जाती। बहुत-सी बातें रह ही जाती हैं जो दुःख-कष्ट पहुँचाती हैं और मानव जीवन को प्रभावित करती हैं। पाप के अस्तित्व का प्रश्न बरबस फिर खड़ा हो जाता है। ये बातें हैं: अकाल, सूखा, महामारी, यन्त्रणा भरी मृत्यु और ऐसे उदाहरण जहाँ निरपराध रहते भी मनुष्य को शारीरिक तथा मानसिक कष्ट भोगने पड़ते हैं।

इस सम्बन्ध में विचारने की बड़ी बात यह है कि जगत् स्थायी नहीं प्रगतिशील है। समष्टि गत रूप से कल को जो लाभ मिलने वाला है उसका अधिकारी बनने के लिए व्यक्ति को, या समाज को ही, आज यदि कुछ हानि और कष्ट भोगना पड़ता है तो उसका स्वागत ही करना चाहिए। दूसरे शब्दों में यों भी कह सकते हैं कि संसार तो एक प्रवाह है: इसमें जो इस समय बुराइयाँ हैं उनका वर्तमान रूप अन्तिम नहीं, वे भी परिवर्तनशील हैं। और सबों के साथ उन्हें भी यह अजस्र एवं अनन्त प्रवाह भूत से भविष्य में को बहाये लिये जा रहा है। उनका वर्तमान दुःख रूप यथासमय या तो परिवर्तित हो जायगा या समाप्त ही। प्रगति के क्रम में यह स्वाभाविक ही है।

उदाहरण के लिए : प्राचीन मिश्र में नील नदी में सूखा आने से बढ़ कर दूसरी विपत्ति देश के लिए नहीं थी। यही बात उसमें बाढ़ आने पर भी होती। देशवासी उसे पाप का परिणाम, दैवी प्रकोप समझते। और उसके निवारण के लिए बलि देते, जप-तप करते, या फिर सिर झुकाये सहते। वास्तव में तो ऐसा कुछ था नहीं ; महज़ देश का पिछड़ापन था वह। देश की प्रगति के साथ-साथ वह कष्ट आपोआप लुप्त हो गया। बड़ी-बड़ी झीलें बन गयी हैं जिनसे सूखा पड़ने पर जल-कष्ट नहीं होता और चौड़ी-चौड़ी नहरों द्वारा बाढ़ का प्रभाव भी

मानव की बुद्धि

*

इसी युग और इन्हीं दिनों की बात।

आकाश में उषः के आँचल की कोर झलक आयी थी। पक्षियों का मंगल-रव जग गया था। उपवन का फूल फूल मानव का संसार सजाने-सँवारने को उमग रहा था।

मानव अभी अलसाया पड़ा था।

अचानक धरती के आँगन में एक ने दूसरे को देखा, पहिचाना।

दोनों ही देवदूत थे : एक सदाचरण का रखवाला था, दूसरा कदाचरण का।

सदाचरण के रखवाले देवदूत ने सहज भाव से दूसरे देवदूत को आशिष दी।

दूसरा देवदूत मौन रहा। उसकी वाचा जैसे खो गयी।

पहिले देवदूत ने तब सहानुभूति से आर्द्र उत्सुकता से पूछा, "भाई, अस्वस्थ हो कुछ? मन कैसा है?"

हार कर कदाचरण के रखवाले देवदूत को अब बोलना ही पड़ा, "क्या बताऊँ! यह मानव जाति कुछ काल से अब मुझे ही तुम्हारे स्थान पर समझने लगी है। मन ही मन में इससे बड़ा दुखी हूँ।"

सदाचरण का देवदूत अपनी सौम्य मुद्रा में मुस्कराया। बोला, "हाँ, और मुझ में इसे तुम्हारा भ्रम होने लगा है। तुम्हारा ही नाम भी मुझे दे दिया है इन्होंने।"

उषः तिरोहित हो गयी थी। पक्षी उड़ गये थे। फूलों पर धूल बैठ रही थी। दोनों देवदूत मानव की बुद्धि पर खेद करते खड़े थे, खड़े हैं।

—पागल कथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियन्त्रित कर लिया जाता है। इसी तरह महामारियाँ आदि भी ज्ञान-विज्ञान की प्रगति के साथ क़ाबू में लायी जा रही हैं।

धर्म का प्रश्न

*

दोनों सगे-सहोदर। और सामान्य नागरिक नहीं, दोनों मन्त्रदृष्टा महर्षि।

शंख अग्रज, लिखित अनुज। दोनों अपने-अपने आश्रमों के अधिष्ठाता। आश्रम: प्रतिष्ठित, फल-फूल की सम्पदा से सम्पन्न।

एक बार विचार-विमर्श के लिए लिखित शंख के आश्रम में आये। शंख आश्रम में न थे।

सहज ही लिखित उपवन में घूमने लगे। दूर से चलते आये थे, भोजन बेला थी, पका फल सामने था: तोड़कर खाने लगे।

खट! खट! शंख आ पहुँचे; और देखते ही भौंचक, दुःखित!

क्यों?—अचकचाते हुए लिखित ने पूछा।

यह फल खाना चोरी हुआ न?—शंख ने चिन्तित भाव से उत्तर दिया।

चोरी? कैसे? तुम्हारा वृक्ष सो मेरा वृक्ष।

यह आत्मीयता का नहीं, धर्म का प्रश्न है, अनुज!

लिखित: मौन। सोचा, समझा। बोला—तो मुझे दण्ड दो भाई।

दण्ड तो राजा देगा। तुम राजद्वार जाओ।

गये लिखित। कथा सुनाई, और दण्ड-याचना की।

राजा ने मुग्ध होकर क्षमा करना चाहा तो बोले—राजन्, धर्मज्ञ शंख ने मुझे 'चोर' कहा है। उनका कहा असत्य नहीं हो सकता। दया दिखाकर समाज की न्याय-मर्यादा भंग न करें।

और राजा ने न्यायानुसार लिखित के दोनों हाथ कटवा दिये।

क्या दृश्य था वह!

लिखित भाई के सामने उपस्थित हुए। रक्त चू रहा था, पीड़ा रोम-रोम से फूट रही थी, पर सरल भाव से कह रहे थे वह—धर्मज्ञ शंख, राजा से दण्ड ले लिया, अब आप भी अपराध क्षमा करें!

और शंख अभय मुद्रा में यही कह सके—वत्स, तुमने धर्म का पालन किया है: भगवान् तुम्हारा कल्याण करें!

और व्यथित होकर वर्तमान युग सोचता रह गया: क्या वह वास्तव में न्याय था, धर्म था?

—महाभारत

जहाँ तक अकारण कष्ट, गरीबी और अकाल मृत्यु आदि की बात है तो उनके बारे में हमें इस प्रकार देखना होगा कि यदि सागर पर तूफ़ान आदि से मरना बचाने के लिए मानव ने बड़े-बड़े जहाज़ बनाये, दिशा-सूचक यन्त्र लगाये और प्रकाश-स्तम्भ खड़े किये; या अपनी अनगिन कठिनाइयों को दूर करने के लिए अनगिन ही उपयुक्त उपाय किये और परिस्थिति पर विजय पाते हुए निरन्तर प्रगति का प्रवाह बनाये रक्खा, तो समय आते-आते मनुष्य उन सब परिस्थितियों में भी सुधार कर ही लेगा जिन्हें इस समय वह कष्ट और पाप के रूप में गिनता है। जिस प्रकार अनेक राजनैतिक कष्टों का निवारण जनतन्त्र की स्थापना से हो गया उसी प्रकार भौतिक कष्टों के उपाय के लिए भी कोई व्यवस्था वह कर लेगा, कर सकता है।

दूसरी बड़ी बात इस सम्बन्ध में विचार करने की यह है कि जिन्हें वह कष्ट, आफ़त और पाप आदि कहता है उनका सामना करने के लिए मनुष्य आज अकेला नहीं है। वह एक मजबूत समाज की इकाई है। इस सामाजिक सदस्यता से उसे लाभ और हानि दोनों हैं। लाभ यह कि उसे पास-पड़ोस का ही नहीं बल्कि पीढ़ियों का समूचा ज्ञान-बल मिल जाता है; और हानि यह कि इसी प्रकार उसे उनकी भूलों के परिणाम भी विरासत में मिलते हैं।

इस सूत्र के सहारे यदि हम वर्तमान कष्टों का पीछे को अनुसन्धान करेंगे तो, प्राकृतिक विपत्तियों को छोड़ कर, प्रायः यही पायेंगे कि वे कष्ट अभी या कभी पहिले की गयीं किसी व्यक्ति या समाज की भूलों के परिणाम हैं। कष्ट-आपदा किसी काल्पनिक या स्वेच्छाचारी विधाता का कोप नहीं, न ही वे किसी ऐसी नियति का लेख हैं जो निराकार-निर्मम ही नहीं बल्कि यत्न और आशा की पहुँच के परे भी हो। वास्तव में वे मानव की ही वर्तमान या विगत कर्मों अथवा अकर्मण्यताओं का परिणाम होती हैं। जैसा ऊपर भी कहा गया, कष्ट तो महज़ वह साधन है जो मानव को व्यक्तिगत और सामुदायिक भूलों से रक्षा के लिए प्रेरित करता है।

और क्योंकि मनुष्य अपने समाज की इकाई मात्र है तथा जीवन प्रगतिशील-प्रवाहशील है इसलिए कष्टों का निराकरण, अथवा उनसे मुक्त सामाजिक व्यवस्था, मनुष्यों की एकता अर्थात् सामूहिक चेष्टा करने की प्रवृत्ति और क्षमता पर अवलम्बित है। इस प्रकार हम देखेंगे कि स्थिति यहाँ भी स्थायी नहीं रहती बल्कि परिवर्तन-योग्य और परिवर्तनशील माननी पड़ती है। इस कारण यह स्वीकार करना ही होगा कि सामाजिक आपदाओं में भी सुधार हो सकता है।

तीसरी बड़ी बात जिस पर विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए यह है कि हमारा दृष्टिकोण सदा सन्तुलित रहे। कभी-

(शेषांश पृष्ठ ६३ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईस्वी सन् ३०००

मूल : स्टीफ़ेन लीकॉक० रूपान्तर : महेन्द्र राजा

जब मानव ने प्रकृति पर पूरी विजय पा ली हो और खून पसीना एक करने वाला मजूर भी शान्ति से बैठा आराम करता हो——उस युग की मैं कोरी कल्पना ही नहीं करना चाहता आँखों से भी देखना चाहता था। इसके लिए आवश्यक था कि मैं कुछ सदियों के लिए सो जाऊँ। फिर वैज्ञानिक युग में——

आँख खुली तो अपने को होटल में पलँग पर नहीं, एक बड़े कमरे में चौड़े-से काउच पर अधलेटा पाया। धुँधला पर चमकदार प्रकाश फैला था। कमरे की दीवारें काँच की सी थीं, बेशक उस पार की आकृति साफ़ नहीं दीखती थी।

दूसरी ओर देखा बग़ल में ही एक व्यक्ति बैठा है। उसके सिर के बाल नदारद थे और आकृति आदि से वह न वृद्ध ही लगता था न युवक। कपड़े ऐसे थे जैसे जले हुए कागज़ के हों। एक टक वह मेरी ओर देख रहा था, पर अचरज कि उस दृष्टि में न स्नेह-भाव था न कोई और ही।

मैंने उतावली और उत्सुकता से पूछा, "मैं यह कहाँ हूँ? आपका परिचय? यह कौन वर्ष है? ईस्वी सन् ३००० ही या कोई और?" खेद और निराशा की एक साँस खींचते वह बोला, "बड़े उत्तेजित जान पड़ते हैं आप! बात करने का तरीक़ा भी नहीं आता आपको!"

मैंने फिर पूछा, "कृपया यही बता दीजिये यह ईस्वी सन् ३००० है क्या?" विचारते हुए उसने उत्तर दिया, "जहाँ तक मेरा ख़याल है आपका अनुमान सही है। सम्भव है तीसवीं सदी में अभी सौ-सवासौ वर्ष और हों। पर अब सन्-संवत् का तो कोई हिसाब रखा नहीं जाता, इसलिए निश्चयात्मक रूप से कुछ भी कहना मुश्किल है।"

"क्या? सन्-संवत् का हिसाब नहीं रखा जाता?" मैंने घबराहट में हाँफते से कहा। "हाँ", उसने उत्तर दिया, "पहिले तो रखते थे पर इधर लगभग दो सदी से व्यर्थ की और कितनी ही बातों की तरह यह भी छोड़ दिया गया।" फिर आगे बड़े उत्साह से बोला, "आख़िर उसका लाभ था भी क्या जब हमने मृत्यु को अपने वश——"

"मृत्यु को अपने वश!" मैं बीच में ही सिहर कर चिल्ला उठा और उचक कर बैठते हुए मेरे मुँह से बरबस निकल गया, "हे भगवान्! हे भगवान्!" बड़े अचरज और उत्सुकता से उसने पूछा, "अभी यह आपने क्या नाम लिया?" मैं अभी भी अपने को सँभाल न पाया था। उसी तरह उत्तर दिया, "नाम? भगवान ही तो," और उसकी ओर देखने लगा। जोर से ठठाता हुआ बोला वह, "मैंने तो यह शब्द भी पहिले कभी नहीं सुना! ख़ैर, मैं तब कह रहा था कि जबसे हमने मृत्यु, आहार, परिवर्तन आदि बातों को वश में कर लिया है तब से सभी प्रकार की घटनायें-दुर्घटनायें आदि भी सहज ही हमारे नियन्त्रण में हो गयी हैं, और——"

"ठहरिये, ठहरिये," मैंने फिर बीच में ही टोका और चकराते सिर को किसी तरह सँभालते हुए कहा, "महोदय, कृपाकर एक बार में एक ही बात कहें। एक साँस में इतनी सारी——" फिर ठठाया वह और बोला, "जान पड़ता है आप बहुत समय से सो रहे थे। अच्छा, अब आप ही पूछिये जो जानना चाहें।"

क्या जाने क्यों पहिला प्रश्न मेरे मुँह से यही निकला कि, "ये जो कपड़े आप पहिने हुए हैं, किस चीज़ के हैं?" तत्काल उसका उत्तर था, "ऐस्बेस्टॅस के! क्यों? यह सैकड़ों बरस चलता है। हम सब के पास अब एक-एक ही सूट रहता है। पर आवश्यकता पड़ने पर वह देखो, उधर अरबों सूटों का ढेर लगा है।" उसने एक ओर को उँगली से इशारा किया। फिर बोला, "नींद बिल्कुल खुल गयी हो तो चलिये, बाहिर कहीं बेंच पर बैठकर इस युग के बारे में बात करें? बाहिर आप आसानी से समझ सकेंगे।"

चल दिया मैं। रास्ते में एक विशाल कमरे में एक ओर नीले कपड़े पहिने और कमर में बेल्ट लगाये खड़ी एक मनुष्याकृति को देखकर हठात् मेरे मुँह से निकला, "एं? यह सिपाही यहाँ कैसे?" किसी क़दर अचरज करते मेरे साथ के व्यक्ति ने प्रश्न किया, "सिपाही किसे कहते हैं? क्षमा कीजे, मैं जब पढ़ता था तो 'सामाजिक इतिहास' के ज्ञान के लिए भी मेरा ऑपरेशन हुआ था, पर वह शायद ठीक न हो सका और मेरा इस विषय का ज्ञान अपूर्ण रह गया। आप बता देंगे ये सिपाही कौन होते थे?"

उसने जो कहा और पूछा, मैं उसका ठीक-ठीक मतलब भी न समझ सका। पर समझने की करूँ कि उससे पहिले हम दोनों खुली सड़क पर आ गये थे और वहाँ पहुँचते ही मैं तो एकदम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भौंचक रह गया था। ब्रॉडवे का यह रूप? कहाँ बीसवीं सदी का भीड़, कोलाहल, चहल-पहल भरा ब्रॉडवे और कहाँ यह स्मशान-सा मौन, नीरव ब्रॉडवे! न वे ऊँची-ऊँची इमारतें न उस युग का कुछ और ही। मात्र वही ऐस्बेस्टॅस के सूट पहिने कुछ मानव मूर्तियाँ निरुद्देश्य सी धीरे-धीरे इधर से उधर आ जा रही थीं। सभी के सिरों पर मेरे साथी की तरह बाल नदारद थे। सबकी वैसी ही गम्भीर आकृति और स्वभाव। न किसी से कुछ लेना न देना। हे भगवान्, क्या प्रकृति पर मानव की विजय का यही वह युग था जिसे देख पाने के लिए मैं यों ललक उठा था?

मेरे साथी ने मेरा भाव अवश्य ही ताड़ लिया था। सामने की बेंच पर बैठते हुए बोला, "आपके समय से तो बहुत-बहुत परिवर्तन हो गया है न?" मुझे उसके स्वर में गर्व-सा जान पड़ा। बिना उत्तर दिये मैंने प्रश्न किया, "यहाँ चलने वाली सब मोटरें आदि कहाँ गयीं?" "ओह, वे तो आपके युग के साथ ही चली गयीं। झंझट थीं, शोर भी बहुत करती थीं।" "तो फिर आप लोग कहीं आते-जाते कैसे हैं?" उसने अजीब तरह से मेरी ओर देखा और जवाब दिया, "क्यों? कहीं जाने आने की ज़रूरत ही क्या है! जैसा जो यहाँ है वही तो सब जगह है।"

विश्वास कीजे, हज़ारों प्रश्न मेरे दिमाग़ को रौंद गये उसकी इस बात पर। किसी तरह अपने को संयत रखते मैंने इतना ही पूछा, "तो फिर आप लोग अपने अपने काम पर कैसे जाते होंगे?" बड़ा अचरज हुआ उसे, बोला, "काम? आजकल काम नाम की कोई चीज़ नहीं है। काम तो जो भी था, सब सदियों पहिले के लोग पूरा कर चुके है।" हैरानी से मेरा मुँह खुला और खुला रह गया। कुछ क्षण बाद साँस घूँटकर मैंने फिर पूछा, "आपका मतलब?" बड़े हलके-फुलके भाव से चुटकी बजाते हुए उसने समझाया, "अरे भाई, मशीनों ने सारा काम समाप्त कर दिया। जहाँ तक मुझे याद है आपके समय में भी तो थोड़ी-बहुत मशीनें बन चुकी थीं। भाप और बिजली से—" मैंने स्वीकारात्मक भाव से सिर हिलाया।

"पर वे सब मशीनें तो व्यर्थ थीं। जितनी ही वे अच्छी बनायी जातीं उतना ही अधिक परिश्रम करना पड़ता। फिर, जितनी ही आपकी आवश्यकतायें पूरी होती जातीं उतनी ही अधिक वे बढ़ती भी जाती थीं। जीवन का क्रम बड़ी तेज़ गति से बढ़ा जा रहा था। और आपका उस पर वश नहीं चल पाता था।" मैंने विचारते हुए माना, "हाँ यह तो सच है। पर आपने यह सब कैसे जाना?"

"ओह," उस विचित्र साथी ने आमोद से हँसते हुए कहा, "मेरी शिक्षा के इस भाग का ऑपरेशन ठीक उतरा था। हाँ, हाँ, मैं जानता हूँ आप यह बात नहीं समझ रहे हैं। मैं समझा दूँगा बाद में, पहिले वह बात पूरी हो लेने दें। तो उसके लगभग दो सौ वर्ष बाद प्रकृति पर महानतम विजय का युग आया। यह मानव और मशीन की अन्तिम विजय थी।" मैंने तुरन्त उत्सुकता से पूछा, "तो क्या मनुष्य ने प्रकृति को सचमुच नियन्त्रण में कर लिया है?"

"हाँ, भाई," उसने उत्साह और गर्व से कहा, "हम लोग प्रकृति से अन्त समय तक लड़ते रहे। लगभग सौ वर्ष में यह सब हो गया। ज्यों-ज्यों हमने आवश्यकतायें बढाने की बजाय घटाना शुरू किया त्यों-त्यों प्रकृति अपने आप नियन्त्रित होती गयी। यही भोजन को लीजे। आपके युग में करोड़ों जन सुबह से शाम तक एड़ी-चोटी का पसीना एक करते थे तब कहीं दो ग्रास पाते थे। मैंने उन लोगों के नमूने देखे हैं। हाँ, हाँ, यहाँ अजायबघर में हैं। आप लोग उन्हें शायद 'किसान' कहते थे, क्यों न? उस सबके स्थान पर हमने रासायनिक आहार का आविष्कार किया और अब एक ही वर्ष में इतनी सामग्री इकट्ठी करली है जो सदियों तक भी समाप्त न होगी। खेती, किसानी, अनगिन घरेलू धन्धे: अब सब समाप्त हो गये हैं: बस, उस रासायनिक आहार की एक टिकिया खा लेते हैं और साल भर को बेफ़िक्र। सचमुच इस आविष्कार ने तो पेट और पाचनयन्त्र की सत्ता ही—"

बौखला कर मैं बीच में ही पूछ बैठा, "तो क्या आप लोगों का पेट और पाचन-यन्त्र नहीं हैं?" धीरे-धीरे मुस्कराते और सिर हिलाते हुए वह बोला, "है; नहीं क्यों? पर अब उसका उपयोग हम और कामों में करते हैं। मेरा ही पेट लो, इसका अधिकांश 'शिक्षा' से भरा हुआ है—" मैं हक्काबक्का उसकी ओर देखता रह गया। वह कहता जा रहा था, "तो इस प्रकार पहिले रासायनिक भोजन का आविष्कार हुआ। एक-तिहाई काम तो यों समाप्त हो गया। इसके बाद ऐस्बेस्टॅस के कपड़े बनाये और सदियों तक के लिए एक झंझट से मुक्ति पाली। बेशक, फ़ैशन का अन्त न हुआ होता तो यह सम्भव न होता।"

"अच्छा?" मैंने बात में रस लेते हुए पूछा, "तो क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब फ़ैशन नाम की कोई चीज नहीं रही?" उसने बताया, "न, कहाँ है अब फ़ैशन! देखो न?" और उसने सामने सड़क पर जाती-आती मानव-मूर्तियों की ओर संकेत किया। सचमुच सभी तो एक जैसी ऐस्बेस्टॅस मूर्तियाँ थीं!

मेरा साथी कहता जा रहा था, "उसके बाद हमने मौसम पर नियन्त्रण किया। आप लोगों के समय में मौसम के परिवर्तनों से कितनी परेशानी होती थी। कभी जाड़ा, कभी गरमी, कभी आँधी-तूफ़ान, कभी क्या और क्या। पता नहीं आप लोग कैसे रहते होंगे तब!"

पहिली बार हलके मन से मैंने कहा, "हाँ, कभी-कभी तो बदलते हुए मौसम के कारण बड़ी परेशानी भी होती थी। पर आप लोगों ने कैसे छुट्टी पायी उससे?" बेहिचक उसने उत्तर दिया, "जैसे और चीज़ों से पायी। सोचा, न रहे बाँस न बजेगी बाँसुरी। हमने समुद्र का ही अस्तित्व मिटा दिया।"

वह गर्व से मेरी ओर देख रहा था और मैं हैरत में डूबता-उतराता उसकी ओर। तरह-तरह की कल्पनायें मुझे झकझोर रही थीं, कि आँख सामने के मकान की छत पर गयी। चारों ओर खूब घास जमी हुई थी और एक तरफ़ को टेलेफ़ोन के टूटे-पुराने तार से झूल रहे थे। उनकी ओर को उँगली उठाते हुए पूछा मैंने, "वे सब क्या हुए?" एक निगाह उधर देखकर वह बोला, "टेलेफ़ोन? सैकड़ों वर्ष पहिले ही अन्त्येष्टि करदी गयी उसकी तो। आखिर था भी किस काम का?"

"क्यों?" मैंने उसकी ओर को मुड़ते हुए कहा, "उसकी सहायता से हम कितनी भी दूर बैठे व्यक्ति से बात कर सकते थे, काम ले सकते थे, उसे बुला सकते थे!" "और इसी तरह कोई भी आपको बुला सकता था!" उसके स्वर में स्पष्ट ही घृणा और भय दोनों की झलक थी, "आप लोगों का युग निश्चय ही भयानक था। पर एक दूसरे से सम्बन्ध रखने के साधन हमने धीरे-धीरे सभी नष्ट कर दिये। व्यर्थ थे सब। रेलों को ही देखिये। उनसे हमें क्या लाभ हो सकता था—जब सभी प्रकार का काम समाप्त हो गया, वणिज-व्यवसाय बन्द हो गया। हमने इसलिए उन सबका अन्त कर दिया।" सहसा अपने बोलने के ढंग में परिवर्तन लाते हुए आगे बोला, "सच, वे सब चीज़ें बड़ी ही भयानक और खतरनाक थीं।"

"क्यों, क्यों?" मैंने कुतूहल से प्रश्न किया,। "क्यों नहीं, हमें उनसे बराबर ही अपने टूटने-फूटने का डर जो रहता था।" उसका उत्तर था। मैं धक्; पूछा, "आपका मतलब?" कुछ याद करता हुआ वह बोला, "मतलब? ठहरिये, आप लोग उसे क्या कहते थे..मृत्यु! हाँ, हाँ, मृत्यु! तो देखिये, इधर कई सदी से यहाँ कोई मृत्यु नहीं हुई है। मृत्यु और रोग का कारण कीटाणु होते थे। आप लोगों ने भी दो-चार कीटाणुओं की जानकारी प्राप्त की थी। पर हमने तो खोज-खोज कर सभी प्रकार के कीटाणुओं को नष्ट कर दिया। हाँ, वृद्धावस्था तक के कीटाणु नहीं छोड़े।"

"अर्थात् कि अब आप लोग सदा जीवित रहेंगे?" मैंने साफ़-साफ़ समझना चाहा। उसने स्वीकार किया, "बेशक, यदि कहीं से गिर कर या किसी चीज़ से टकरा कर हमारा अंग भंग न हो जाय। देखिये न, हमारी सारी देह निरी कड़कीली है। हमें बड़ा सचेत रहना पड़ता है। इसीलिए तो रेल, तार, मोटर, जहाज़ आदि सब नष्ट कर दिये गये। वे सब बड़ी जोखिमें थीं हमारे लिए।"

मैं गहरे सोच में पड़ गया। भूख, प्यास, श्रम पर विजय, प्रकृति पर विजय, मृत्यु पर विजय! और सब दस-बारह सदियों में। सहसा एक प्रश्न सूझा, "क्यों महोदय, क्या आजकल भी युद्ध होते हैं पहिले जैसे?" "नहीं" उसका निश्चित उत्तर था, "अन्य सब बातों के साथ ही युद्ध भी समाप्त हो गये। आजकल तो अन्तर्राष्ट्रीय झगड़े एक स्लॉट मैशीन से तय कर लिये जाते हैं। यों एक देश का दूसरे देश से अब सम्बन्ध ही घट गया है। हर कोई विदेशियों को बड़ी आशंका की दृष्टि से देखता है।"

"तो अखबार तो निकलते ही होंगे?" मैंने पूछा। उसने उपहास उड़ाते उत्तर दिया, "आप भी विचित्र हैं महोदय! अरे, न दुर्घटनायें न राजनीति: अखबार का क्या काम!" फिर ज़रा घूमकर मेरी ओर को ही मुँह करके बोलते हुए बोला, "आप में मुझे कुछ-कुछ समाज सुधार की प्रवृत्ति नज़र आती है, मगर फिर भी आप यह नहीं समझ पा रहे हैं कि हम लोग इस वैज्ञानिक युग में पहुँच कर सभी प्रकार की चिन्ताओं से कितने मुक्त हो गये हैं। बहरहाल, आप लोगों के समय में प्रारम्भिक जीवन कैसे बीतता था?" मैंने बताया, "मामूली बात थी, पहिले के पन्द्रह-बीस बरस तो पढ़ने-लिखने में ही चले—"

"वाह, वाह!" खिलखिलाता हुआ वह बोला, "हमारे यहाँ तो शिक्षा सर्जरी के माध्यम से दी जाती है। शिक्षा का आजकल अर्थ ही है: मानसिक ऑपरेशन की सहायता

(शेषांश पृष्ठ ६३ पर)

एक सभ्य देश में। एक डॉक्टर ने देखा उसके कुछ स्थायी रोगी ग्राहकों पर चौदह-चौदह महीने के बिल बक़ाया हैं। क्या करे? नया साल लगने के दो दिन पहिले एक सूझ आयी दिमाग़ में। उसने सबको लिखा, "इस साल आपको सचमुच बड़ी कठिनाइयाँ रहीं। नया साल आपको शुभ हो! नये साल की खुशी में पिछले बिल सब चुकती मान लिये गये हैं।" और अगले ही दिन एक को छोड़ सबका रुपया आ गया!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहेली का हल

◦ ज़ोय अन्सारी ◦

मादाम अभी आई थीं ; काग़ज़ के कई टुकड़े लिये हुए।

ये पहेलियाँ थीं, जिनके हल भेजने की अन्तिम तिथियाँ निकट हैं।

मुझसे कहने लगीं—"न मालूम खुदा किस वक्त मेहरबान हो जाय। आजकल मैं भी बेकार हूँ, मेरे पति भी बेकार हैं। हम दोनों पहेलियाँ हल करने में दिमाग़ लगाते हैं। यह सब भाग्य का खेल है। न जाने ख़ुदा कब दया दिखादे! और यह भी है कि पहेली हल करने में बेकार वक्त अच्छा कट जाता है।"

जब मेरे मासिक की आर्थिक स्थिति डाँवाडोल होने लगी और मैंने उसके पाठकों से सलाह माँगी, तो कई हितचिन्तकों ने लिखा कि आप अपनी पत्रिका में पहेलियाँ प्रारम्भ कर दीजिये।

अब मादाम समझाती हैं कि पहेलियाँ हल किया करो किसी दिन अचानक बहुत बड़ी रक़म छप्पर फाड़कर टूट पड़ेगी। न जाने कब परमात्मा की कृपा-दृष्टि हो जाय और फिर इससे समय भी तो सुगमता से कट जाता है!

आजकल बेकारी, गरीबी और मन्दी का ज़माना है। समाज की मशीन ऐसी निर्दयता से चल रही है कि लोगों को हरेक भावी कल की ओर से व्याकुलता है। अतएव पहेलियों के वर्ग, गिरजों, मस्जिदों और मन्दिरों के अहाते, पीरों और हाजियों के मज़ार और पीर-वलियों के दड़बे खूब ज़ोरों से भरे जा रहे हैं। न जाने कब भगवान की दया हो जाय और फिर इस प्रकार बेकार समय भी तो सहज ही कट जाता है!

पश्चिमी यू० पी० में जब (१९४७ में) मुसलमान एक अजीब हालत में थे। स्थान-स्थान पर करफ्यू लगे हुए थे, रास्ते बन्द, सड़कें निर्जन, व्यापार ठप, लोग घरों में बेकार पड़े थे। उस ज़माने में मुझे वहाँ मुस्लिम मुहल्लों की दीवारों पर यह वाक्य लिखा हुआ दिखाई पड़ा था—

"मुसलमानो! नमाज़ पढ़ो, ख़ुदा बड़ा मेहरबान है।"

मैंने देखा कि कालेजों, विश्वविद्यालयों और सरकारी नौकरियों से आये हुए मुसलमान घरों में बेकार पड़े थे। इनमें से अक्सर ने क़िरअत (राग) के साथ नमाज़ें पढ़नी शुरू करदी थीं। कुछ ने दाढ़ियाँ रख ली थीं और कुछ थे जो तन्मयता के साथ कैरम बोर्ड और पहेलियों के अभ्यास में संलग्न थे।

न जाने भगवान कब कृपा दिखादे और फिर उससे समय भी तो सरलता से कट जाता है!

पहेली शुरू करने से गहरी आय का एक नया दरवाजा खुलता है!

पहेली हल करने से अचानक आय की एक आशा बँध जाती है।

नमाज़ें पढ़वाने और इबादतें (पूजा-अनुष्ठान) करवाने से धार्मिक संस्थाओं की सिंचाई होती है। नमाज़ें पढ़ने और दुआएँ माँगने से अचानक मुराद मिलने की आस लगी रहती है। न जाने ख़ुदा कब मेहरबान हो जाय और फिर इससे वक्त भी खूब कट जाता है!

भविष्य की ओर से असंतोष जब तक तीव्रता धारण करेगा, जीवन की वर्तमान परिस्थितियाँ जब तक अनिश्चित होंगी, भूख और बेकारी के बादल जब तक इस प्रकार मँडरायेंगे कि मानव उनके आगे विवश हो जाय, उस समय तक पूजाओं, नमाजों और पहेलियों का ज़ोर रहेगा।

यह हो रहा है और यह होता रहा है, लेकिन जिस दिन इन्सान में आने वाले कल के सम्बन्ध में असन्तोष के स्थान पर दृढ़ता एवं विश्वास पैदा होगा, रोटी और रोजगार की ओर से निश्चिन्तता आएगी और निरर्थक अवकाश व्यापारिक व्यस्तता में परिणत होगा, उसी दिन ये सारे घरौंदे बैठ जायँगे अपने आप।

यह हो रहा है और यही होगा।

शायद मैंने एक मूल पहेली को हल कर लिया है, परन्तु मेरा पारितोषिक?

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय चित्रकला

१—मोहन-जो-दड़ो की कला

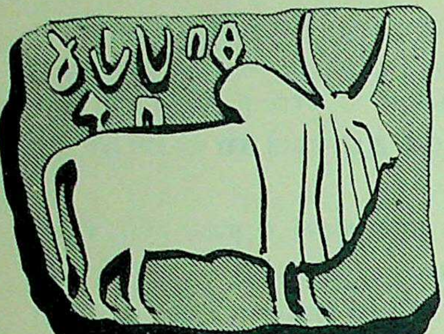

एक

यह प्रसिद्ध चित्र उस युग-जीवन की आवश्यकताओं का प्रतीक माना जाता है। बैल एक ओर प्रजनन शक्ति का द्योतक है तो दूसरी ओर पशुधन-वृद्धि और कृषि-समृद्धि का भी साधन है। शायद इसीलिए, अर्थात् जीवन की आवश्यकताओं से प्रेरित होने के कारण ही, इस चित्र-विषय की बनावट, रेखांकन, उसके अंगों का अनुपात और स्वस्थ मांसलता सब कुछ 'यथार्थ' पर आधारित है। कलात्मक पूर्णता के साथ ही इसमें सामाजिक तथ्य का भी सामंजस्य पैदा किया गया है। एक वाक्य में : कला और जीवन के चरम सम्बन्ध का प्रतीक है यह चित्र।

२—वैदिक कालीन कला

वैदिक काल जीवन-दर्शन के अति विकसित रूप का काल है। मानवीय विचार और व्यवहार प्रत्येक दिशा में आदर्शवादी दार्शनिकता से ओतप्रोत था। स्वाभाविक था कि उस काल की चित्रकला में भी उसी मूल तत्त्व का प्रभुत्व आ रमता। इस चित्र में इसी आधार पर 'सामाजिक यथार्थ' का स्थान 'दार्शनिक तथ्यों' ने ले लिया है। हाँ चित्रण में वस्तु के यथार्थ का ध्यान पूरा-पूरा रखा गया है। इस प्रकार उस युग की कला में सौन्दर्य्यानुभूति और यथार्थ के रूप-निर्माण में पार्थिव सम्बन्ध बना रहा है।

दो

३—अजन्ता की कला

वैदिक काल से अजन्ता काल तक आते-आते कला के स्वरूप ने भी आदर्शवादी रेखाओं का रूप ले लिया। चित्र की साधारण से साधारण रेखा में भी अब लय, सौन्दर्य, सूक्ष्मता, अलंकार और भावना की मनोज्ञ प्रवृत्ति आ बसी। कहा जाय तो, इस युग में दर्शन और कला का रूप-गत सौन्दर्य ही एक दूसरे का पूरक बन गया। बेशक, जीवन से अटूट सम्बन्ध यहाँ भी बराबर बना रहा; क्योंकि उस युग की प्राण-चेतना-प्रेरक आत्मा तथागत बुद्ध का जीवन और दर्शन समाज से अविच्छेद्य रूप से सम्बद्ध था।

तीन

४—राजपूत कला

राजपूत युग का जीवन प्रायः बहुमुखी नहीं था। उसका मूल तत्व शौर्य्य था। और इसकी अभिव्यक्ति उनके जीवन के प्रत्येक कार्य्य-कलाप में तो हुई ही, साथ ही वह लालित्यपूर्ण रूप में भी हुई। यही सब तत्त्व राजपूत-कला में भी छाये हैं। चित्रों का विषय युग-जीवन के कार्य्य-कलाप हैं और रेखांकन में अपूर्व लालित्य। एक प्रकार से शिल्पियों ने सम्पूर्ण सजगता से राजपूत जीवन ही लालित्यपूर्ण रेखाओं में आँक दिया है।

चार

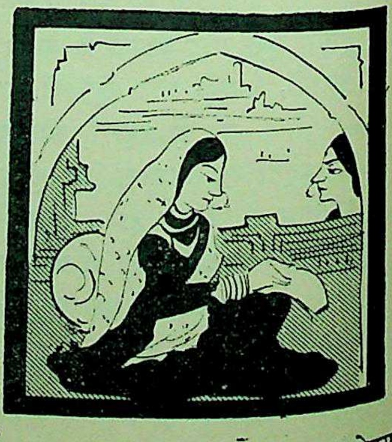

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की आत्मकथा

८—आधुनिक चित्रकला

यह कला अब तक की कलाओं और उनकी भूमियों से भिन्न है। अनेक जन तो उसे कला ही नहीं मानते। इसमें हृदय का स्थान बुद्धि ने ले लिया है और कला का जटिल गणित ने। और इस भूमिका पर खड़ा होकर आधुनिक चित्रकार मानव मन की भावनाओं को निरंकुश जड़ प्रतीकों में ढाल-ढाल कर कैनवेस पर उतारा करता है। सत्य यह है कि आधुनिकता के पलायनवाद का यह भी एक माध्यम, एक रूप है।

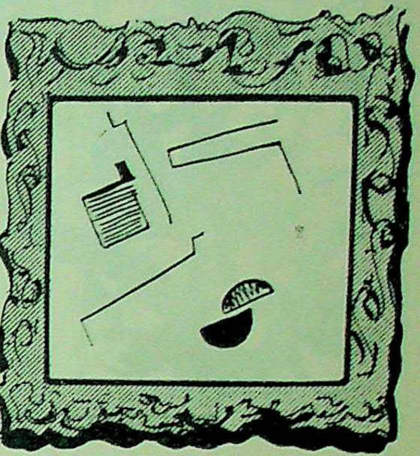

आठ

७—ब्रिटिश राज्य कालीन कला

यह युग प्रायः सभी प्रकार की दासता और अनेक प्रकार की कृत्रिमता का युग था। सम्भवतः इसी स्थिति से प्रेरणा पाकर इस काल के चित्रों में फ़ोटोग्राफ़िक यथार्थ को स्वीकार किया गया। और सहज ही कला का क्षेत्र भी संकुचित होकर आभिजात्य वर्ग के ड्राइंग रूम में आ समाया। चित्र फिर मात्र 'पोर्ट्रेट पेण्टिंग', अर्थात् व्यक्ति की शारीरिक आकृति के अनुकरण, हो गये। बाह्य अलंकरण और ऐश्वर्य की शोभा ही चित्रकला का ध्येय बन गयी।

सात

६—लोक-कला

कला और साहित्य को गति, दिशा और स्फूर्ति समाज के किसी भी अंग से मिले, पर यह निर्विवाद सत्य है कि उन्हें प्राण-चेतना लोक जीवन से ही प्राप्त होती है। इस लोक जीवन में जीवन की सहजता और सरलता का अपूर्व साम्राज्य रहता है। फिर तो स्वाभाविक है कि लोक-कला में भी उस साम्राज्य की शक्ति, ओज और प्रवाह अभिव्यक्ति पायें। लोक-कला वास्तव में उस जीवन की कविता है जो सजाया-सँवारा नहीं गया है और अपने मूल रूप-भाव में ही है। इन चित्रों की रेखाओं पर कला-कृत्रिमताओं के भार-बन्धन नहीं हैं, उनके स्थान पर निरे भोले-सलोने ढंग में काव्य-पूर्ण अभिव्यंजना छलछलायी रहती है।

५—मुगल कला

पांच

कला-शिल्प भले न मानें, पर मानव समाजशास्त्र के कुछ विभाग कहेंगे ही कि मुग़ल युग और जीवन कई दृष्टियों से राजपूत युग और जीवन का ही एक पहलू है। यही सम्भवतः इस तथ्य का भी प्रधान कारण था कि मुगल कला का विषय मुग़ल जीवन के कार्य्य-कलाप हैं और चित्रों की रेखायें लालित्य-पूर्ण। यह अवश्य है कि राजपूत कला जन-जीवन और कोमलतम भावों की ओर भी गयी, जबकि मुग़ल कला प्रायः दरबारी विषयों तक ही सीमित रही। इस कला का भी रूप गत सौन्दर्य्य ललित रेखायें ही रहा।

छह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्म-बन्धन

कुमारी रमा सिंह

जन्म है वह एक ऋण
जो हम चुकाते जिन्दगी भर हैं ।
उतरता है तभी शायद ?
हमारी साँस की गिन्ती जहाँ पर खत्म होती है ।
न जाने कब लिया था
वह महाजन कौन था
जिसने दिया था ?
कौन बैठा टाँकता अपना बही-खाता ?
कौन बैठा हँस रहा है सूद सब खाता ?
सुरक्षित मूलधन सारा बनाये है ।
विषम यह चक्र है ऋण का
कि हर दम सूद बढ़ जाता
चुकाया यदि इधर थोड़ा
उधर वह और चढ़ जाता
उठाये भार कोल्हू का
मनुज के वृषभ-कन्धे हैं
बँधाये आँख पर पट्टी
जुटा वह कामधन्धे में
हमारे कर्ज का लेखा
मगर लिखता नहीं है दूसरा कोई
हमीं लिखते——
हमारी ही कलम-कागज
तथा दावात-स्याही है ।
हमीं लिखते रहे बैठे
जभी जो पंक्ति चाही है ।
हमीं ने हैं चुने अक्षर
हमीं को अर्थ देना है
हमारी ही तराजू है
हमीं को मोल लेना है
हमीं ने जो किया 'संचित'
वही 'प्रारब्ध' बन आता
रहा जो कुछ अधूरा है
वही 'क्रियमाण' बन जाता
न कोई ऋण दिया करता
न कोई ऋण लिया करता
हमारे कर्म का जाला
हमें बन्दी किया करता
हमीं खुद हैं ऋणी अपने
हमीं खुद हैं महाजन भी ।

अभिव्यक्ति का संकट

डॉ० जगदीश गुप्त

बहुत ही हलका लगेगा
'मैं तुम्हारा और तुम मेरे'——कहूँ तो
और यदि यह कहूँ
'मेरे बीच तुम हो, मैं तुम्हारे बीच हूँ'
तो भी नहीं यह कथन इच्छित अर्थ देगा ।
लग रहा ऐसा कि जैसे
है जहां तक भी हृदय का, चेतना का, प्राण का विस्तार,
उस सब में तुम्हीं तुम हो——
तुम्हीं पर है टिका सब, दूसरा कोई नहीं आधार,
यह दुःख-दर्द, हर्ष-विषाद, चिंता, जय-पराजय,
स्नेह, ममता, मोह, करुणा, ग्लानि औ भय,
तुम्हीं से उत्पन्न होते तुम्हीं में लय
भावमय यह कथ्य,
इसमें है बहुत कुछ तथ्य,——
पर अतिरंजना भी है ।
'जिस तरह कुछ भी नहीं है भिन्न मेरा——स्वयम् से,
तुमसे, तथा तुम पर समर्पित अहम् से,
भिन्नता होगी न वैसे ही तुम्हारे पास
ऐसा ही मुझे विश्वास'
शायद इस तरह से कह सका होऊँ 'हृदय की बात' !
पर क्या सही है यह,——कह सका मैं ठीक पूरी बात ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रघु और गौतम के युगों में

प्रह्लाद प्रधान

★

जब देश नये युग के द्वार पर हो और उसके अनुरूप निर्माण योजनाओं में लगा हो तो अतीत से परिचय दोहराना उपयोगी ही होता है। यह इतिहास-पार की शिक्षा विषयक एक झाँकी है।

प्राचीन भारत की शिक्षा के बारे में सोचते ही हमारे सामने तपोवन का चित्र आ जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि प्राचीन सभ्यता का आदर्श तपोवन से शुरू हुआ। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि ग्राम, नगर या खर्वट बालकों से खाली हो जाता था। उन दिनों द्विज बटुओं के गुरुकुल में आश्रम जीवन-यापन का आवश्यक नियम था। लेकिन कुछ तो ज़रूर संस्कार-भ्रष्ट व्रात्य होते होंगे। सब तो जंगल में जाते नहीं होंगे, कम से कम लड़कियाँ तो नहीं ही। फिर, समाज में सिर्फ़ ब्राह्मण या द्विज ही तो नहीं थे। तो ग्रामों और नगरों में भी शिक्षा का कुछ प्रबन्ध ज़रूर रहा होगा। विशेष कर जब तैत्तिरीय प्रतिशाख्य के अनुसार द्विज बालकों को वेदारम्भ के लिए तपोवन आने से पहिले लिपि आदि लिखने के रूप में सम्यक् वर्णादि ज्ञान होना आवश्यक था।

यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि विद्यारम्भ लिपि से ही होता था। कालिदास ने कहा है कि रघु ने चूड़ा कर्म के बाद अमात्य पुत्रों के साथ लिपि का ग्रहण किया। ललितविस्तर में लिपि के साथ संख्या-गणना का भी उल्लेख है। कौटिल्य के अनुसार भी चूड़ा कर्म के बाद राजपुत्र को लिपि और संख्या दोनों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। इससे मालूम होता है कि लिपि और संख्या-गणना प्राथमिक शिक्षा के प्रधान विषय थे।

किन्तु हाथिगुम्फा शिलालेख में एक और विशेष विषय का भी उल्लेख है: खारवेल कुमार यौवराज्य के पहिले ही लेख, रूप, गणना, व्यवहार-विधि में विशारद हो चुके थे। जैन परम्परा के अनुसार ७२ कलाओं में भी 'रूप' का उल्लेख मिलता है। विनय-पिटक के महाबग्ग में भी ऐसा ही है। इससे प्रतीत होता है कि लिपि-लेख और संख्या-गणना के साथ 'रूप' भी प्राथमिक शिक्षा के विषयों में अन्तर्भुक्त था।

इस 'रूप' का अर्थ क्या है? पाचित्तिय पालि में शिल्प को दो भागों में विभक्त किया गया है: हीन या उत्कृष्ट। हीन शिल्प में कुम्भकार, पेशकार, चामकार, नापित आदि का उल्लेख है और उत्कृष्ट में 'मुद्रा, गणना और लेख' का। इस प्रकार 'रूप' को मुद्रा या मुद्रा-गणना अर्थ में लेना पड़ेगा। बुद्धघोष-कृत 'रूपसुत्त' व्याख्या के आधार पर भी 'रूप' को रौप्य अथवा रुपिया का रूपान्तर मानना पड़ेगा। राइस डेविस ने भी इसे मुद्रा-विनिमय के अर्थ में लिया है। ललितविस्तर में कलाओं की गणना के प्रसंग में रूप शब्द तो नहीं पर उसके स्थान पर मुद्रा का उल्लेख है। इसी प्रकार महावस्तु में भी रूप की जगह मुद्रा ही आता है।

किन्तु विनयपिटक के चीनी अनुवाद से इसका अर्थ दूसरा ही मालूम होता है। धर्मगुप्तक विनयपिटक का मूल अभी तक उपलब्ध नहीं, किन्तु चीनी अनुवाद में वह उपलब्ध है। उसके अनुसार धर्मगुप्तक विनयवाले 'रूप' से 'चित्रकला' समझते थे। जैन परम्परा में भी रूप का यही अर्थ किया गया है। जम्बुद्वीप प्रज्ञप्ति टीका में भी 'रूप' के व्याख्या-प्रसंग में कहा गया है कि लेप्य, शिला, सुवर्ण, मणि, वस्त्र, चित्रादि में रूप-निर्माण ही रूप है। वस्तुतः यही अर्थ जँचता भी है। जो कुछ हो, प्राथमिक शिक्षा के यही सब मुख्य विषय थे: लिपि, संख्या-गणना और रूप अर्थात् मुद्रा या चित्रण।

इनमें से लिपि या लेख में अक्षर-ज्ञान के साथ सुन्दर हस्त-लिपि और विभिन्न लिपि-ज्ञान दोनों अन्तर्भुक्त थे। ललितविस्तर में ६४ लिपियों का उल्लेख है। यह हरेक अलग-अलग लिपि थी या नहीं, इसमें सन्देह है। पर कुछ लिपियाँ तो अवश्य प्रचलित थीं जैसे ब्राह्मी, खरोष्ठी, अंग-वंग, मागधी, द्राविड़, उग्र आदि। महावस्तु में लिपियों की एक दूसरी तालिका है। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति टीका में लिपि और विषय-भेद से लेख को दो प्रकार का बताया गया है। लिपि भेद से लेख: जैसे अष्टादश स्थानोक्त; या देश भेद से विभिन्न प्रकार; या वल्कल, काष्ठ, दन्त, लौह, ताम्र, रजत आदि में लिखे जाने के कारण नाना प्रकार; अथवा लेखन, उत्किरण, स्यूत, व्यूत, छिन्न, भिन्न, दग्ध, संक्रान्ति से अनेक प्रकार का होता है। इस तरह विषय-भेद से भी लेख अनेक प्रकार के होते हैं। कारण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी-भृत्य, पिता-पुत्र, गुरु-शिष्य, भार्या-पति, शत्रु-मित्रादि के पास लिखने की विभिन्न रीतियाँ होने से लेख भी अनेक प्रकार के होते हैं। अक्षर दोष से भी लेख अनेक प्रकार के होते हैं जैसे : महीन या मोटा, असमान या वक्राक्षरी।

अक्षरों या मातृकाओं का क्रम आ[illegible] में भी वैसा ही था। ता[illegible] [illegible] जसा है प्राचीन भारत आता है। [illegible] [illegible]क ग्रंथों में तो वही क्रम देखने में [illegible] [illegible]लतविस्तर में भी वही क्रम है; केवल ऋ, ॠ [illegible]ार लृ का उल्लेख नहीं है। बड़ी रोचक बात ललितविस्तर की आलोचना से एक यह और मालूम होती है कि आज जैसे बालकों की उत्सुकता बढ़ाने और आसानी से याद कराने के लिए 'अ से अमरूद, आ से आम' आदि पढ़ाया जाता है, उन दिनों भी ठीक ऐसी ही सी रीति प्रचलित थी। शाक्य-पुत्र गण जब मातृका पढ़ने लगे तो गौतम बोधिसत्व के मुख से 'अ से अनित्य संसार, आ से आत्म-परहित' आदि निकलने लगा। मल्लिनाथ ने पंचाशद् वर्णात्मिका मातृका का उल्लेख किया है। कौटिल्य अर्थशास्त्र में त्रिषष्टि वर्णो का उल्लेख है और पाणिनीय शिक्षा में चतुःषष्टि तक का।

प्राचीन भारत में 'भलो आखर बड़भागी' बात अक्षरशः सत्य थी। उन दिनों हाथ से पोथी लिखना बहुतों की जीविका थी और इसलिए अच्छे लेखकों-लेखनकारों की माँग अधिक होना स्वाभाविक था। राजा के पास भी हमेशा लेखक रहता था। राजशेखर की दृष्टि से कवि के पास भी लेखक होना आवश्यक था। ये लेखक होते थे सर्वभाषाकुशल, शीघ्रवाक्, चार्वक्षर, इंगिताकारवेदी, नानालिपिज्ञ, अमात्यगुणयुक्त, सर्वसमयविद्, आशुग्रन्थ और लाक्षणिक।

दूसरा आवश्यक विषय था संख्या-गणना। यह एक ही चीज है। लेकिन ललितविस्तर से ये दो मालूम होती हैं: संख्या और गणना। लिपिशाला संदर्शन परिवर्त्त में देवपुत्र ने शुद्धोदन से बोधिसत्त्व के शिक्षितव्य विषयों की गणना यों करायी है: मनुष्य लोक के समस्त शास्त्र, संख्या, लिपि, गणना और धातुतन्त्र। शिल्प सन्दर्शन से प्रतीत होता है कि 'संख्या' का आशय है अंकों के निक्षेप से और 'गणना' का आशय है परिणाम से। वास्तव में इनमें कोई बड़ा अन्तर नहीं है। उसी परिवर्त्त में संख्या-निक्षेप के बदले गणना शब्द भी आया है। पाण्डु लौहितक वस्तु के 'उद्धार', 'न्यास', 'निक्षेप' आदि इसी 'गणना' के अन्तर्गत हैं। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति टीका में भी 'गणित' संख्या के ही अर्थ में आया है।

गणित की दैनन्दिन जीवन में कितनी उपयोगिता है यह बात किसी को अज्ञात नहीं। वाणिज्य-व्यवसाय और ज्योतिष ही नहीं, वैदिक यागादि अनुष्ठान से भी इसका घना सम्बन्ध था। राजाओं में गणितज्ञों की माँग थी ही। राजकोष का हिसाब रखने के लिए गाणनिक्य या आक्षपालिक (ऐकाउण्टेण्ट) रहता था। वह एक खाता रखता था जिसमें विषय-विभाग के अनुसार सामने की या ऊपर से नीचे की ओर को पंक्तियाँ बनायी जाती थीं और विभिन्न अधिकरणों का अलग[illegible] [illegible] लिखा जाता था। इसी प्रकार कोष्ठा[illegible] [illegible] [illegible]ाराध्यक्ष का भी काम रहता था।

तीसरे विषय 'रूप' को यदि हम मुद्रा अर्थ में लें तो व्यापार-विनिमय आदि के लिए उसका ज्ञान अत्यावश्यक था। प्राचीन भारत में अनेक राज्य थे और उनमें विभिन्न प्रकार की मुद्राओं का प्रचलन था। इसलिए विभिन्न राज्यों के व्यापारादि सम्बन्ध के लिए उन मुद्राओं का परिमाण मूल्यादि निरूपण करना परम आवश्यक था। उसके लिए और कूटमुद्रादि बन्द करने के लिए एक विभाग ज़रूर रहता था। पण्याध्यक्षादि के लिए भी इसकी जानकारी ज़रूरी थी।

किन्तु यदि इस शब्द को हम चित्रकला के अर्थ में लें तो समाज में उसका उपयोग और स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण था। यह ६४ कलाओं में एक कला है और नागरिक होने के लिए उसे अवश्य अपनाना पड़ता था। गणिकाओं के साथ इसका अभ्यास करने की अनुमति थी। आमोद-विनोद, समाज-गोष्ठी सब कहीं उसका उपयोग होता था। कुल-कन्याओं को भी इसका अभ्यास करना पड़ता था। यौतुक में भी कन्याओं को तुली और वर्ण-समुद्गक दिये जाते थे।

इन सब विषयों को पढ़ाने के लिए पाठशालाएँ-शिल्पशालाएँ थीं। लेकिन उनकी रूप-रेखा ठीक-ठीक बताना कठिन है। शायद वे राजा या धनिकों द्वारा अपने बालकों के लिए चलायी जाती थीं और अन्य बालक उनसे लाभ उठाते थे। कुमार बोधिसत्व अनेक बालकों की मण्डली सहित शिल्पशाला में गये थे; रघु समवयस्क अमात्यपुत्रों सहित लिपि सीखने गये थे। ये पाठशालाएँ घर के किसी भाग में ही नहीं, बाहर कुछ दूर पर भी रहती थीं।

यह शिक्षण शायद पाँचवें वर्ष से आरम्भ होकर पन्द्रहवें वर्ष के पहिले समाप्त हो जाता था। उत्तर रामचरित्र और हाथिगुम्फ शिलालेखों से यही प्रतीत होता है। लेकिन हात्सिंग के विवरण से लगता है कि बालक छठे वर्ष में अक्षर सीखना शुरू करते थे और छह मास में ही समाप्त करते थे।

(शेषांश पृष्ठ ५७ पर)

स्कूल में इन्स्पेक्टर आये। किसी कक्षा के विद्यार्थी से उन्होंने पूछा : औसत किसे कहते हैं? तत्काल विद्यार्थी ने उत्तर दिया : जिसमें मुर्गी अण्डे देती है। बड़े चकराये सब कोई। विद्यार्थी ने अपनी पुस्तक खोलकर दिखायी। उसमें लिखा था : मुर्गी औसतन में प्रति वर्ष ५०० अण्डे देती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी का नया गीति-काव्य

विश्वम्भर मानव, एम० ए०

ताप बहुत बढ़ जाने पर पात्र का जल बाहिर उबल आता है। इसी प्रकार वाचा या अक्षर के रूप में विचार-चिन्तन फूट पड़ता है और स्वरों के रूप में कोमल भावनायें। जहाँ तीनों का संगम होता है प्रायः वहीं गीति-काव्य की भूमि रहती है। यहाँ 'नये' गीति-काव्य की कहानी है।

यों तो हिन्दी के सारे छन्द ही किसी न किसी मात्रा में संगीतात्मक हैं और इस दृष्टि से यह अन्तर करना कठिन पड़ जायगा कि किस रचना को हम गेय कहें किसे अगेय। संगीतज्ञ तो चौपाई जैसे छोटे छन्द को भी इतने प्रकार से गाकर दिखा देते हैं कि सुननेवाले चकित रह जाते हैं। पर प्राचीन हिन्दी-काव्य में राग-रागिनियों के आधार पर चलने वाला पद-काव्य ही संगीत-प्राण है, अतः हम केवल उसे ही गेय मानते हैं। पदों के समान इस शताब्दी के प्रगीत-मुक्तक भी गेय-काव्य के अन्तर्गत आते हैं। यह गीति-काव्य छायावाद-युग की विशेष देन है।

कई दशाब्दियों से गीति-काव्य की धारा अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित हो रही है; अतः पूछा जा सकता है कि नया गीति-काव्य कहने से क्या तात्पर्य है? छायावाद-युग में गीति-काव्य की एक नयी शाखा फूटी और सच बात यह है कि उसका चरम विकास भी प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी के काव्य में हो गया। इस काव्य में भाव की गम्भीरता, कल्पना की उत्कृष्टता, विचारों की प्रौढ़ता और कला की गरिमा अपनी चरम सीमा को छूती है। छायावाद के इन चार प्रमुख कवियों को छोड़कर अन्य कवियों के काव्य में भावना और कला का एक प्रकार से उतार ही पाया जाता है। पर इन चारों कवियों का गीति-काव्य इतने उच्च कोटि का है कि उसकी गणना अब क्लासिक काव्य में होनी चाहिए। स्पष्ट है कि इनका अनुकरण करके कोई कवि अपनी मौलिक छाप काव्य में नहीं छोड़ सकता था; अतः गीति-काव्य की धारा ने एक नया मोड़ लिया। इस धारा में नया जल लाये श्री हरिवंशराय बच्चन। 'बच्चन' ने अध्यात्म को लौकिकता, सूक्ष्मता को रूप-रंग और अस्पष्टता को स्पष्टता की कला में परिवर्तित किया। उन्होंने गीति-काव्य को नयी धारा, नयी अभिव्यंजना दी। इस दिशा में दो अन्य कवियों नरेन्द्र शर्मा और अंचल का सहयोग भी कम प्रशंसनीय नहीं रहा।

उत्तर-छायावाद-काल के उपरान्त गीतिकारों की जो नयी परम्परा खड़ी हुई उसने प्रयोगवादियों और प्रगतिवादियों की भाँति नये युग की नयी चेतना को आत्मसात किया, इसी से हम उन्हें नये गीतिकार कहते हैं। अपने क्षेत्र में इन्होंने नये विषय, नयी भावनाएँ, नये विचार और नयी अभिव्यंजनाएँ दीं। पर क्योंकि ये कवि अपनी पिछली काव्य-परम्परा से भी किसी न किसी रूप में सम्बद्ध हैं; अतः विचार या टेकनीक के क्षेत्र में इन्होंने कोई वैसी मौलिक क्रान्ति नहीं की जैसी प्रगतिवादियों और प्रयोगवादियों ने। इनमें से कुछ के नाम ये हैं—तारा पाण्डेय, विद्यावती कोकिल, सुमित्रा कुमारी सिनहा, शम्भुनाथ सिंह, हंसकुमार तिवारी, चन्द्रमुखी ओझा सुधा, गिरिधर गोपाल, शान्ति मेहरोत्रा, रमानाथ अवस्थी और जगदीश गुप्त।

नये गीत प्रेम के रस से ओत-प्रोत हैं और इस प्रेम की विशेषता है इसकी लौकिकता। यह प्रेम नित्य जीवन का प्रेम है। सामान्य जीवन में जिस आकर्षण का अनुभव हम रात-दिन करते हैं उसी का वर्णन इन उद्गीतियों में पाया जाता है। इस दृष्टि से यह प्रेम पिछले सभी कालों से भिन्न प्रकार का है। यह न तो तलवारों की छाया में पलनेवाला वीरता से उद्भूत प्रेम है, न निर्गुण-सगुण के प्रति आत्म-निवेदन, न अभिसारमयी नायिकाओं का प्रणय, न रहस्यलोक को आलोकित करने वाला उज्ज्वल कोमल भाव। आह में व्यक्त होने वाला प्रेम तो यह है ही नहीं। यह तो जीवन का स्वाभाविक आकर्षण है जो शब्द-रूप पा गया है। रहस्यवादी प्रेम की प्रतिक्रिया में इसका जन्म हुआ था; अतः यह लौकिक, यथार्थवादी और विश्वसनीय है। साम्प्रदायिक और रूढ़िवादी न होने से यह विविधता-समन्वित, मार्मिक और एक प्रकार की ताज़गी से युक्त है। यह वह प्रेम है जो व्यक्ति के जीवन का प्रधान आकर्षण है, अतः इसका परिचय सभी को है और सब इसे समझ सकते हैं।

पर यह प्रेम प्रायः सफल नहीं हो पाया है; अतः इस प्रणय-व्यापार में निराशा का एक गम्भीर स्वर परिव्याप्त है। मिलन के वर्णन कम ही हैं। चिन्ता और विषाद का वातावरण ही अधिकतर घर किये हुए है। यहाँ प्रत्येक प्रेमी न जाने कितनी बड़ी आशा के साथ अपने जीवन को प्रारम्भ करता है और सोचता है कि प्रेम आया है तो अब जीवन आनन्द और उमंग से पूर्ण हो जायगा। पर दो प्राणों के बीच कहीं समाज आ खड़ा होता है, कहीं परिस्थिति, कहीं नियति। कहीं-कहीं ऐसा भी है कि प्रेम-पात्र ही मन की कोमल भावनाओं को नहीं समझ पाता। अतः वह उत्साह एक दिन हताश भावना में बदल जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इन गीतिकारों में शायद ही कोई ऐसा कवि हो जिसके व्यक्तिगत जीवन में निराशा न हो। इस प्रकार इन गीतों ने थोड़ी-बहुत कुण्ठा के साहित्य की भी अभिवृद्धि की ही है।

प्रोफ़ेसर : गणित अनोखा विषय है। कभी-कभी बड़े विचित्र हिसाब बैठ जाते हैं। यही देखिये, अपने जन्म के साल को टेलेफ़ोन नम्बर से गुणा करके विवाह के साल से भाग दूँ तो मेरी आयु निकल आती है।

इन गीतिकारों में से बहुत-से ऐसे भी हैं जिन्होंने व्यथा पर विजय प्राप्त की है। जीवन की वेदना के प्रति एक प्रतिक्रिया तो होती है उसे मिटाने की। यह काम बहुत मनोबल-सम्पन्न व्यक्ति ही कर सकते हैं। अधिकतर व्यक्ति तो दुःख के सामने सिर झुका देते हैं और ऐसे टूट जाते हैं कि काव्य में उसी का ताना-बाना बुनते रहते हैं। कुछ ऐसे हैं जो दुःख का उदात्तीकरण भी कर लेते हैं और इस प्रकार उसकी नोक को कुण्ठित करने में सफल होते हैं। इन गीतिकारों के प्रेम के जीवन में जब निराशा आयी है तब उनमें से कुछ ने तो अपने मन के भाव को भक्ति में बदल दिया है; कुछ ने, जिनमें प्रायः महिलाएँ हैं, वात्सल्य में अपने अभाव की पूर्ति पा ली है; कुछ अपने दुःख को दबाकर लोक-मंगल और मानव-मुक्ति की ओर बढ़ गये हैं और कुछ का भाव उदासीनता में भी बदल गया है। इस प्रकार इन प्रणय-गीतों में मनोवैज्ञानिक अध्ययन के लिए पर्याप्त सामग्री भरी पड़ी है।

प्रकृति के दर्शन से जो भावनाएँ सामान्यतः व्यक्ति के हृदय में उठती हैं, उन्हीं का वर्णन इन गीतों में मिलेगा। इस दृष्टि से यह प्रकृति-वर्णन छायावाद-कालीन प्रकृति-वर्णन से कुछ भिन्न-कोटि का है। छायावाद-युग अपने प्रकृति-वर्णन के लिए प्रसिद्ध है। पर यहाँ भी उसका उपयोग या तो अनादि अनन्त के प्रेम के लिए किया गया है या प्रतीकों के रूप में और यदि कुछ स्वतन्त्र विषय चुने भी गये हैं तो उन पर कल्पना का ऐसा रम्य जाल बिछा दिया गया है कि उसका वास्तविक रूप बहुत कम प्रत्यक्ष हो पाता है। अतः आज के गीतिकारों ने उसके प्रकृत रूप को कुछ अधिक प्रत्यक्ष किया है ऐसा कहा जा सकता है, यद्यपि यह भी सत्य है कि पिछले युग की सूक्ष्म सौन्दर्य-दृष्टि का अब एक प्रकार से अभाव ही पाया जाता है। यहाँ तो उस आनन्द का ही वर्णन अधिकतर मिलेगा जो कल्पना या अन्य किसी आवरण को बीच में लाये बिना सीधे सम्पर्क से प्राप्त होता है। आज के कवि की प्रकृति आनन्द में झूमती दिखाई देती है। उसके दर्शन से हमारे कवियों ने कहीं-कहीं दुःख में अपूर्व सान्त्वना भी प्राप्त की है। इस प्रकार यह प्रकृति अनेक स्थलों पर आज के व्यथित कवि का विश्राम-स्थल बन गयी है। जहाँ प्रकृति उदास हो जाती है, वहाँ कवि भी उदास होता पाया जाता है अर्थात् पिछले युग के समान प्रकृति कवि की भावनाओं में डूबी नहीं दिखाई देती, कवि ही प्रकृति की भावनाओं में डूबा दिखाई देता है और यह बहुत बड़ा अन्तर है। हमारी दृष्टि से जहाँ आज का कवि प्रेम में अधिक स्वाभाविक धरातल पर उतर आया है वहाँ वह प्रकृति के क्षेत्र में भी अधिक स्वाभाविकता की ओर बढ़ा है।

विज्ञान की उन्नति के इस युग में ईश्वर में व्यक्ति का विश्वास वैसे ही कम होता जा रहा था कि मार्क्सवादी विचारधारा का जो प्रभाव पड़ा उसने शिक्षित हृदयों से रहे-सहे ईश्वर-विश्वास को मिटाने का प्रयत्न किया। आर्थिक चिन्ता के कारण उपासना की परम्परा भी कुछ क्षीण हो ही चली है। फिर भी नये कवियों में अध्यात्म की भावना हमारे इन गीतिकारों में थोड़ी बहुत पायी जाती है। किसी-किसी ने तो पूजा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी विचारधारा का प्रवर्तन भी किया है जैसे कोकिलजी ने।

छायावाद-युग के कवियों और इन कवियों के राष्ट्र-प्रेम की भावनाओं में वही अन्तर पाया जाता है जो किसी देश की स्वतन्त्रता के पूर्व और उसके पश्चात् उगनेवाली भावनाओं में रहता है। पहले उत्सर्ग और उत्साह की भावनाएँ प्रबल थीं, अब आनन्द, सौन्दर्य और समृद्धि की। सामाजिकता से जो भाव प्रगतिवादी ग्रहण करते हैं, वह तो इन रचनाओं में पाया जाना सम्भव नहीं; लेकिन अनेक प्रकार के सुधारों के आधार पर समाज-कल्याण की कामनायें कवि भी करते हैं। कहीं-कहीं तो क्रान्ति की चर्चा भी इन कवियों में पायी जाती है, पर उसका आधार अधिकतर गाँधीवाद ही है। जहाँ विचारों में कुछ उग्रता आ गयी है वहाँ मन का रोष ही विविध रूपों में फूट पड़ा है।

मानवता की भावना का विकास इन गीतिकारों में पूर्ण रूप से हुआ है। दुःखियों के क्रन्दन को इन्होंने पहचाना है और सहानुभूति-पूर्वक उसके मार्मिक चित्र अंकित किये हैं। द्रवणशील हृदय से निकली ऐसी रचनाएँ पाठक को प्रभावित करने की पूरी क्षमता रखती हैं। इन रचनाओं के विषय हैं किसान, मज़दूर, विधवा, अकालग्रस्त-व्यक्ति आदि। नारी तो चिन्तन का एक स्वतन्त्र विषय ही बन गयी है। कई कवियों ने उसकी वास्तविक स्थिति और पीड़ा से जानकारी का अच्छा परिचय दिया है। शोषितों के प्रति सहानुभूति प्रकट करते समय यह बहुत स्वाभाविक था कि शोषकों की ओर भी हमारे कवियों की दृष्टि उठती। यहाँ फिर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि पूँजीपतियों के प्रति इन गीतिकारों का दृष्टिकोण प्रगतिवादियों से भिन्न ही प्रकार का है। कुछ ने उनके प्रति रोष प्रकट किया है तो कुछ उन्हें समझा-बुझाकर ही रह गये हैं। मानवतावादी व्यक्ति का मार्क्सवादी होना आवश्यक नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। वह तो अत्याचार और अन्याय को कहीं भी देखकर वैसे ही द्रवित हो उठता है। अतः वर्ग-संघर्ष को गति और बल न प्रदान करने पर भी इन गीतिकारों की मानवता की उदार-भावना में सन्देह नहीं किया जा सकता।

जहाँ तक सुख-दुःख का सम्बन्ध है इन कवियों में से कुछ ने सुख की महत्ता भी स्वीकार की है और दुःख की अनिवार्यता को भी मान्यता प्रदान की है। कुछ ने उनमें सन्तुलन स्थापित कर दिखाया है। कुछ आशावादी हैं और दुःख को जीवन का अत्यन्त नगण्य अंश मानते हैं। साथ ही कुछ ऐसे भी हैं जिन्होंने पहले जीवन में दुःख उठाया और फिर आशावादी बनकर आनन्द की ओर बढ़ गये। इस प्रकार गीतों में इन दोनों वृत्तियों के प्रति भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएँ पायी जाती हैं। कहना चाहिए कि जिस कवि का जैसा व्यक्तित्व है उसने उसके अनकूल ही सुख-दुःख की भावनाओं को ग्रहण किया है।

जैसे प्रत्येक युग की एक भावधारा होती है, वैसे ही लगता है उसके विशिष्ट छन्द भी होते हैं। एक युग था जब दोहा-चौपाई ही कवि के प्रिय छन्द थे। इसके उपरान्त पद लोक-प्रिय हुए। फिर कवित्त-सवैयों का बोलबाला रहा। तब एक युग ऐसा आया जब धीरे-धीरे प्रगीत-मुक्तकों की भरमार रही। और आज के कवि ने मुक्त छन्द को अपनाया है। हिन्दी के साहित्यिक अभी इस बात को भूले न होंगे कि छायावाद-युग में मुक्त छन्द कैसे उपहास और उपेक्षा का विषय बन गया था। वही मुक्त छन्द आज इस सहज भाव से अपना लिया गया है कि यह पता ही नहीं चलता कि इसे प्रतिष्ठित करने में कुछ यशस्वी कवियों को कितने विरोध का सामना करना पड़ा था। यह छन्द जो आज कविता के राजसिंहासन पर आ बैठा है इसका मुख्य कारण यह है कि आज का काव्य चिन्तन-प्रधान हो गया है। हमारे आज के कवि का मन जीवन की अनेक जटिल समस्याओं में उलझ कर रह गया है। गीतियाँ तो भाव-प्रधान ही हो सकती हैं; अतः भावना का ह्रास और बौद्धिकता का विकास होने से वे युग के अनुकूल नहीं रहीं। यह भी देखने की बात है कि प्रगतिवादियों और प्रयोगवादियों में अनेक प्रकार के सैद्धान्तिक विरोध होते हुए भी मुक्त छन्द को ग्रहण करने के सिद्धान्त पर विरोध नहीं है। दोनों ने ही मुक्त छन्द को मुक्त हृदय से ग्रहण किया है। अतः इस बात की पूरी आशंका है कि आज के ये गीतिकार कहीं एक प्राणवान परम्परा के अन्तिम अवशेष बनकर न रह जायँ। विराट जीवन की विशाल मानसिक उलझनों और कठोर संघर्ष के ओज को अभिव्यक्ति देने की शक्ति सम्भवतः गीतों में नहीं है। वे तो अधिकतर कोमल भावनाओं और रम्य कल्पनाओं को वहन करने में ही सफल रहे हैं। विचारों को वहन करने की शक्ति उनमें कम है। इसी से गीतों और तुकान्त छन्दों के स्थान पर अब मुक्त छन्द का अधिक प्रचार हो चला है। ऐसी दशा में बहुत सम्भव है आगे का युग गीतों का युग न हो।

*

तम्बाकू के फ़ायदे

ज़ोय अन्सारी

सरकारी हुक्म से शहर में शराबबन्दी के बाद तम्बाकूबन्दी हो गयी। बसों, ट्रामों, सिनेमा-घरों और सरकारी संस्थाओं में तम्बाकू न पियो। इससे सदाचार बिगड़ता है और स्वास्थ्य बिगड़ जाता है।

वे कहते हैं तम्बाकू बड़े नुकसान की चीज है। चूँकि वे कहते हैं इसलिए मुझे भी यही कहना चाहिये। इसलिए मैंने दलीलें सोचीं और तम्बाकूबन्दी के समर्थन में अखबार के लिए सम्पादकीय लिखना शुरू कर दिया।

आधी रात गुज़र चुकी थी और सिर्फ़ आधा सम्पादकीय लिखा गया। पलक झपकने लगी।

आधी रात गये जब काम करते-करते पलक झपकने लगे तो मजदूर और पत्रकार दोनों की जान खतरे में पड़ जाती है। मजदूर को 'बर्क़ी दबाव' से खतरा होता है और पत्रकार को 'वरक़ी दबाव' से। वहाँ हाथ बहका और टाँग मशीन के अन्दर; यहाँ जरा क़लम बहका और क़लमवाला जेल के सीखचों के पीछे। सम्पादकीय के लिए एक दलील और सूझी—

तम्बाकू बन्द होनी चाहिये, तम्बाकू बड़े नुकसान की चीज है। इससे दिमाग़ में खुश्की दौड़ती है और नींद उड़ जाती है।

मैंने जल्दी से सिगरेट जलाया। तम्बाकू बड़े फ़ायदे की चीज है। इससे नींद उड़ जाती है। नींद उड़ालूँ तो तम्बाकू के नुक्सानों पर आगे निबन्ध लिखूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

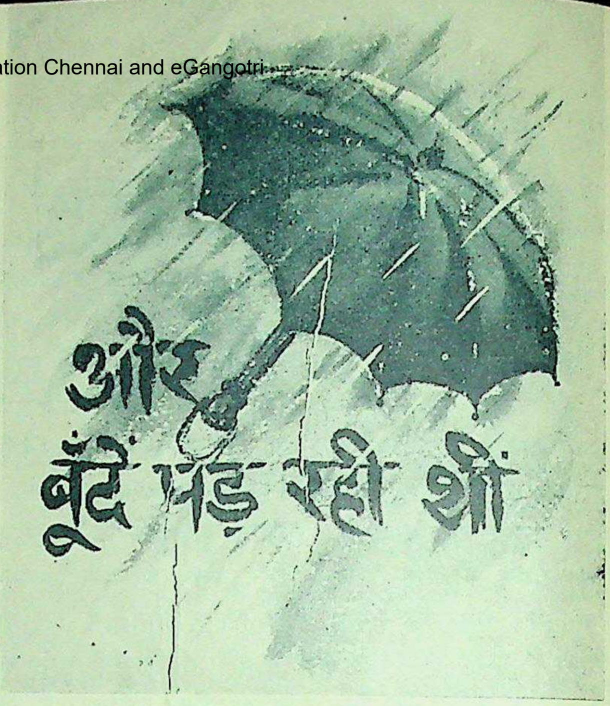

मूल : नरेन्द्रनाथ मित्र——अनुवादक : मो० रा० पल्लीवार

नाइट ड्यूटी थी। करीब नौ बज रहे थे। हमारा सहकारी अनादि पाल करीब साढ़े नौ बजे, हाथ में एक जनाना छाता लिये आफिस आया। देखते ही हम सब हँस पड़े।

मैंने कहा——"बात क्या है अनादि? खैरियत तो है? रात में पत्नी को नहीं ला सकते, इसलिए क्या उसका छाता ही ले आये? किन्तु क्या इस स्मृतिचिन्ह से विरह का दुःख कम हो सकता है?"

अविवाहित अमिय बनर्जी कह उठा——"कम क्यों नहीं होगा? सुना नहीं दूध की साध आटे का घोल पीकर मिटाई जाती है? और जब नाइट ड्यूटी हो तब तो ऐसा करना ही होता है। घर में पत्नी के निकट रहने से जो आनन्द आता है, वही आनन्द फ्रायड के अनुसार उसके छाते के निकट रहने से भी प्राप्त हो सकता है। है न यही बात....?"

मैं और नरेश इस बात पर खिलखिलाकर हँस पड़े। कमरा ठहाके से गूँज उठा। समाचारपत्र के कार्यालय की दीवारें गूँज उठीं।

अनादि चारों ओर से मार खाकर लज्जित हो गया। फिर भी उसने कुर्सी पर बैठते हुए कहा, "हाँ, दूध की साध आटे का घोल पीकर कैसे मिटाई जाती है यह तो मुझे अब कुँवारे अमिय बनर्जी से सीखना पड़ेगा। दूध तो बेचारे को मिला ही नहीं, आज तक आटे का घोल ही पिये जाता है। अभागा बेचारा....।"

फिर एक ठहाका पड़ा। अमिय झेंप उठा।

विपिन ने चुटकी ली, "घोल कौन पीता है, विवाहित या अविवाहित। यह कहना तो इतना सरल नहीं अनादि बाबू। मैं तो सोचता हूँ कि इस मामले में अविवाहित ही अधिक भाग्यशाली हैं। कुँवारे के सिर पर प्रपंच का बोझ तो नहीं रहता।"

अनादि ने कोई उत्तर न दिया, और चुपचाप शिफ्ट इंचार्ज की कुर्सी पर जा बैठा। फिर वह गम्भीरतापूर्वक टेलेप्रिंटर के पास गया और उसे देखने लगा।

आज सीनियर सब-एडीटर सरोज बाबू ने छुट्टी ले ली है। न्यूज़-एडीटर गांगुली बाबू भी आज किसी आवश्यक कार्यवश छुट्टी पर हैं। रहस्य की बात तो यह है कि आज उनकी बीसवीं वैवाहिक वर्षगाँठ है। इसीलिए आज की रात्रि का प्रधान अभिनेता अनादि पाल है।

शिफ्ट इंचार्ज की कुर्सी पर बैठकर अनादि ने आदेश दिया——"काम शुरू करो....प्रेस कापी चाहिए....।"

किन्तु आज हमने उसका रोब न माना। बाहर धीमी-धीमी वर्षा हो रही थी। वह वृष्टि बाहर ही नहीं थी, हृदय के भीतर भी उन बूंदों की आवाज़ सुनाई दे रही थी। आज काम में किसी का मन नहीं है। काम भी कोई अधिक नहीं। विज्ञापन ढेर-से हैं। खबरों का प्रबन्ध पिछली शिफ्ट में हो गया है। आज तो अनादि को तङ्ग किया जाय।

मैंने उसी बिन्दु पर आते हुए कहा——"हाँ अनादि, आज तुम अपनी मिसेज़ का छाता क्यों उठा लाये? छाता लाने का शौक तो तुम्हें कभी नहीं था। लेकिन आज तो ढङ्ग ही निराला है। पत्नी का छाता यदि खो गया, चुरा लिया गया, तो?"

अनादि ने रहस्यात्मक ढङ्ग से कहा——"खो देने के लिए ही तो लाया हूँ इसे विपिन।"

कहा——"ऐं? ज़रूर कुछ दाल में काला है।"

अनादि ने हँसकर कहा——"हाँ, रहस्य तो ज़रूर है। लेकिन पहले काम करो। फिर सुनाऊँगा सारी कहानी।"

किन्तु हमने उसका पिण्ड न छोड़ा। आज तो पहले कहानी, बाद में काम! अन्यथा हम सब भीषण आन्दोलन कर देंगे।

अनादि ने हार मान ली। नरेश ने उसे एक सिगरेट दी। सिगरेट जलाते हुए अनादि ने कहा, "तुम्हें यह सुनकर आश्चर्य होगा कि यह छाता मेरी पत्नी का नहीं। साल-भर पहले मैं कालीघाट में रहता था। राधा ने यह छाता तीन नम्बर की बस में पाया था। सुबह आफ़िस जाने की तैयारी में था, कि पत्नी को एक जनाना छाता लिये आते देखा। हँसकर कहा——"यह छाता तो तुम्हारे हाथों बहुत शोभा पाता है राधा। स्कूल की मास्टरनी बनने का विचार तो नहीं? कहीं इसे तुम्हारी भौजी ने तुम्हें उपहार में तो नहीं दिया?"

राधा ने हँसकर कहा——"मेरी भौजी कहाँ सिर पर छाता ओढ़े फिरती हैं जो मुझे उपहार में देगी। यह तो मुझे तीन नम्बरवाली बस में मिला है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राधा ने सारी बातें बतायीं। तीन नम्बरवाली बस में उसके निकट एक युवती बैठी थी। उसके पास कुछ पुस्तकें थीं और यह छाता भी था। युवती एक पुस्तक खोलकर देखने लगी और छाता राधा के पास पड़ा रहा। उल्टाडिङ्गी मुहल्ले का मोड़ आ गया। राधा बस से उतरकर आगे बढ़ी थी कि एक सज्जन चिल्लाये—"छाता ले जाइये श्रीमतीजी.....।"

बिना सोचे-विचारे हाथ बढ़ाकर राधा ने छाता ले लिया। इसके पहले कि वह कहे कि छाता मेरा नहीं, बस आगे भाग गयी।

चिन्तित होकर राधा ने कहा—"देखा, कैसी विचित्र बात हुई। न जाने किसका पुराना छाता है। व्यर्थ ही चोरी का पाप लगा मुझ पर।"

"चोरी कैसी?" मैंने हँसकर कहा—"यही समझ लो कि तुम्हारे सहयात्री ने तुम्हें उपहार में दे दिया।"

राधा ने गम्भीर होकर कहा—"चाहे जो हो, यह अच्छा नहीं हुआ। कल ही इसे बस डिपो में जमा कर दूँगी। न हो आप ही अखबार में विज्ञापन दे दीजिए। जिसका छाता हो ले जाय।"

कुटिल भाव से मैंने कहा—"हाँ, विज्ञापन देने की बात तो बुरी नहीं। जनाना छाता है, इस बहाने कई सुन्दरियों के मुखड़े देखने को मिलेंगे। हो सकता है दो-चार युवतियों से परिचय भी हो जाय!"

"हटिये भी। आपको तो हर समय मज़ाक ही सूझता है। चाहे जो हो छाता लौटाना ही होगा। पुराना छाता लेकर व्यर्थ का पाप अपने सिर लेना मुझे पसन्द नहीं।" राधा ने उत्तरदायित्व भरे स्वर में कहा।

"अच्छा तो लाओ, यह पाप मैं अपने सिर पर लिये लेता हूँ। यही पाप, बरसात की धारा से मेरी रक्षा करेगा।" मैंने छाता लेते हुए कहा।

राधा हर दिन छाता लौटाने की बात कहती और मैं रोज़ उसे हँसी में टाल दिया करता। इतना सत्यवादी मैं नहीं। ट्रामों और बसों में मैंने भी दो-चार छाते खो दिये हैं। किन्तु क्या उन्हें कोई लौटाने आया था? किसी ने अखबार में विज्ञापन दिया था? फिर मैं ही यह बेवकूफ़ी क्यों करता? पैसा भी खर्च हो और चीज़ भी जाय। ईमानदारी में स्वयं राजा युधिष्ठिर और महाराज हरिश्चन्द्र को शर्मिन्दा करने का तो मेरा इरादा था नहीं।"

छाता घर पर ही पड़ा रहा। काले रङ्ग का छाता। एक ओर नीले रेशम से अंग्रेजी में लिखा था—'पी'।

राधा ने कहा—"देखिये इसमें चिन्ह भी है।"

"तो क्या हुआ? लाओ उसे निकाल फेंकूँ।"

"छि-छिः न जाने आपको आजकल क्या हो गया है।" राधा ने झिड़की दी।

मैं भी नहीं समझ पा रहा था कि मुझे आजकल क्या होता जा रहा है? किन्तु कुछ दिनों बाद यही स्थिति राधा की भी हो चली। पत्नी, पति की सहधर्मिणी जो ठहरी! उसे लौटाने की बात वह भूल गयी। बारिश में वह उसे साथ ले जाती। एक-दो बार उसे ट्राम में भी ले गयी।

"साहस तो तुम में कम नहीं। यदि किसी दिन इसके मालिक ने देख लिया तो?" मैंने व्यङ्ग कसा।

"तो क्या होगा? ठीक ही है। जिसका यह छाता है उसे मिल जायगा।" उसने निर्द्वन्द्व भाव से कहा, "पाप तो कटेगा।"

किन्तु मैं भी जानता था, और राधा भी जानती थी कि वह छाता कभी लौटाया नहीं जायगा। बस में राधा ने उस युवती को शायद एक मिनट के लिए देखा था। इससे अधिक तो जान-पहचान नहीं। चोरी पकड़ाने की कोई सम्भावना नहीं।

किन्तु जीवन में कभी-कभी अप्रत्याशित बातें भी हो जाया करती हैं। मेरे साथ भी यही हुआ।

आज सुबह की ही बात है। घर में चाय नहीं थी। यही छाता सिर पर ओढ़े बाज़ार चल पड़ा। अब तुमसे क्या छिपाऊँ। पिछली पूरी बरसात हमने इसका सदुपयोग किया। तुम तो जानते ही हो कि मेरा अपना कोई छाता नहीं। आफिस को छोड़ मैं इसे हर जगह ले जाता। बाज़ार जाता, लाँण्ड्री जाता और सैलून भी जाया करता। मुहल्ले के लोगों ने जब मुझे जनाना छाता ओढ़े देखा तो खूब हँसे, फबतियाँ कसीं, पर बाद में वे चुप हो गये।

कुछ महीने बाद मैंने घर बदल दिया। पण्डितिया-प्लेस में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किराये पर मकान ले लिया। नया मुहल्ला था। नयी बरसात थी। किन्तु छाता वही था। पुराना! उस मुहल्ले के लोग भी मुझे लेडी छाता लिये देखते तो हँसा करते। मैंने उनकी चिन्ता नहीं की। धीरे-धीरे वे चुप हो गये।

हाँ, आज सुबह बारिश हो रही थी। पत्नी की आज्ञा पाकर यही जनाना छाता सिर पर ओढ़े चाय लाने चल पड़ा। धोती को लुंगी की तरह पहन लिया था। शर्ट की जगह बनियान पहनी थी। एकाएक देखा कि एक युवती रासबिहारी एवेन्यू के मोड़ से सीधे मेरी ओर चली आ रही है। आँचल के नीचे हाथ में कुछ पुस्तकें लिये हुए है। वह भी भींग गयी है और उसकी पुस्तकें भी। जब युवती पास आ गयी तो मैंने चकित होकर कहा—"अरे प्रमिला....तुम?"

"हाँ, मैं ही तो हूँ। इसी मुहल्ले में रहती हूँ। तुम यहाँ कब आये?"

"मुझे यहाँ आये तो कोई दो महीने हुए।"

मैंने देखा प्रमिला का व्याह अभी तक न हुआ था। उसकी साड़ी के पाढ़ का रङ्ग लाल था किन्तु सादा था। उम्र करीब तीस हो चली थी। आँखों में क्लान्ति की छाया स्पष्ट दिखाई देती।

"पत्नी का छाता लिये घूम रहे हो अनादि?" उसने मुस्कुराकर कहा।

"झेंप कर मैंने कहा—"हाँ" फिर कहा, "अरे प्रमिला, तुम भींग क्यों रही हो? आ जाओ इसी छाते के नीचे।" मेरे स्वर में आग्रह था।

"इस छोटे से छाते में दो व्यक्तिओं का समावेश कैसे होगा अनादि बाबू? मैं तो भींग ही गयी हूँ, आपको भिगा कर क्या लाभ होगा?" स्वर में व्यथा थी, जैसे किसी ने हृदय के सूखते हुए घाव को छू दिया हो।

पानी जोर से बरसने लगा। हम लोग कुछ खिसककर पास ही के मोटर गैरेज में घुस गये। छाता खुला ही था।

"क्या करती हो आजकल प्रमिला?"

"वही मास्टरी।"

"कहाँ?"

"मानिकतल्ला में। वही पुराना स्कूल।"

"यहाँ से इतनी दूर जाती हो नौकरी करने? काफ़ी तकलीफ़ होती होगी।" मैंने सहानुभूति पूर्वक कहा।

"दूसरी नौकरी कहाँ मिलेगी अनादि बाबू?"

इस बात पर मैं चुप रहा। सच ही कहा उसने।

कुछ देर चुप रहने के बाद उसने कहा—"अच्छा चलूँ अनादि बाबू।"

"पानी अभी रुका कहाँ है? व्यर्थ भींगोगी। छाता लेती जाओ।" मैंने आग्रह पूर्वक छाता उसके हाथों में दे दिया।

खुले हुए छाते पर 'पी' देखकर उसने चौंक कर कहा—"अरे वाह, यह छाता तुम्हारे पास कैसे आया?"

कहा—"शायद तुम्हारा ही है। पहिचान लिया?"

उसने कहा—"पहचानती क्यों नहीं? छाता तो मेरा ही है। शायद मैं इसे बस में भूल गयी थी। तुम्हें कहाँ मिला?"

छाता मेरे पास कैसे आया इसका पूरा विवरण मैंने उसे बता दिया। इसके बाद जो कुछ कहा अकपट नहीं था: कहा—"एक साल से मैं बराबर इस छाते के मालिक की तलाश में हूँ। कई बार विज्ञापन दिये पर व्यर्थ।"

"इसे ले जाओ प्रमिला।" मैंने आखिरी बार कहा। फीकी मुस्कान में उसने कहा—'ना ना अनादि तुम्हीं रखो इसे। मैं ले जाऊँगी तो फिर खो दूँगी। मेरी आदत ही है। हमेशा खोया करती हूँ, पाती कुछ नहीं।"

प्रमिला अधिक न ठहरी। व्यथापूर्ण आँखों में मुस्कुराहट का भाव लाने का यथासाध्य प्रयत्न करती हुई वह चली गयी।

मैं देखता रहा....। प्रमिला से कभी किसी समय मैंने बहुत कुछ पाया था। किन्तु आज यह छाता लेकर क्या करूँगा? वह तो इसे लौटा नहीं ले गयी। इसीलिए इसे लिये आज आॅफ़िस आ गया। काश, यह किसी तरह खो जाता।" उसने गहरी साँस खींची।

अनादि की सिगरेट खत्म हो गयी। कहानी भी खत्म हो गयी।

अनादि की कुर्सी के पास ही छाता रखा था। मैं उठा, और उत्सुकतापूर्वक उसे खोल दिया। 'पी' तो क्या अंग्रेजी का कोई अक्षर वहाँ नहीं लिखा था।

चौंककर कहा—"बात क्या है अनादि?"

उसने तत्परतापूर्वक एक कागज़ मेरी ओर बढ़ा दिया, और आदेशपूर्ण स्वर में कहा—"काम करो महेश, रात बहुत हुई।"

उसके स्वर में भी व्यथा थी। प्रमिला के ही शब्द मुझे याद आ रहे थे, "इस छोटे से छाते में दो व्यक्तियों का समावेश कैसे होगा अनादि बाबू? मैं तो भींग ही गयी हूँ, आपको भिगाकर क्या लाभ होगा....?"

बाहर वर्षा की बूंदें पड़ रही थीं....टप....टप....टप....टप....।

❀

एक अभिनेता की पत्नी का शरीरान्त हुआ।
सुनते ही मित्र लोग दौड़े। देखा: शोक से पागल हो रहा है वह। एक ने समझाया: इतना शोक!
उत्तर मिला: क्या! सब कोई आजायें तब देखना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फूलों की हठ

मनोहर वर्मा

इस बगिया का सौ बार लुटा सिंगार
पर मिट्टी में फूलों की हठ कायम है
निर्माण नाश पर हँस उठता हर बार

हर रोज साँस के तार टूटते हैं
जीवन की पायल के घुँघरू खो जाते
हर घड़ी हँसी हँस-हँस रोया करती
बस एक धुआँ बनकर दीपक सो जाते

हर बार नाश के विधवा माथे पर
निर्माण रचा देता सिन्दूरी प्यार
इस बगिया का सौ बार लुटा सिंगार

तट ने लहरों का हाथ बहुत छोड़ा
मँझधारों ने जी भर उसको भटकाया
लेकिन विश्वास लहर का जीत गया
साहिल खुद बहकर मँझधारों में आया

इसलिए हार को मजबूरी मत समझो
हर जगह जीत कर ही मानी है हार
इस बगिया का सौ बार लुटा सिंगार

हर रोज जिन्दगी के दरवाजे पर
आवाज भिखारिन मौत लगा जाती है
साँसों से भर ले जाती झोली लेकिन
दाता को जैसा का तैसा पाती है

हर शाम राख बन सिसका करतीं लाशें
हर सुबह निकलता मुर्दों का संसार
इस बगिया का सौ बार लुटा सिंगार
पर मिट्टी में फूलों की हठ कायम है
निर्माण नाश पर हँस उठता हर बार

तुम नहीं एकाकी

रामदरश मिश्र

पाँव मेरे थक, चले जब छोड़ते राहें
नीम गन्धी छाँह ने हँस पकड़ लीं बाँहें

दाह पर पथ की, हँसी की लहरती रेखा
खींच, फूले अमलतासों ने मुझे देखा
विहँग ने फिर-फिर पुकारा कहाँ जाते हो
नाप लेंगी जलन पथ की मेघ-सी चाहें

दग्ध रेती में हरी ईखें हँसी, आँखें—
बार-बार भरीं, झरीं मर्मर झुकी शाखें
विहँग ने फिर-फिर पुकारा कहाँ जाते हो
प्राण में रस है, अगर है देह में दाहें

हवा ने हिलमिल कहा तुम नहीं एकाकी
अनत बाँहें हँसी आँसू तुम्हारे साथी
विहँग ने फिर फिर पुकारा कहाँ जाते हो
खोल भुज आगे बुलातीं प्यार की छाँहें

मान-मनौती

राजेन्द्र किशोर

मेरा प्यार ब्याह का कंगन, मेरा मन सुहाग का टीका,
सच बतलाना, नहीं लगेगा इनके बिन क्या जीवन फीका ?

मधु की रात, नशे की बातें मेरे जीवन की परिभाषा,
सच बतलाना, और तुम्हारे जी की है कोई अभिलाषा ?

ला दूँगा सोने की बाली, लाल-जड़ा कानों का झुमका,
जैपुर का साटन का लँहगा, चोली का कपड़ा मथुरा का।

मेरी रानी ! कुछ तो समझो, मान-मनौती पीछे करना,
अपनी कटु-बातों की प्याली खारे जल से पीछे भरना।

माना मैं नासमझ भारी, समझ न पाता जी की बातें,
मगर रूठ जाऊँ यदि मैं भी काटोगी कैसे ये रातें ?

तुम चाहो यदि हो जाऊँ तैयार बाँध कर कपड़े-लत्ते,
ऐसी बरखा की रातों में अभी आज चल दूँ कलकत्ते।

सेज बनेगी कंटक-झाड़ी, आग बनेगी रितु बरखा की,
खूब रुलायेगी तब तुमको बात तुम्हारी सब इरखा की !

कह तो दिया, बना दूँगा पाँवों का भी गहना चाँदी का,
तुम्हें खबर क्या मेरे मन में हरदम जलता दीपक घी का !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महलों-मीनारों का देश : हैदराबाद

ईश्वरदत्त वर्मा

जिसे आन्ध्र जनता अपने सपनों के 'विशाल आन्ध्र' की राजधानी बनाना सोचती है ! जिसे दक्षिणी भारत अपनी सांस्कृतिक राजपीठ के रूप में देखने को आकुल है ! और जिसे भारत सरकार देश का एक प्रधान शिक्षण केन्द्र बनाने की कल्पना कर रही है। वही––

हैदराबाद दक्षिण भारत के सुन्दरतम नगरों में से एक है। साथ ही उसकी और भी विशेषतायें हैं। यही शायद कारण भी है कि वह देश के राजनैतिक, सांस्कृतिक और साम्प्रदायिक क्षेत्रों की चर्चा का विषय बना हुआ है।

हैदराबाद वास्तव में हैदराबाद खास, सिकन्दराबाद और गोलकुण्डा तीनों को मिलाकर होता है। तीनों के बीच विभाजक रेखा खींचना कठिन है। सिकन्दराबाद अँगरेजी जमाने में फ़ौजी छावनी था, और गोलकुण्डा प्राचीन इतिहास का फटा-पुराना पन्ना है जिसने चार-पाँच सदी पहिले तक जीवन के बड़े-बड़े जलवे और उलटफेर देखे हैं।

इस सम्पूर्ण हैदराबाद की आबादी प्रायः १८ लाख है और भरेपुरे बड़े-बड़े सरोवरों के कारण उसकी शोभा देखते ही बनती है। खास हैदराबाद नगर के बीच से मूसी नदी बहती चली गयी है। दोनों किनारों पर यहाँ से वहाँ तक नगर की बस्ती है और बीच-बीच में पुलों द्वारा दोनों कूलों को जोड़ दिया गया है। जगह-जगह दोनों ही ओर शानदार चमन हैं जहाँ सैर करने वालों के लिए सभी आधुनिक सुविधायें हाजिर हैं। साफ़, सुथरी, चौड़ी सड़कें; खुले रौनकदार बाजार; रंग-रंग के नागरिक; दुमँज़िली बसों और इन चमनों को देखकर कोई भी यात्री बाग़-बाग़ हुए बिना नहीं रहता। फिर, यहाँ वाले फूलों के ऐसे शौक़ीन हैं कि बाजारों और कूचों तक में हर पचीस क़दम पर गुलफ़रोश मिलते हैं।

हैदराबाद तेलुगु भाषा-भाषी क्षेत्र के मध्य में बसा है। इसलिए उसे तेलंगाना प्रदेश का ही भाग माना जाता है। आबादी भी अधिकतर तिलंगों और मुसलमानों की ही है। यद्यपि हर प्रान्त और प्रदेश के लोग वहाँ बसे हुए हैं मगर तिलंगों और मुसलमानों के बाद जनसंख्या के लिहाज़ से मराठे, कन्नड़ और हिन्दी भाषियों की ही गिनती होती है। इसी आधार पर वहाँ की बोलचाल की ज़बान प्रधान रूप से उर्दू और तेलुगु हैं।

भारत में दक्षिण अपने होटलों और जलपान-गृहों के लिए प्रसिद्ध है। हैदराबाद में भी जगह-जगह होटलों और रेस्तराँओं की भरमार है। किन्तु सब जगह चावल और निर्मितियें (ईडली, दोशा आदि) ही मिलेंगी ; चपाती के दर्शन भी दुर्लभ हैं। इन स्थानों के अतिरिक्त नगर में कितने ही सेंधी हाउस (ताड़ीखाने) हैं। ये काफ़ी-काफ़ी लम्बे-चौड़े रहते हैं। निम्न वर्ग की कमकर जनता की साँझ प्रायः यहाँ ही गुज़रती हैं। और यहाँ आने वाले ये लोग पुरुष ही नहीं होते, स्त्रियाँ भी बराबरी के हक़ से आती हैं। हाँ, इस नगर में साइकिल रिक्शाँ भी इतनी अधिक हैं कि भारत के किसी दूसरे नगर में न होंगी। इसीलिए शायद भाड़ा भी बेहद सस्ता है।

हैदराबाद में प्रमुख बाज़ारों के इलावा गण्डीपेठ, हिमायत सागर, गोलकुण्डा, चार मीनार, उस्मानिया हॉस्पिटल, फ़लकनुमा, किंग कोठी, उस्मानिया यूनिवर्सिटी, बाग़-ए-आम, और आसफ़िया लायब्रेरी आदि दर्शनीय स्थान हैं। पर इन सबसे कहीं अधिक दर्शनीय है सालारे-जंग म्यूज़ियम। यह संग्रहालय सचमुच इतना सुन्दर और सूचक है कि एक बार को महज़ इसी के लिए भी यहाँ आया जा सकता है।

चार मीनार सफ़ेद पत्थर की एक भव्य कला-कृति है जिसका निर्माण लगभग ३५० वर्ष पूर्व हुआ था। इसके पास ही तिब्बिया कॉलेज और मक्का मस्जिद हैं। यह कॉलेज इतना अप-टु-डेट है कि देश के अच्छे-अच्छे मेडिकल कॉलेजों की बराबरी कर सकता है। मक्का मस्जिद की आलीशान इमारत का यह नाम इस कारण पड़ा है कि इसकी एक दीवार में खुद मक्का शरीफ़ से लाये हुए एक पत्थर की स्थापना की गयी है।

उस्मानिया हॉस्पिटल, उस्मानिया यूनिवर्सिटी और आसफ़िया लायब्रेरी की सुन्दर और विशाल इमारतें सर्वथा आधुनिक प्रकार की हैं। यूनिवर्सिटी में उच्च से उच्च शिक्षा उर्दू के माध्यम से दी जाती है ; और आसफ़िया लायब्रेरी में विविध ही नहीं प्रायः सभी विषयों की पुस्तकों का भारी संग्रह है। अरबी-फ़ारसी पुस्तकों का तो इतना संग्रह भारत और आगे के पूर्वी देशों में कहीं नहीं है। और उनमें कितने ही ग्रन्थ तो अप्राप्य और अनमोल हैं।

बाग़े आम विशेषकर बच्चों के घूमन-फिरने और मनोरंजन के लिए बड़ा अच्छा स्थान है। यहाँ व्यवस्था है कि एक-दो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आना देकर ही बच्चे हाथी पर सवारी कर सकें। साथ ही, यहाँ का बड़ा आकर्षण 'ट्रॉफ़ी हाउस' है। इसमें भिन्न-भिन्न प्रकार के जंगली जानवरों की खालों में मसाला भरकर उन्हें शिकार की विविध मुद्राओं में एकदम सजीव रूप में सजा दिया गया है। बच्चे इन्हें देखकर आमोद ही नहीं शिक्षण भी पाते हैं।

हिमायत सागर और गण्डी पेठ दो मनोहर सरोवर हैं जो नगर से सिर्फ़ पाँचेक मील की दूरी पर हैं। इनका निर्माण मूसी नदी पर बाँध बनाकर किया गया है। दोनों के किनारे सुन्दर-सुन्दर चमन हैं। चाँदनी रातों में तो अक्सर वहाँ परिस्तान के नज़ारे झलक उठते हैं। फलकनुमा एक बड़े ठाठ-बाट की भारी भरकम इमारत है जो एक ऊँची पहाड़ी पर बनी है और गये ज़माने में जहाँ वाइसरॉय लोग ठहरा करते थे। यह फ़लकनुमा और किंग कोठी हैदराबाद की इमारतों में नाज़ हैं। यहाँ आकर कोई भी देख-समझ सकता है कि यहाँ रहने-बसने वालों का रहन-सहन सचमुच कैसी-कैसी विलासिताओं से भरा रहा है, और कि जनता के जीवन से उन लोगों का जीवन एक-दो नहीं बल्कि कई-कई धरती-आसमान के अन्तर पर था।

गोलकुण्डा एक तरह से हैदराबाद के आँचल में इतिहास की धरोहर है। जिस कोहेनूर हीरे का नाम इतिहास में बस गया है और जो एक से अधिक राजकुलों के उगते-ढलते दिनों का मूक पर प्रखर साक्षी है, वह यहीं की एक खान में निकला था। यहीं एक शानदार पहाड़ी पर वह प्रसिद्ध दुर्ग है जिसमें सात दरवाज़े और बावन खिड़कियाँ हैं। यहाँ ही उस हिस्से में, जो नया क़िला कहलाता है, हाथी पेड़ है जिसके घेरे की परिक्रमा पूरी करने के लिए लगभग पचास पग डग भरनी होती हैं। और तमाशा यह कि इस पेड़ का यह विराट् तना भीतर से खोखला है। अक्सर चार-चार पाँच-पाँच जन ऊपर चढ़कर एक छोटे-से मार्ग द्वारा भीतर उतर जाते हैं और ताश खेला करते हैं। विश्वास के साथ तो नहीं कहा जा सकता, पर शायद यह हाथी पेड़ धरती पर सब से मोटा पेड़ है।

आम कहावत है कि दिल्ली उजड़ी तो लखनऊ आबाद हुआ और लखनऊ बरबाद हुआ तो हैदराबाद पे नूर आया! बेशक कहावत है यह, पर है सच। बहरहाल, संस्कृति की दृष्टि से हैदराबाद अपना सानी नहीं रखता।

भाषा को ही लें। यहाँ की प्रधान भाषा उर्दू है। उर्दू जिस प्रदेश में पैदा हुई और फली-फूली वह दिल्ली, आगरे और लखनऊ का है। मगर हैदराबाद के शिक्षितों में पहुँच कर महसूस हुआ कि जो उर्दू यहाँ आम बोलचाल में रायज है उससे हम लोग कोसों दूर हैं। उदाहरण के लिए, पत्थर बट्टी बाज़ार की एक बड़ी ख़ुशनुमा इमारत पर ऊँट जितने बड़े अक्षरों में 'क़यामो तआम' लिखा हुआ है। समझ में ही न आया कि यह क्या बला है! पास पहुँचकर देखा: भीतर बड़ी चहल-पहल। खानेवालों के सामने रकाबियों पे रकाबियाँ चली आ रही हैं—ज़र्दा और फ़ालूदा और क्या न क्या! तब समझा, यह होटल है; और अन्दाज़ लगाया कि 'क़यामो तआम' अँगरेज़ी 'बोर्डिंग ऐण्ड लॉजिंग' का शुद्ध उर्दू रूपान्तर है। इसी तरह 'क्लर्क' को वहाँ 'मुन्तज़िम' कहते हैं, 'रूमाल' को 'दस्ती'— वग़ैरह।

परदे का हैदराबाद में बड़ी कड़ाई से पालन किया जाता है। मुस्लिम महिलायें यूँ ही बाहर नहीं निकलतीं, मगर कभी अगर निकलती भी हैं तो सिर से पैर तक बुर्क़ानशीन होकर। कभी-कभी इस सिलसिले में बड़ा तमाशा होता है वहाँ। क़ायदे से वहाँ रिक्शों में एक ही सवारी बैठ सकती है, लेकिन दो स्त्रियाँ या पति-पत्नी एक साथ बैठें तो रोक नहीं। और क्योंकि ट्रैफ़िक का सिपाही तक किसी हाल परदा उठाकर नहीं देख सकता, इसलिए अक्सर परदे के पीछे दो मर्द, या एक भीतर और दूसरा बाहिर बैठ जाते हैं और गन्तव्य स्थान पर जब सब देखते हैं तो अच्छा कहक़हा लगा करता है।

भारत के लगभग हर नगर में जगह-जगह बूचरखाने और मांस की दूकानें होना एक आम-सी बात है। मगर ऐसा शहर एक हैदराबाद ही है जहाँ जब तब बड़े-बड़े पोस्टर सरे बाज़ार निकलते हैं जिन पर लिखा रहता है कि फ़लाँ दिन, फ़लाँ वक्त, फ़लाँ जगह एक उम्दः ऊँट हलाल किया जायगा, जो साहबान उस लज़्ज़त के ख़रीदार हों वे पहुँच कर मश्कूर फ़रमायें।

और एक मज़ेदार चीज़ दिखेगी हैदराबाद में। यह आदम-क़द चहारदीवारी से घिरे खाली ज़मीन के जगह-जगह कुछ टुकड़े हैं। कल्पना कर सकते हैं किसलिए? इस्लाम धर्म की पवित्र पुस्तकों के फटे-टूटे-पुराने वरक़ यहाँ सुरक्षित और समाधिस्थ रखे जाते हैं ताकि वे इन्सान के पैरों तलों आकर या घरू उपयोग में ही

हैदराबाद की चार मीनार जहाँ से लोग चाँद-तारे देखा करते हैं

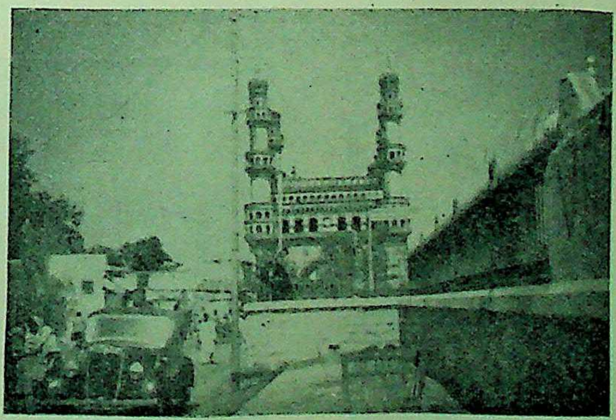

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाये जाकर बेइज़्ज़त न हों।

हैदराबाद भारतीय जातियों का भी एक अच्छा-खासा अजायब घर है। देश का कौन-सा भाग है जिसके लोग वहाँ दिखाई नहीं पड़ते। वहाँ पहुँचकर यह स्पष्ट समझ में आ जाता है कि देश में प्रधानतया दो रक्तों के लोग बसते हैं। एक उत्तर भारत में आर्यों के वंशज और दूसरे दक्षिण में द्रविड़ों के वंशज। उत्तर भारत में रहते भले ही बंगाली अपने को पंजाबी से एकदम अलग और भिन्न समझे और कहे भी; किन्तु यहाँ पहुँच कर यह भेद ही ऊपरी नहीं लगने लगता बल्कि उत्तर भारत से आये हिन्दू और मुसलमान का भेद भी काफ़ी हद तक महज़ काग़ज़ी ही रह जाता है। सचमुच, रहन-सहन और आपसी मेल-जोल में इतनी समानता और समरसता है!

हैदराबाद के नज़ारे में चार-चाँद लगा देने वाले सालारे जंग म्यूजियम की जानकारी के बिना तो हैदराबाद-यात्रा अधूरी-सी ही जान पड़ती है। इस म्यूजियम की अपनी एक कहानी है जो त्याग, सुरुचि और सुसंस्कृति का अद्भुत नमूना है। यह म्यूजियम एक ऐसे व्यक्ति का निजी संग्रहालय था जो आजीवन अविवाहित रहे और कला और शिल्प को ही जिन्होंने अपना जीवन-संगी बनाया था। उनका नाम था सालार जंग। ये अपने समय में राज्य के बहुत ही प्रतिष्ठित वज़ीर थे। कला, कलाकार और कलाविद् तीनों को ही उनके महल में सम्मान एवं गौरव प्राप्त था। उक्त म्यूजियम इन्हीं प्रवृत्तियों का साकार परिणाम था।

यह म्यूजियम ३० कमरों में बँटा है। जिनमें विभिन्न प्रकार की कलापूर्ण सामग्री सुसज्जित है। वैसे तो यहाँ की प्रत्येक वस्तु ही कलापूर्ण है किन्तु वहाँ कलाकार की शक्ति असाधारण हो उठती है जब वह इमली के अर्धबीज या साबित अण्डे की खोल पर अपनी विलक्षण कल्पनाओं को सत्य एवं सौन्दर्य के रूप में ढालता है। कला की कल्पना यहीं तक सीमित नहीं रह गई किन्तु इससे भी आगे वहाँ तक पहुँची है जहाँ साधारण कवि, लेखक या कलाकार अपनी प्रतिभा को मौन सा पाते हैं। वह सीमा है एक सद्य:स्नाता स्त्री की आदमकद पाषाण प्रतिमा, जिसे देखते ही दर्शक ठक-सा रह जाता है। इस प्रतिमा में एक ऐसी स्त्री का मुद्रांकन किया गया है जो स्नान करके भीगे कपड़ों में ही उठ खड़ी हुई है। देह से चिपका हुआ गीला कपड़ा कहीं-कहीं फूल गया है। साड़ी की परतों में से भीतर ही भीतर पानी की बूँदें नीचे की ओर ढुलक रही हैं और देह का समूचा सौन्दर्य उसी आवरण में से लजाता हुआ बाहर को फूटा पड़ रहा है। एक पाषाण-खण्ड के माध्यम से इतना सूक्ष्म और सजीव-चित्रण कर देना मामूली कलाकार का काम नहीं।

तो ये हैं कुछ अनमोल निधियाँ उस शान-शौकत वाले सालारे जंग म्यूजियम की। व्यक्तिगत संग्रहालय के रूप में जिसकी नींव पड़ी अपनी विशेषताओं के कारण जिसे राज्य में गौरव प्राप्त हुआ आज वही म्यूजियम अपने प्रकार का निराला और अनुपम शिल्प कला का प्रमुख केन्द्र बन गया है।

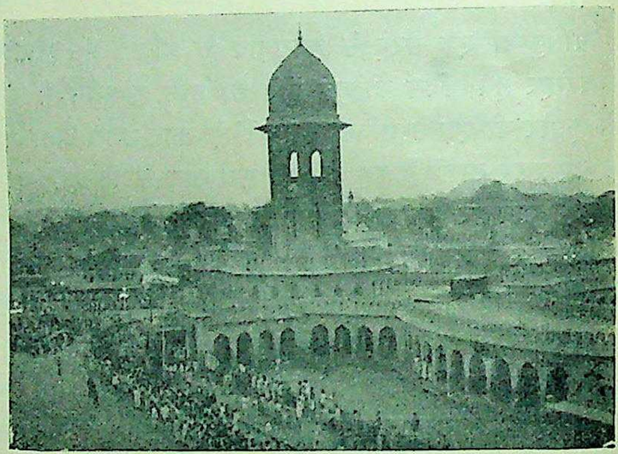

हैदराबाद का सबसे मशहूर बाजार : मुअज्जमशाही बाजार

निज़ाम सागर अर्थात् मानव-निर्मित अनुपम जल-विहार

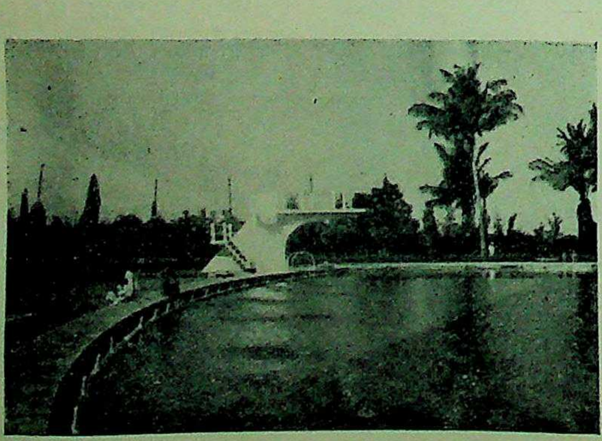

आसफ़िया लायब्रेरी : अरबी-फ़ारसी ग्रंथों का आगार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

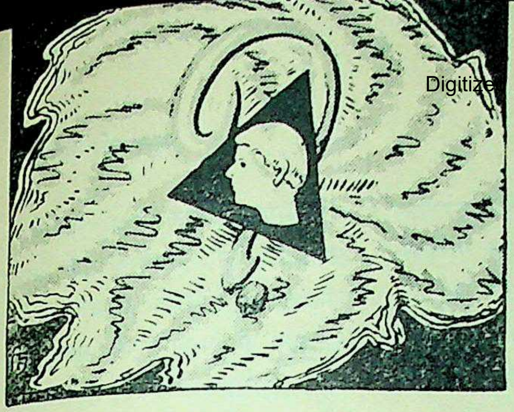

मन की कन्दरा

सन्हैयालाल ओझा, एम० ए०

सत्य यही है कि हिमाचल की कन्दरायें ऐसी दुर्गम पर साथ ही रोचक और आकर्षक नहीं हैं जैसी कि आपके, मेरे, सबके मन की ! कभी प्रवेश करना चाहा है इसमें आपने ? इस समय करें—

उस दिन संध्या को जब एक मित्र को सान्ध्य-भोजन के लिए निमन्त्रित करके, ठीक समय पर बुलाना ही भूल गया, तो स्वयम् मित्र ने ही कृपा करदी। डायरी में उस दिन के खाते में उनका नाम उन्हीं के सामने लिखा था, इसलिए वे बोले, कि भूलना तो शायद मेरे लिये सम्भव न था, किन्तु यह भी तो हो सकता है कि डायरी ही कहीं रखकर भूल जाऊँ। और डायरी मिल जाने पर भी यह कैसे ध्यान रह सकता है कि वस्तुतः निमन्त्रण का मैं कर्त्ता हूँ या कर्म ? अतः ठीक समय पर उन्हें बुलाने की अपेक्षा मैं ही उनके बुलाने की प्रतीक्षा करता रहा होऊँ। मुझे वे मित्र काफी अरसे से जानते हैं, मेरे बारे, में वे चाहे जैसा सोच सकते हैं, सोचने का उन्हें अधिकार है ; और जब उन्हें यह मालूम हो जायगा कि मैं मन की कन्दरा में प्रवेश करने का इरादा रख रहा हूँ, तो मेरी कुशल नहीं है।

असाध्य साधन तो है। यदि हिमालय की किसी कन्दरा में प्रवेश करने का विज्ञापन देता, तो मेरे बहुतेरे पाठक खुश होते। जिनको मेरे मस्तिष्क की इस शून्य कन्दरा का सबसे अधिक वजन उठाना पड़ता है, उन नातेदारों को प्रसन्न होने का भी सुयोग हो जाता ; किन्तु मन की कन्दरा में प्रवेश करने पर शरीर की नाजबरदारी तो उन्हें तब भी करना ही पड़ेगी, चाहे जितना मैं उन्हें कहूँ कि मन और शरीर की अद्वैतता सिद्ध करते-करते भारतीय 'दर्शन' स्वयम् इतना सूक्ष्म हो उठा है कि उसे 'श्रुति' के सिवा क्या कहकर सम्बोधन किया जाय, यही समझ में नहीं आता।

द्वैत और अद्वैत के झगड़े में बीच-बचाव करने का न मुझे अधिकार है, न लोभ ही। न न्याय-शास्त्र की कारिकाएँ पढ़ी हैं, न तर्क ही की , जहाँ अनुमान तो अनुमान, अभाव तक को प्रमाण माना जाता हो, उस अन्धेरगर्दी की बात मैं मान भी लूं, तो भी होश-हवास दुरुस्त रहते आप क्यों मानने लगे ? फिर द्वैत और अद्वैत में ही रस्साकशी हो तो कुछ समझने का प्रयत्न किया जाय, पर उधर कहीं से यदि दाल-भात में मूसरचन्द की तरह एक और 'विशिष्टाद्वैत' चाहे जब टाँग अड़ा दे, तो किसी भले आदमी को भूलकर गुमराह होते देर ही कितनी लगेगी ?

फिर भी आप का मन है कि मैं कुछ लिखूं ही, चाहे मेरा मन हो या न हो। और हो वह मन की बात। जब आपका मन है, और मेरा मन—यदि लिखने का नहीं है, तो भी है तो सही, तो वह कुछ तो है ही। मन तो नहीं करता, किन्तु तब भी लिखे जा रहा हूँ, अतः यह भी साफ़ है कि 'मन' और है, और 'मैं' और हूँ। यदि सच लिख गया तो ठीक है, लेकिन कहीं झूठ लिख गया तो 'आत्मा' कुरेदा करेगी—लीजिए, 'मन' और 'मैं' के दाल-भात में यह आत्मा का मूसरचन्द कहीं से और आ कूदा। दो गाँठ सुलझी ही न थी, यह तीसरी बुझगाँठ और लग गयी।

कदाचित् इसी मूसरचन्द की तीसरी-डायमेन्शन से घबरा कर शंकराचार्य ने 'एकोऽहम् द्वितीयोनास्ति' का या 'सर्वम् खल्विदम् ब्रह्म' का नारा बुलन्द करके सब अल्लम्-गल्लम् को मायावाद की सूली पर चढ़ा दिया था। मन्सूर भी 'अनलहक़' कहता-कहता खुद ही सूली पर चढ़ गया था, जो कुछ खुदी थी, वही खुदा की भेंट हो गयी।

मन की अँधेरी गुफा में कूद पड़ने की इच्छा होते हुए भी, सूली पर चढ़कर खुदी को खत्म करने का साहस अभी मुझमें नहीं है ; यद्यपि सौभाग्य के वरद और शालीन पुत्रों को मूर्तिमान् ऐश्वर्य की प्रतीक नव्य-भव्य कारों से उतर कर कलकत्ते के नये मार्केट में अप्सराओं की कमर में हाथ डाले मटरगश्ती करते देखकर इच्छा हो उठना स्वाभाविक है कि यदि मैं भी कह सकता 'तत्त्वमसि', और फिर इसी अधिकार से उसका स्थान खुद लेकर अपना स्थान उसे दे सकता, तो कितना अच्छा होता ! भिन्न-भिन्न कोटों की भिन्न-भिन्न जेबों की अनेकता को भ्रम मान कर पैसे के लिए यदि अपना हाथ किसी पड़ोसी की जेब में से किसी बटुये को निकाल ले तो इसमें फिर क्यों किसी को उज्र होगा ? और इतने पर भी यदि लाल-पगड़ी का कोई सफेद वर्दी वाला सिपाही हाथों के इस सहज लीला-विलास को भ्रम मानकर हाथों को कड़े पहना दे—क्या हर्ज है स्वर्ण के न होकर वे लोहे से निर्मित किये गये हों—तो उसके भ्रम ही को भ्रम न मान कर मैं क्यों कुपित हो जाऊँ ? भगवान् करे लोगों में जल्दी ही इतनी अकल फैल जाय। आपका तो यह ज्ञानोदय है, क्या इतना-सा ज्ञानोदय यह जनता में नहीं कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

> **आलोचक :** सचमुच सुन्दर है आपका यह पारिवारिक शब्द-कोष। कैसे, कितने समय में बना यह?
> **रचयिता :** कुछ नहीं, घर में कलह हुआ एक दिन और फिर एक के बाद एक शब्द आते चले गये।

सकता? जरा कोशिश कर देखिए न। कम-से-कम ज्ञानोदय का प्रचार तो हो ही जायगा।

इस कलियुग में ऐसी सुविधा शायद न होगी। विधाता ने तो भारतवर्ष में गणतन्त्र करार दे दिया है, जिसमें हर व्यक्ति की स्वतन्त्र सत्ता कानूनन स्वीकार कर ली गयी है। अद्वैतवाद के विरोध में खड़े अनेकवाद में तो देवताओं तक की संख्या तैंतीस करोड़ ही थी, उनको भी चुनौती देकर शंकराचार्य के भारतवर्ष ने सन् १९५१ में अपने यहाँ ३६ करोड़ व्यक्तियों के स्वतन्त्र अस्तित्व को कानूनन प्रतिस्थापित कर दिया। अतः अभी तो यही दिखाई देता है कि तानाशाही ही इस युग का अद्वैत के सबसे निकट का स्तंभ है।

सांख्य का पुरुष होने में भी मुझे कोई उज्र नहीं है, जिसके लिए समस्त प्रकृति सत्व संग्रह करती है, और कमल-पत्रवत् निर्लिप्त रहकर भी जो समस्त सत्त्व का उपभोग करता है। पर दुहाई है कपिल की, आज दर्शन छः तक ही सीमित नहीं रह गये कि उनकी गवाही को गणित के इस युग में कम-से-कम छठे भाग तक तो प्रामाणिक मान लिया जाय। फिर भी हकीकत चाहे जो हो, यह उपपत्ति ही कम लाभदायक नहीं दिखाई देती कि इस विराट् विश्व की समस्त तात्विकता को सत्, चित्, आनन्द के बलि के तीन पेंडों से ढँका जा सके। जिसका भौतिक अस्तित्व हो गया वह जड़ रूप सत्, चित् या चैतन्य के योग से वही द्रव्य हो गया जीव, और आनन्द के आविर्भाव से वही जीव हो गया सच्चिदानन्दमय परम-ब्रह्म। जीव और जड़ की सीमारेखा चैतन्य और जीव और ब्रह्म की सीमारेखा आनन्द—अब इस आनन्द की व्याख्या करने के लिए मुझे न कहिये। कलियुग में मेरा जन्म हुआ है, नाम का माहात्म्य मुझे पढ़ाया गया है; मैं किसी के प्रति दुर्विनीत नहीं होना चाहता। जड़ और ब्रह्म के बीच की कड़ी हूँ। चैतन्य मेरा सम्बल है, आनन्द मेरी मंजिल।

परन्तु यह बीसवीं शती है, भगवान् के पुत्र ईसा की, जो मनुष्य होकर इस दुनिया में तब आया, जबकि उसके प्रथम पूर्वज आदम और हव्वा को गुजरे हो चुके थे प्रायः चार हजार वर्ष; मन की परख को दर्शन की कसौटी पर खरा मानने के लिए वह तैयार नहीं है। जबकि प्राचीन काल में मन की लगाम दर्शन या धर्म के हाथ में थी, आज वह इसी की जीन की काँठ से अटका दी गयी है। अपनी शृंखल-उच्छृङ्खल वृत्तियों का विरोध करने वाले योग के यम-नियम-संयम-मय शासन को इसने विद्रोह करके समाप्त कर दिया; और यहाँ तक प्रचारित करने में उसे हिचकिचाहट नहीं है कि धर्म और दर्शन की दमनमय दमघोंटू हवा में बड़ी कठिनाई से उसके प्राण बच सके हैं और उसके आसन मनोविज्ञान को पनपने का मौका ही नहीं मिला। भला हो बेचारे फ्रायड का जिसने कि सदियों की गुलामी से मन को छुड़ाकर मनोविज्ञान के दृढ़ दुर्ग में मन की आधुनिक स्वतन्त्र सत्ता स्थापित की। गणतन्त्र के इस युग में मनोराज्य में भी इसकी धूम मची और विरोधी दल को भी इस शासन में जैसी मान्यता प्राप्त है, वह हम आगे देखेंगे।

पश्चिम की हवा में ही फ्रायड के एक पूर्वज अफलातून ने यह फतवा दे दिया था कि मन और शरीर दो पृथक् तत्त्व हैं, और इस पार्थक्य का मूल धार्मिक करार दे दिया गया। ईसाइयत के मूल में यही सिद्धान्त काम करता है; पूर्व में भी मन और शरीर की पृथक् संज्ञा मानी गयी; यद्यपि इस पार्थक्य में आत्मा की अविनश्वरता तथा देह की नश्वरता मान्य थी, किन्तु फिर भी इस पार्थक्य से उत्पन्न होने वाले परिमाणों पर पूर्व और पश्चिम में मतैक्य नहीं है। पाश्चात्य मतवाद में पाप का कर्त्ता यह आत्मा (Soul) है, और दिव्य-न्याय के अनुसार अनन्त यन्त्रणा या दिव्य-कृपा के अनुसार अनन्त-शान्ति का उपभोक्ता भी यही आत्मा है। पौर्वात्य मतानुसार आत्मा पाप-पुण्य, स्वर्ग-नर्क, ताप-शान्ति सब से परे है। पाप करता भी शरीर ही है और उसका फल भी उसी को भोगना पड़ता है। कर्मफल की व्याप्ति भी शरीर ही को सहन करनी पड़ती है, चाहे वह दूसरे ही जीवन में क्यों न चरितार्थ हो। देकार्ते के अनुयायियों ने तो इस पार्थक्य का चरम रूप स्वीकार किया कि मन और शरीर के बीच कुछ लेना-देना ही नहीं है।

इस युग में रहने और इस मान्यता की प्रतीति के साथ जीवन-निर्वाह करने का सुयोग हमें नहीं है। चाहे पाश्चात्य मतवाद का पोषण हो, या पौर्वात्य मतवाद का, अनुग्रह या विग्रह इस शरीर ही को भोगना पड़ता है; दण्ड-विधान में आत्मा को या आध्यात्मिकता को यदि कहीं स्थान है तो केवल शपथ लेने तक, जब कि रामायण या गीता या गंगाजल हाथ में थमा कर बयान या गवाही का श्रीगणेश करवाया जाता है। और जब भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी, ऊँच-नीच, भला-बुरा सब इस शरीर पर बीतता है, तो वजन उठाने के लिए कहीं आत्मा का पता भी नहीं लगता। भाई मन्नूलाल को मन मसोस कर सब सिर पर से गुजारना पड़ता है।

यूनिवर्सिटी के एक प्रोफेसर, शकल से बन्दर और दखल से फिलासफर, ने भाष्य किया कि आत्मा मनुष्य के जातीय-गुण का द्योतक है, जब कि मन उसके वैयक्तिक-गुण का। विवाद को मैं कोई बहुत बड़ा गुण नहीं मानता, स्कूल के दिनों में मैंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसीलिए कभी किसी वाद-विवाद में भाग लेकर इनाम नहीं पाया, और खासकर दार्शनिकों से तो मैं विवाद करता ही नहीं। 'जातीय' और 'वैयक्तिक' शब्द मेरे हैं, दार्शनिक-महोदय ने जो शब्द प्रयोग किये थे, वे हैं 'समष्टि' और 'व्यष्टि': यानी व्यक्ति का न्यस्त (Nucleus) मन, और समष्टि का आत्मा। यदि उन्हीं की बात सच हो तो साम्यवादियों का आत्मा का बहिष्कार कितना सच है, यह कौन जानता है?

पर आत्मा की बात तो मुझे कहना नहीं है। अगर आपके आत्मा है, तो आपको मुबारक; तय पर यह भी है कि वह आपके हाथ में मुतलक नहीं है। यों, मेरा मन भी वैसे कोई मेरे हाथ में नहीं है, पर हाथ तो मन के बस में है। आत्मा के बस में क्या है, यह आप जानें। और यदि आप इस लेख से ऊब गये हों तो मेरे हाथ को रोकने की ताकत या आपकी आँखों को आगे न जाने देने की ताकत आपको अपने मन से ही प्राप्त करनी पड़ेगी।

मन के इसी राज्य में मैं आपको ले चलना चाहता हूँ। बड़े खुफिया तरीके से ले चलना होगा। आँखों पर पट्टी बाँधने से कुछ न होगा, फिर भी आँखें आपको बन्द कर लेनी होंगी। खुली रहें भी, तो भी कुछ देखने की आपको सौगन्ध है। सहारे की आपको जरूरत नहीं है; क्योंकि सहारा यदि मिल गया तो सहारे को ही आप मंजिल समझ बैठेंगे। दार्शनिकों ने यही किया। इस बीहड़ अँधेरे में आँखें खोल कर भी वे कुछ देख न सके, जिस लकीर पर वे चल पड़े, उसी ने उन्हें फकीर कर दिया। अरस्तू ने कहा कि मन का केवल एक गुण है, सोचना; किन्तु सोचने के पूर्व मन कुछ है ही नहीं। सोचने से ही मानो सोचने की क्रिया के फलस्वरूप मन का निर्माण होता है। अतः कठिनाई यही उपस्थित होती है कि मुर्गी से अण्डा पैदा हुआ या अण्डे से मुर्गी। यानी मन से विचार बने, या विचार से मन? बहुत बाद में इमेन्युएल काण्ट ने तर्क उपस्थित किया था कि चूँकि मन का अपना कोई आकार होना चाहिए (चाहे उस आकार की संज्ञा 'निराकार' ही क्यों न हो) अतः वह वास्तव में जो कुछ है, उसे नहीं जान सकता। आप कुछ समझ पाये हों तो मुझे भी लिखिएगा; मैं तो कुछ समझा नहीं! दूसरे दार्शनिक डीन इंगे ने इसे समझाने का प्रयत्न किया है, पर और अधिक उलझा कर, घी का खाली बर्त्तन उलट कर उन्होंने प्रसन्नता से मान लिया 'घृताधारे पात्रम्'। सत्रहवीं शती का दार्शनिक देकार्त (Descartes) सारे ब्रह्माण्ड को 'प्रकृति' मानता है जो यन्त्र के अनुसार काम करने को बाध्य है। तदनुसार 'शरीर' भी प्रकृति का ही एक उपस्कर है, किन्तु मनसाराम की दो विशिष्ट-शक्तियों को देखकर वह भी उलझ गया। 'इच्छा' और 'वासना' ये किसी 'मशीन' के गुण नहीं हो सकते; ये तो वस्तुतः यंत्रकार के गुण हैं। वह कहता है कि मन कहीं मस्तिष्क में, शायद पीनियल ग्रंथि (Pineal Gland) में, ज्यामिति के निराकार 'बिन्दु' की भाँति आसन जमाये हुए इस शरीर-यंत्र को हाँकता रहता है। पर यह क्या सच हो सकता है? आज तो मेरा मन इस हाथ की लेखनी को कागज पर बेतहाशा हाँक रहा है, किन्तु यदि कल इसे लकवा मार जाये? और परसों, भगवान् जल्दी न करे, यदि कहीं इस शरीर की साँस निपट गई, तो कौन तो कहेगा उसे ड्राइवर, जब कि ड्राइव करने ही को कुछ न हो, और क्या होगा उसके उस ड्राइविंग लाइसेंस का?

स्पिनोज़ा ने मन और शरीर का झगड़ा ही निपटा दिया। वे कहते हैं, दोनों वस्तुतः एक ही वस्तु की दो परिणतियाँ हैं। शरीर, कार्य-कारण की शृंखला से बद्ध, मन स्वतन्त्र! जिसे कहा जाता है 'मनो-शारीरिक समानान्तरता' (Psychophysical Parallelism) शरीर के द्वारा मन की सत्ता व्यक्त होती है, 'मन' के द्वारा छोड़ दिये जाने पर शरीर न केवल व्यर्थ हो जाता है, अपितु उसकी सत्ता ही नष्ट कर देनी पड़ती है, जितनी जल्दी हो, उतनी ही उत्तम!

मतलब यह कि इन बड़ 'गौतमों' ने आँखों पर पट्टी बाँधकर 'चरैवेति' का पाठ शुरू किया, जिन्दगी भर चलते रहे, किन्तु जब पट्टी खोली तो देखा कि वे तो जहाँ से चले थे वहीं पर मौजूद हैं; और हाँकने वाले का तब भी पता नहीं। सारे दर्शन का तैल निकल गया, खाली खली ही खली चारों ओर बिखरी पड़ी थी। तब आस्ट्रिया के एक डॉक्टर ने देखा कि इन तिलों में तैल नहीं है। तर्कवाद (Rationalism) की लहर गुजर चुकी थी, प्रयोगवाद (Empiricism) की बयार चल रही थी। डॉक्टर का हाथ अपने ही मरीजों में रोग का कारण तलाश करते-करते, मन की नब्ज़ पर जा गिरा।

रोगों को दूर करने का बीड़ा उठाने वाले डॉक्टर को रोगों का क्षेत्र शरीर ही में तलाश करना पड़ता है, उनके कारणों के लिए भी वह ईश्वर, धर्म या प्रारब्ध के निकट नहीं जाता, भूत-प्रेतों को मानने का भी उसके पास चारा नहीं। बहरहाल उसे भौतिकवादी होना आवश्यक है; इसलिए हमारा यह डॉक्टर भी भौतिकवादी ही था, आगे चलकर तो हमें मानना पड़ेगा कि भौतिकवादी ही नहीं, यह हज़रत तो

प्रसन्न होकर राजा ने नये विदूषक को इनाम दिया तो पुराना उठा, "अन्नदाता, यह पाखण्डी है। यदि नहीं तो मैं जो बन्द आँखों करूँ यह खुली आँखों ही करे।"

सब ने माना।

और पुराना विदूषक उठा, दो मुट्ठी धूल लाया, और बन्द आँखों पर डालकर बोला, "अन्नदाता, अब यह खुली आँखों यही करें।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोगवादी भी हैं। शायद इसीलिए जवानी के जोश वाले उसे सदा ही सिर पर बिठाये फिरते हैं। शायद उसका नाम लिखने की जरूरत नहीं है; क्योंकि आप जानते हैं मेरा मतलब सिग्मण्ड फ्रायड से है। उसने रोगियों की उन बीमारियों का निरीक्षण किया, जिनका प्रत्यक्षतः शरीर से कोई सम्बन्ध नहीं है, और जो भूत-प्रेतों की बाधाओं के कारण उत्पन्न समझी जाती थीं। रोगी के विचित्र लगने वाले व्यवहार में उसे एक विलक्षण संगति दिखाई दी। उसी संगति की छानबीन करते-करते वह मन की दूरन्त गुहा में प्रवेश पा गया।

उसने पाया कि जो कुछ हम अपने वर्तमान रूप में हैं, वह तो मन की 'चेतन' (Conscious) अवस्था मात्र है, इसके पीछे एक बड़ा-भारी दूरन्त अँधेरा-क्षेत्र है, जिसको उसने नाम दिया 'अवचेतन' (Unconscious) मन। इस अवचेतन का प्राणी के जन्म से भी पहले से—गर्भाधान के भी पहले से—निर्मित होना प्रारम्भ हो जाता है, और उसकी समस्त क्रियाओं, भावनाओं, घटनाओं आदि को अपने पर्त्तों में लपेटता हुआ बनता चला जाता है। मनुष्य के कर्त्तव्य का मूल उत्स, उसने बताया, कि 'कामैषणा' (Libido) है, और यही वृत्ति उसे कार्य में प्रवृत्त करती है। उसे जीवन में कई उलझनों (Complexes) में से गुजरना पड़ता है, जो उसकी 'कामैषणा' की ही परिणतियाँ हैं। बचपन में उसे मातृ-रति (Odepus Complex) सताती है, फिर उसके बाद वह स्वरति (Narcicism) का शिकार होता है; किशोरावस्था को पार कर जब वह यौवन में प्रवेश पाता है, तो किसी नयी युवती की आँखों में उलझ जाना पसन्द करता है, और उसकी यह प्यास जीवन-भर नहीं बुझती। जिस दिन बुझ जाती है, उसका जीवन-दीप भी बुझ गया होता है। उसका व्यवहार इन विशेष परिस्थितियों की प्रतिक्रियाओं से निर्मित होता है, और उसके जीवन की वासनाएँ ही सिर उठाकर या सिर दबाकर उसके भविष्य का निर्माण करती हैं।

भौतिकवादी मन को शरीर से पृथक् नहीं मानता बल्कि उसे शरीर ही की एक क्रिया मानता है, जिसके योग से शरीर को सर्वांगीणता प्राप्त होती है। वह व्यक्ति का विशिष्ट गुण है, अतः व्यक्तित्व के विकास का सूत्र है, और मनोविज्ञान है उसका भाष्य। व्यावहारिक अर्थ में वह प्राणी की विशिष्ट परिस्थितियों में विशेष प्रकार के व्यवहार की प्रेरक-शक्ति है। इस शक्ति की केवल गुणात्मक प्रतीति हो सकती है, परिमाणात्मक नहीं। फिर भी अन्य शक्तियों की तरह इसकी प्रतीति में अंशात्मक अन्तर की गुंजायश नहीं है, यद्यपि भिन्न-भिन्न पात्रों में उसका भिन्नत्व प्रतिपादित होता है। वह उसका, उसीका विशिष्ट गुण है।

> **कक्षा में अर्थशास्त्र के प्रोफ़ेसर ने पूछा, "तो छह बच्चों के पिता और लखपती पिता में कौन अधिक सुखी होगा?"**
>
> **एक विद्यार्थी ने तत्काल उत्तर दिया, "छह बच्चों का पिता।"**
>
> **अचरज हुआ प्रोफ़ेसर को, "क्यों?"**
>
> **उसका उत्तर था, "क्योंकि लखपति पिता तो लाखों को बढ़ाने की चिन्ता में रहेगा।"**

इस संसार को समझने के मूल में दो ही प्रश्न पूछे जा सकते हैं: पहला, हम क्या जानते हैं? और दूसरा, उसे हम कैसे जानते हैं? पहले प्रश्न का उत्तर विज्ञान देता है, जो यथासम्भव एकदम निर्वैयक्तिक और अमानवीय (dehumanized) है। उसकी शोध खगोल और पदार्थ-शास्त्र से प्रारम्भ होती है, जो यह बतलाता है कि क्या बड़ा है और क्या सार्वजनिक है। इस शोध में जीव और मन का बड़ा क्षुद्र महत्व है, क्योंकि विश्व के विस्तार में अल्पत्व के कारण इनका कोई असर नहीं पड़ता। किन्तु दूसरे प्रश्न के उत्तर का सन्धान, कि उसे हम कैसे जानते हैं, हमारे लिये बड़ा महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह सीधा हमारे व्यक्तित्व से सम्बन्ध रखता है, उस व्यक्तित्व से जिसकी प्रतीति व्यक्ति के मन से ही सम्भव होती है। यदि आप का मन अपने बारे में ये बेसिर-पैर की बातें सुनकर हाथ से निकल न गया हो तो मैं आपको आपके व्यक्तित्व के निर्माण का कच्चा चिट्ठा सुना सकता हूँ। वह होगी वस्तुतः आप के मन की पोप-लीला का उच्छेद-मात्र। तो आइये, सुनिए। मनुष्य जब पैदा होता है, तो उसके व्यक्तित्व को आकार देने वाली मोम उसे विरासत में उसके माता-पिता द्वारा उसे मिल चुकी होती है, उस मोम का प्रकार, गुण आदि जानने के लिए हमें वंशानुक्रम-विज्ञान (Genetics) की शरण लेना पड़ेगी; किन्तु इस समय मैं आपको उस वर्जित-प्रदेश में ले जाने की आवश्यकता नहीं देखता; केवल इतना ही कह देना चाहता हूँ कि जिस समय मनुष्य जन्म लेता है, उसके व्यक्तित्व का मोम उसे मिल चुका होता है, उसके लचीलेपन का परिणाम, कि किस-किस प्रकार की आकृतियाँ निर्माण करने की उसमें सामर्थ्य है, यह उसकी आनुवंशिकता पर निर्भर करता है। जन्म के समय हर प्राणी को कुछ सहजात संस्कार मिलते हैं। विख्यात मानस-शास्त्री मैकडूगल का कथन है कि मानव-शिशु ऐसे १६ संस्कारों से व्युत्पन्न होता है—लेकिन आप इन्हें षोड़श संस्कार न समझ बैठियेगा! इन्हें सहजात कहना अधिक युक्तिसंगत होगा। ये संस्कार तीन प्रकार के गिनाये गये हैं; संचयात्मक (Preservative), उत्पादक (Procreative) और रक्षात्मक (Protective), क्षुधा, आश्चर्य, हास, पलायन, उद्धारण आदि पहली प्रकार के

(शेषांश पृष्ठ ५७ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूँछ का बाल

उर्फ़ : राजा बीरबल की कहानी

आनन्द प्रकाश जैन

उस दिन रहस्यमय सम्राट् अकबर की दाढ़ी पर गुलाबजल लगाते-लगाते जब नुसरत हज्जाम ने डरते हुए यह निवेदन किया कि वह तन्त्रमन्त्र की विद्या में पारंगत है, यहाँ तक कि आदमी को जीवित ही जन्नत में भेज सकता है, तो विद्वान् बादशाह को बड़ा कुतूहल हुआ।

बादशाह ने गम्भीर रहकर कहा, "नुसरत, हमारी इतनी बड़ी शहन्शाहियत में तेरे जैसा बुद्धिमान् मनुष्य और कोई नहीं है।"

थोड़ी ही दूरी पर रेशमी वस्त्र को प्रतीक्षा में लिए खड़ी लौंडी दाँतों में उँगली देकर हौले से मुस्कराई। शायद वह बादशाह के व्यंग्य को समझ रही थी।

हज्जाम ने कहा, "आलीजाह के मुँह से झरे फूलों को चुन लूँ। हज्जाम तो आखिर हज्जाम ही है। कौन नहीं जानता कि हुज़ूर की सलतनत में अक्ल जहाँ पहुँच कर दम तोड़ बैठी है, वह राजा साहब बीरबल हैं।"

अकबर उसी मुद्रा से बोला, "मालूम होता है कि जन्नत में तेरा कोई काम अटका हुआ है।"

नुसरत बोला, "हुज़ूर की उमर चांद-सितारों से बातें करे। इन खूबसूरत चमकती गेंदों के ऊपर, जन्नत की रंगीन चार-दीवारी के भीतर, हुज़ूर आलीजाह के पुरखों की रूहें तैर रही हैं। बेटे पर अपनी जान कुरबान कर देने वाले ग़ाज़ी बादशाह बाबर और खुदा की इबादत की राह में कुरबान हो जाने वाले ग़रीबपरवर बादशाह हुमायूँ की आत्माएँ रात दिन जहांपनाह की जान को सौ-सौ दुआएँ देती होंगी। इस विद्या को जानकर उनकी खैरियत का पता लगाने का ख्याल ही गुलाम के दिल में सबसे पहले उठा था। मगर सल्तनत के सबसे अधिक बुद्धिमान मनुष्य के अतिरिक्त और कोई इस विद्या को सीख कर जन्नत में कैसे पहुँच सकता है?"

बादशाह का दिल चाहा कि उसी वक्त हज्जाम का सिर धड़ से अलग करने का हुक्म दें। लेकिन वह ठण्डा करके खाता था। वह ठठा कर हँस पड़ा और नुसरत सहम कर बादशाह की ओर देखने लगा।

अकबर बादशाह किस समय विनोद को अपने हृदय में प्रश्रय देता था और किस समय क्रोध को इसका पता आज तक किसी को भी नहीं चल पाया था। नुसरत कोप के प्रहार से बाल-बाल बच गया। दाढ़ी बनाने का काम खत्म हुआ और उसने जल्दी-जल्दी अपना सामान बुकचे में बन्द करके तीन बार ज़मीन को चूमा। उसके जाने के बाद अकबर फिर एक बार जी खोल कर हँसा। लौंडी नज़रें नीची किए रेशमी वस्त्र और जल का पात्र लेकर आगे बढ़ी। सोने की तूँबी से उसने बादशाह के हाथों पर पानी डाल कर चपलता के साथ उन्हें पोंछा। बादशाह ने गुलाबजल से मुँह धोया। उसी समय कक्ष के बाहर खड़ी लौंडी ने सेवा में उपस्थित होकर विनयपूर्वक कहा, "जहाँपनाह, राजा साहब बीरबल, मिर्ज़ा राजा मानसिंह, हज़रत मुल्ला-दो-प्याज़ा और वज़ीर सदर अब्बुलफ़ज़ल साहब कदमबोसी चाहते हैं।"

"बहुत खूब!" अकबर इस समय अपने इन रत्नों का आगमन सुनकर प्रसन्न होता हुआ बोला, "हाज़िर किये जायें।"

सब लोगों ने कक्ष के भीतर आते ही तीन-तीन बार माथे तक हाथ ले जाकर गिराया। बादशाह के चेहरे की तरफ़ देखकर बीरबल ने कहा, "जहांपनाह, साफ़ हो गई।"

बादशाह ने घुटी हुई ठोढी पर हाथ फेरते हुए भृकुटी चढ़ा कर पूछा, "क्या साफ़ हो गयी, राजा साहब?"

राजा बीरबल ने कहा, "हुज़ूर, रीवां के राजा रामचन्द्र वाली बात साफ़ हो गयी...."

वज़ीर अब्बुलफ़ज़ल ने कहा, "हुज़ूर, बीच में दख़लअन्दाजी की माफ़ी चाहता हूँ, बात बिलकुल भी साफ़ नहीं है, बल्कि ज्यों-की-त्यों उलझी हुई है। तीन साल हो गये, रीवाँ का राजा हर बार अपने बेटों को खिराज अदा करने के लिए भेज देता है, मगर खुद कभी दरबार में नहीं आता। यह ठीक है कि हम लड़ाई नहीं चाहते, मगर इसका यह मतलब नहीं कि हमारे अधीन राजा हमें बराबरी तक का दरजा न दें। तीन साल के बाद राजा रामचन्द्र के खुद आगरे के दरबार में उपस्थित होने की बात थी, मगर वह इस चौथे साल भी नहीं आया...."

अब्बुलफ़ज़ल ने कमरे में बिछी हुई स्वच्छ चाँदनी के ऊपर अपने खंजर की मूठ की नोक से एक गहरी रेखा खींचते हुए कहा, .."अब रीवाँ नरेश मुग़ल दरबार के सम्मान के रास्ते में एक ऐसी लकीर बन गया है, जिसे मिटाये बिना शहंशाहियत की भाग्यरेखा को अपना बड़प्पन क़ायम रखना मुश्किल हो गया है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बादशाह ने अपने रत्न को प्रशंसा की निगाह से देखते हुए कहा, "खूब! मावदौलत ने युद्ध के पक्ष में फ़ज़ल साहब की दलीलों को सुना। आप क्या कहते हैं, राजा साहब?" अकबर का संकेत बीरबल की ओर था।

राजा बीरबल ने कहा, "जहांपनाह, इस अकिंचन का विचार है कि फ़ज़ल साहब ने जो रेखा इस बेशकीमती चांदनी के ऊपर खींच कर इसका बड़प्पन दिखाया है, वह इस रेखा को मिटाये बिना भी छोटा किया जा सकता है...." इसके बाद बीरबल ने लौंडी के हाथ से मोर की पंखी ली और उससे चाँदनी पर खिंची पहली रेखा के पास ही एक और बड़ी रेखा खींचते हुए बोले, "देखिये, जहांपनाह, फ़ज़ल साहब की खींची हुई युद्ध की लकीर मेरी शान्ति की लकीर से छोटी हो गयी...।"

अकबर जोश से चिल्लाया, "वाह, वाह! आपने कमाल की दलील दी है।"

राजा मानसिंह बोले, "अगर राजा साहब इसे व्यवहार में भी कर दिखाएँ, तो यह करिश्मा सचमुच में बहुत बड़ा माना जायगा।"

बीरबल ने कहा, "मैं राजा रामचन्द्र को मुग़ल दरबार में ले आऊँगा, अगर जहाँपनाह की ओर से यह आश्वासन प्राप्त हो सके कि उनका स्वागत एक अधीन राजा की तरह न होकर सम्मानित अतिथि की भाँति होगा।"

मुल्ला-दो-प्याज़ा चहके, "अजी, खुदा का नाम लो। राजा रामचन्द्र जैसा घमण्डी आदमी इस दुनिया के तख्ते पर दूसरा कोई हो सकता है यह शुबहे की बात है। वह आगरे में पैर रखने को भी हिमाकत समझता है।"

बादशाह ने कहा, "यह बात तो ठीक है। राजा रामचन्द्र का दिल मावदौलत की तरफ़ से साफ़ नहीं है। हम सारे हिन्दुस्तान को मिलाकर एक ऐसा आईना बनाना चाहते हैं, जिसमें विदेशी हमलावर अपनी सूरत देखते ही डर जायँ। हिन्दुस्तान के छोटे-छोटे राजाओं की अधीनता के बजाय साफ़-दिली की हमें ज्यादा ज़रूरत है। न हम अपने दिल में कोई घमण्ड रखना चाहते हैं, न अपने किसी दोस्त के दिल में अपनी ओर से कोई ग़लतफ़हमी चाहते हैं। अगर राजा रामचन्द्र हमारे दरबार में आने के लिए राजी हो जायँ, तो हम उनका खिराज माफ़ कर सकते हैं...मगर, राजा साहब, आजकल आगरे से बाहर कदम रखना आपके लिए खतरे से खाली नहीं है।"

राजा बीरबल ने कहा, "हुज़ूर, जब तक जहाँपनाह का हाथ मेरे सिर पर...."

"आप पुरानी बात दुहरा रहे हैं," बादशाह ने कहा। इसके बाद उन्होंने नुसरत वाली बात सबको सुनाते हुए कहा, "इससे जाहिर होता है कि कुछ सिरफिरे मौलवी हर कीमत पर आपकी जान लेना चाहते हैं। यहाँ तक कि वे बेवकूफ़ हमसे भी यह उम्मीद रखते हैं कि हम उनकी अन्धविश्वास से भरी बातों में आकर आपको अपने पुरखों की खबर लाने के लिए ज़िन्दा ही जन्नत भेज सकते हैं—नामाकूल कहीं के!"

"इसके अलावा," मुल्ला-दो-प्याज़ा ने कहा, "यह भी कतई गैरमुमकिन है कि राजा रामचन्द्र राजा बीरबल के समझाने-बुझाने से ही इनके साथ-साथ आगरे की तरफ़ चल देंगे। लातों का भूत बातों से नहीं मानता। अगर राजा साहब ने इस गैरमुमकिन को मुमकिन कर दिखाया, तो यह गुलाम अपनी दाढ़ी मुँड़वा देने के लिए तैयार है।"

राजा बीरबल बोले, "मैं हुज़ूर आलीजाह से निवेदन करता हूँ कि माननीय मुल्ला-दो-प्याज़ा की दाढ़ी को खास शाही हज्जाम के हाथों मूँड़े जाने का सौभाग्य प्रदान किया जाय।"

अकबर ने कहा, "मावदौलत को खेद है कि मुल्ला-दो-प्याज़ा की यह इच्छा पूरी नहीं की जा सकेगी, क्योंकि नुसरत हज्जाम का सिर आज ही कलम हो जाने के लिए फ़रमान जारी हो जायगा।"

"माफ़ करें, जहाँपनाह," राजा बीरबल ने कहा। "नुसरत हज्जाम ने सही कहा है। मैं उसकी विद्या सीख कर जन्नत से हुज़ूर के पुरखों की खबर ज़रूर लाऊँगा।"

बादशाह सलामत चौंके, "आप भी, राजा साहब! क्या आप भी इन मूर्खताओं में विश्वास रखते हैं?"

"जी, जहाँपनाह, रखता तो नहीं था, मगर अब देखता हूँ कि रखे बिना काम नहीं चलेगा। हुज़ूर जहाँपनाह मुझ नाचीज़ पर विश्वास रखें और नुसरत को कोई सज़ा देने से पहले मुझे स्वर्ग से वापस आ लेने दें।"

राजा मानसिंह ने कहा, "राजा साहब, आप बड़े मजेदार राजा साहब हैं, इसलिए हम आपको अकेले-अकेले जन्नत तशरीफ़ नहीं ले जाने देंगे।"

बीरबल बोले, "मुझे कोई एतराज़ न होता, मगर अफ़सोस कि जन्नत से अकेला बीरबल वापस आ सकता है, बाकी जो साथ जायगा वहीं पर रहने लगेगा।"

इस पर एक कहकहा लगा। राजा बीरबल ने फिर कहा, "जहाँपनाह, क्या यह सेवक एकान्त में कुछ निवेदन कर सकता है?"

"ज़रूर, ज़रूर," अकबर ने कहा। "सज्जनों, मावदौलत एकान्त चाहते हैं।"

फ़ौरन राजा बीरबल को छोड़ कर सब लोग बादशाह के सामने से हटकर कक्ष के बाहर चले गये। अब राजा बीरबल ने कहा, "हुज़ूर, जन्नत के रास्ते

नास्तिक था वह। देवी की मूर्ति देखते ही हँस पड़ा।

क्रोध से लोगों ने कारण पूछा तो बोला, "जुकाम होने पर दो हाथों द्वारा भी अपनी एक नाक से पार नहीं ले पाता मैं, यहाँ तो सौ मुख सौ नाक हैं और हाथ चार ही!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से ही मैं रीवाँ पहुँच सकता हूँ। अगर धरती के रास्ते से गया, तो धर्मान्ध शत्रु ज़रूर मुझे खोज निकालेंगे और पहचान लेंगे। अगर मैं रीवाँ के राजा साहब को आगरे न ले आऊँ, तो हजूर की सेवा में नहीं आऊँगा, और सचमुच जन्नत जा पहुँचूगा.... मगर ऐसा नहीं होगा। पहले जो थोड़ा बहुत अनिश्चय था, वह भी अब नहीं है।"

बहुत देर सलाह मशवरा करने के बाद आखिर अकबर बादशाह ने राजा बीरबल को जन्नत जाने की इजाजत दे दी।

शाम के समय तक सारे आगरे शहर में यह विचित्र अफ़वाह फैल गयी कि राजा बीरबल को नुसरत हज्जाम जन्नत में भेज रहा है और वह वहाँ से बादशाह के पुरखों का समाचार लायेंगे। सैकड़ों हज़ारों विरोधों के बावजूद, रोने चिल्लाने और हँसी ठट्ठे की उपेक्षा करते हुए, राजा बीरबल एक विशेष चिता पर बैठ कर स्वर्ग सिधार गये।

* * * *

तीन महीने बाद एक दिन सुबह ही सुबह, जब नुसरत हज्जाम अपने घर पर, बदन पर तेल मल-मल कर दण्ड पेल रहा था, उसकी बीबी भीतर आई और बोली, "मियाँ, दुनिया भिखारी से बादशाह हो गयी, मगर तुम यों-के-यों ही रहे। अगर इस तरह मौकों को हाथ से जाने दिया करोगे, तो सारी उमर हजामत बनाते ही बीतेगी।"

हज्जाम ने दण्ड पेलना रोक कर पूछा, "क्यों, क्या मुझे कोई बादशाहत का पैग़ाम देने आया है?"

"मुँह धो रखो," बीबी ने कहा। "एक-एक सीढ़ी चढ़ा जाता है। जो आदमी जहाँ होता है खुदा उसे वहीं बरकत देता है। बाहर एक बाल ख़रीदने वाला खड़ा है। तुम तो रोज़ लोगों की हजामत मूँड़ते हो। ज़रा बुला कर तो पूछो कि क्या भाव लेता है। सड़क पर न झाड़े घर पर उठा लाये। आदमी तिजारत से ही तरक्की कर सकता है।"

नुसरत मियाँ फ़ौरन् बाहर की तरफ़ लपके, तो देखते क्या हैं कि एक बहुत बूढा आदमी गली में आवाज़ लगा रहा है, "कोई बाल बेचो बाल!"

न जाने कम्बख्त सूअर के बाल ख़रीदता है या आदमी के? नुसरत मियाँ ने दो पल दाढ़ी खुजाई इसके बाद आवाज़ दे ही तो बैठे: "ओ मियाँ बाल ख़रीदने वाले... ज़रा यहाँ आना तो।"

बूढ़ा जब पास आगया, तो बोला, "अरे, आप तो शाही हज्जाम हैं।"

नुसरत मियाँ ने अकड़कर अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरा। बोले, "कैसे पहचाना?"

"ए लो, सुनो इनकी बातें। मियाँ, तिजारत करते हैं, कोई घास नहीं बेचते। बाल ख़रीदने का पेशा है, तो बाल काटनेवालों को नहीं पहचानेंगे? लाओ, है कुछ माल?" बूढ़े ने पूछा।

नुसरत मियाँ ने कहा, "इस वक्त तो नहीं है, मगर कल से होने लगेंगे। तुम बताओ क्या सेर के भाव ख़रीदते हो?"

बूढ़ा खिलखिला कर हँसा। "मियाँ, मज़ाक करते हो। कहीं बाल भी अनाज की तरह सेरों के भाव ख़रीदे जाते हैं। हम तो छँटवा बाल ख़रीद करने वालों में से हैं, और एक-एक बाल की गिन कर कीमत देते हैं।"

हज्जाम की हालत सुनते ही बुरी हो गयी। वह आश्चर्य से बूढ़े का मुँह ताकने लगे। "एक-एक बाल की कीमत। यह कैसे मुमकिन है?"

बूढ़े ने कहा, "मियाँ, तुम कुएँ के मेंढक मालूम होते हो। तुम्हें क्या पता कि बालों की क्या-क्या कीमतें होतीं हैं। अब यही लो, अगर तुम कहीं से बादशाह बाबर का एक बाल भी ला सको, तो बन्दा यहीं खड़े-खड़े एक हज़ार टंका कीमत दे सकता है। किसी चीज़ की कीमत होती ही इस बात की है कि वह कितनी मुश्किल और दिक्कत से मिल सकती है।"

उनकी बातें सुन-सुन कर आसपास के लोग इकट्ठे होने शुरू हो गये थे, इसलिए नुसरत मियाँ ने बूढ़े को भीतर आने का इशारा किया और घर में ले जाकर, एक चारपाई पर दरी बिछा कर उसे बैठाते हुए बोले, "भला, बड़े मियाँ, इतनी कीमत देकर बादशाह बाबर के बाल का कोई करेगा क्या?"

बीबी, जो दरवाज़े की ओट में खड़ी सब सुन रही थी, मियाँ की इस बेबात की हुज्जत पर मन-ही-मन पेंचताव खा रही थी। वहीं से बुरका खींचते हुए बोली, "ए मियाँ, तुम्हें इन बातों से मतलब क्या, कोई कुछ भी करे। न हो बादशाह अकबर उसे छाती से चिपका कर ही सो जायँ! मरहूम बादशाह बाबर की पाक हस्ती की कोई भी चीज़ उतनी ही पाक होगी।"

बूढ़े ने कहा, "मियाँ, माफ़ करना, तुम से तुम्हारी बीबी ज्यादा अकलमन्द मालूम होती है।"

नुसरत मियाँ बीबी की तरफ़ मुड़ कर तुनकते हुए बोले, "ए, तुम जाकर बड़े मियाँ के लिए शरबत बना लाओ....हाँ तो बड़े मियाँ, अगर मैं बादशाह अकबर के बाल आपको लादूँ, तो आप क्या कीमत देंगे?"

बड़े मियाँ अपनी सफ़ेद दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए बोले, "मियाँ, तुम तो समझ कर भी नहीं समझे। जो चीज़ आसानी से मिल सकती है, उसकी कीमत

(शेषांश पृष्ठ ५६ पर)

राजा भोज की राजधानी में सभी संस्कृत बोलते थे। एक चतुर अपढ़ भी पहुँचे। पानी भरते लुटिया कुएँ में गिर गयी तो बोले: कुष्टिका में लुष्टिका गिरिष्टिका, कोउ धर्मिष्टिका निकृष्टिका का?

सब हँसने लगे। राजा ने लुटिया निकलवा दी और उनकी शिक्षा की व्यवस्था करदी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामचन्द्र तिवारी - सिद्धि तिवारी

दुनिया मृत्यु से डरती आयी है। कितनों ने कभी रुक कर उसके बारे में सोचा भी? यहाँ उसी कमी को पूरा करने की एक सरस और सबल चेष्टा है।

जगत में ज़ीवन है और जीवन के साथ मृत्यु। मृत्यु जीवन के आगे है, पीछे है, अगल-बगल है, चारों ओर है, और जीवन है कि इस मृत्यु के सागर में कमल के फूल की भाँति खिला हुआ है।

यह मृत्यु क्या है? एक अनिश्चितता है, अरूपता है। नकारता है। जगत में निश्चितता अनिश्चितता से घिरी है। सरूपता अरूपता से घिरी है। सकारता नकारता से घिरी है। निश्चितता, सरूपता और सकारता द्वीप हैं, जो मृत्यु के शान्त-सागर के बीच बनते-बिगड़ते रहते हैं।

नकारता का जो सिन्धु हमारे चारों ओर है उससे न हमें आशंका है और न उसमें हमारी रुचि ही है। हमारी रुचि है नकारता के उस तट में जो जीवन का स्पर्श करता है। जो जीवन के अन्त से आरम्भ होता है। जिसे हम मौत कहते हैं।

जीवन का आधार शरीर है। शरीर एक संगठन है। जीवन एक गतिशील संगठन है। मृत्यु उसकी गति का अवसान है। मृत्यु के पश्चात् विघटन आरम्भ होता है।

जीवन पकड़ में नहीं आता। समझ में नहीं आता। वह भावनात्मक है। पर शरीर पकड़ में आता है। इसलिए उसके समझ पाने की सम्भावनाएँ अधिक हैं। हम शरीर को जाँचते-पड़तालते हैं। उसकी क्रियाएँ-प्रतिक्रियाएँ समझते हैं और इस प्रकार जो समझ मिलती है, उसमें जीवन को बूझने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु इस समय हम जीवन को नहीं, मृत्यु को समझना चाहते हैं। बात सरल प्रतीत होती है। जीवन जब नहीं रहता, तो मौत होती है। मौत आती है तो थल का विशालतम जन्तु हाथी भी न चल सकता है न फिर सकता है। वह उठ भी नहीं सकता, उसमें न उठने की शक्ति होती है, न इच्छा ही होती है। जल में हाथी से कई गुना बड़ा जन्तु होता है ह्वेल। वह भी मृत्यु के विरुद्ध हाथी से अधिक सफलता नहीं प्राप्त कर पाता। जब मौत आती है तो उसे मरना होता है। वन का राजा सिंह है। वन में यदि एक बार, तो काव्य में सहस्र बार, उसकी दहाड़ से सिन्धुर-समूह काँपता है। वह भी पचीस-तीस वर्ष से अधिक मृत्यु को दूर नहीं रख सकता। और तो और, मनुष्य है जो ह्वेल का शिकार करता है। सिंह को पिंजड़े में रखता है और हाथी को पालता है। हाँ, वही मनुष्य, वह भी मृत्यु के सामने झुक जाता है।

यह तो बड़े-बड़ों की बात हुई। वे मरते हैं और लाश छोड़ जाते हैं। इधर छोटे हैं। लघु, अत्यन्त लघु हैं। वे भी मरते हैं पर लाश पीछे छोड़ जाने का अधिकार जैसे उन्हें प्राप्त नहीं है। अमीबा पानी में रहता है उसका शरीर इतना छोटा है कि एक पिन के सिरे पर २०० अमीबे आराम से विश्राम कर सकते हैं। इस अमीबे की भी मौत आती है। वह जब आती है तो वह उसके साथ एक विचित्र खेल करती है। वह अमीबे को बीच में से तोड़ देती है। इस प्रकार उत्पन्न दोनों भाग अलग-अलग पूर्ण अमीबे बन जाते हैं। मातृ अमीबा का व्यक्तित्व ही नहीं शरीर भी गायब हो जाता है। निश्चय ही यह विचित्र मौत है जो नवजीवन का आधार बन जाती है।

शरीर जीवित कोठों के बने हैं। अमीबे के शरीर में एक ही कोठा होता है और मनुष्य के शरीर में ३०० खरब कोठों से भी अधिक होते हैं। शरीर के ये कोठे उसी प्रकार उत्पन्न होते हैं जिस प्रकार एक अमीबा विभाजित होकर दो नये अमीबों को जन्म देता है। हमारा शरीर इन कोठों का संगठन है। शरीर में तरह-तरह के कोठे हैं, और उनके तरह-तरह के काम हैं। अस्थियों के कोठे शरीर को साधते हैं। पेशियों के कोठे शरीर के विभिन्न अवयव बनाते हैं। ज्ञान तन्तुओं के कोठे शरीर के कोने-कोने को चेतना देते हैं। रक्त के श्वेत कोठे शत्रुओं से लोहा लेते हैं और लाल कोठे शुद्ध प्राणवायु (आक्सीजन) लेकर शरीर के प्रत्येक भाग को पहुँचाते हैं। शरीर में सहस्रों प्रकार के काम हैं और सहस्रों प्रकार के कोठे हैं। शरीर की रचना जटिल है। इन कोठों की क्रिया-प्रणाली भी कम जटिल नहीं।

हम शरीर को मोटे तौर से देखते हैं। लगता है कि प्रत्येक कोठे को ज्ञात है कि उसे अपना काम कब आरम्भ करना है और कब समाप्त कर देना है। कोठों की आँखें नहीं हैं। वे सुन भी नहीं सकते। तो कोठों को आज्ञा कौन देता है? उनका नियन्त्रण कौन करता है?

जीवितों का एक महत्वपूर्ण गुण है। परिस्थिति के प्रति प्रतिक्रिया। हम ठण्ड से काँपने लगते हैं। तीव्र प्रकाश में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आँखें बन्द हो जाती हैं। गर्मी से दूर हट जाते हैं। जब खाने की वस्तु देखते हैं तो मुँह में लार बनने लगती है। परिस्थिति के प्रति प्रतिक्रिया करने की शक्ति हम में ही नहीं है, हमारे शरीर के कोठे-कोठे में हैं। शरीर में कोठों के विभिन्न समूह अत्यन्त अल्प मात्रा में कुछ रसायनिक पदार्थ उत्पन्न करते हैं। यह पदार्थ शरीर में घूमनेवाले तरलों के साथ जब किसी विशेष अवयव के कोठों के सम्पर्क में आते हैं तो वे कोठे एक निश्चित कर्त्तव्य का पालन करने लगते हैं। भाँति-भाँति के रसायनिक पदार्थों के प्रति भाँति-भाँति की प्रतिक्रियायें विभिन्न अवयव करते हैं। ये प्रतिक्रियायें एक दूसरे से ऐसी गुँथी हुई हैं कि उनसे शरीर की सम्पूर्णता सम्पादित होती है। हमारे शरीर की कार्य-प्रणाली में इन प्रतिक्रियाओं का महत्त्व सबसे ऊँचा है।

हाँ, तो मृत्यु अनिवार्य है। प्रकृति ने उसकी व्यवस्था की है। मृत्यु का प्रकृत रूप क्या है? पलँग पर लेटकर एड़ियाँ रगड़ते हुए मरने का आविष्कार मनुष्य ने किया है। प्रकृति ने असंख्य जीवों के लिए पलँग की व्यवस्था नहीं की है। प्रकृति पलँग से घबराती है। कहा जा सकता है कि जो पलँग पर दम तोड़ता है वह प्रकृति से कट जाता है। प्रकृति जीवों को पलँग तक पहुँचने का अवसर नहीं देती। उसकी अपनी व्यवस्था है। वह घासपात बनाती है पर सूख कर उन्हें बेकार नहीं जाने देना चाहती। उसका किया हुआ यह निर्माण आगे भी काम में आये इसलिए उसने शाकाहारी मृगवृन्द की रचना की है। पौधे जिस प्रकार मिट्टी-पानी से अपना शरीर बना लेते हैं उस प्रकार हिरन अपना शरीर मिट्टी-पानी से नहीं बना सकते। जो घास ने बना लिया है उसी के आधार पर उनके माँस की रचना होती है। प्रकृति ने व्यवस्था की है कि पौधे सूखने और सड़ने से पहले ही मृग आदि जन्तुओं के आहार बन जाएँ। इन जन्तुओं में प्रकृति ने जो निर्माण किया है उसे भी वह

"मृत्यु-दूत"
आचार्य गगनेन्द्रनाथ ठाकुर की कल्पना

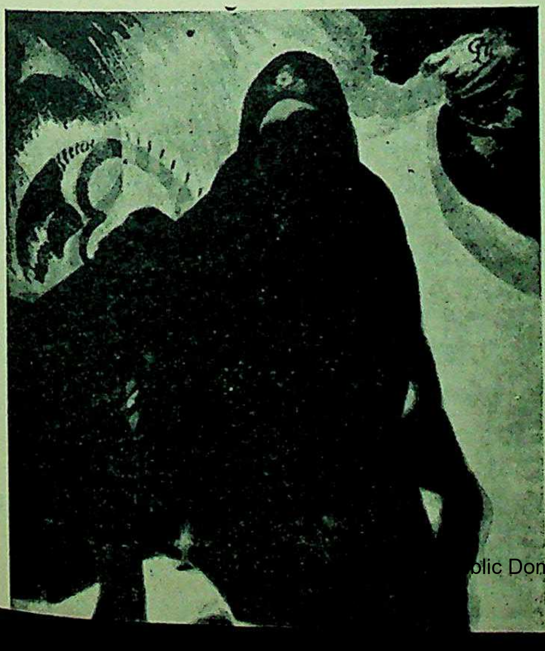

व्यर्थ नष्ट होकर आरम्भिक मूल तत्वों में नहीं मिलने देना चाहती। वह उन्हें सिंहादि मांसाहारी पशुओं के भोजन के रूप में उपयोग करती है। पौधे हैं। हिरन हैं और सिंह हैं। हिरन पौधे को खाता है और सिंह हिरन को खाता है। पौधे की मृत्यु हिरन के रूप में आती है और हिरन की मृत्यु सिंह के रूप में। पौधा अचर है इसलिए उसकी रक्षा भाग्य करता है। हिरन चर है इसलिए वह भाग कर अपनी रक्षा आप करता है। जब उसकी शारीरिक शक्ति क्षीण होने लगती है और वह अधिकतर दशाओं में अपनी रक्षा की सामर्थ्य नहीं रखता, तो सिंहादि का शिकार बन जाता है। उसकी मृत्यु दुर्घटना से होती है।

मृत्यु का यही स्वरूप (दुर्घटना) प्रकृति ने बनाया है। एक जीव मरे तो उसका शरीर दूसरे जीव के काम आ जाय, ऐसी व्यवस्था करने से वह कहीं चूकी नहीं है। वह घोर यत्न से बनाये हुए शरीर पदार्थ के एक कण को भी व्यर्थ नहीं जाने देना चाहती। सिंह का कोई शत्रु नहीं है। पर वनराज भी जब मरता है तो उसके शरीर का उपयोग करने के लिए अनेक पक्षी और लघु-लघु कीट एकत्र हो जाते हैं।

प्रकृति ने मनुष्य में एक नवीन परीक्षण किया है। उसमें मस्तिष्क का विकास करके उसे खुल खेलने की छुट्टी दे दी है। मनुष्य ने प्रयत्न किया है कि वह प्रकृति की इस व्यवस्था से मुक्ति प्राप्त करे। उसने आयुध बनाये हैं और हिंस्रक पशुओं पर विजय प्राप्त करके अपने को उनसे सुरक्षित कर लिया है। पर प्रकृति की व्यवस्था कच्ची व्यवस्था नहीं है। बड़े जन्तुओं से मनुष्य बच सकता है पर जब अत्यन्त लघु जन्तु उस पर कोपते हैं तो कुछ दिन पहले तक उससे कुछ करते-धरते नहीं बन पड़ता था। हैजा और प्लेग के जीवाणु उस पर झपटते थे तो गाँव के गाँव खाली कर देते थे। क्षय, मलेरिया आदि अनेक रोग हैं जो प्रकृति की उस व्यवस्था के अन्तर्गत होते हैं। मनुष्य का चिकित्सा-शास्त्र उन पर विजय पाने के लिए जूझ रहा है।

तो एड़ी रगड़ कर मनुष्य जब पलँग पर मरता है तो पलँग पर भी उसकी मृत्यु बहुधा दूसरे जीवों के आक्रमण के कारण होती है। दुर्घटना से होती है। ऐसी मृत्यु जिसमें दुर्घटना का अंश लेश मात्र भी न हो लाखों में एक मिलेगी। अब देखें कि ऐसी मौत का स्वरूप क्या है?

मनुष्य के शरीर में खरबों कोठे हैं और वे अलग-अलग जीते हैं। मनुष्य की मौत आती है तो एक मौत नहीं, खरबों मौतें आती हैं। मनुष्य एक मौत नहीं, खरबों मौत मरता है। मनुष्य की मौत का आरम्भ कहीं से हो, पर उसका अन्त हृदय की क्रिया रुकने में होता है। जब तक हृदय धड़कता है, मनुष्य

(शेषांश पृष्ठ ६२ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक चेकोस्लोवैकियन कवितायें

सुरेन्द्र कुमार दीक्षित

क्या करूँ

पी० क्रिक

मैं नहीं इस योग्य हूँ
पाऊँ तुम्हारा प्यार पावन।
गल्तियों औ' पाप के हैं
बन चुके ये प्राण वाहन!

विश्वासों भरी इस दृष्टि से
मैं काँप उठता, यों न हेरो!
क्या तुम्हें दूँगा कि जिससे
कर घृणा तुम मुँह न फेरो?

शक्ति काफ़ी है? रहूँगा
दृढ़ कभी विश्वास पर मैं?
दे सकूँगा क्या सहारा
ज़िन्दगी की राह पर मैं?

दायित्व क्या लूँगा उठा
जिसको दिया है प्यार ने?
क्योंकर सँभालूँ हाय सुख
कमज़ोर अपने हाथ में?

अजब खुशियों-भरी घबराहट
घिरी, मैं क्या करूँ?
सिवा इसके — आस्था
प्रभु कृपा में, तुम में धरूँ!

सामने का दृश्य

वी० ज़ेवादा

एक तरु,
फैला हुआ मैदान;
और उस पर जहाज़ों-से तैरते हैं सफ़ेद मकान।
ढेर मिट्टी के अनेकों—
बादलों की चमकवाली सफ़ेदी ने
क्षितिज के नीचे ढकेली पीत-चट्टानें।
द्वार पर दिन के
अन्तिम बूँद तक
पीड़ा में हमारी जम गई बनकर रवे।
और सन्ध्या में
यह प्रकाशित मूर्त्तियों का वन
एक दैत्याकार सिलहुत!
इतिहास से
प्रतिध्वनित एक प्रतीक यह,
ज्यों सिन्धु से प्रतिध्वनित कंकड़ तीर के।
शंख के स्वर सा
उदासी से घिरा, निज में खिंचा
दूर से अति दूर तक,
एक दुखमय प्रार्थना में
ऊर्ध्वगामी औ लपट-सा
दहकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिवगंत पराड़कर जी

लक्ष्मीशंकर व्यास, एम० ए०

१२ जनवरी १९५५ और प्रातःकाल ३॥ बजे का समय। खाँसी के वेग ने पराड़करजी की निद्रा भंग की। इसी समय कुछ गर्मी भी उन्हें मालूम हुई। हिचकी आने लगी और उन्हें प्रतीत हुआ जैसे उल्टी हो जायगी। इसी उपक्रम में एक जोर की हिचकी आयी और पण्डितजी चिर निद्रा में निमग्न हो गये। बहत्तर वर्ष के उनके साधना एवं संघर्ष रत जीवन का दीप बुझ गया। पर आलोकित कर गया देश को और देश की लक्ष-लक्ष जनता के मन को!

विगत पचास वर्षों से पराड़करजी ने हिन्दी संसार की जो सतत् सेवाएँ की हैं, वे किसी से छिपी नहीं। और उनके जीवन का अन्तिम कार्य भी हिन्दी की अभिवृद्धि एवं उत्थान से ही सम्बन्ध रखता है। अपनी मृत्यु के पाँच घण्टे पूर्व उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी को पत्र लिखकर एक दाक्षिणाय छात्र को हिन्दी में अनुसन्धान की सुविधा प्रदान करने की बात लिखी थी। इस प्रकार जहाँ पराड़करजी का समस्त जीवन ही हिन्दी के अभ्युत्थान-उत्कर्ष की कहानी से सम्बद्ध है वहीं देश के स्वाधीनता संग्राम से भी है उतना ही घनिष्ठ और सन्निकट। पराड़करजी बीसवीं-शती के प्रारम्भ में कार्यक्षेत्र में उतरे और पिछले ५४ वर्षों तक देश, समाज और हिन्दी भाषा एवं साहित्य की सेवा करते रहे। वस्तुतः देश में क्रान्ति एवं अनेकानेक युग-परिवर्तनों के स्रष्टा और द्रष्टा पराड़करजी राष्ट्र की विभूतियों में प्रमुख रहे हैं। विचारों द्वारा देश में जिन महापुरुषों ने नवजागरण और राष्ट्रीय-चेतना का स्फुरण किया उनमें पराड़करजी का विशिष्ट स्थान है। आपने ही राष्ट्रभाषा हिन्दी के समाचार-पत्रों का मार्ग-दर्शन कर उनका मापदण्ड स्थिर किया और उनकी रूपरेखा बनायी।

जीवन की रूपरेखा

आज से ७२ वर्ष पूर्व सन् १८८३ ईस्वी की १५ नवम्बर को पराड़करजी का जन्म काशी के महाराष्ट्रीय ब्राह्मण परिवार में हुआ। आपके पिता का नाम पण्डित विष्णु शास्त्री था जो संस्कृत के विद्वान थे और थे सरकारी स्कूल में हेड पण्डित। बालक पराड़कर की प्रारम्भिक शिक्षा काशी की वैदिक एवं संस्कृत पाठशाला में हुई। वेदांग अध्ययन के बाद विधिवत् वेदाध्ययन का क्रम चला। पिता की बदली हो जाने के कारण इन्हें छपरा जाना पड़ा और अंग्रेज़ी का अक्षरारम्भ यहीं हुआ। एक वर्ष बाद ही पिताजी की अन्यत्र बदली हो गयी और उन्होंने परिवार को पुनः काशी पहुँचा दिया। पराड़करजी अपने माता तथा भाई-बहिनों के साथ रहने लगे। अध्ययन का क्रम यहाँ भी चलने लगा।

बचपन के इन्हीं दिनों का एक संस्मरण पिछले वर्ष मुझे पण्डितजी ने सुनाया जो उनकी महत्ता का द्योतक है। वह इस प्रकार है—बचपन में मेरा साथ कुछ कबूतरबाजों से हो गया। वे मुझे भी पैसा लाने के लिए कहते। पर मेरे पास पैसे कहाँ रखे थे। उधर कबूतर उड़ानेवालों का तकाज़ा बराबर जारी था। अन्त में एक दिन मैंने माताजी की सोने की अँगूठी उठा ली। अँगूठी स्वर्णकार के यहाँ बेची गयी और कबूतरबाज साथियों के लिए पैसे का इन्तजाम हो गया। संयोग ऐसा हुआ कि दो-चार दिन में ही उनकी माता ने अँगूठी की खोज की और बाद में सब रहस्य खुला। अँगूठी रुपये देकर स्वर्णकार के यहाँ से प्राप्त करली गयी। माता ने यह घटना पिताजी के पास लिख भेजी। एक दिन पिताजी छुट्टी लेकर काशी आये और मुझे अपने साथ भागलपुर ले गये।

इसी प्रसंग में पण्डितजी ने बताया कि मेरे पिताजी ने उक्त घटना के अवसर पर मुझे मारा-पीटा अथवा डाँटा-फटकारा नहीं अपितु चुपचाप अपने साथ ले गये। इसका प्रभाव मुझ पर अत्यधिक पड़ा और उसकी स्मृति मुझे अब तक है। यह संस्मरण पण्डितजी के सरल, सौम्य और सत्यवादी स्वरूप की सुन्दर झाँकी प्रस्तुत करता है। अँगूठी चुराने की घटना ने पराड़करजी का जीवन क्रम ही बदल दिया। पराड़करजी भागलपुर के सरकारी स्कूल में पढ़ते रहे और यहीं से एन्ट्रेन्स परीक्षा पास की। इसके पूर्व ही आप के पिता चल बसे और परिवार की चिन्ता युवक पराड़करजी पर आ गयी। एफ० ए० की कक्षा में नाम तो आपने लिखवाया पर अध्ययन पूरा न हो पाया था कि सन् १९०३ में काशी में फैले भयंकर प्लेग में आपकी माता का देहावसान हो गया। पिता की मृत्यु के बाद जो कुछ घर में था, वह समाप्त हो चुका था। नयी परिस्थितियाँ आ पड़ी थीं और सम्मुख थे नवीन उत्तरदायित्व।

राष्ट्रीयता का उदय

अध्ययनकाल में ही जब पराड़करजी काशी में थे तो दूर के रिश्ते में उनके मामा श्री सखाराम देउस्कर आये, वे कलकत्ते के बंगला पत्र 'हितवादी' के सम्पादक थे। उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

d by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तिम यात्री . . .

पराड़करजी से पूछा अच्छा बताओ अकबर बड़ा था या औरंगजेब ?'

'अकबर'—उत्तर था।

'क्यों अकबर औरंगजेब से बड़ा था ?'—सखारामजी का दूसरा प्रश्न था।

पराड़करजी ने जैसा इतिहास में पढ़ा था वैसा ही उत्तर दिया। इस पर सखारामजी ने उन्हें बताया कि औरंगजेब का चरित्र बहुत अच्छा था। वह कुरान लिख कर अपना जीवन-व्यय चलाता था। अकबर में यह बात न थी। उसकी नीति से हिन्दू-संस्कृति विलीन हो जाती। औरंगजेब न होता तो शिवाजी कैसे पैदा होते ? आपने यह भी बताया कि वही नीति अंग्रेज भी चल रहे हैं। इसी चर्चा में उन्होंने पराड़करजी को 'केसरी' मँगाकर पढ़ने का भी परामर्श दिया।

यहीं से पराड़करजी में देश-भक्ति की भावना का उदय हुआ। इस सम्बन्ध की चर्चा छिड़ने पर पण्डितजी ने मुझे बताया श्री देउस्करजी की बातचीत तथा उनकी राष्ट्रीय विचारधारा ने मुझे अत्यधिक प्रभावित किया। सन् १६०५ में बनारस कांग्रेस हुई और उसमें आपने स्वयंसेवक बनकर कार्य किया। यहीं लोकमान्य तिलक के दर्शन हुए और आपने एकलव्य की भाँति मन ही मन में उन्हें अपना राजनीतिक गुरु मान लिया। स्वदेश प्रेम की भावना हृदय में सबल रूप से बैठ गयी थी। इसीलिए तार-विभाग में मिली नौकरी पर जाना उन्होंने अस्वीकार कर दिया। इन्हीं दिनों कलकत्ते से प्रकाशित होनेवाले 'हिन्दी बंगवासी' में एक सहायक सम्पादक की आवश्यकता निकली। आपने सहज भाव एक कार्ड पर स्वयं अपने हाथ से लिख आवेदन-पत्र भेज दिया। न किसी की सिफारिश थी और न कोई प्रमाणपत्र। आवेदन की लेखन शैली से प्रसन्न होकर 'हिन्दी बंगवासी' के सम्पादक श्री हरकृष्णजी जौहर ने नियुक्ति-पत्र भेज दिया।

पत्रकारिता के क्षेत्र में

इस प्रकार सन् १६०६ के उत्तरार्द्ध में पराड़करजी बनारस से कलकत्ता आये। यहाँ आपने दस वर्ष तक अर्थात् १६१६ ईस्वी तक सम्पादन-कार्य किया। आपने तीन पत्रों का इस अवधि में सम्पादन किया। सर्वप्रथम 'हिन्दी बंगवासी' में, उसके बाद 'हितवार्ता' और तदन्तर 'भारत मित्र' में। 'हिन्दी बंगवासी' की नीति प्रतिक्रियावादी थी और इसमें राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति व्यंग-विनोद किया जाता था। इस कारण शीघ्र ही पराड़करजी ने इससे अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। 'हितवार्ता' साप्ताहिक के सम्पादक के रूप में आपने १६०७ ईस्वी में कार्य प्रारम्भ किया और लगभग चार वर्षों तक इसका सम्पादन किया। हिन्दी पत्रों के पाठकों में राजनीतिक-सामाजिक जागृति उत्पन्न करने के लिए आपने इस पत्र में नवीन प्रयोग किये और सफल भी हुए। इसके पूर्व हिन्दी पत्रों में राजनैतिक चर्चा की अपेक्षा साहित्यिक लेख प्रकाशित करने की ही परम्परा थी। विरोधियों पर व्यंग की बौछार की जाती थी। पत्र को राजनीति प्रधान बनाने का पराड़करजी का यह नवीन प्रयोग था।

सन् १६१०-११ में पण्डित अम्बिका प्रसादजी वाजपेयी ने 'भारत मित्र' में आने का निमन्त्रण दिया। 'भारत मित्र' उन दिनों साप्ताहिक था ; किन्तु किंग जॉर्ज के कलकत्ता आगमन के कारण पत्र को दैनिक कर दिया गया था। इसका स्वागत हुआ और बाद में 'भारत मित्र' दैनिक हो गया। पराड़करजी 'भारत मित्र' के संयुक्त सम्पादक नियुक्त हुए और आपने इस पत्र में अपनी गिरफ्तारी जो १ जुलाई १६१६ को हुई, के पूर्व तक कार्य किया। कलकत्ते में उन दिनों साहित्यिक महारथियों का जमाव बड़ा था। सर्वप्रथम तो हिन्दी संसार की वृहत्सम्पादक त्रयी इस समय कलकत्ते में ही थी। कलकत्ते में ही नहीं, ये तीनों कई वर्षों तक 'भारतमित्र' में ही सम्पादन-कार्य करते रहे। ये रहे हैं—सम्पादकाचार्य-त्रय—सर्वश्री अम्बिका प्रसादजी वाजपेयी, लक्ष्मण नारायण गर्दे तथा स्वर्गीय पराड़करजी। यही नहीं उन दिनों पण्डित गोविन्द नारायण जी मिश्र तथा पण्डित दुर्गाप्रसादजी मिश्र भी कलकत्ते में ही रहते थे। भाषा, व्याकरण और प्रयोग के अतिरिक्त साहित्य की उच्च स्तर पर वार्ता और विचार-विनिमय हुआ करते। यदि किसी ने व्याकरण की दृष्टि से अथवा भाषण का कोई अशुद्ध प्रयोग किया तो उसकी चुटकी तत्काल ली जाती थी। साहित्यिक विवाद छिड़ जाता था तथा इसी व्याज से प्राचीन साहित्य एवं शास्त्र के स्वरूपों की चर्चा होती थी।

महान साहित्यिकों के सम्पर्क में

इन दिनों का संस्मरण सुनाते हुए एक दिन पण्डित पराड़करजी ने इन पंक्तियों के लेखक को बताया कि जब पण्डित पद्मसिंह शर्मा 'बिहारी सतसई' पर लेखमाला लिख रहे थे, तो आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और श्री बालमुकुन्द गुप्त में

(शेषांश पृष्ठ ५४ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृष्टि के आदिकाल से ही वायु समुद्र के जल से क्रीड़ा करती रही है और समुद्र में छोटी बड़ी अनेक प्रकार की लहरें उठाती रही है। ये लहरें कई प्रकार की होती हैं। कभी तो वे इस प्रकार उठती हैं कि कुछ दूर जाकर ही एक-दूसरे से टकरा कर टूट-फूट जाती हैं और कभी भी किनारे तक नहीं पहुँच पातीं। परन्तु अनेक लहरें ऐसी होती हैं, जो हजारों मील दूरी पार करके अन्त में किनारों पर आकर समाप्त होती हैं। समुद्र के तीर पर घोर गर्जना के साथ आकर टकराने वाली लहरें प्रायः सैकड़ों मील दूर से आ रही होती हैं।

जब समुद्र की लहर आगे चलती है, तो समुद्र का पानी अपना स्थान छोड़कर आगे नहीं जाता। पानी तो वहाँ का वहीं बना रहता है; वह केवल ऊपर उठकर और फिर नीचे आकर लहर को आगे धकेल देता है। यदि ऐसा न होता और विशाल लहरों के साथ-साथ समुद्र का पानी भी आगे की ओर बढ़ता चला जाता, तो समुद्र में नौका या जहाज़ों का चलाना असम्भव हो जाता।

समुद्र की लहरों की ऊँचाई इस बात पर अधिक निर्भर रहती है कि उन्हें कितनी दूर तक बिना बाधा के समुद्र में चलने का अवसर मिल सका है। यह बात इस प्रकार और स्पष्ट हो जायगी कि यदि वायु खुले समुद्र पर निरन्तर एक ही दिशा में बहती रहे, तो लहरों का आकार ऊँचा हो जायगा। इसके विपरीत यदि हवा की दिशा बदलती रहे अथवा लहरों को समुद्र में दूर तक बहने का अवसर न हो, जैसा खाड़ियों में अथवा जलडमरूमध्यों के पास नहीं होता, तो लहरों का आकार बड़ा नहीं होगा। इसीलिए खाड़ियों के पास बहुत बड़ी लहरें उत्पन्न नहीं होतीं। बड़ी-बड़ी समुद्र की लहरें खुले समुद्रों में तब उत्पन्न होती हैं, जब ७०० या ८०० मील तक लहरों को चलते जाने का अवसर हो और हवा ६०-७० मील प्रति घण्टे से चल रही हो।

वायु के अतिरिक्त और भी अनेक शक्तियाँ हैं, जो समुद्र में लहरों को उत्पन्न करती हैं अथवा टक्कर मार कर उन्हें और विक्षुब्ध कर देती हैं। जब कभी ज्वार-भाटे का प्रवाह समुद्र की लहरों से ठीक विपरीत दिशा में आ रहा होता है, उस समय समुद्र में भयंकर विक्षोभ उत्पन्न होता है। वायु से उत्पन्न लहरें और ज्वार-भाटे की लहरें एक-दूसरे के साथ अत्यन्त प्रचण्डता से टकराती हैं। स्काटलैण्ड के निकट बननेवाली भयावह सामुद्रिक भँवरों का कारण इसी प्रकार की लहरों का टकराना ही है। शैटलैण्ड द्वीपों के दक्षिणी छोर पर भी ऐसी ही भँवरें बनती हैं। जब वायु उत्तर-पूर्व से चलती हैं, तो यह समुद्र शान्त रहता है। परन्तु जब किसी और दिशा से आने वाली लहरें ज्वार-भाटे की धाराओं से टक्कर खाती हैं, तो दृश्य बहुत ही भयंकर हो उठता है। लहरों और ज्वार-भाट की टक्कर दो भयंकर हिंस्र पशुओं के युद्ध के समान प्रतीत होती हैं और यह संघर्ष कभी-कभी तीन-तीन चार-चार मील दूर तक फैली हुई ऊँची-ऊँची लहरों में हो रहा होता है। जब कभी कोई जहाज लहरों के इस संघर्ष में पड़ जाता है, तो उसे सम्भालना बहुत ही मुश्किल हो जाता है। कई बार जहाज डूब जाते हैं और अनेक बार वे कई दिन तक लगातार लहरों पर हचकोले खाते रहते हैं।

सामान्यतया २५ फीट ऊँची लहरें समुद्र में कम ही पाई जाती हैं। परन्तु तूफ़ान के कारण उत्पन्न हुई लहरों की ऊँचाई ५० फीट से भी अधिक होती है। इस विषय में नाविकों में काफ़ी मतभेद है कि तूफान के समय समुद्र की लहरें कितनी ऊँची हो सकती हैं। पुस्तकों में बहुत संकोच के साथ इन लहरों की अधिकतम ऊँचाई ६० फीट बतायी गयी है। परन्तु अनेक जहाज़ों के नाविकों का कथन है कि उन्होंने ६० फ़ीट से कहीं अधिक ऊँची-ऊँची लहरें समुद्र में देखी हैं। परन्तु कम से कम एक विशाल लहर का उल्लेख हमें प्रामाणिक रूप से मिलता है, जिसके नापने की विधि को उचित और वैज्ञानिक माना जा सकता है। फरवरी १९३३ में अमेरिका का एक जहाज़ मनीला से सान-डियेगो को जा रहा था। रास्ते में उसे एक भयंकर तूफ़ान का सामना करना पड़ा, जो सात दिन तक अविराम चलता रहा। जब हवा अपनी पूरी तेजी पर आई तो उसकी चाल ९० मील प्रति घण्टा हो गयी और समद्र की लहरों का आकार पहाड़ियों के समान ऊँचा और भयंकर हो उठा। उस समय जहाज़ का एक अधिकारी जहाज के पुल पर खड़ा हुआ समुद्र का निरीक्षण कर रहा था। तभी उसने एक प्रचण्ड लहर को जहाज़ की ओर आते हुए देखा। यह लहर पुल के ऊपर से खड़े हुए देखने पर जहाज के मुख्य मस्तूल पर टँगे हुए 'निरीक्षण कक्ष' के बराबर ऊँची दिखाई पड़ रही थी। उस समय सँयोगवश जहाज़ सीधा खड़ा था और लहर की ठीक जड़ के पास था। अधिकारी ने लहर के उच्चतम भाग तथा मस्तूल के ऊपर बने निरीक्षण कक्ष के साथ एक सीधी रेखा के रूप में लहर की ऊँचाई को देखा था। इसलिए जहाज़ की

—विराज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊँचाई से लहर की ऊँचाई सही-सही नापी जा सकती थी। यह ऊँचाई ११२ फ़ीट थी।

यह ठीक है कि लहरों की ऊँचाई बीच समुद्र में ही अधिक होती है, परन्तु उनका विनाशकारी स्वरूप किनारों पर ही अधिक दिखाई पड़ता है। समुद्र के बीच में ये लहरें जहाज़ों को भी हिला-डुला कर ही छोड़ देती हैं। परन्तु जब ये आकर किनारों पर चोट करती हैं, तो बड़ी-बड़ी इमारतें और सीमेण्ट के बने हुए बाँध बच्चों के खिलौनों की तरह टूट जाते हैं। सर्दियों के तूफ़ानों में इन लहरों की चोट प्रति वर्गफ़ुट ८०० मन जितनी होती है। स्काटलैण्ड में एक बार एक इंजीनियर ने किनारे पर खड़े होकर इन तूफ़ानी लहरों की लीला देखी थी, जिन्होंने किनारे पर बने हुए एक कंकरीट के बाँध को देखते-देखते तोड़ डाला था और उसे पूरा का पूरा उठाकर बन्दरगाह के अन्दर धकेल दिया था। तूफ़ान घटने पर बाद में जब जाँच की गयी तो पता चला कि लहरों ने कंकरीट की बनी हुई एक पूरी की पूरी चट्टान को उठाकर एक जगह से दूसरी जगह फेंक दिया था। इस चट्टान का वजन ४० हजार मन था। इसके बाद उसी स्थान पर उससे दुगुनी मजबूत कंकरीट का बाँध बनाया गया। परन्तु ५ साल बाद एक और तूफ़ान आया, जिसमें वह ८० हजार मन बोझ वाला बाँध भी उसी प्रकार उखाड़ कर फेंक दिया गया, जैसे पहला फेंक दिया गया था।

समुद्र में प्रकाशस्तम्भों पर रहने वाले लोगों के अनुभव समुद्र की लहरों की शक्ति के विषय में बहुत ही चौंकाने वाले हैं। १८४० में एक बार रात को जोरदार तूफ़ान आया, जिसके कारण एडीस्टोन प्रकाशस्तम्भ का लोहे का दरवाज़ा, इस प्रकार टूट गया जैसे उसे किसी ने प्रकाशस्तम्भ के अन्दर की ओर से धक्का मार कर तोड़ा हो। उसके सब कब्जे और पेंच ढीले पड़ गये। इंजीनियरों का कहना यह था कि जब धक्का मारकर लहर पीछे को हटने लगी, तो उसका दबाव एकाएक हट जाने के कारण दरवाज़ा बाहर की ओर को खिंच आया। बात यद्यपि सुनने में असम्भव लगती है, परन्तु है यह सच। इसी प्रकार स्काटलैंड के किनारे बने 'बैलराक' प्रकाशस्तम्भ पर एक सीढी लहरों की चोट से टूट गयी। यह सीढी समुद्र के तल से ८६ फ़ीट ऊँचाई पर बनी हुई थी। एक बार 'बिशपराक' प्रकाशस्तम्भ पर टँगी हुई एक बड़ी घण्टी को तूफ़ान की लहरें बहा ले गयीं, हालांकि यह घण्टी समुद्र तल से १०० फीट की ऊँचाई पर टँगी हुई थी। अमेरिका के निकट अतलान्तक में एक प्रकाशस्तम्भ बना हुआ है, जो ९७ फ़ीट ऊँचा है। जब तूफ़ान आता है, तो इसका प्रकाश प्रायः इससे टकराने वाली लहरों में छिप जाता है। १८५१ में तो एक बार लहरों ने इसके ऊपर की रोशनी को टक्कर मारकर तोड़ ही दिया था। ओरेगन के निकट बने एक प्रकाशस्तम्भ के निरीक्षक का कथन है कि उसने सर्दियों के एक तूफ़ान में समुद्र की एक पर्वताकार लहर को ऊपर के प्रकाश के स्तर तक ऊँचा उठते हुए देखा और लहर की टक्कर से उड़ने वाले छींटे प्रकाशस्तम्भ के ऊपर जाकर पड़े। लहर की इस टक्कर के कारण प्रकाश को घुमाने वाली मशीन खराब हो गयी। यह प्रकाशस्तम्भ समुद्र तल से १९६ फ़ीट ऊँचा है।

जहाँ समुद्र के किनारे चट्टानें होती हैं, वहाँ तूफ़ान के समय प्रायः लहरों में कंकड़-पत्थर भी भरे होते हैं, जिन्हें वे जोर के साथ किनारे पर फेंकती हैं। एक बार 'तिलामुक राक' के प्रकाशस्तम्भ पर एक लहर ने २ मन का पत्थर उठा कर समुद्र तल से १०० फीट की ऊँचाई पर बने मकान पर फेंका था। इस पत्थर के गिरने से मकान की छत में २० फीट चौड़ी दराड़ हो गयी। स्काटलैण्ड में बने डनैट-हैड के प्रकाशस्तम्भ की खिड़कियाँ अनेक बार लहरों द्वारा उछाले गये पत्थरों से टूट चुकी हैं, हालांकि यह प्रकाशस्तम्भ समुद्र तल से ३०० फीट की ऊँचाई पर बना हुआ है।

समुद्र की लहरें दो प्रकार की होती हैं। एक तो वे, जो समुद्र की तली में आने वाले भूकम्पों के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती हैं और दूसरी वे, जो प्रचण्ड वायु के कारण समुद्र के तल पर उठती हैं। इनमें से भूकम्पों के फलस्वरूप उठनेवाली लहरों की एक विचित्र विशेषता यह होती है कि समुद्र जोरदार लहर के रूप में आने से पहले बहुत कुछ पीछे की ओर वापस लौट जाता है। १८६८ में दक्षिणी अमरीका में कई भूकम्प आये थे। इन भूकम्पों के कुछ ही देर बाद समुद्र किनारे से बहुत दूर तक पीछे हट गया। जो जहाज ४० फीट गहरे पानी में खड़े थे, वे अब कीचड़ में धँसे रह गये। परन्तु कुछ ही देर बाद समुद्र फिर विशाल लहर के रूप में लौटा और जहाजों और नौकाओं को २ फर्लांग दूर स्थल के ऊपर तक बहा ले गया।

१९४६ में पहली अप्रैल को हवाई द्वीप के निवासियों को बड़ा आश्चर्य हुआ, जब एकाएक समुद्र की लहरों का गर्जन शान्त हो गया और समुद्र किनारों से काफी दूर हट गया। वस्तुतः समुद्र के इस हटने का कारण एक भूकम्प था, जो २३०० मील दूर एल्यूशियन द्वीपों के पास आया था। हवाई द्वीप के निवासियों को इस तथ्य का ज्ञान न था और न उन्हें

(शेषांश पृष्ठ ६४ पर)

चर्चिल ने कहा

मैं अपने भगवान् से जल्दी ही भेंट करने की तैयारी में हूँ, नहीं जानता वह भी उस क्षण के लिए तैयार है या नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

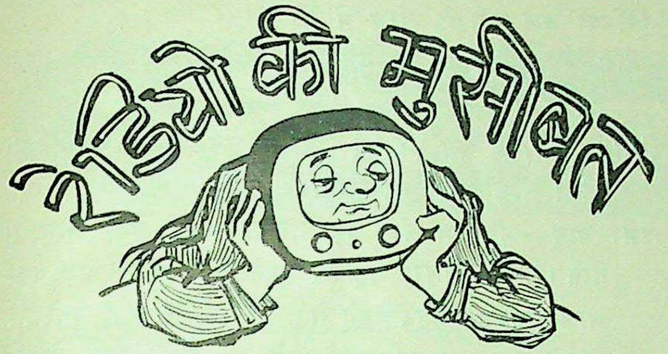

श्रीकृष्ण

आपके यहाँ तो रेडियो है न ? आप जरूर समझ सकेंगे तब तो इस ग़रीब की मुसीबत । लेखक का सुझाव है तो बेज़बाँ, पर माकूल ज़रूर है ।

(साँझ छह बजे । लाला जेठामल के मकान का हॉल कमरा। आधुनिक ढंग पर सजा हुआ । एक ओर सोफ़ियानी मेज पर क़रीने से रखा हुआ फ़िलिप्स रेडियो । पास के कमरे से बातें करती हुई नीरजा और उसकी सहेली लीला प्रवेश करती हैं ।)

नीरजा—हाँ, आज तो तेरे आने की उम्मीद भी न थी। मैं तो समझी थी तू पिक्चर गयी होगी। परसों तू—"

शीला—जाती तो सही ही। मगर भाई साहब के एक दोस्त आ गये और प्रोग्रैम टल गया। फिर मैंने सोचा, चलूँ तेरे यहाँ सीलोन ही सुना जाय। दिल्ली से तो अब रबिश आने लगा है।

नीरजा—ठीक कहती है तू। न जाने बैठे बिठाये दिल्ली वालों को क्या सूझा ! हम तो अपना रेडियो बेचने की सोच रहे थे, सीलोन का ख़याल करके ही रुक गये। मैं खोलती हूँ।

(उधर दो पग बढ़कर रेडियो खोलती है। पहिले हलकी-सी चटर-पटर और फिर घूँ-घूँ की आवाज शुरू होती है।)

शीला—हम तो रेडियो लेने की सोचते ही रह गये और यहाँ उसका चार्म भी जाता रहा। अब सोचते हैं सिर्फ़ सीलोन के लिए क्या लिया जाय।

नीरजा—अरे तो यहाँ आ जाया कर न !

(रेडियो बोलने लगता है :....और अपने दाँतों को रोज सफ़ाका टूथ ब्रश से साफ़ कीजिये। सफ़ाका मसूड़ों को साफ़ करके उन्हें असली रंगत पर ले आता है और दाँतों को मजबूत करता है। बाजार में चाहे जिस दूकान से माँगिये। याद रखिये, इसके बाल वैज्ञानिक रीति से जमाये और तराशे जाते हैं।....इसके बाद फ़िल्मी गाने का रेकार्ड शुरू होता है : "लखनऊ चलो अब रानी, बम्बई का बिगड़ा पानी !"....)

शीला—आधा समय तो बस इन विज्ञापनों में बीत जाता है। सुनते-सुनते कान पक गये हैं।

नीरजा—(हँसती है) फिर भी कुछ न कुछ तो देते ही हैं। आओ, उधर कमरे में बैठें, वहीं आवाज़ आती रहेगी।

(रेडियो की आवाज़ कुछ तेज कर देती है और फिर दोनों बगल के द्वार से चली जाती हैं। रेडियो पर वही गीत चलता रहता है। तभी नीरजा का भाई मनोज आता है। साथ में उसका मित्र सुरेन्द्र है।)

मनोज—(**प्रत्यक्ष खीज के साथ**) क्या चख-चख लगाये रखती है यह नीरजा भी ! (**मित्र को सम्बोधन करते**) यह भी कोई गाना है : 'लखनऊ चलो अब रानी !' सचमुच, सुरेन् संगीत की हत्या कर रखी है इन सिनेमा वालों ने। सरकार ने बन्द कर दिया, मगर सीलोन ने नाकों दम कर रखा है।

सुरेन्द्र—(**स्वीकृति सूचक सिर हिलाता है, साथ ही रूमाल से सनग्लैसेज़ साफ़ करते हुए**) इसमें क्या शक है। याद है तुम्हें, पिछली बार जब मास्टर रतन यहाँ आये थे। वाह क्या गाया था पीलू उन्होंने। डेढ़ घण्टे तक एक ही पंक्ति को इस तरह घुमा-घुमाकर कहा कि तबीयत झूम-झूम गयी। और तबलिया तो पसीने-पसीने हो गया। वाह ! मास्टर रतन कहते थे जिसे संगीत का आनन्द लेना हो वह शास्त्रीय संगीत सीखे। क्यों मनो—

(मनोज उसकी अन्तिम बात की ओर ध्यान दिये बिना ही रेडियो की ओर को बढ़ उठा था। और रेडियो बिनाका दन्त-मंजन की तारीफ़ शुरू ही कर पाता है कि मनोज उसका स्विच घुमाकर दिल्ली पर कर देता है।)

रेडियो—....ऑल इण्डिया रेडियो है। अब छह बजकर पाँच मिनिट हुए हैं। अब आप उस्ताद साबरी खाँ से सदा-बहार सुनिये। बोल हैं : फूल-फूल पे छायी बहार।

(धुन उठती है और रेडियो से बहार बहने लगती है। सुरेन्द्र गरदन हिलाने लगता है। मनोज उसकी ओर देखता हुआ प्रसन्नता से मुस्कुराता है।)

मनोज—सच यही है कि संगीत इसे ही कह सकते हैं। तुमने अख़्तरीबाई को नहीं सुना। दादरे और ठुमरी में—

(बरसाती में मोटर रुकती है और अगले ही क्षण बरामदे से इधर ही आते हुए लाला जेठामल और उनके बिजनेस पार्टनर पण्डित श्यामलाल की पग-ध्वनि और बातचीत की अस्पष्ट आवाज सुनाई पड़ती है। मनोज और सुरेन्द्र जल्दी-जल्दी उठ कर दाहिनी ओर के कमरे में चले जाते हैं। लाला जेठामल और पण्डित श्यामलाल प्रवेश करते हैं।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जेठामल--नहीं, नहीं ; मैं तो कहता हूँ बाज़ार अभी इसी तरह और चढ़ेगा और रात में जितने ख़रीदार हैं सबको लेकर डूबेगा। सबेरे को दिया लेकर भी खोजोगे तो कोई लेऊ नहीं दिखाई पड़ेगा। तुम--

श्यामलाल--सब बम्बई की ख़बर पर है। वहाँ के गोदाम खुले कि यहाँ की सारी उछल-कूद हवा हो जायगी। वक्त तो हो गया, देखो रेडियो से कुछ पता चले तो! काम की बात जानने के लिए तो तुम्हारे रेडियो पर कभी मौका ही नहीं होता।

जेठामल--क्या बताऊँ भाई, परेशान आ गया हूँ मैं तो सबसे। जभी यहाँ आता हूँ तो जी बस यही चाहता है कि दो कौर निगलूँ और भागूँ। ये लोग तो--

(बात अधूरी ही छोड़ता हुआ झटके से स्विच घुमा कर रेडियो को दूसरे मीटर पर लगाता है और अब उसमें बाज़ार भाव आने लगते हैं।)

रेडियो--....सात, चाँदी नौ सौ निन्यानवे, एक सौ सत्तावन चार आने ; चाँदी नौ सौ छियानवे, एक सौ छप्पन चार आने ; तेज़ाबी, एक सौ चौवन ; गद्दी, एक सौ इक्यावन ; सिक्का, एक सौ उन्तालीस ; सोना....

(रेडियो बोलता रहता है, जेठामल ख़ुशी के मारे उछल पड़ते हैं।)

जेठामल--देखा न, क्या कहा था! अब बाज़ार खुलने भर की देर है। मैं कहता हूँ भागते-भागते सब की धोती न ढीली पड़ गयी तो बाज़ार में पाँव धरना छोड़ दूँगा। क्या समझ रखा है ; यहाँ इसी तालाब में हाथ धोये हैं और इसी में पित्तर पुन्न किये हैं। **(गर्व से श्यामलालजी की ओर को देखते हैं)**

श्यामलाल--**(ख़ुशी से जैसे बाछें खिली हों)** हाँ, भाई, मान गये। और बम्बई वालों ने भी हक़ अदा कर दिया।

जेठामल--**(ठठाकर हँसते हैं)** आओ, आगे के भाव खाना खाते-खाते सुनेंगे।

(दोनों कोने के द्वार से चले जाते हैं। रेडियो पर भाव आते रहते हैं। तभी बाहिर से जेठामलजी के छोटे भाई पन्ना बाबू और दोनों छोटे बच्चे सतीश और विजय आते हैं।)

सतीश--**(रेडियो को देखते ही)** चाचाजी, बच्चों का प्रोग्राम खोल दीजिये न! आपने परसों कहा था उससे बुद्धि खुलती--

पन्ना बाबू--**(रेडियो की ओर बढ़ते हुए)** ठहरो बेटा, पहिले यह देखलें ज़रा कि दुनिया में आज हुआ क्या-क्या! **(फिर जैसे अपने से ही)** अख़बार पढ़ने का अवकाश ही नहीं मिलता ; सारा दिन बस भाव-भाव! बाहिर तो है ही, घर भी वही!

(खीज और घृणा से रेडियो को दूसरी ओर को ट्यून कर देता है और समाचार आने लगते हैं।)

रेडियो--अमेरिका के प्रेसिडेण्ट आइज़नहॉवर ने फ़ॉरमोसा और पेस्काडोर्स द्वीपों की रक्षा सम्बन्धी समस्त अधिकार अपने हाथ में ले लिये हैं। इससे स्थिति की गम्भीरता काफ़ी बढ़ गयी है। ये ऑल इण्डिया....

(रेडियो चल रहा है, बीच में ही।)

सतीश--चाचाजी, हमें तो वह अच्छा लगता है, "बीबी मेंढकी री, तू तो----

विजय--धत्, अच्छी तो वह लाल बुझक्कड़ वाली कहानी है! कैसा मजा आया था चाचाजी, जब--

पन्ना बाबू--भई तुम लोग बड़ा तंग करते हो, सुनने थोड़ा ही दोगे। यहाँ तीसरा महायुद्ध फूटने-फूटने हो रहा है और तुम लालबुझक्कड़ को सराह रहे हो। लो थामो, जो चाहो सुनो...

(भुनभुनाते हुए पन्ना बाबू चले जाते हैं। दोनों बच्चे दो क्षण सहमे हुए से एक-दूसरे को देखते हैं। फिर सतीश की आँखों में चमक सी आती है।)

सतीश--बिजू, बिजू! हमारा प्रोग्राम कहीं ज़रूर होता होगा। आओ, सोफ़े पर चढ़ कर सुइच घुमायें--

(दोनों उठते हैं। सतीश सोफ़े पर खड़ा होकर स्विच घुमाता है। पर वह ध्वनि वेग का स्विच होता है। और रेडियो बड़ी ज़ोर-ज़ोर से किसी दुर्घटना का समाचार देने लगता है। बच्चे सकपका जाते हैं। उसी हड़बड़ी में छोटा विजय गिर पड़ता है। एकदम सब ओर से सब कोई दौड़ पड़ते हैं बच्चों की माता इमरती देवी भी।)

इमरती देवी--ख़ाक पड़े ऐसे रेडियो पर **(विजय को सम्हालते हुए)** मरे के मारे खाना-खेलना तक हराम है। **(जेठामल जी को लक्ष्य करते)** क्यों जी, इससे तो किसी कबाड़िये को दे दो। कुछ काम है इसका घर में भला?

जेठामल--**(रेडियो को इस बीच उन्होंने धीमा कर दिया है)** काम? तुम भी बस! अरे, इसी के ऊपर तो सारा घर मौज की छान रहा है। क्यों श्यामलाल?

(शेषांश पृष्ठ ६४ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास बन रहा है

० पूर्णचन्द्र जोशी ०

नाटो, नॉर्थ ऐटलाण्टिक टेरिटोरियल ऑरगैनाइज़ेशन, अर्थात् उत्तरी अतलांतिक राज्य-सीमा संघ, के सदस्य देशों के प्रधान मन्त्री पिछले दिनों एक कॉन्फ़रेन्स में जुड़े थे। अणु-हथियारों को भी सामान्य रूप से ही सेना द्वारा व्यवहार में लाने का जो फ़ैसला उन्होंने उस समय किया वह धरती और मानव के जीवन और शान्ति की दृष्टि से बड़ा गम्भीर फ़ैसला है।

उस फ़ैसले का सही-सही और समूचा रूप-अभिप्राय लण्डन टाइम्स दैनिक, बेल्जियन विदेश मन्त्री महाशय स्पाक और स्वयं अमेरिकी राजमन्त्री डलेस के शब्दों में इस प्रकार है। लण्डन टाइम्स में प्रकाशित हुआ कि "कहा जाता है जेनरल ग्रुएन्थर ने इस बात पर ज़ोर दिया कि सबकी सम्मति से न्यूक्लियर शस्त्रों के भी सामान्य रूप से प्रयोग करने का सिद्धान्त मान कर सैनिक पुनर्सगठन करना ज़रूरी है। यह बात एक प्रकार से मानली भी गयी कि नयी सैनिक योजना इस नये आधार पर बनाकर अमल में लाना चाहिए और न्यूक्लियर तथा अन्य हथियारों का पूरा-पूरा प्रयोग होना चाहिए।"

महाशय स्पाक ने कहा कि "इस सम्मेलन ने सेना को अणु युद्ध की तैयारी की अनुमति देकर उसकी इच्छा को मान लिया।" और डलेस महोदय के प्रेस-प्रतिनिधियों को समझाते हुए शब्द थे, "युद्ध प्रणाली के इतिहास में जिस प्रकार क्रॉस-बो का स्थान गोला-बारूद ने ले लिया उसी प्रकार लड़ाई की ज़रूरतों को देखते हुए अणु शस्त्रों का प्रयोग भी हमारी वर्तमान सैनिक नीति का धीरे-धीरे अंग हो जायगा।"

नाटो राष्ट्रों का यह फ़ैसला अगर अमल में आया तो धरती और उसके चर-अचर वैभव के लिए एक दिन क्या परिणाम आगे आयगा यह लण्डन विश्वविद्यालय के एक विज्ञान-प्रोफ़ेसर डॉ० बर्रहॉप के शब्दों में इस प्रकार होगा: "थर्मोन्यूक्लियर अस्त्रों का यदि प्रयोग हुआ तो औस्लो, ऐम्सटर्डम, पैरिस, लण्डन आदि महानगरों में रेडियो-ऐक्टिव प्रभावों के कारण प्राणीमात्र मौत या भारी क्षति का आखेट होंगे। समूचे यूरोप की धरती इतनी विषैली हो जायगी कि वहाँ साँस लेकर कोई जीता नहीं रह सकेगा, और दूर-दूर तक चारों तरफ़ खेती और सागर-तालों की मछलियाँ भी विषाक्त हो जायँगी। इस प्रकार युद्ध में इस अस्त्र के प्रयोग पर यूरोप के करोड़ों इन्सानों को तत्काल या धीरे-धीरे आनेवाली मौत का सामना करना होगा।"

लण्डन विश्वविद्यालय के इस वैज्ञानिक का यह वक्तव्य अणु और हाइड्रोजन बमों के इधर जो परीक्षण और प्रयोग हुए उन पर आधारित है। पर अब तो एक और परम भयंकर 'डब्ल सुपर-हाइड्रोजन बम' का आविष्कार हो गया है। यह इतना प्रचण्ड है कि स्वयं अन्वेषकों को परीक्षा करने का साहस नहीं हो रहा। सम्भावना यह है कि आधी दुनिया दूर भी यदि इसका प्रयोग किया गया तो भी इसके विध्वंसक प्रभावों से स्वयं अमेरिका नहीं बच पायगा। स्टीवर्ट और जॉजेफ़ ऐल्सॉप जैसे अमेरिकी पत्रकारों की धारणा है कि यह नया बम इतना भयंकर है कि "विस्फोट की सीमा से भी परे है" यानी कि उसकी शक्ति हिरोशिमा का ध्वंस करने वाले बम से पचीस हज़ार गुना अधिक है।

चल सकेगा क्या

पर प्रश्न यह है कि कितना कुछ भी सही, यह फ़ैसला चल भी सकेगा क्या? और, किसी आकाश का नहीं, इस धरती का ही उत्तर है: नहीं। क्योंकि—

नाटो राष्ट्रों की सेनायें सक्रिय तभी हो सकती हैं जब यूरोपियन यूनियन सिद्ध और सक्रिय हो। और यह, स्वयं रायटर के शब्दों में 'सन्दिग्ध' ही है। ताज़ा उदाहरण सामने है। अमेरिकी दबाव पर फ्रान्स के प्रधान मन्त्री मेण्डीज़-फ्रान्स ने लण्डन और पेरिस के समझौतों को ज्यों-त्यों अपने देश पर लादा कि देखते-देखते पद-च्युत कर दिया गया।

इसके अलावा, एशियाई देशों के दृष्टिकोण की भी बात है। यूरोप और अमेरिका की सम्मिलित शक्ति भी आज उसकी उपेक्षा नहीं कर सकती। इस समय समूची एशिया, जाति और मतवादों के हलकेपन से ऊपर उठकर, धरती पर शान्ति-स्थापना और अणु अस्त्रों पर रोक के लिए भरपूर उद्योग और संघर्ष कर रही है। और वह उद्योग इतना गम्भीर और व्यवस्थित है कि उसका सही और पूरा मूल्यांकन इतिहास ही कर सकेगा।

एशियाई देशों के इस प्रबल प्रयास के साथ ही साथ सोवियत रूस की पश्चिमी देशों के लिए चेतावनी भी है कि यदि युद्ध-लोलुप शक्तियाँ, जिन्हें अपने अणु बमों का बड़ा भरोसा है, सोवियत् संघ के विरुद्ध अपनी शक्ति आजमाने का विचार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिमाग़ में लायेंगी तो इसमें किसी को सन्देह नहीं होना चाहिए कि उन शक्तियों का उन्हीं अस्त्रों से दमन कर दिया जायगा।" अभिप्राय यह कि नाटो शक्तियों का अपने अणु बमों का भरोसा ऐसा नहीं रह गया है जो दूसरों के लिए परेशानी की बात हो। दूसरों के पास भी उस प्रकार के और उससे भी बढ़ेचढ़े साधन हैं।

और भी एक बात है। नाटो शक्तियों में इन अस्त्रों के सम्बन्ध की समूची जानकारी प्रायः चोटी के नेताओं तक ही सीमित है। सोवियत् ने इससे भिन्न जहाँ एक ओर अणु-शक्ति का निर्माण-कार्यों में इस्तेमाल शुरू कर दिया है वहाँ साथ ही अपने संगी चीन, चेकोस्लोवैकिया, पूर्वी जर्मनी और रूमानिया जैसे देशों को भी उन कार्यों के लिए इस विषय की जानकारी देने का आयोजन किया है।

ध्यान का नया केन्द्र

नाटो काउन्सिल जिन दिनों यह ऊपर का ख़ौफ़नाक फ़ैसला क़लमबन्द करने-कराने में लगी थी उसके आसपास ही अमेरिकी चीफ़ ऑव स्टाफ़, ऐडमिरल रैडफ़ोर्ड, एशियाई देशों का दौरा करने आये। उनका बड़ा मन्शा था सिएडो सन्धि से अब कुछ ठोस और ख़ास नतीजे निकालने की सम्भावनाओं पर ग़ौर करना।

एक जापानी पत्र-समाचार के अनुसार अमेरिकी सेनाधिकारियों की उस समय यह राय थी कि "सियेडो के पास एक गतिमान लड़ाकू सेना होनी चाहिए। अमेरिकी सुदूरपूर्वी हवाई बेड़ा तथा सातवाँ जहाज़ी बेड़ा तो महज़ सहायक और बुनियादी सैन्य-शक्ति के रूप में रहें। धरती की सैन्य शक्ति का मुख्य भाग एशियाई सेनाओं में से ही बनाना चाहिए।"

इसके अनुसार ही विशेष रूप से जापान, दक्षिणी कोरिया आदि में उन्होंने सेना की डिवीज़नों में काफ़ी-काफ़ी वृद्धि की व्यवस्था की। पर इससे अधिक महत्त्व का उनका एक वक्तव्य था जिसमें उन्होंने सुझाया कि "एक उत्तर-पूर्वी-एशियाई सुरक्षा-संगठन बनाया जाय" जिसमें "जापान, फ़ॉरमोसा और दक्षिणी कोरिया आवश्यक रूप से रहें।" शायद उनका मन्शा था कि एशिया के इस भाग के कुछ देशों की एक नयी सैनिक गुट बना लें जो फिर सिएडो से जोड़ दी जाय!

जो हो; यह स्पष्ट-सा हो चला है कि अमेरिकी राजनीति के ध्यान का केन्द्र अब इस साल में यूरोप से हलका होकर एशिया पर गहरा हो चला है। यही शायद कारण भी है कि, न्यूयॉर्क टाइम्स के अनुसार, अमेरिका के सन् १९५४-५५ के सैनिक और आर्थिक सहायता बजट में से लगभग चार अरब डॉलर 'पाकिस्तान से जापान तक फैले ख़तरे के क्षेत्र में' ख़र्च किये जायेंगे। और शायद यहीं दिशा-संकेत हैं अमेरिकी सैनिक सहायता मिशन के अध्यक्ष जेनरल विलियम चेज़ के उस वाक्य को समझने के लिए जिसमें महज़ पाँच शब्द थे: "१९५५ कौतुकपूर्ण वर्ष सिद्ध होगा।"

फ़ॉरमोसा

तो क्या अभी-अभी यह फ़ॉरमोसा को लेकर जो नया भूडोल आया है वह इसी "कौतुक" की भूमिका है? ठीक-ठीक या दावे के साथ तो आज ही कौन कहे, मगर--

अमेरिकी सिनेट ने प्रेज़िडेण्ट के प्रस्ताव पर उन्हें अधिकार सौंप दिये हैं कि वह अमेरिका की 'सुरक्षा' की बात उठायें और "चियांग के चीन को मुक्त करने की नये चीन की चेष्टायें" अमेरिकी सेना के हस्तक्षेप द्वारा विफल करदें।

स्थिति का तीखा विश्लेषण क्षम्य हो तो बात बड़ी विचित्र है: कि फ़ॉरमोसा का सहज रूप से नये चीन के अधिकार में होना तो दस हज़ार मील दूर बसी अमेरिका के लिए ऐसा ख़तरा है कि "उसकी सुरक्षा की बात" उठाना पड़े और चीन से महज़ दस-बीस-पचीस मील दूर पर चियांग-काइ शेक की ओट में फ़ॉरमोसा पर बिछी हुई हवा, पानी और प्यादों की अमेरिकी फ़ौजी छावनियाँ चीन के लिए कोई ख़तरा नहीं कि वह भी सुरक्षा की सोचे-करे!

अमेरिका की इस फ़ॉरमोसा नीति पर तर्क और सूझ का क़लई पॉलिश देने की चेष्टा में ब्रिटेन के वैदेशिक मन्त्री सर ईडेन ने अभी उस दिन एक और बात कही: कि "फ़ॉरमोसा इस सदी में चीन का हिस्सा कभी नहीं रहा। जापान से वह छूटा तब से ही मार्शल चियांग का उस पर सैनिक क़ब्ज़ा है। उसकी प्रभुसत्ता का तो अभी निर्णय ही होना है।" इतिहास इसका सीधा-सादा और संक्षिप्त-सा यह है कि--

फ्रेंच पार्लमेण्ट में जिस दिन मेण्डेज़ फ्रान्स का पतन हुआ उस दिन

अधिवेशन के पूर्व | अधिवेशन में पतन के बाद

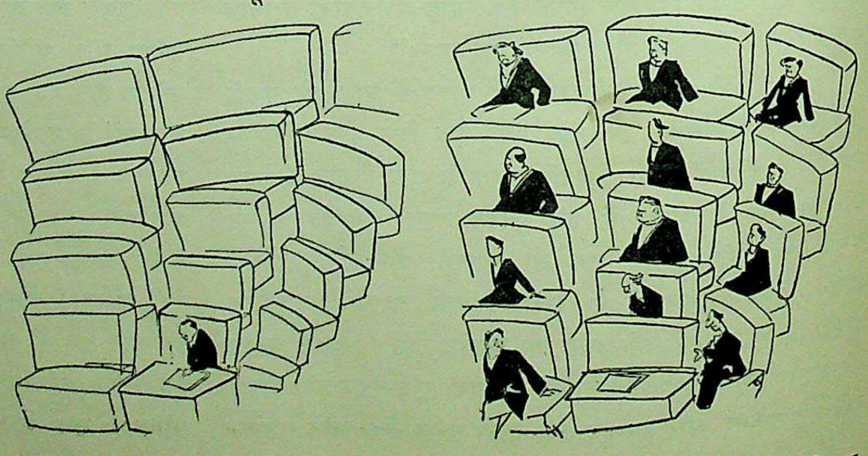

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुदूर पूर्व में संकट

सुनते हैं कि मालेन्कॅव की तरह डलेस भी इस्तीफ़ा देना सोच रहे हैं

जापान ने सन् १८९५ में फ़ॉरमोसा पर बलात् अधिकार कर लिया था। फिर द्वितीय महायुद्ध के दौरान में मित्र राष्ट्रों के बीच जो कुछ महत्त्वपूर्ण समझौते और सन्धियाँ हुईं उनमें इसका स्पष्ट उल्लेख है। कैरो के घोषणापत्र में अमेरिका, ब्रिटेन और चीन ने हस्ताक्षरों पर यह माना है कि चीन के जो भी भाग जापान ने हस्तगत किये जैसे मन्चूरिया, फ़ॉरमोसा, पेस्काडोर्स— वे सब चीन को लौटा दिये जायँगे। इसी तरह की स्वीकृति करते हुए पॉट्सडम घोषणापत्र पर भी अमेरिका, ब्रिटेन और रूस के हस्ताक्षर हैं।

इतना ही नहीं, कोरिया में पराजय के बाद फ़ॉरमोसा पर अधिकार करने के महज़ पाँच महीने पहिले जून १९५० तक भी अमेरिकी प्रेज़िडेण्ट ट्रूमन ने यह दोहराया था कि, "२६ जुलाई १९४५ के पॉट्सडम समझौते पर अमेरिका के भी हस्ताक्षर हैं। उसमें घोषित किया गया है कि कैरो घोषणापत्र की शर्तों पर अमल किया जायगा। जापान ने आत्म-समर्पण करते समय इन शर्तों को स्वीकार किया था।....पिछले चार वर्षों से अमेरिका और उसके मित्र राष्ट्रों ने इस द्वीप पर चीन का अधिकार स्वीकार किया है।"

अब

चीन ने इन्हीं सब इतिहास-पुराण की स्वीकृतियों को बार-बार सुनाते-बताते अपने इस खोये हुए स्वाभाविक भूभाग को वापिस पा जाने के लिए निरन्तर संघर्ष किया है। उनकी साफ़ सीधी माँग है कि फ़ॉरमोसा में अमेरिकी फ़ौजों को बने रहने का कोई अधिकार नहीं है और कि संयुक्त राष्ट्र संघ को कैरो और पॉट्सडम समझौतों का सन्मान करना चाहिए।

अभी इस समय जो लण्डन में कॉमनवेल्थ के प्रधान मन्त्रियों का सम्मेलन हो रहा है उसमें पण्डित नेहरू ने फ़ॉरमोसा का सवाल उठाया है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में चीन के अधिकार स्वीकार करने के पक्ष में ज़ोर दिया है और सुझाया है कि जैसे इण्डोचीन के प्रश्न को लेकर पिछले दिनों जेनेवा सम्मेलन हुआ था उसी तरह इस प्रश्न पर अब भी एक सम्मेलन हो। कहा जाता है कि इस सम्मेलन के स्थान के लिए उन्होंने नई दिल्ली का संकेत तक कर दिया है।

पण्डित नेहरू के इन शान्ति-यत्नों के पीछे भारतीय जनमत का ही बल नहीं है बल्कि एशिया के सभी राष्ट्रों की भ्रात्रीय सहानुभूति है और विश्व के एकोएक ईमानदार व्यक्ति की सद्भावना भी है। कारण, फ़ॉरमोसा को लेकर विश्व की शान्ति फिर भारी जोखिम में आ गयी है। युद्ध की इन घहरायी घटाओं को टालने में यदि पण्डित नेहरू सफल होते हैं तो विश्व-शान्ति की दिशा में मात्र थोड़े-से दिनों में भारत की यह तीसरी महान् कामयाबी होगी।

ज्ञानोदय का 'विशाल एशिया' विशेषांक जून मास में प्रकाशित हो रहा है। अङ्क का मूल्य दो रुपया प्रति रहेगा। किन्तु ज्ञानोदय के स्थायी ग्राहकों को वह साधारण रूप में, अर्थात् कुछ भी अतिरिक्त व्यय किये बिना ही, प्राप्त होगा। अङ्क निश्चित रूप से हिन्दी साहित्य और हिन्दी पत्र-जगत में एक नयी और महत्त्व की चीज़ होगा। आपकी प्रति सुरक्षित रहे और निकलते ही आपको आपो-आप मिल जाय इसके लिए अगले मास तक ज्ञानोदय के स्थायी ग्राहक अवश्य बन जायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्थिक जगत

सोहनराज मोहनौत, एम० ए०

देश में सहकारी लोकराज की स्थापना ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का मूल उद्देश्य रहा है। हाल ही में आवाडी में हुए अपने हीरक जयन्ती वार्षिक अधिवेशन में कांग्रेस ने यह निश्चय किया है कि उसका उद्देश्य अब एक समाजवादी समाज की स्थापना करना होगा। सामान्य धारणा, कांग्रेस में और कांग्रेस के बाहर, यही रही है कि सहकारी लोकराज और समाजवादी व्यवस्था एक ही है। इससे अधिक उदार विचार वालों का मत यही रहा है कि ये दो प्रणालियाँ चाहे एक न भी हों, परस्पर अनुकूल तो हैं ही।

कुछ निष्पक्ष अर्थ विचारकों ने इस सिद्धान्त में शंका की है। आर्थिक इतिहास इस शंका की पुष्टि करता है। सामान्य जनता की दिन प्रतिदिन की समस्याओं में उलझे हुए राजनैतिक नेता इस अन्तर को न समझें, या चुनावों के जंजाल में फँसे हुए किसी दल विशेष के निर्वाचन-विशेषज्ञ औरों को भुलावा देने का प्रयास करें, जिस सहकारी अर्थ-व्यवस्था की परिकल्पना गान्धीजी ने की थी, समाजवादी प्रणाली से कोसों दूर है। अति गतिशील विमानों के युग में यह दूरी चाहे जितनी भी कम अनुभव हो, कांग्रेस ने इस निश्चय से एक लम्बी सैद्धान्तिक यात्रा पूरी करली है। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि अब देश के तीनों बड़े दल एक राजकीय पूँजीवाद की कल्पना करने लगे हैं। साम्यवाद या समाजवाद का व्यावहारिक रूप राजकीय पूँजीवाद ही रहा है।

इस दिशा में कांग्रेस के विचारों की झलक कुछ समय से स्पष्ट हो रही है। पंचवर्षीय योजना पर हुए संसद में विवाद के समय आयोजन आयोग के तत्कालीन उप-सभापति और भारत के योजना मन्त्री श्री गुलजारीलाल नन्दा ने कहा था: "मैं जो इस देश के भविष्य की कल्पना करता हूँ वह यह है कि बड़े पैमाने पर चलित उद्योग और वाणिज्य सामूहिक रूप से व्यवस्थित होंगे और सहकारी समितियाँ छोटे उद्योग और व्यापार की व्यवस्था करेंगी।"

इस दिशा में गत वर्ष वायु यातायात का राष्ट्रीयकरण किया गया था। अभी हाल ही में इम्पीरियल बैंक और कुछ अन्य अधिकोषों के राष्ट्रीयकरण का निश्चय किया गया है। कुछ माह पहले भारत सरकार ने सरकारी-प्रबन्ध में एक लोहे और इस्पात का कारखाना खोलने का निश्चय किया था जो उड़ीसा में रूरकेला में स्थापित होगा। इस कारखाने की प्रारम्भिक उत्पादन-शक्ति ५ लाख टन होगी जो शनैः शनैः बढ़ा कर १० लाख टन करदी जायगी। इसकी प्रारम्भिक लागत लगभग ७२ करोड़ रुपये होगी जिसमें से जर्मन साझेदार 'डैमाग क्रुप' करीब १० करोड़ रुपया लगायेंगे। उनके विशेषज्ञों की सेवाओं के लिए सरकार ने २ करोड़ रुपया देना स्वीकार किया है।

लोहे और इस्पात के नये कारखानों को लेकर अभी पर्याप्त विवाद हुआ है। यद्यपि १९४८ में सरकार ने अपनी औद्योगिक नीति के सम्बन्ध में प्रकाशित विज्ञप्ति में यह घोषणा की थी कि लोहे और इस्पात का उद्योग उन ६ उद्योगों में से है जिसमें कोई भी नया कारखाना सरकार ही लगायेगी, हाल ही में श्री घनश्यामदास बिड़ला और श्री बृजमोहन बिड़ला ने विदेशों की यात्रा की थी और ब्रिटेन के एक उद्योगपति की सहायता से नया इस्पात का कारखाना खोलने का प्रस्ताव रखा। सामान्य रूप से ऐसी धारणा होने लगी थी कि भारत सरकार अपनी नीति बदल देगी और श्री बिड़ला को न केवल नया कारखाना खोलने की अनुमति मिलेगी बल्कि उचित वित्त-सहयोग भी प्राप्त होगा।

हुआ ठीक इसके विपरीत ही। संसद में आर्थिक नीति को लेकर जो विवाद हुआ उसमें सरकार ने यदि बदलने का कुछ रुख दिखाया तो वह यह था कि वे अभी पूर्व घोषित औद्योगिक नीति पर अडिग हैं। उससे भी अधिक दिलचस्प बात यह है कि सरकार ने उसी प्रस्ताव का उपयोग करके अपने अधीन एक नया कारखाना बिठाने का संकल्प किया है। विचारणीय विषय यह है कि क्या ऐसा कदम निजी व्यवसाय द्वारा उद्योगों के नये प्रस्ताव में अड़चन नहीं बनेगा?

इसी उद्योग को लेकर इसी माह में एक और भी अधिक महत्वपूर्ण घटना घटी है। भारत और रूस के बीच समझौते के अनुसार सोवियत देश की सहायता से सरकार ने एक और इस्पात के कारखाने की स्थापना का निश्चय किया है। निजी व्यवसाय-क्षेत्र से अनेक शंकाएँ प्रस्तुत की गयी हैं। शंकाओं का स्वरूप राजनैतिक तो है ही, यह भी प्रश्न उठाया गया है कि क्या रूस भारत को सबसे आधुनिक और कार्य-कुशल यन्त्र और विधियाँ दे सकेगा? जहाँ राजनैतिक शंकाएँ निराधार नहीं, दूसरी शंका में अधिक तथ्य नहीं मालूम होता।

इन तीन प्रस्तावों के अतिरिक्त भारत की इस्पात उत्पादन की शक्ति केवल १२ लाख टन की थी। अभी उत्पादन करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतियोगिता नं० २ के निर्णय के बारे में पृष्ठ ५६ पर देखिए

भाषा और साहित्य के ज्ञान-विकास में नया प्रयोग

ज्ञानचक्र प्रतियोगिता नं० ४ द्वारा

१०१ रु० अवश्य जीतिए

नगद-पुरस्कार और उसके साथ ही

शब्द-भण्डार का निर्माण ० शब्दों का यथार्थ उपयोग ० विशेषणों के सही प्रयोग से भाषा-सौंदर्य ० मनोरंजन के साथ ज्ञान-वर्द्धन ज्ञान-वर्द्धन से बुद्धि-विकास

ज्ञानोदय के हर ग्रंक में हम अपने पाठक-पाठिकाग्रों के मनोरंजन, ज्ञानवर्द्धन, विचारोत्तेजन तथा शब्द-भण्डार के निर्माण ग्रौर शब्दों के सही प्रयोग द्वारा भाषा-सौंदर्य के लिए एक नया ज्ञान चक्र प्रति मास उपस्थित करते हैं। विश्वास यह है कि यह प्रतियोगिता-क्रम साधारण पाठक से लेकर छात्र-छात्राग्रों, महिला-बालक तथा काम-काजी व्यवसायी सभी के लिए समान रूप से उपयोगी सिद्ध होगा। लीजिए अब ज्ञानचक्र नं० ४ हल कीजिए।

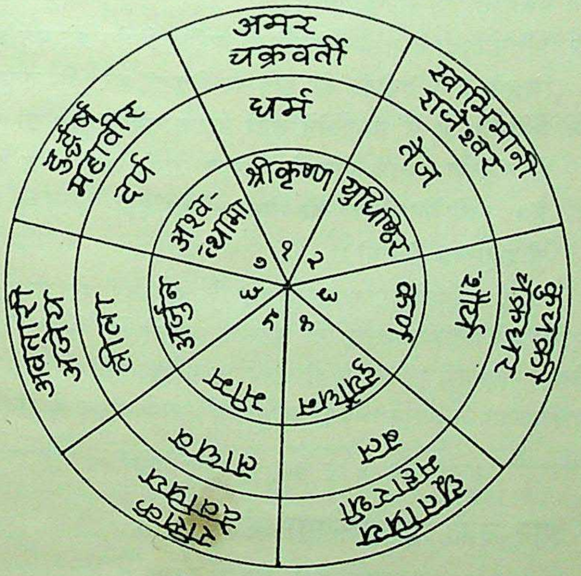

इस पहेली को आप कैसे हल करेंगे

साथ छपा 'ज्ञान-चक्र' सात खानों में विभाजित है। केन्द्र के पास के सातों खानों में श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर ग्रादि विषय-संज्ञाएँ निर्धारित स्थान पर रखी हैं। इनके क्रम ग्रौर स्थान में परिवर्तन नहीं होगा। इसीलिए कूपन में ये नाम छाप दिये गये हैं।

इस केन्द्र के प्रत्येक खाने के ऊपर मध्य के खाने में सातों विषयों में से हरेक का गुण ग्रस्त-व्यस्त ढंग से रखा है। किस विषय के लिए कौन-सा गुण उपयुक्त होगा यह ग्रापको स्थिर करके गुण-भाव वाले बीच के खाने में, छपे नाम के ऊपर, लिखना है। ज्ञान-चक्र के बाहरी खानों में उसी प्रकार प्रत्येक विषय के दो-दो विशेषण ग्रस्त-व्यस्त रखे हैं। ग्रापको प्रत्येक के दो उपयुक्त विशेषण चुनकर प्रत्येक विषय के ऊपर विशेषण के खानों में लिखने हैं।

उदाहरण : केन्द्र के १ संख्यक कोष्ठक में विषय-संज्ञा है 'श्रीकृष्ण'। उसके ऊपर मध्य कोष्ठक में उसका गुण-भाव-वाची है 'धर्म', ग्रौर बाहिरी कोष्ठक में दो विशेषण 'ग्रमर' ग्रौर 'चक्रवर्ती' हैं। यथार्थ में 'श्रीकृष्ण' का गुण-भाव वाची होना चाहिए 'लीला' जो ग्रस्त-व्यस्त करके छठे कोष्ठक में पड़ा है। ऐसे ही 'ग्रमर' ग्रौर 'चक्रवर्ती' विशेषण भी ठीक नहीं हैं, वह तो 'ग्रवतारी' ग्रौर 'चक्रधर' होना चाहिए जो क्रमशः छठे ग्रौर तीसरे कोष्ठकों में रखे हैं। इस प्रकार इस प्रथम संख्यक खाने की शुद्ध पूर्ति कूपन में छपे ग्रनुसार हुई।

इसी प्रकार पूरे कूपन की पूर्ति कर, ग्रंतिम तिथि तक कार्यालय में भेजनी चाहिए।

संभव है आपका ही हल सही हो !

नियम ग्रौर प्रतियोगिता कूपन अगले पृष्ठ पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस कूपन पर ही उत्तर भेजिए

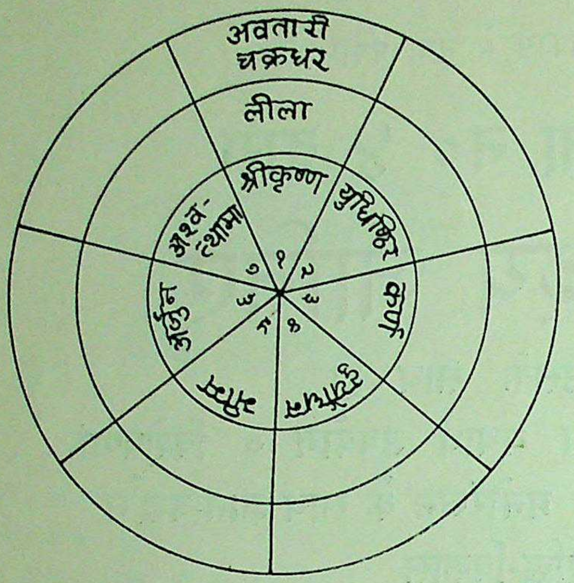

इस प्रतियोगिता में निर्णायक-समिति का निर्णय मुझे अन्तिम तथा वैधानिक रूप से मान्य होगा।

नाम

पूरा पता

(कृपया स्पष्ट अक्षरों में स्याही से ही लिखिए)

ज्ञान-चक्र नं० ४

यह पूर्ति बृहस्पतिवार ३१ मार्च १९५५ तक आ जानी चाहिए। इसके बाद आयी पूर्तियाँ अस्वीकृत हो जायेंगी।

यहाँ से काट कर अलग कीजिए

नियम और शर्तें

१. ज्ञान-चक्र प्रतियोगिता में कोई प्रवेश-शुल्क नहीं है परन्तु ज्ञानोदय के पाठक-पाठिकाएँ ही इसमें भाग ले सकेंगे।

२. ज्ञानोदय में प्रकाशित प्रतियोगिता-कूपनों पर ही पूर्तियाँ स्वीकार की जायँगी।

३. गन्दी, अस्पष्ट, पेंसिल से लिखी या काट-छाँट की गयी पूर्तियाँ अस्वीकृत कर दी जायँगी। अक्षर स्पष्ट तथा स्याही से लिखे जाने आवश्यक हैं।

४. सभी पूर्तियाँ "ज्ञानचक्र प्रतियोगिता नं ३, ज्ञानोदय कार्यालय, ११ क्लाइव रो, कलकत्ता–१" के नाम आनी चाहिए। और इसके लिए नीचे कोने में लगा छपा-छपाया पता ही काट कर अपने लिफ़ाफ़े पर चिपका देना आवश्यक है।

५. कार्यालय में इस प्रतियोगिता की पूर्तियाँ प्राप्त होने की अन्तिम तिथि ३१ मार्च है। इसके बाद आई प्रतियोगिता-पूर्तियों पर विचार नहीं होगा।

६. प्रत्येक कूपन पर भेजने वाले का नाम और पूरा पता स्पष्ट लिखा जाना चाहिए। नाम-पता ठीक न होने पर सही पूर्तियाँ भी रद्द हो जायँगी।

७. डाक में कूपन गुम हो जाने या देर से प्राप्त होने का कोई उत्तरदायित्व ज्ञानोदय कार्यालय पर न होगा।

८. ज्ञानोदय का कोई कर्मचारी या उससे सम्बन्धित व्यक्ति इस प्रतियोगिता में भाग न ले सकेगा।

९. निर्णायक समिति के हल से अक्षरश: मिलने वाले सर्व-शुद्ध उत्तर पर १०१ रुपए नगद पुरस्कार स्वरूप दिये जायँगे। एक से अधिक शुद्ध हल आने पर पुरस्कार-राशि बराबर बाँट दी जायगी।

१०. सर्व शुद्ध हल न आने पर न्यूनतम अशुद्धियों वाली पूर्ति या पूर्तियों पर ही पुरस्कार दे दिया जायगा।

११. विजेता का नाम और पता तथा सर्व-शुद्ध हल मई मास के अंक (जो २३ अप्रैल १९५५ को प्रकाशित होगा) में प्रकाशित किया जायगा।

१२. प्रतियोगिता के सम्बन्ध में किसी व्यक्ति विशेष को पत्र आदि लिखने से प्रतियोगी की पूर्ति अस्वीकृत कर दी जायगी।

१३. प्रतियोगिता में भाग लेने वाले पाठक अपनी पूर्ति की पुष्टि में संक्षिप्त प्रमाण पूर्तियों के साथ नत्थी करके भेज सकते हैं। इससे निर्णायकों को न्यूनतम अशुद्धियाँ निर्धारित करने में सहायता मिलेगी।

यह प्रतियोगिता ज्ञानोदय के पाठकों में शब्दों के भावों की बोध-गम्यता को अग्रसर कराने के लिए विशुद्ध शिक्षात्मक दृष्टिकोण से ही आरम्भ की जा रही है। इसलिए सभी आयु के व्यक्ति तथा महिलाएँ इसमें भाग ले सकेंगे।

यहाँ से काट कर अलग कीजिए

ज्ञान-चक्र प्रतियोगिता नं ४
ज्ञानोदय कार्यालय,
११ क्लाइव रो,
कलकत्ता-१

यह अंश काट कर अपनी पूर्ति के लिफ़ाफ़े पर चिपकाइए अन्यथा पूर्ति प्रतियोगिता में स्वीकार नहीं की जायगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाली तीनों कम्पनियों की उत्पादन-शक्ति में उचित वृद्धि की योजना बनायी गयी है। इसी आयोजन के अन्तर्गत भारत सरकार की सहायता से 'इण्डियन आयरन ऐण्ड स्टील कम्पनी' को विश्व अधिकोष से करीब १५ करोड़ रुपये का ऋण मिला था। टाटा कम्पनी को भारत सरकार ने १० करोड़ रुपये का ऋण दिया है।

जर्मन सहायता से बिठाये गये कारखाने की लागत करीब ७२ करोड़ रुपये और अन्य दो कारखानों की लागत लगभग एक-एक सौ करोड़ रुपये होगी। जब ये सारे कारखाने उत्पादन करने लगेंगे तब भारत की उत्पादन-शक्ति ३५ लाख टन से अधिक हो जायगी। अनुमान है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक यह शक्ति ६० लाख टन हो जानी चाहिए। इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए भारत सरकार को दो और दस-दस लाख टन के कारखाने स्थापित करने का आयोजन करना होगा।

अमेरिका की इस्पात उत्पादन-शक्ति ११०० लाख टन से भी अधिक है। रूस की उत्पादन-शक्ति ३५० लाख टन और ब्रिटेन की १८० लाख टन है। इधर भारत में माँग बढ़ रही है और उधर मध्यपूर्व और दक्षिणपूर्व एशिया में इस्पात की खपत के लिए खुला क्षेत्र पड़ा है।

* * * *

इसी हलचल को लेकर ऐसा विदित होता है भारत के उद्योग और वाणिज्य मन्त्री श्री कृष्णमाचारी ने त्याग-पत्र दे दिया है।

किन्तु जहाँ आर्थिक नीति इस प्रकार निजी व्यवसाय से उदासीन मालूम होती है, उसी की सहायता के लिए "इण्डस्ट्रियल क्रेडिट और इन्वेस्टमेण्ट कौरपोरेशन ऑफ इण्डिया" (भारतीय औद्योगिक साख और विनियोग कौरपोरेशन) की स्थापना की गयी है। इसकी अधिकृत पूंजी २५ करोड़ रुपये और संचालित पूंजी ५ करोड़ रुपये की होगी। चालू पूंजी में से १०० लाख रुपये के शेयर कुछ ब्रिटिश व्यवसायियों ने और ५० लाख रुपये के शेयर अमरीकी व्यवसायियों ने लिये हैं। भारत में २ करोड़ रुपये के शेयर विनियोगी संस्थाएँ, जैसे अधिकोष और बीमा कम्पनियों ने ले लिये हैं और बाकी बचे १५० लाख रुपये के शेयर सार्वजनिक रूप से संचालित किये गये हैं। कौरपोरेशन को ५ करोड़ रुपये का ऋण भारत सरकार से प्राप्त होगा और विश्व अधिकोष (इण्टरनेशनल बैंक ऑफ रिकन्सट्रक्शन ऐण्ड डेवलपमेण्ट) ७।। करोड़ रुपये का ऋण देगी। श्री आरकट रामास्वामी मुदालियर कौरपोरेशन के अध्यक्ष नियुक्त हुए हैं और संचालक-मण्डल में अनेक प्रतिष्ठित व्यवसायी और उद्योगपतियों को स्थान मिला है जिसमें श्री घनश्यामदास बिड़ला, सर बद्रीदास गोयनका, श्री कस्तूर भाई लाल भाई, श्री ए० डी० शराफ, श्री बिरेन मुखर्जी, श्री धर्मसी मुक्तराज खटाऊ उल्लेखनीय हैं। बैंक ऑफ इंगलैण्ड के मुख्य कोषाध्यक्ष श्री पी० एस० बीले इसके प्रमुख-व्यवस्थापक नियुक्त किये गये हैं। कौरपोरेशन का मुख्य उद्देश्य भारत में निजी व्यवसाय की पूँजी सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करना है। भारतीय उद्योगों को इस कौरपोरेशन से केवल ऋण ही नहीं मिलेगा बल्कि नये उद्योगों के स्थापन में भी योगदान प्राप्त होगा। भारत में लगभग इसी उद्देश्य से औद्योगिक वित्त कौरपोरेशन (इण्डस्ट्रियल फ़ाइनेन्स कौरपोरेशन) की व्यवस्था की गयी थी। आशा है नयी संस्था नये निजी उद्योगों के विनियोग को प्रोत्साहन देगी।

* * * *

जहाँ एक ओर इस प्रकार निजी व्यवसाय को सरकार हर प्रकार की सहायता देने के साधन जुटा रही है, उसके नियन्त्रण के लिए नये-नये कदम उठाये जा रहे हैं। संसद के पिछले अधिवेशन में एक बिल शेयर बाजारों में हुए शेयरों के व्यापार को नियन्त्रित करने के लिए प्रस्तुत किया गया था। बिल का स्वरूप गोरवाला समिति की सम्मतियों पर आधारित है। यह ऐसे बिल का प्रारूप तैयार करने के लिए ही नियुक्त की गयी थी और उन्होंने अपनी रिपोर्ट अगस्त १९५१ में तैयार की थी। यह प्रारूप विभिन्न व्यावसायिक संस्थाओं के पास आलोचना के लिए भेजा गया था और उनकी समीक्षाओं के प्रकाश में प्रस्तुत बिल तैयार किया गया है। बिल उन शर्तों की विवेचना करता है जो कि किसी शेयर बाजार को सम्मानित करने के लिए पूरी करनी चाहिए, बिल इस प्रकार सम्मानित शेयर बाजारों को नियन्त्रित करने की भी व्यवस्था करता है।

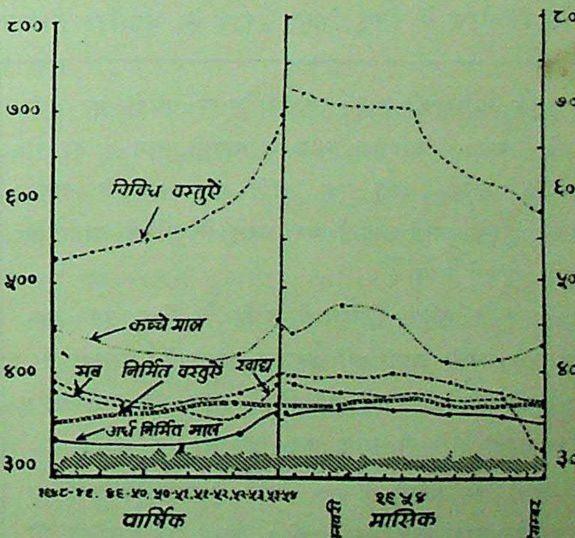

: भारतीय थोक-मूल्यों में उतार चढ़ाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत सरकार ने इन बाजारों के विधान और नियमों को स्वीकृत करने और संकट-कालीन परिस्थितियों के सुधार के लिए अपने अधीन कुछ अधिकार बिल के अन्तर्गत लिये हैं। कुछ विशेष प्रकार के सौदों और कुछ विशेष प्रकार के शेयरों और प्रपत्रों में व्यापार का बहिष्कार किया है।

* * * *

पाट उद्योग की क्षीण अवस्था से चिन्तित होकर भारत सरकार ने अगस्त १९५३ में एक जाँच आयोग की नियुक्ति की थी। इसके दो मुख्य कारण थे : पाट के मूल्यों में १९५२-५३ में भारी कटौती, अनियन्त्रित सट्टे से उत्पन्न विशेष परिस्थिति। यों भी जहाँ और उद्योग उत्पादन में वृद्धि कर रहे थे पाट का उत्पादन क्षीण होता जा रहा था। इधर देश के विभाजन के कारण और पाकिस्तान से व्यापार करने की कठिनाइयों से उद्योग के लिए कच्चे माल की समस्या भी कुछ अधिक ही जटिल होती जा रही थी। समिति ने अपनी रिपोर्ट मार्च १९५४ में प्रस्तुत की। हाल ही में इस रिपोर्ट पर भारत सरकार ने कुछ निश्चय किये हैं। मुख्य निश्चय इस प्रकार हैं—पाट अधिक उपजाओ आन्दोलन सीमित रहना चाहिए और अच्छे प्रकार के पाट उत्पादन पर जोर दिया जाये ; पाट में पूर्ण स्वावलम्बी बनने की भारत को आवश्यकता नहीं है ; प्रचार और शोध से, अच्छे बीज और खाद के प्रयोग से, यातायात के और विनिमय के साधनों में सुधार से, इस उद्देश्य की पूर्ति हो ; भारतीय पाट का निर्यात किसी दशा में न किया जाय ; नयी मिलों का निर्माण न हो, उपलब्ध उत्पादन-शक्ति का अधिकाधिक प्रयोग किया जाय और इसे किसी प्रकार सीमित नहीं रखा जाय ; पाट और पाट के सामान के लिए एक नियन्त्रित बाजार की व्यवस्था की जाय ; पाट के उचित मूल्य के निर्धारण के लिए किसी प्रकार के वैधानिक नियन्त्रण की आवश्यकता नहीं है ; जाँच आयोग की सम्मति के अनुसार पाट बोर्ड की नियुक्ति की भी आवश्यकता नहीं है क्योंकि उचित मूल्य का प्रश्न एक दीर्घकालीन समस्या है ; और संकटकाल में सरकार उचित कदम उठायेगी।

> एक अमेरिकी युवक अपनी टूरर गाड़ी पर देश देखने निकला। पश्चिम तरफ़ के पहाड़ी भाग में था तो एक दिन दोपहर को एक छोटी सी बस्ती के बाहर भोजन करके आगे चढ़ाई पर बढ़ने से पहिले गाड़ी के पहिये जाँचने लगा।
>
> धुरी से पहिये निकालने आदि के लिए एक छह-सात इंच लम्बी चाबी की जरूरत पड़ती है। चाबी थी, पर उसके छेद में रास्ते की मिट्टी बहुत भर गयी थी। युवक चाबी से वही साफ़ कर रहा था।
>
> तभी उस बस्ती के एक बुजुर्ग से महाशय वहाँ आ गये। देर तक खड़े देखते रहे। अन्त को पूछ ही तो बैठे : चाबी भर रहे हैं न?

* * *

अभी-अभी भारतीय बीमा वार्षिकी का १९५४ का अंक प्रकाशित किया गया है जिसमें १९५३ में बीमा उद्योग की प्रगति की समीक्षा की गयी है। इस वर्ष में कुल ३१९ कम्पनियाँ क्रियाशील थीं जिनमें २१५ भारतीय कम्पनियाँ थीं। भारतीय कम्पनियों में ११३ केवल जीवन बीमा, ६१ केवल विविध बीमा और ४१ दोनों प्रकार के बीमा का काम करती थीं।

१९५३ में कुल ३८ लाख से अधिक जीवन बीमा पत्र संचालित थे जो पिछले वर्ष से १। लाख अधिक थे। इस प्रकार कुल बीमा में ७९५.८६ करोड़ रुपये से ८२९.७८ करोड़ रुपये की वृद्धि हुई। भारतीय कम्पनियों की व्यवस्था-लागत में कोई विशेष कमी नहीं हुई और १९५३ में वह २७.२ प्रतिशत था। विदेशी कम्पनियों की लागत में १.७ प्रतिशत की वृद्धि हुई किन्तु फिर भी वह २२.४ प्रतिशत ही रहा।

* * * *

पिछले लगभग तीन वर्षों में मार्च १९५१ से जुलाई १९५४ तक भारत को कुल २३ करोड़ रुपयों की विदेशी सहायता उपलब्ध हुई है, जिसमें से पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत १३२ करोड़ रुपयों का लाभ उठाया गया है। चालू वर्ष में लगभग ३२ करोड़ रुपये की सहायता की आशा की जाती है। कुल सहायता में से ११७ करोड़ रुपये ऋण के रूप में प्राप्त हुए हैं जिसमें से ९० करोड़ संयुक्त राज्य अमेरिका से और २७ करोड़ रुपये विश्व अधिकोष से मिले हैं। संयुक्त राज्य का ऋण खाद्य सहायता के रूप में प्राप्त हुआ था। वास्तविक सहायता संयुक्त राज्य से कोलम्बो योजना के अन्तर्गत कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, नारवे, फ़ोर्ड फ़ाउण्डेशन आदि से मिली है। जून १९५४ में संयुक्त राज्य ने लगभग ८० करोड़ रुपये की आर्थिक सहायता भारत को देने का निश्चय किया था।

* * *

संयुक्त राज्य अमेरिका के अगले वर्ष के बजट में चालू वर्ष से ११० करोड़ डॉलर (लगभग ५२४ करोड़ रुपये) की कटौती करने का निश्चय किया गया है। भारतीय केन्द्रीय सरकार का कुल बजट ही ४४० करोड़ का है।

इस वर्ष कुल खर्च का अनुमान ६३५० करोड़ डॉलर का है जो घटाकर अगले वर्ष ६२४० करोड़ डॉलर (लगभग २९७०० करोड़ रुपया) कर दिया जायगा। घटी हुई रकम हमारे सम्पूर्ण पंचवर्षीय योजना से दस गुनी से भी अधिक है।

(शेषांश पृष्ठ ६५ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

० कन्हय्यालाल मिश्र प्रभाकर ०

भारत का जीवन सन्देश है शान्ति, जीवन दर्शन है अनेकता में एकता, इसलिए उसकी शान्तिप्रियता उसका कोई राजनैतिक दाव नहीं, सांस्कृतिक दान है। विश्व की राजनीति पर १९५४ में भारत का जो असाधारण प्रभाव पड़ा, उसका यही रहस्य है।

भारत की राजनैतिक क्रान्ति फ्रान्सीसी बस्तियों के भारत में मिलने के साथ पूर्ण हो गयी––इस अपवाद के साथ कि उसकी अभी एक ईंट बाकी है। यह एक ईंट है पुर्तगाली बस्तियों का भारत में मिल जाना। पुर्तगाल का डिक्टेटर सालाजार वहाँ अपनी सेनाओं का प्रदर्शन करता है। भारत के प्रधान मन्त्री ने कहा था कि हम १॥ मिनट में इन बस्तियों पर कब्जा कर सकते हैं, पर हमारा मार्ग शक्ति का नहीं, सुलह-समझौते का है, इसलिए हम प्रतीक्षा करेंगे, प्रयाण नहीं।

इस पृष्ठभूमि में गोआ के अहिंसात्मक सत्याग्रह के सम्बन्ध में श्री अशोक मेहता का यह कथन कि––'भारत ने अपनी स्वतन्त्रता अहिंसक कार्यों से प्राप्त की है और स्वतन्त्रता के समय भी गोआ में युद्ध न छेड़कर आन्दोलन चलाना भारत के उच्च आदर्श का एक नया प्रमाण है'––भारत की संस्कार वृत्ति का ही समर्थन है, किसी राजनैतिक सूझ का नहीं।

अँगरेज-सभ्यता !

भारत के उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन से नागपुर में किसी ने पूछा––"अँगरेज-सभ्यता की क्या विशेषताएँ हैं?"

उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया––"मतदान-पेटी, क्रिकेट का बल्ला, लिमिटेड कम्पनियाँ और पवित्र बाइबिल का अधिकृत संस्करण।"

अपने सूत्र की स्वयं व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा––"क्रिकेट का बल्ला जनता को सिखाता है कि बस खेल खेलते रहो, फिर हार हो या जीत, और हार भी हो जाय तो उसे सम्मान के साथ स्वीकार किया जाय।"

लिमिटेड कम्पनियाँ व्यापार और उद्योग के विकास में साथ रहने और साथ चलने की भावना देती हैं।

मतदान पेटियाँ सिखाती हैं कि संविधान में परिवर्तन तलवार से नहीं, मतों द्वारा किये जा सकते हैं।

बाइबिल के सम्बन्ध में सम्वाद मौन है। शायद वे कहते "और बाइबिल सिखाती है कि इस संसार से बाहर भी कुछ है। उसे जीवन में छुए रहो और तब चाहे जो करो।"

पृथक अस्तित्व

भारतीय सिख-शिक्षा-सम्मेलन के अध्यक्ष पद से फ्रान्स में भारत के राजदूत श्री सरदार हरदत्तसिंह मलिक ने अपने भाषण में एक साँस में दो बातें कहीं।

पहली यह कि "आज लोगों के धर्म परिवर्तन की जरूरत नहीं है; जरूरत इस बात की है कि लोग अपने-अपने धर्मों पर आचरण करें और दूसरी यह कि सिखों को चाहिए कि अपने पंच ककार––कड़ा, केश, कच्छ, कृपाण, कंघा––न छोड़ें; क्योंकि इन निशानों को छोड़ देने के बाद हम अपना पृथक् अस्तित्व ही भूल जायँगे।"

तो शायद सरदारजी भी उनमें हैं, जो धर्म और संस्कृति के प्रथम पुरोहित दर्जियों और नाइयों को मानते हैं, जो मानव और मानव के बीच की प्रत्यक्ष भेद-रेखाओं का निर्माण करने में ही रात-दिन लगे रहते हैं।

१५ और २६ !

१५ अगस्त और २६ जनवरी हमारे राष्ट्रीय त्यौहार हैं। दोनों दिन सब संस्थाएँ और सद्गृहस्थ अपने-अपने यहाँ झण्डे फहराते हैं, समारोह रचाते हैं। दो बातें ऐसी हैं कि इन महान त्योहारों पर हर बार होती हैं, पर शायद अभी उनकी तरफ किसी का ध्यान नहीं गया।

पहली बात है यह कि सर्वत्र झण्डा फहराने का समय एक होना चाहिए, पर होता यह है कि उस दिन कोई न कोई नेता बाहर से बुलाया जाता है और सब समारोहों में उसे ले जाने के लिए हर जगह के समय में अन्तर रखा जाता है। यह प्रथा बन्द होनी चाहिए।

दूसरी बात यह है कि बुलाने के लिए राष्ट्रीय झण्डे प्रायः गान्धी आश्रम से खरीदे जाते हैं और वहाँ के नियमानुसार हर झण्डे पर दाम और नाम की चिट चिपकी रहती है, जो फहराने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के समय उमड़ती भावना पर गहरी चोट करती है। और बार बार ध्यान उसी चिट पर जा अटकता है।

एक बड़े गान्धी आश्रम के प्रधान विक्रेता से मैंने कहा, तो बोले—बात तो ठीक है, पर बिना चिट के विक्रेता का काम बहुत बढ़ जायगा; क्योंकि सब झण्डे एक ही कीमत के तो होते नहीं।

बात ठीक है, पर झण्डे के साथ जुड़ी भावना इतनी छोटी चीज़ नहीं कि उसे विक्रेता की दिक्कत के मोल हम बेचें। फिर झण्डे तीन साइज़ों में हमेशा एक ही तरह के कपड़े पर बनाये जा सकते हैं और साइज़ के अनुसार मूल्य आँखों में रह सकता है।

सचित्र इतिहास !

भारतीय लोकसभा की दीवारों के चित्रीकरण की एक योजना बनायी गयी है। उसके अनुसार लोकसभा का भवन मोहिंजोदड़ो युग से गान्धी युग तक के चित्रों की स्थायी प्रदर्शिनी हो जायगा।

ये होंगे समाधिस्थ शिव, रामराज्य की स्थापना, मनु, महावीर, बुद्ध के जीवन-दृश्य, पोरस, अशोक, अशोक-स्तम्भ, अशोक-साम्राज्य का नक्शा, कनिष्क की बौद्ध-परिषद, चन्द्रगुप्त, विक्रमादित्य, कालिदास, गंगावतरण, महाराजा पृथ्वीराज, अकबर, टोडरमल, तानसेन, महाराणा प्रताप, हैदरअली, रणजीत-सिंह, झाँसी की रानी, तात्या टोपे, रामकृष्ण, विवेकानन्द, राममोहन राय, ग़ालिब, टैगोर, अरविन्द, जलियाँवाला बाग, स्वाधीनता प्रस्ताव, दाण्डी यात्रा, आज़ाद हिन्द फ़ौज, सुभाष बोस, १५ अगस्त की रात, लाल किले पर झण्डा आदि के दृश्य होंगे। साथ ही दादा भाई से बाद के नेताओं के चित्र होंगे।

पचास-पचास वर्ग फीट के १२० पैनल बनेंगे। यह भित्ति-चित्र भारतीय जीवन और कला की सर्वोत्तम परम्परा के प्रतिनिधि होंगे। इस प्रकार हमारा लोक-सभा-भवन भवन की दृष्टि से ही नहीं, कला की दृष्टि से भी स्मरणीय हो जायगा। योजना का स्वागत है।

अमेरिका की एक बड़ी व्यापार संस्था के एक विशेष विभाग में कुछ स्त्रियाँ काम करती थीं। वेतन अच्छा था। जल्दी ही कुछ पैसा जुड़ गया। और सालेक भर बाद एक दिन सब बैठ रहीं। बड़े परेशान हुए संस्था के अधिकारी। उन्हें काम की सारी आवश्यक जानकारी हो गयी थी, मगर कई कोशिशें करने पर भी एक न लौटी काम पर। तब मैनेजर को एक तरकीब सूझी। नये से नया फ़ैशन का सामान बेचने वाली एक मित्र की व्यापार संस्था द्वारा उसने उन सभी स्त्रियों के पास सामान के सूचीपत्र भिजवाये। दो दिन के भीतर ही सब काम पर लौट आयीं।

डाक्टर या डिक्टेटर ?

३१ वें भारतीय चिकित्सा-सम्मेलन के सभापति पद से डाक्टर एस० सी० सेन ने देशी चिकित्सा प्रणालियों के सम्बन्ध में कहा—"आयुर्वेद में अनुसन्धान की आवश्यकता तो मेरी समझ में आती है, किन्तु फिलहाल आयुर्वेद, यूनानी, होमियो-पैथी और प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धतियों का जो रूप है, उनकी शिक्षा के लिए और स्कूल-कालेज खोलने का मैं विरोधी हूँ। मैं दृढ़तापूर्वक यह कहूँगा कि आधुनिक चिकित्सा प्रणाली को ही राष्ट्रीय चिकित्सा प्रणाली घोषित किया जाय। चिकित्सा के व्यवसाय में प्रवेश का द्वार एक ही होना चाहिए।"

लगता है कि डा० सेन डाक्टरी से अधिक डिक्टेटरी के लिए उपयुक्त हैं और डिक्टेटरी भी हिटलरी, जो यहूदियों को खदेड़ कर जर्मनी में सिर्फ जर्मनों को ही रखना चाहता था; पर आदरणीय सेन यह क्यों भूलते हैं कि जब उनकी डाक्टरी का जन्म भी नहीं हुआ था, तब से देशी प्रणालियाँ राष्ट्र के स्वास्थ्य की ज़िम्मेदारी को सफलतापूर्वक सम्भाले हुए हैं और आज भी इस देश के कई करोड़ आदमी उन्हीं पर निर्भर हैं। नहले पर दहला न माना जाय, तो इतना निवेदन और—सर्जरी और निदान पद्धति के कारण आपकी लाड़ली प्रणाली की उपेक्षा करना निश्चय ही असम्भव हो, पर चिकित्सा की दूसरी अनेक गलियों में तो ये पुरानी प्रणालियाँ आज भी नयी प्रणाली के कान कतरा करती हैं।

स्मारक नहीं, स्तूप !

भाई श्रीराम शर्मा 'प्रेम' के एक पत्र की एक पंक्ति है—"बहुत-सी स्मृतियाँ तो हमारी प्रतीक्षा करके सो ही गयीं, पर थोड़े दिन बाद महान सन्त और हमारी संस्कृति के श्रेष्ठ अग्रदूत श्री स्वामी रामतीर्थ की समाधि के स्थान का ज्ञान भी किसी को न रहेगा।"

सचमुच यह स्थिति बहुत दारुण है, पर ऐसी नहीं कि इसका समाधान कठिन हो। यह असम्भव और कठिन इसलिए लगता है कि स्मारक का ध्यान करते ही हमारे दिमाग में एक खर्चीली योजना आ जाती है, पर आज की आवश्यकता सिर्फ इतनी है कि हम छोटे-छोटे स्तूप बनाकर इन स्मृतियों को सुरक्षित करदें—नष्ट होने से बचादें।

यह कार्य राज्यों के मुख्यमन्त्री अपने जिलाधीशों को एक आदेश भेज कर भी कर सकते हैं और स्थानीय कार्यकर्ता भी। हम आज इतना करलें और विश्वास रखें कि अगली पीढ़ी उन मामूली स्तूपों को भव्य भवनों का रूप देने में चूकेगी नहीं।

लोहार का कारखाना

आचार्या और कवियित्री श्रीमती महादेवी ने अपने एक भाषण में कहा—"आज का युग साहित्यकारों के लिए एक चुनौती का युग है। बुद्धि और साहित्य के आपस में एक समानान्तर न चलने से मानव-जीवन अपना सन्तुलन खो बैठा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। बुद्धि के बीच रेखाएँ पैदा हो गयी हैं, जो विभाजन का काम कर रही हैं; जब कि उनका काम हृदय को जोड़ना है।

"ऐसा मालूम होता है कि हृदय रूपी हिमालय से निकलने वाली भाव-गंगा कहीं पाषाणों के बीच अवरुद्ध हो गयी है। निश्चय ही वैज्ञानिक प्रगति और उपकरणों के अनुसन्धानों से ऐसा प्रतीत होता है कि सारा विश्व सिमटकर एक मुहल्ला या परिवार बन गया है, पर उसमें परिवार का वह स्नेह कहाँ है?

"तो प्रश्न यह है कि बुद्धि की इस चुनौती को कौन स्वीकार करेगा और कौन उसका उत्तर देगा?

"सुनती हूँ कि लोग कहते हैं कि यह युग साहित्य सृजन या कला-निर्माण का नहीं है, तो जी चाहता है कि कहूँ कि तब यह युग जीवन का भी नहीं है, सिर्फ लोहार का एक कारखाना होकर ही रह गया है।"

दोनों को!

साहित्य अकादमी ने मलयालम के मनीषी कवि श्री वल्लतोल नारायण मेनन को १५००० रुपये इसलिए देने का निश्चय किया है कि वे इस धन से ऋग्वेद का अपना अनुवाद प्रकाशित कर सकें। यह निर्णय अपने में इतना पूर्ण है कि दाता और गृहीता दोनों को बधाई का अधिकारी बनाता है।

अदृश्य खतरा!

भारतीय भू-रक्षण-समिति के तीसरे वार्षिक अधिवेशन में बिहार के मुख्य मन्त्री श्री श्रीकृष्णसिंह ने जो कुछ कहा, उससे राष्ट्र का ध्यान एक अदृश्य खतरे की ओर तेज़ी से जाना चाहिए। वह खतरा है भूमि के निरन्तर क्षरण का।

"इस युग के मानव को कुछ ऐसे उपाय ढूँढ़ निकालने हैं, जिनके द्वारा सभ्यता का विनाश करने वाली दो चीज़ों—अणु-युद्ध और भू-क्षरण को रोका जा सके।" भूरक्षण विषयों के विख्यात विशेषज्ञ श्री वार्ड शेफर्ड का यह मत देते हुए श्री बाबू ने कहा—"इन दोनों में भी भू-क्षरण अधिक विनाशकारी है। इस समस्या को हल करने के लिए कृषि, नवविज्ञान और इंजीनियरी आदि क्षेत्रों में वैज्ञानिक ज्ञान का निरन्तर उपयोग होना चाहिए। भारत जैसे देश में आबादी बढ़ने का अर्थ भूमि पर दबाव बढ़ना है। इससे वनों का नाश और उससे वनस्पति और जीवों के बीच का प्राकृतिक सन्तुलन बिगड़ता है। प्रकृति पहले अकाल और भयंकर बीमारियों की सहायता से इस असंतुलन को दूर कर दिया करती थी, पर अब उसे ऐसा नहीं करने दिया जाता, इस लिए भू-रक्षण की और भी अधिक आवश्यकता है।"

वे आये थे!

इस बार के गणतन्त्र महोत्सव में पाकिस्तान के गवर्नर जनरल श्री गुलाम मुहम्मद भी पधारे थे और उनके साथ डाक्टर खान साहब भी।

एक महिला पत्रकार थीं। पड़ोस में ही रहती थीं। काम में अपने खासी सफल थीं, पर घर की देखरेख आदि के मामलों में निहायत काहिल थीं।

महीनों से खीज रही थीं कि बिस्तर, चादर, ग़लाफ़, परदे सब बड़े गन्दे हो गये हैं; ठीक से सिले हुए नहीं हैं; और सब पुरानी चाल के भी हैं। मगर बदले वे नहीं गये। कौन लगाये हाथ?

एक दिन देखा: हर चीज़ नयी है। मैंने तत्काल सराहा: बड़ा परिश्रम किया होगा आपने! अचरज से बोलीं: कहाँ? मैंने तो नैश्नल लायब्रेरी को लिखकर इन विषयों पर सारा साहित्य मँगा लिया था। फिर 'अपना काम आप करो' नामक पत्रिका में एक लेख तय्यार करके भेज दिया। वह इतना पसन्द किया गया कि सम्पादक महोदय ने तत्काल साधारण से तीन गुना पारिश्रमिक भेजा। बस, फिर एक फ्रेंच फ़ैशन कम्पनी को ठेका दे दिया। यह सब उसी ने किया, मैं तो क्या करती!

गुलाम श्री का आना हमारी बौद्धिक सफलता थी, तो खान श्री का आना हमारे हृदय का वरदान!

डाक्टर खान साहब और खान अब्दुल गफ्फ़ार खाँ, एक नहीं, एक लाख बटवारे हों और राजनीति लाख-लाख सिर पीटे, हमारे लिए कभी विदेशी नहीं हो सकते।

यह पार्टियों की राजनीति का कितना घृणित उदाहरण है कि खानबन्धु बरसों पाकिस्तान की जेल में रहे और इसे भुला-दिया गया कि कायदे आजम श्री मुहम्मद अली जिन्ना इतिहास में लाख बार पाकिस्तान के निर्माता कहे जायँ, पाकिस्तान की स्वतन्त्रता के पिता खानबन्धु ही हैं।

हायरे यह अभागा इतिहास; जो सदा ही जीतनेवाले आततायियों को राजा और हारनेवालों को डाकू कहता रहा।

नया तर्क!

एक ईसाई सम्मेलन में भारतीय ईसाई सम्मेलन के सभापति डाक्टर पी० बी० चेरियान ने एक मजेदार नया तर्क दिया कि जो हिन्दुस्तानी ईसाई हो जाता है, वह कभी अपनी राष्ट्रीयता नहीं बदलता; ईसाई होकर भी भारतीय रहता है, इसलिए हम लोगों के प्रचार कार्य का भारत में विरोध असंगत है।

इस तर्क को तौलना हो, तो दूसरे पलड़े पर एक चोर का यह तर्क रखना पड़ेगा कि हम रात-रात भर जागकर, भटक कर यदि किसी का माल अपने घर ले आते हैं, तो इसमें देश की सरकार क्यों परेशान होती है? अरे भाई, देश का धन हम कहीं बाहर तो नहीं भेजते; रहता तो वह देशमें ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथी का हल !

उपमन्त्री श्री जगमोहनसिंह नेगी ने उत्तर प्रदेश की विधान सभा में बताया कि हाथी के द्वारा चलनेवाला हल बना लिया गया है और शीघ्र ही उसका प्रदर्शन किया जायगा। हाथी का

> **ज्ञानचक्र प्रतियोगिता नं० २ जिस रूप में प्रकाशित हुई उसमें कार्यालय की असावधानी से एक भूल हो गयी। 'नटराज' विशेषण एक स्थान के बजाय दो पर छप गया कार्यालय को इसका अत्यन्त खेद है। निर्णायकों ने ऐसी दशा में अधिक उचित यही समझा कि इस प्रतियोगिता पर विचार ही न किया जाय। इस प्रकार अब अगले, अप्रैल, अंक में ज्ञानचक्र प्रतियोगिता नं० ३ का फल देखें।**

हल ट्रैक्टर की जगह ले सकता है और उससे एक दिन में १० एकड़ जमीन जोती जा सकती है। इस प्रकार वह ट्रैक्टर से सस्ता पड़ता है, यह सौराष्ट्र में किये प्रयोग से सिद्ध हो चुका है।

यह तो हुई हिसाब की बात, उपयोगिता की दृष्टि पर इस घटना का एक बड़ा पहलू है यह कि हाथी अभी तक समाज में प्रमुखों के प्रभावतन्त्र का प्रदर्शन यन्त्र था और अब वह हो गया श्रम का, उत्पादन का, निर्माण का एक अंग और यों युग का एक प्रतीक कि यह साधनों की पूजा का नहीं, साधना की पूजा का युग आ चला।

और वह हाथी बचारा? क्या मखमली झूलों और चाँदी-सोने के हौदों के स्थान पर हल में जुड़ने के कारण अब अपने अभाग्य को कोसे, उस पर रोये? ऐसा करे, तो अाभागा है; क्यों वह अनुभव करे कि कल तक वह दूसरों की शक्ति का प्रदर्शन था और अब वह अपनी क्षमता का पाठ हो गया; ऐसा पाठ कि उसे वे भी पढ़ें, तो पार उतरें, जो कल तक उसकी पीठ चढ़े, इतराया करते थे!!

(पृष्ठ ५२ का शेषांश)

जहाँ इस वर्ष ४५० करोड़ डालर का अभाव संघीय सरकार के बजट में होगा, गत वर्ष वह केवल २४० करोड़ डालर ही रहेगा। विदेशी सहायता पर लगभग ४० करोड़ डालर अधिक खर्च किया जायगा। इस वर्ष ४७० करोड़ डालर की विदेशी सहायता का अनुमान लगाया जाता है। सुरक्षा और सेना पर ३४०० करोड़ डालर (१६२०० करोड़ रुपया) खर्च किया जायगा। भारत सरकार का सुरक्षा बजट २०० करोड़ डालर से कुछ ही अधिक है। केवल अणशक्ति के विकास पर ही २०० करोड़ डालर खर्च करने की धारणा है।

संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति जनरल आइजनहोवर ने घोषणा की है कि पिछला वर्ष युद्धकालीन अर्थव्यवस्था से शान्तिकालीन अर्थव्यवस्था की ओर सफल प्रगति का द्योतक है और हमारी बढ़ती हुई आर्थिक सम्पन्नता, युद्ध या मुद्रा स्फीति के कृत्रिम प्रोत्साहनों से मुक्त, एक सुदृढ़ नींव पर आश्रित हो गयी है।

(पृष्ठ ४० का शेषांश)

मतभेद के अनन्तर वाद-विवाद होने लगा। उन्हीं दिनों पण्डित पद्मसिंहजी शर्मा एक दिन मेरे घर कलकत्ता पधारे। उनके आगमन का उद्देश्य ऊपलिखित शंका का समाधान करना ही था। हम दोनों पण्डित गोविन्दनारायणजी मिश्र के घर गये। मिश्रजी उस समय गंगास्नान के निमित्त गये हुए थे और लौटने ही वाले थे। हम वहीं ठहर गये। दोपहर को मिश्रजी संध्या-बंदन कर हाथ में गंगाजल का वड़ा सा लोटा लिये घर लौटे। आते ही उन्होंने पूछा क्या बात है? मैंने पण्डित पद्मसिंहजी शर्मा का मिश्रजी से परिचय कराया और तदन्तर आने का अभिप्राय। इसी समय शर्माजी बोल उठे—मिश्रजी, इस समय आप विश्राम करें हम अपराह्न में आकर अपनी शंका का समाधान कर लेंगे। पर पण्डित गोविन्द नारायणजी मिश्र भला कब मानने लगे। उन्होंने एक न मानी और हाथ में बड़ा-सा गंगा-जल का लोटा लिये खड़े ही खड़े तत्सम्बन्धी प्राचीन-अर्वाचीन प्रयोगों का उल्लेख उद्धरण कह सुनाया। जब हम मिश्रजी के यहाँ से लौटे तो पण्डित पद्मसिंह शर्मा के ये शब्द थे—'भाई, ऐसी विभूति तो मैंने कहीं नहीं देखी।'

क्रान्तिकारी दल में

पराड़करजी जहाँ एक ओर प्रकट रूप में पत्रकारी और उस समय के साहित्य-महारथियों से साहित्य एवं शास्त्र की चर्चा किया करते, वहीं गुप्त रूप से क्रान्तिकारी दल के कार्य में भी प्रमुख सहयोग देते। पराड़करजी के मामा श्री देउस्करजी के यहाँ क्रान्तिकारियों की नित्य बैठकें होतीं। यहीं पराड़करजी का सम्बन्ध तात्कालीन क्रान्तिकारियों से हो गया। आप श्री अरविन्द-घोष तथा बारीन्द्र घोष के निकट सम्पर्क में आये। इस दल का मुख्य कार्यालय चन्दननगर में था। बंगाल के नवयुवकों में इन दिनों उग्र विचारों एवं क्रान्तिकारी भावनाओं का जोर था। गीता और अरविन्द घोष के व्याख्यान नवयुवकों को बड़े प्रिय थे। ये दोनों ही एक नये जीवन का संचार कर रही थीं। देश को सशस्त्र क्रान्तिकर एवं आतंकवाद द्वारा स्वतन्त्र करना

(शेषांश पृष्ठ ६५ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पृष्ठ १८ का शेषांश)

यह प्राथमिक शिक्षा उपाध्याय के कामों में से ही थी। बौद्ध विहारों में 'आचरिय' यह कार्य करते ही थे। ललितविस्तर में इन्हें 'दारकाचार्य' कहा गया है। राजतरंगिणी में सूर्य्य और कामदेव नामक दो अध्यापकों का उल्लेख मिलता है। इन शिक्षकों को राजाओं या धनिकों से वृत्ति मिलती होगी, लेकिन कितने ही तो इस कार्य को जीविका के रूप में ग्रहण करते थे और विद्यार्थियों के देय पर निर्भर करते थे। कभी-कभी चन्दे से भी पाठशालाएँ चलायी जाती थीं। आचार्य को अपनी आय बनाये रखने के लिए अपनी ख्याति भी बनाये रखनी होती थी। कभी-कभी आचार्य विद्यार्थियों के लिए किसी धनी के घर में रहने और खाने-पीने की व्यवस्था कर देते थे।

पाठशाला जाते समय बालक एक फलक साथ ले जाते थे। बोधिसत्व कुमार भी उरगसार चन्दनमय फलक और मणिरत्न प्रत्युप्त दिव्य सुवर्णतिरक लेकर आचार्य विश्वामित्र के पास गये थे। लेकिन कैसे तब लिखते थे, इसका विवरण नहीं मिलता। शायद फलक पर समान रूप से महीन धूल डालकर उसी पर तीरक से लिखा जाता था। यह अभी भी कहीं-कहीं प्रचलित है। कितने ही खरिया से भी लिखते होंगे।

राजकीय विभागों में अन्तर्भुक्त न होने पर भी समाज में प्राथमिक शिक्षा का काफ़ी प्रचार था। लोग बड़े चाव से बालकों को पढ़ाते थे। शिक्षित बालकों की समाज में मान-गौन थी।

(पृष्ठ ३२ का शेषांश)

निजात्मक; संभोग, वात्सल्य दूसरी प्रकार के सेक्स-सम्बन्धी तथा अनुरोध (appeal), संगति (gregariousness) तीसरी प्रकार के समूहात्मक गिनाये गये हैं। इतनी नैसर्गिक प्रवृत्तियों के साथ, वह मोम का पुतला माता-पिता की दुनिया में खपने लायक हो जाता है; इसके बाद ही बाह्य प्रकृति उस मोम पर अपनी कलाकार अँगुलियों को चलाना शुरू कर देती है। वस्तुतः यही उसके व्यक्तित्व का प्रारम्भ है, यहीं से उसके मनोविज्ञान की सीमाएँ प्रारम्भ होती हैं और उसका तथाकथित 'मन' अपनी अमलदारी बढ़ाता चलता है। भौतिक-विज्ञान की सारी सेना उसके साथ है, उसका सेनापति 'मस्तिष्क' बड़ा ही विलक्षण योद्धा है, वह मन से कुछ ही दर्जे घटकर है, उसकी खुद की एक अमलदारी है, जिसका निर्माण करने में प्राणी-शास्त्र (Biology) ने अपने कौशल का अन्त ही कर दिया है। अगर मेरे पाठक का सरकिट दुरुस्त है, तो मैं सोचता हूँ, वह बहुत जल्दी उस मस्तिष्क-कोष को पकड़ लेगा, जिसमें 'दिमाग की बात' का सरकिट जुड़ा हुआ है। सिर खुजाने की अपेक्षा यदि आप सम्पादक को पूछें, तो वे ही आपको 'ज्ञानोदय' के उस अंक का पता दे देंगे। तो मन की इस समस्त-शक्ति-सेना, साधन और वर्तमान के विस्तार का नाम है 'चेतन' (Concious)।

मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण, वस्तुतः उसके निजी और समग्र वातावरण के बीच प्रतिक्रिया से होता है। बाहरी वातावरण से तात्पर्य उसकी सभ्यता, संस्कृति, समाज, कुटुम्ब, धर्म-भावना, नीति, आचारशास्त्र आदि से है। इसके अतिरिक्त शरीर से बाहर जितनी भौतिक क्रियाएँ प्रकृति में प्रति पल घटित होती रहती हैं, उनकी प्रतिक्रियाएँ भी शरीर पर तथा उसके द्वारा मन पर प्रभाव डालती रहती हैं। मनुष्य की गोचर और अगोचर (Psycho-organic) प्रणाली तीन प्रकार के स्नायु-कोषों से सम्पन्न है: 'संग्राहक' (Receptors) जो बाह्य उन्मेषकों (Stimulii) को ग्रहण करते हैं, जैसे कि संवेद-केन्द्र (Sense-organs) त्वक्-कोष आदि, दूसरे 'प्रचारक' (Effectors) जो आदेश का पालन करते हैं, जैसे पेशियाँ, रस-स्राव-ग्रन्थियाँ, रक्त-नलिकाएँ आदि; और तीसरे 'संयोजक' (Connectors) जो उन्मेषकों को ग्रहण करके उनके अनुसार आदेश देते हैं: यह संयोजक ही वस्तुतः मस्तिष्क और समस्त शरीर में फैला हुआ उसका स्नायु-जाल है।

मनुष्य के व्यक्तित्व की प्रतिनिधि प्रकृति यौगिक (Twin) मानी गयी है। फ्रायड ने इन दोनों को 'ईगो' और 'सुपर ईगो' के नाम से अभिहित किया है। यदि भारतीय चिन्ताधारा से देखना हो तो पहले प्रकार को भौतिक अहम् और दूसरे प्रकार को आध्यात्मिक-अहम् कहा जा सकता है। 'ईगो' का निर्माण होता है, मनुष्य की भौतिक चारदीवारी, उसकी शारीरिक अनुभूति, तथा उसकी नैसर्गिक-प्रवृत्तियों (Instincts) से; उसके सुपर ईगो के निर्माण के लिए जिम्मेदार हैं उसकी जातिगत परम्पराएँ, उसके युग की नैतिक धाराएँ, सत्यं, शिवं सुन्दरम् की उसकी आकांक्षा, माँ का सुरक्षामय प्यार, समाज से उसके सम्बन्ध आदि-आदि। इन दोनों प्रवृत्तियों में सहयोग और संगति से मनुष्य को मिलता है उसके चेतन में मानसिक स्वास्थ्य और मानसिक-सुख; यदि दोनों प्रवृत्तियों में मतभेद और असहयोग हो तो उसके चेतन में कई कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाती हैं, जिनसे मनुष्य को सदैव ही जूझना पड़ता है; यदि मतभेद गम्भीर हो और संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाय तो इसका तात्पर्य मानसिक-रोगों की उत्पत्ति है।

मनुष्य के वर्तमान का धरातल उसका चेतन (Conscious) है, इसमें, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, उसके मस्तिष्क की सामर्थ्य, उसका वर्तमान वातावरण, तथा तत्काल-पर्यन्त की उसकी उपलब्धि सम्मिलित है; इसके नीचे के स्तर में बड़ा गहरा विस्तार है, धरातल के नीचे के विस्तार को नाम दिया गया है 'अवचेतन' (Unconscious) का; यह मनुष्य के समस्त जीवन की संचित निधि है, इसमें रत्न हैं, माणिक्य हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोना है और इन सब में मिली हुई मिट्टी है, कूड़ा है, कर्कट है।

कल्पना कीजिये कि हमारे जीवन का प्रत्येक अनुभव, अणोरणीयान् या महतोमहीयान्, एक शस्त्रास्त्र-सज्जित सबल-समर्थ सैनिक है। यह सेना प्रत्येक क्षण बढ़ती जा रही है। जिस सैनिक से हम काम लेते हैं, वह प्रथम पंक्ति में खड़ा रहता है, जिससे कल काम लिया था, वह पीछे की दूसरी पंक्ति में, जिससे और भी पहले काम लिया था, वह और भी पीछे की पंक्ति में है। यदि आज उससे काम लिया जाय, जिसकी जरूरत हमें आठ-दस दिन पहले पड़ी थी, तो उसे पीछे की पंक्ति में तलाश करके आगे बुलाने में कुछ समय लग सकता है, पर एक बार आगे आने पर वह अग्रिम पंक्ति में स्थान पा लेता है, उसकी प्राचीनता नष्ट हो जाती है। स्पष्ट है कि हमारे अनुभव के कुछ सैनिक तो पृष्ठ पंक्ति में इसलिए पड़ जाते हैं कि उनसे हमें सरोकार नहीं रहता। थोड़ा-सा स्मृति पर दबाव डालने भर से इन सैनिकों को बुलाया जा सकता है, और इनसे आवश्यक सेवा ली जा सकती है।

किन्तु पीछे की पंक्ति में जाने के और भी कारण हो सकते हैं। मूल रूप में मनुष्य एक पशु है, पशु ही से उसका विकास हुआ है। अतः उसकी मूल सम्पत्ति केवल वे संस्कार हैं, जिनको लेकर वह पैदा होता है। फ्रायड का तो कहना है कि इन संस्कारों का मूल उत्स भी कामैषणा (Libido) के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यही कारण है कि अति शैशव में उसकी सब क्रियाएँ अँगूठा चूसना, माँ का स्तन पीना, माँ की गोद में हुलसना-मचलना, मल-त्याग, जननेन्द्रीय-स्पर्श आदि सभी क्रियाएँ काम-वासना की ही परिचायक हैं। उसकी शक्ति का स्रोत भी यही कामैषणा है, इसी से वह हिलने-डुलने, चलने-बैठने-दौड़ने, जीने आदि की क्रिया करने की प्रेरणा पाता है। किन्तु मनुष्य पशु जैसा पैदा होकर भी पशु नहीं रहता, वह मनुष्य बनता है। उसके अर्जित-संस्कार मनुष्य की सभ्यता, संस्कृति धर्म, नैतिक बन्धन आदि के संघर्ष में आते हैं। बहुतेरी हरकतों से उसे रोका जाता है, डराया जाता है, धमकाया जाता है, सिखाया जाता है। दूसरे शब्दों में, हरकतों के ये सिपाही उसे बलात् पीछे की पंक्ति में छिपा देने पड़ते हैं, ताकि दूसरों की दृष्टि में न पड़ सकें। उसका सुपर ईगो कड़ी धमकी के साथ इन मुँहज़ोर सिपाहियों को गर्दनिया देकर पीछे खदेड़ देता है, ईगो अपनी सृष्टि की इस दुर्दशा को चाहता नहीं, पर उसे सहना पड़ता है। इन बागी सिपाहियों की भी एक पल्टन छिपे-छिपे तैयार होती रहती है और हम कुछ जान नहीं पाते। जब-तब मौका पाकर ये बलवाई छापा मारा करते हैं, और हमारे मानसिक-दुर्ग की दीवारें कँपाया करते हैं। यदि यह बटालियन रुकती नहीं, या इसे किसी तरह वश नहीं किया गया तो सारे दुर्ग पर ये बलवाई दखल कर सकते हैं, उस समय हम मनुष्य को 'उत्क्षिप्त' की संज्ञा बड़े मज़े से दे सकते हैं।

हमारी सभ्यता भी वस्तुतः हमारे अवचेतन ही का एक अंग है। सुविधा के लिए इसे हम 'संचित अवचेतन' (Collective unconscious) कह सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व तो एक बड़े समूह का अंश मात्र है। प्रत्येक व्यक्ति का चेतन, उसकी भौतिक और सामाजिक चारदीवारी में घिरा हुआ एक पृथक् तत्व है; उसका वैयक्तिक अवचेतन भी उसी के लिए है; किन्तु इन दोनों के नीचे सब काल के सब मनुष्यों के संचित व्यक्तित्वों की भी एक समष्टि है जो सारे संसार के मनुष्यों के मनोविज्ञान के नीचे बिछी हुई है, और जिसमें से मनुष्य का विशिष्ट मनोविज्ञान उत्पन्न होता है, और बढ़ता है। वस्तुतः इसी संचित अवचेतन (Collective unconscious) में से संस्कारों के द्वारा या फ्रायड के मतानुसार कामैषणा के अणु-बम के द्वारा मनुष्य को अटूट शक्ति प्राप्त होती रहती है। मनुष्य की व्यक्तिगत स्मृतियों, इच्छाओं तथा वासनाओं से इस शक्ति का परिष्कार होता रहता है। यह परिष्कृत शक्ति ही हमारे व्यक्तित्व का दृढ़ आधार है। चेतन मन से विचार और अनुभूतियाँ तथा अवचेतन मन से संस्कारों की माँग की पूर्ति के लिए हमारी प्रवृत्तियाँ हलचल करती हैं; बाहर का वातावरण हमारे शरीर के संग्राहकों को प्रेरित करता है, संयोजक उन उन्मेषकों की आवश्यकता के अनुसार आदेश प्रचारित करता है, और परिचारक पेशियाँ चेतन मन के स्तर पर कार्य करती हैं, और अवचेतन की गुफा में 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की हमारी धारणाओं को जमा करती रहती हैं, कि आगे के उन्मेषकों का किस तरह आतिथ्य किया जाय।

चेतन और अवचेतन के बीच की दीवार के दरवाज़े पर हमने एक सेंसर बिठा रखा है, जो भूले-बिसरे सैनिकों को आवश्यकतानुसार छाँट-बाँट कर बाहर चेतन के क्षेत्र में आने देता है, या वहाँ आने से रोक देता है। ये सब सिपाही अलग-अलग अणु के बम हैं। इनमें से कुछ अनुभूतियाँ दुःखजनक या लज्जाजनक होने के कारण सेंसर के द्वारा भीतर बन्द करदी जाती हैं, और विहित-मार्ग से उन्हें बाहर चैतन्य के धरातल पर नहीं आने दिया जाता। चैतन्य की सतह पर लाकर उनकी शक्ति का उदात्तीकरण (Sublimation) किया जा सकता है। किन्तु जब उनका प्रवेश बन्द हो जाता है, तो सारे अवचेतन के दरवाजे को बन्द कर देना पड़ता है; अतः हम उस बागी सैनिक के साथ ही साथ अवचेतन में पड़े हुए बहुतेरे अन्य सैनिकों से भी हाथ धो बैठने के लिए विवश होते हैं। कालान्तर में वे भी बाहर निकलने के लिए बागी का साथ देते हैं। अवचेतन के द्वार रुद्ध होने के कारण मनुष्य की बुद्धि का ऊपरी स्तर भी खाली-खाली-सा ही हो जाता है, और वह खोया-खोया-सा रहता है। उसके ईगो और सुपर ईगो में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संघर्ष मच जाता है ; और कालान्तर में अवचेतन में छिपी हुई बागियों की वह सेवा अवचेतन की दीवार फोड़कर सारे चेतन पर छा जाती है। सेंसर महाराज अपने दरवाजे पर ताला लगा चाबी कमर में फँसा टाँग पसारकर सोये रहते हैं, उन्हें कोई पूछता नहीं। पूछा जाता है, तो केवल सरकारी पागलखाने का पहरेदार, कि वह कहीं बेखबर होकर न सो जाय।

लेकिन, ठहरिये ; इसी से आप फैसला न कर लीजिये। चूंकि मोटे रूप में मानसिक क्रिया के भौतिक आधार को मैंने आपके निकट उपस्थित कर दिया है, इसलिए यह न समझ लीजिए कि मनुष्य या अधिक-से-अधिक प्राणी की व्यवहार-प्रणाली का नाम ही मनोविज्ञान है। मनोविज्ञानियों का एक दल वस्तुतः ऐसा समझता भी है। वे कहते हैं मनुष्य ने व्यवहार के बारे में जो कुछ सीखा है, वह अपने से इतर दूसरे प्राणियों या पशुओं पर प्रयोग करके सीखा है। अपने आप का अध्ययन करके तथ्य संग्रह करने का कोई विज्ञान नहीं है, ऐसी इनकी मान्यता है। किन्तु यह सच नहीं है। मेरे पैर की बिवाई का दुःख मेरे सिवा कोई नहीं जानता, आपके पैर में यदि बिवाई फटी है, और आप उससे परेशान हैं, तो आपके दुःख को मैं केवल समानता की धारणा के कारण ही समझ सकता हूँ, पर अनुभव नहीं कर सकता। इसके अलावा किसी बाह्य-वस्तु की प्रतीति भी पृथक्-पृथक् व्यक्ति को पृथक्-पृथक् ही होती है। चार अन्धों का हाथी को समझने का प्रयत्न आप जानते ही हैं, प्रयोग करके उन्होंने जो कुछ पाया, वह मनोविज्ञान के क्षेत्र की बात है, उन चारों व्यक्तियों की पड़ताल का योग हाथी के जिस समग्र रूप को प्रतिपादित करता है, वह पदार्थ विज्ञान के जिम्मे है। अतः मनोविज्ञान वह शास्त्र है जो व्यक्तिगत तथ्यों से तथा उन तथ्यों के व्यक्तिगत पहलुओं से सम्बन्ध रखता है, जिनको सामान्य-ज्ञान सार्वजनिक तथ्य समझता है।

शायद आप अन्तर्दर्शन (Introspectism) को वैज्ञानिक तरीका न समझें। मैं आपसे बहस नहीं करूँगा। क्योंकि अन्तर्दर्शन हो चाहे बहिर्दर्शन, सब में सार्वजनिक तथ्य तथा व्यक्तिगत तथ्य के बीच कोई सीमारेखा नहीं खींची जा सकती। जब हम किसी तथ्य को सोचते हैं तो वह व्यक्तिगत ही रहता है, पर कहते ही या बोलते ही वह सार्वजनिक हो जाता है, फिर भी उसका बोध और उसका अनुभव तो एक वस्तु नहीं हो जाता।

तो लीजिए, प्रकाश हो रहा है ; घड़ी सात बजा रही है, मन की कन्दरा में केवल फ्रायड के साथ कामैषणा में प्रवृत्त होकर परलोक नहीं तो इहलोक की मानसिक-दुनिया का ही आनन्द उठाने का सुयोग नहीं रह गया। मुझे लौटना है, 'दफ्तर जाना है' कह कर श्रीमतीजी अलग नाराज हो रही हैं ; वे मेरा मन तो क्या अपना मन भी कुछ समझती नहीं। अणु-बम जब उनके सामने कोई चीज नहीं तो मन-भर का यह बम उनके निकट क्या मूल्य रख सकता है ! तो चलूँ, चाय पी लूँ। मैं समझता हूँ, मैंने आखिर अपना काम भी तो पूरा कर ही लिया है।

पर, देखिए, एक बात और जान लीजिए, इतना सब कुछ कह देने पर भी मैंने कहीं मन का परिचय आपको नहीं दिया है। इतना सब कुछ लिख देने के बाद उसकी जरूरत है या नहीं, यह मैं नहीं समझ पाया ; और सच तो मेरी श्रीमतीजी ही क्या, मैं भी कुछ इसे समझ सका होऊँ, ऐसा नहीं दीखता। इसे कुछ शायद केवल वाक्जाल कहकर मेरी सफलता कहें, मैं बेशर्मी के साथ इसे असफलता स्वीकार कर लेता हूँ। पर, देखते हैं न ? कितना-सा अन्तर है सफलता और असफलता में ! अंशों का भी नहीं, केवल राय का !

(पृष्ठ ३५ का शेषांश)

कुछ भी नहीं होती, जैसे पानी। फिर यह देखा जाता है कि चीज़ किस काम में आयगी। बादशाह अकबर के बाल उनके पोते पड़पोते अच्छी कीमत में ख़रीद सकते हैं, लेकिन तब तक तुम ज़िन्दा नहीं रहोगे। हाँ, अपने बालबच्चों के लिए रख जाओ, तो रख जाओ। अच्छी विरासत रहेगी। मगर बादशाह अकबर की मूँछ का बाल ज़रूर कुछ कीमत रखता है। उनकी मूँछ का एक बाल रख कर कोई भी महाजन लाखों रुपये कर्ज़ दे सकता है। मगर उसके लिए ज़रूरत इस बात की है कि मूँछ का बाल नोचा हुआ होना चाहिए, उस्तरे से कटा हुआ नहीं, क्योंकि कटा हुआ बाल किसी कीमत का नहीं होता।"

यह सुनकर नुसरत मियाँ सिर खुजलाने लगे। इतने में बीबी ने शरबत का कटोरा लाकर थमाया और उन्होंने बड़े मियाँ की नजर किया। फिर बोले, "बड़े मियाँ, यह तो बड़ी मुश्किल की बात है। बादशाह अकबर हमेशा मूँछों के उस्तरा ही लगवाते हैं। वह बाल नोचे जाने की तकलीफ़ को बरदाश्त नहीं कर सकते।"

बूढ़ा शरबत पीता हुआ बोला, "और अगर किसी दिन नोच डालो, तो तुम्हारा सिर धड़ से अलग हो जाय। देखो, हुई न एक बाल की कीमत एक आदमी का सिर ?"

नुसरत मियाँ ने कहा, "मानता हूँ, बड़े मियाँ। आप जैसा अजीब सौदागर मैंने आज तक नहीं देखा था। और कैसे-कैसे बाल आप ख़रीद सकते हैं ?"

"देखो," बूढ़े मियाँ बोले, "वक्त-वक्त पर बालों की कीमत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घटती-बढ़ती रहती है। मिसाल के लिए, अभी तीन दिन पहले जमना के किनारे दीवान ख़ास की मजलिस हुई थी। उसमें सुना है कि बादशाह सलामत रीवाँ के राजा पर इतने ख़फ़ा हुए कि अगर वह सामने होता, तो उल्टा लटकवा देते। मजबूरन वह सिर्फ़ इतना कहकर रह गये: 'अगर वह हाथ जोड़े माबदौलत के हज़ूर में न आ खड़ा हुआ, तो माबदौलत उसकी मूँछें नोच डालेंगे, चाहे हमें उसके एक-एक बाल के लिए अपने तख़्त का एक-एक हीरा क्यों न अदा करना पड़े।' अब, बन्दे ख़ुदा के, अक्ल पर ज़ोर देकर सोचो कि बादशाह सलामत के तख़्त के एक हीरे की कीमत कम से कम एक लाख रुपये तो होगी ही। बस, समझ लो, अगर रीवाँ के राजा की मूँछ का एक बाल भी नोचा जा सके, तो एक लाख रुपये उलटे हाथ से बादशाह सलामत से वसूल किये जा सकते हैं। वसूल करने का काम मेरा रहा, बाल तुम नोच लाओ। नकद पचास हज़ार रुपये दूँगा। बोलो हो तैयार?"

भीतर नुसरत मियाँ की बीबी तो ख़ुशी के मारे ग़श खाकर गिर पड़ी। नुसरत हज्जाम ने बूढ़े मियाँ के पैर पकड़ लिये। बोले, "बड़े मियाँ, अपना पता बताते जाओ। आज से एक हफ़्ते के अन्दर अन्दर रीवाँ के राजा की मूँछ का बाल नोच कर न ला दिया, तो मेरा नाम नुसरत हज्जाम नहीं।"

"अच्छी बात है," बड़े मियाँ खड़े होते हुए बोले। "तुम मुझे एक हफ़्ते बाद शाही मसजिद की सीढ़ियों पर देखते रहना। किसी न किसी वक्त वहीं मिल लूँगा। मैं घूमता फिरता आदमी हूँ, कोई एक ठिकाना नहीं है।"

बड़े मियाँ तो चले गये, मगर नुसरत हज्जाम ने रीवाँ के सफ़र की तैयारी शुरू कर दी। अर्ज़ी लिखकर बादशाह सलामत से ग़ैरहाज़िरी की माफ़ी तलब की और मिलने पर दोपहर होते-न-होते रीवाँ की तरफ़ कूच बोल दिया।

तीसरे दिन रीवाँ के राजा के सामने हाज़िर होकर नुसरत हज्जाम ने सिर झुकाया और निवेदन किया: "हज़ूर, हिन्दुस्तान के शहंशाह का खास नाई हूँ। गुलाबजल दाढ़ी पर लगाते हुए ज़रा चुटकी सख्त हो गई, तो खड़े-खड़े निकलवा दिया। महाराज, मेरे बराबर सफ़ाई से हजामत बनाने वाला सारे हिन्दुस्तान में मिल जाय, तो मूँछें मुँड़ा दूँ। हजामत बनवानेवाला सो जाता है, और जब जागता है, तो देखता है कि दाढ़ी साफ़ हो गयी है। सरकार कदरदानी करें।"

बादशाह अकबर से दण्डित हुआ व्यक्ति रीवाँ के राजा के यहाँ शरण पाये, तो इसमें स्वयं राजा साहब की ही बड़ाई थी। रीवाँ के राजा ने उसी दिन दाढ़ी बनवाई और नुसरत को राजकीय नाई का पद मिल गया।

अगले दिन हजामत बनाते-बनाते नुसरत की नरम उंगलियों ने राजा रामचन्द्र की लम्बी-लम्बी मूँछों के दो-चार बालों को भी रगड़ा और उनकी जड़ में उसके नाखून से निकली हुई कोकीन लग गयी। हजामत ख़त्म होने तक कौशल के प्रयोग से उसके हाथ तीन बाल आये। नुसरत की कुशल उँगलियों ने उन्हें खींच लिया और राजा को बिल्कुल भी दर्द महसूस नहीं हुआ।

दूसरे दिन की हजामत के वक्त तक नसरत रीवाँ छोड़ चुका था।

बातचीत के एक सप्ताह बाद, अपने वादे के अनुसार, बड़े मियाँ शाही मसजिद की सीढ़ियों के पास मिले। नुसरत को देखते ही बड़ी उत्सुकता से उन्होंने पूछा, "लाये?"

"एक नहीं, तीन," नुसरत ने प्रसन्नता से फूल कर उत्तर दिया।

"देखो, भाई," बड़े मियाँ ने कहा। "इस वक्त तो मेरे पास पचास हज़ार रुपये हैं। इसलिए एक बाल दे दो। अगर बादशाह सलामत से इसकी कीमत वसूल हो गई तो बाकी दोनों भी मैं ले लूँगा। मन्ज़ूर है?"

नुसरत को क्या इनकार हो सकता था। उसने पचास हज़ार को माले ग़नीमत जाना। बड़े मियाँ ने बड़ी बारीकी से बाल का मुआयना किया और जब इतमीनान हो गया, तो पचास हज़ार रुपये नुसरत के हाथ पर रखे। नुसरत हैरत के साथ इस विचित्र सौदे को सम्पन्न होता देखता रहा और जब बूढ़े मियाँ वहाँ से चले गये, तब कहीं जाकर उसे यकीन हुआ कि एक बाल पचास हज़ार रुपये की कीमत का हो सकता है।

* * *

इसके एक सप्ताह बाद रीवाँ के प्रमुख सरदारों में एक हलचल मच गयी। जो भी सामन्त रीवाँ के राजा से मिलने आता उसके मुँह पर एक संशय का भाव दिखाई पड़ता और वह रीवाँ के राजा को विचित्र दृष्टि से देखता। आख़िर राजा रामचन्द्र से न रहा गया और एक प्रमुख सरदार को विदा करते समय उसने कहा, "क्या बात है, आज जो कोई मुझसे मिलता है, ऐसे मिलता है, जैसे मैं राजा रामचन्द्र नहीं, कोई और हूँ?"

"श्रीमान् ही इस रहस्य को भलीभाँति जानते हैं," सामन्त ने कहा। "किसे मालूम था कि महाराज रामचन्द्र रीवाँ का प्रतापी राज्य बादशाह अकबर के यहाँ बन्धक रख सकते हैं?"

"क्या कहा?" राजा रामचन्द्र की त्योरियाँ चढ़ गयीं। "रीवाँ का राज्य बन्धक रखा....मैंने! असम्भव। यह हमारा अपमान है।"

"क्षमा चाहता हूँ, सरदारों के पास इसका प्रमाण है...."

"किन सरदारों के पास है?....तुम्हारे पास है?" राजा रामचन्द्र ने मूँछें चबाते हुए कहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जी, श्रीमान्, इसी सेवक के पास है। बादशाह अकबर का राजदूत आज मन्त्रीजी के पास आया था। उसका कहना है कि राजा रामचन्द्र चार दिन के भीतर-भीतर रीवाँ का राज्य खाली कर दें क्योंकि जो रकम श्रीमान् ने आगरे के बादशाह से ली थी उसे वापस नहीं कर सके।"

"आप क्या बक रहे हैं!" राजा रामचन्द्र की आँखें क्रोध से लाल हो गयीं। "कहीं आप सब लोगों ने मिल कर आज भाँग तो नहीं पी ली?"

"श्रीमान्, यह खबर जल्दी ही सारे राज्यों में फैल जायगी और राजपूतों के हौसले पस्त हो जायँगे। उस समय सभी लोग भाँग पिये हुए होंगे यह नहीं समझा जा सकता।"

"उस राजदूत को हमारे सामने उपस्थित किया जाय," राजा रामचन्द्र ने कहा।

कुछ देर बाद ज़र्कवर्क पोशाक में एक सफ़ेद दाढ़ी वाला बूढ़ा वहाँ आकर उपस्थित हो गया। पीछे कई सामन्त खड़े थे। राजा रामचन्द्र ने कहा, "यह गप इन सरदारों को आकर तुम्हीं ने सुनाई है कि हमने आगरे के बादशाह के यहाँ अपना राज्य गिरवी रख दिया है?"

"जी, श्रीमान्," बूढ़े ने निवेदन किया। "यह सत्य मेरी ही वाणी से प्रकट हुआ है।"

राजा रामचन्द्र की उत्सुकता बढ़ गयी। मन ही मन उबाल खाकर उसने पूछा, "तुम्हारे पास इसका प्रमाण है?"

"जी, श्रीमान्," बूढ़े ने फिर विनयपूर्वक कहा, "इतना बड़ा प्रमाण जिसे कोई भी झुठला नहीं सकता। श्रीमान् ने तीन साल पहले आगरे की सल्तनत से एक ऐसी चीज़ ली थी, जिसकी कीमत रीवाँ का राज्य है। श्रीमान् ने वचन दिया था कि या तो तीन साल के भीतर-भीतर उस चीज़ को वापस कर देंगे, नहीं तो रीवाँ का राज्य बादशाह अकबर को सौंप देंगे...."

"सरासर झूठ है," राजा रामचन्द्र ने तलवार की मूँठ पर हाथ रखते हुए अपना क्रोध प्रदर्शित किया।

"कृपा करके मेरे सिर को एक राजदूत का सिर समझिये," बूढ़े व्यक्ति ने राजा रामचन्द्र की तलवार की मूठ पर नज़र गड़ा कर कहा। "मेरे पास प्रमाण है, और वह है श्रीमान् की मूँछ का एक बाल, जिसे रीवाँ के राज्य के बदले श्रीमान् ने आगे काम आने के लिए बादशाह अकबर के हज़ूर में बन्धक रखा था।"

"ओह।" राजा रामचन्द्र ने अपने कानों पर हाथ रख लिये। "इतना बड़ा झूठ आज तक नहीं सुना था...."

लेकिन तब तक बूढ़ा एक नक्काशीदार सोने की खूबसूरत और कीमती डिबिया अपने कपड़ों के भीतर से निकाल चुका था। उसने उसे खोला और राजा रामचन्द्र के सामने रख दिया। "प्रमाण उपस्थित है, श्रीमान्। अपने राज्य के अच्छे से अच्छे पारखी को बुला कर हज़ूर इस बात की पहचान करवा सकते हैं।"

राजा रामचन्द्र ने स्वयं डिबिया उठाकर उसमें से बाल को निकाला। उसे एक ही नज़र देखकर उन्होंने कहा, "नहीं, कोई ज़रूरत नहीं है। हम इसे पहचान सकते हैं। यह हमारी ही मूँछ का बाल है।"

"श्रीमान् की परख बेदाग़ है," बूढ़े व्यक्ति ने कहा।

"लेकिन हमारे साथ चालाकी खेली गयी है।"

"कोई इस पर विश्वास नहीं करेगा।"

"वह क्या चीज़ थी, जो हमने अपना राज्य बन्धक रख कर ली थी?"

"सद्भावना।"

"क्या!" रीवाँ नरेश आश्चर्य से बोले।

"जी, श्रीमान्, तीन साल हुए आपने बादशाह अकबर को वचन दिया था कि आप जल्दी-से-जल्दी उनके द्वारा आपको दी हुई सद्भावना को लौटा देंगे। बादशाह अकबर ने तीन साल तक उसकी प्रतीक्षा की, मगर आप आगरे के दरबार में अपने राजकुमारों को भेजते रहे, स्वयं कभी नहीं गये। आपको भय था कि शायद बादशाह अकबर के सामने आपको सिर झुकाना पड़े। भय और सद्भावना साथ-साथ नहीं रह सकते। बादशाह अकबर आपको अपने अधीन नहीं रखना चाहते। वह सारे हिन्दुस्तान को एक शक्ति के रूप में देखना चाहते हैं। बिखरी हुई ताकतों में एक को दूसरी से मिलाने के लिए दो ही चीज़ होती हैं: युद्ध या शान्ति। सन्देह और भय युद्ध को जन्म देते हैं, सुविचार और सद्भावना शान्ति को। यदि युद्ध होगा, तो रीवाँ का राज्य आगरे की ताकत के सामने नहीं बचेगा; शान्ति होगी, तो आप आगरे के बादशाह के साथ तख्त पर बराबर-बराबर बैठेंगे और ऐसा तभी होगा, जब आप आगरा जायँगे—अपनी मूँछ का बाल वापस लेने के लिए आपको आगरे जाना ही होगा।"

राजा रामचन्द्र की दृष्टि स्थिर थी। सहसा नज़रें नीची करके वह बोले, "और अगर हम न जायँ?"

"तो आप रीवाँ का राज्य हार बैठे हैं, यह बाल इसका प्रमाण होगा," बूढ़े ने कहा। "सारा रीवाँ राज्य आपको घृणा की दृष्टि से देखेगा।"

राजा रामचन्द्र खिलखिला कर हँस पड़े। "और जो हमें घृणा की दृष्टि से देखेगा वह इस ज़माने के चाणक्य राजा बीरबल को नहीं पहचान जायगा? वाह, राजा बीरबल, यह आपकी ही अकल का नमूना है....।"

सामन्तगण आश्चर्य से यह व्यापार देख रहे थे। बीरबल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का नाम सुनते ही उनकी आँखें फट गयी। राजा बीरबल सीधे हो गये और क्षण भर में ही दोनों एक दूसरे के गले लगे हुए थे।

कहने की आवश्यकता नहीं कि राजा बीरबल रीवाँ के राजा को अपने साथ लेकर आगरा लौटे और बादशाह अकबर ने उनका असाधारण सम्मान किया। लेकिन राजा बीरबल तो साथ-ही-साथ स्वर्ग से बूढ़ों वाली दाढ़ी भी बढ़ाये आये थे और बादशाह के पुरखों का समाचार भी लाये थे। किस प्रकार उन्होंने बादशाह को आकर बताया कि स्वर्ग में नाइयों की कमी है, बादशाह के पुरखों के बाल बढ़े हुए हैं, और किस प्रकार बादशाह ने यह सोचा कि नुसरत से अच्छा हज्जाम स्वर्ग में उनके पुरखों की सेवा करने के लिए नहीं मिल सकता—यद्यपि उसके जलने के लिए जो चिता बनाई जायगी वह किसी सुरङ्ग के मुँह पर बनी हुई नहीं होगी—और किस प्रकार नुसरत हज्जाम ने बीरबल के पैरों पर माथा टेक कर, उनके पचास हज़ार रुपये सूद सहित लौटाकर अपनी जान बख्शी करवाई और मुल्ला-दो-प्याज़ा की दाढ़ी मूँड़ने का सम्मान प्राप्त किया, ये सब बादशाह अकबर और राजा बीरबल की लोकप्रिय जनश्रुतियों की बातें हैं।

(पृष्ठ ३७ का शेषांश)

जीता है। उसकी धड़कन रुक जाती है तो मौत पूरी हो जाती है।

प्रायः सुनने या पढ़ने में आता है कि अमुक की मृत्यु हृदय की गति रुक जाने से हुई है। हृदय की गति रुकती है तो रक्त का चक्र रुकता है। रक्त विभिन्न प्रकार के सब कोठों को भोजन पहुँचाता है और उससे भी अधिक आवश्यक आक्सीजन पहुँचाता है। शरीर के सब कोठे इस आक्सीजन से साँस लेते हैं और जीते हैं। जब यह आक्सीजन उन तक नहीं पहुँचती तो उनका दम घुट जाता है और वे मर जाते हैं।

जब हृदय की धड़कन अकस्मात् बन्द हो जाती है तो रक्त-चक्र भी अकस्मात् रुक जाता है और कोठों को आक्सीजन पहुँचना भी अकस्मात् बन्द हो जाता है। फल यह होता है कि शरीर के सब कोठे बहुत शीघ्र, लगभग एक साथ मर जाते हैं। ऐसी मौत में शरीर की मुद्रा नहीं बिगड़ती। उन्हें तड़पने का समय नहीं मिलता मनुष्य जैसे अखण्ड निद्रा में सो जाता है।

जब हृदय की गति अकस्मात् एक साथ नहीं, वरन् धीरे-धीरे क्षीण होकर बन्द होती है तो शरीर के कुछ कोठे पहिले मर जाते हैं और कुछ उनसे बहुत पीछे तक जीवित रहते हैं। दम धीरे-धीरे घुटने के कारण यह जीवित कोठे तड़पते हैं शरीर के अंग-प्रत्यंग ऐंठते हैं और उसकी आकृति बिगड़ जाती है। मृत्यु की पूर्णता हृदय की गति बन्द होने से होती है, पर मृत्यु आरम्भ कहाँ से होती है? शरीर के कुछ अंग हैं जिनका सम्बन्ध सीधा जीवन से नहीं। लँगड़े, लूले, अंधे मनुष्य जीवित रहते हैं। पागल भी जीते हैं। जीवन की क्रिया में जो अवयव महत्वपूर्ण हैं वे धड़ और सिर के भीतर स्थित हैं। ये अवयव विभिन्न क्रियायें सम्पादित करते हैं। जब तक इन सब अवयवों का परस्पर गुँथा हुआ क्रियाचक्र ठीक तरह चलता रहता है तब तक आशंका की कोई बात नहीं होती परन्तु जब इस शृंखला का कोई भी अवयव अपने कर्त्तव्य में ढीला पड़ने लगता है तो पूरी व्यवस्था में अव्यवस्था पैदा होने लगती है। अवयव की ऐसी अक्षमता का आरम्भ ही मृत्यु का आरम्भ है। जब चिकित्सक औषधि की सहायता से अवयव विशेष की ऐसी अक्षमता को दूर करने में समर्थ होते हैं तो मृत्यु एक बाजी हार जाती है। परन्तु जब चिकित्सकों को सफलता नहीं मिलती तो मृत्यु का पैर उस अवयव पर जम जाता है और वह वहाँ से दूसरे अवयवों पर फैलाने लगती है।

अवयवों की यह अक्षमता कैसे उत्पन्न होती है? अवयवों की क्रियाशक्ति परिस्थिति के प्रति उनकी प्रतिक्रिया की शक्ति से आती है। जब भोजन पेट में पहुँचता है तो पेट की दीवारों से विशेष प्रकार के रस निकल कर भोजन से मिलने लगते हैं। यदि पेट की दीवार के कोठों की प्रतिक्रिया-शक्ति जाती रहे तो पेट में भोजन पहुँचने पर भी दीवार से रस नहीं निकलेगा और मृत्यु पेट से आरम्भ हो जायेगी। इसका प्रभाव अँतड़ी-जिगर आदि दूसरे अवयवों पर पड़ता हुआ हृदय तक जा पहुँचेगा और उसे रुकने को बाध्य करेगा।

मृत्यु की जड़ में शरीर के कुछ कोठों की अक्षमता है। अधिकतर कोठे जीवित रहने की क्षमता रखते हैं। उनको जैसे गला दबा कर मार डाला जाता है। इस प्रकार मनुष्य की खरबों मौतों में से कुछ सहस्र मौतें तो सच्ची मौतें होती हैं, पर अधिकतर मौतें परिस्थितिजन्य हत्यायें कही जा सकती हैं। तो मनुष्य का जीवन है जो माता के गर्भ में एक कोठे के विभाजन से आरम्भ होकर खरबों कोठों में फैला है। और उसकी मौत है जो कुछ कोठों से उत्पन्न होकर सब पर छा जाती है।

कहा जा सकता है कि पलँग पर ऐसी मौत से असहाय मरना अप्राकृतिक है। परन्तु यह प्राकृतिक क्यों नहीं है जबकि मनुष्य और उसकी बुद्धि दोनों प्रकृति का अंग हैं और जो कुछ मनुष्य ने बनाया है वह प्रकृति से बाहर नहीं है।

(पृष्ठ ६ का शेषांश)

क्योंकि जो प्रतिनिधि इन देशों के आयेंगे वे गोरे होंगे। नेहरू ने काफ़ी चाहा कि वे जो हों पर सचमुच जनता के प्रतिनिधि हों; मगर वह कामयाब न हो सके।

बहरहाल, उस कॉन्फ़रेन्स के सम्बन्ध में जो अनुमान और तथ्य इस समय आँखों आगे मूर्त होते हैं ये हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक : कि भारत के सिवाय कॉमनवेल्थ के अन्य एशियाई सदस्यों का सहयोग-समर्थन पूरा-पूरा नहीं रहेगा ;

दो : कि सोवियत पक्ष के तथा अन्य तटस्थ भाव के देशों का योगदान पूरा रहेगा ;

तीन : कि प्रेज़िडेण्ट आइज़नहॉवर के गये मास के भाषणों से अमेरिकी नीति भी कुछ नरमाई लगती है ;

चार : कि अमेरिकी क्षेत्रों और उसके उपग्रह दक्षिण-कोरिया तथा फ़ॉरमोसा की ओर से फिर भी शान्ति-चेष्टाओं का विरोध होगा ही ;

पाँच : कि सियेडो की एक बाक़ायदा सैनिक योजना होते भी ऐफ्रो-एशियन कॉन्फ़रेन्स ऐसी किसी योजना की कल्पना नहीं करती ;

छह : कि अमेरिका-ब्रिटेन आदि को इन दिनों की सी शान्ति का भी बना रहना, अपने रहे-सहे उपनिवेशों पर नयी आशंकायें छाना, और अपने सामरिक स्वार्थों में ज़रा भी बाधा आना, हो सकता है अब सहन करते न बने ;

सात : कि यह शान्ति यदि बनी रही तो उसके अनिवार्य परिणाम बेकारी को अमेरिका-ब्रिटेन सँभाल सकेंगे या उसके लिए छोटे-छोटे छिट-फुट युद्ध और सियेडो जैसे उपाय खड़े करेंगे।

ये और इनके गर्भ तथा संग-साथ के कितने ही तथ्य हैं जो उस कॉन्फ़रेन्स की बात उठते ही चेतना पर झलकते हुए तैरते चले जाते हैं। कई उनमें ऐसे हैं जो मन की सारी आशाओं को हठात् और बलात् जहाँ का तहाँ अवरुद्ध कर देते हैं। किन्तु अगले ही क्षण जैसे अखिल मानवता का भावना-पुरुष सिहर उठता है और मुस्कुराता हुआ बढ़ चलता है। क्या होगा, कौन जाने! चेष्टा है कि तीसरा महायुद्ध न हो!

(पृष्ठ ६ का शेषांश)

कभी हम यह मानना और मनवा लेना चाहते हैं कि जीवन में अच्छाइयों की अपेक्षा बुराइयों का अनुपात अधिक है। समाचार-पत्रों के कॉलम दुर्घटनाओं, अपराधों, बलवों और लड़ाइयों से भरे रहते हैं ; हम देखते ही धारणा बना लेते हैं कि धरती पर अनाचार-पाप अधिक है। यह भूल है ; यहीं दृष्टि को सन्तुलित रखना अपेक्षित है। समाचार-पत्रों में वह सब यों इसलिए है कि आज ऐसी सुविधायें हैं जो धरती के कोने-कोने की बातें पलक मारते लादेती हैं। यह भी अच्छा ही है : समाज के स्वास्थ्य के लिए इसका वही उपयोग है जो शरीर स्वास्थ्य के लिए शिराओं के जाल का जो किसी भी अंग की पीड़ा की तत्काल सूचना देकर उपचार-सुधार के लिए प्रेरित करती हैं। किन्तु इसका यह अर्थ तो कभी नहीं कि धरती पर सब कहीं बुराई ही बुराई है।

सचमुच हमारा दृष्टिकोण सन्तुलित होना चाहिए। आज का मानव दो-दो महायुद्ध देख चुका है और समझ रहा है कि तीसरे की आशंकायें छाया-सी सिर पर मँडरा रही हैं। वह अब वास्तविकताओं को पहिला स्थान देना चाहता है। वह जान गया है कि उन्नीसवीं शती की वैज्ञानिक खोजें वह फल नहीं लायीं जिनकी आशा थी, और इसलिए की गयी थी। निरन्तर अनुभव से उसने समझ लिया है कि प्रगति महज़ अपने में ही उन्नति की गैरण्टी नहीं, न ही प्रकृति में कोई ऐसी स्वतः चालित शक्ति है जो हमारे उद्यम-पुरुषार्थ बिना हमें आगे ले जायगी।

इस कारण हम इस भोली श्रद्धा के भरोसे नहीं बैठ सकते कि जीवन-जगत् तो प्रवाहशील और प्रगतिशील है ही, मानव के दुःख और क्लेश एक दिन आप ही दूर हो जायेंगे। सच तो, यही तथ्य एक दूसरी दिशा से आकर आज हमारे मनों पर निराशावाद के रूप में छाने लगा है। जीवन को हम उत्साह-हीनता के साथ यों देखने लगे हैं जैसे वह कोई बरबस ढो देने का भार हो। सन्तुलित दृष्टिकोण से देखने पर मानव के ज्ञान, जीवन और व्यवस्थायें सभी विभागों में हमें बुराई की अपेक्षा भलाई ही अधिक मिलती है। यह धारणा कि पाप अधिक है, शुभ कम, गलत है, अयोग्य है।

अन्त परिणाम निराशाजनक हो ही नहीं सकता। बेशक, हमारा दृष्टिकोण और मापदण्ड यह होने चाहिए कि भूतकाल की अपेक्षा वर्तमान अच्छा है और भविष्य इससे भी अच्छा होगा यदि हम प्रयत्नशील रहें।

(पृष्ठ १२ का शेषांश)

से मस्तिष्क के अंग विशेष को प्रभावित करना। और उसका सीधा तरीक़ा है खोपड़ी के ढक्कन को खोलकर उसके भीतर वैज्ञानिक रूप से तैयार किये हुए 'भेजे' को रख देना। इस प्रकार कुछ मिनिटों के ऑपरेशन के बाद आप किसी भी विषय की सम्पूर्ण शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं।''

और कहते-कहते तत्काल ही उसने अपने सिर में बने एक निशान को दिखाते हुए बताया, ''यहाँ मेरा 'अन्तर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक इतिहास' का ऑपरेशन हुआ था। ज़रूर इसमें मुझे बड़ी तकलीफ़ हुई थी ; पर 'साधारण इतिहास, काव्य' आदि के ऑपरेशन में परेशानी नहीं होती। फिर, अब, अब तो हमारा अनुभव यह हो गया है कि मस्तिष्क को सभी विषयों का भण्डार बनाना व्यर्थ है। इसलिए दर्शन, मनोविज्ञान, अध्यात्म आदि विषयों का ऑपरेशन अब उस स्थान पर होता है जिसे आप 'पाचन-यन्त्र' कहते हैं।''

एक साँस लेकर फिर उसने मुझ से पूछा, ''ख़ैर, अध्ययन काल के बाद आप लोग क्या करते थे?'' मैंने बताया, ''उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाद प्रायः हम सभी का कुछ समय रोमान्स-कोर्टशिप में लगता था, और—" बड़े उल्लास के साथ बीच में ही वह बोला, "ठीक-ठीक, हमारे यहाँ अजायबघर में एक पुस्तक है, उसमें स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों के बारे में एकदम अजीब-अजीब बातें लिखी हुई हैं। छिः-छिः कैसी बेशर्मी की बातें हैं वे सब! मैं तो आप लोगों की समाज-व्यवस्था ही नहीं समझ सका अभी तक।" और वह दुखी-सा होता विचार में पड़ गया।

तभी अकस्मात् मेरा ध्यान सामने सड़क पर आती-जाती एक जैसी ही मानव आकृतियों की ओर गया, और जैसे चमक कर मैंने उससे पूछा, "क्यों महोदय, क्या और सब चीज़ों की तरह स्त्रियों का अस्तित्व भी शेष कर दिया गया है?" धीरे से उसने उत्तर दिया, "नहीं ऐसा तो नहीं; पर सब चीज़ों के साथ-साथ उनमें भी परिवर्तन आया है। उनकी इच्छा पुरुषों के समान ही बनने और अधिकार प्राप्त—"

"हाँ, हाँ" बीच में ही टोककर मैंने कहा, "वोट और समानता के अधिकारों की माँग वे हम लोगों के समय में ही करने लगी थीं।" एक विचित्र से भाव के साथ वह बोला, "ओह, यह बात है। अब समझा मैं। तब तो मेरा ख़याल है आपके समय की स्त्रियाँ बड़ी भयानक रही होंगी? कैसे वीभत्स रहे होंगे उनके भेष और भाव?" मुझे तैश-सा आ गया उसकी इस बात पर: कहा, "ऐस्बेस्टॅस!" (उसे सम्बोधन करने को और कोई शब्द ही न सूझा उस समय) "तुम समझते हो तुम्हारी यह मुरब्बों की थैलियों सी स्त्रियाँ हमारी बीसवीं सदी की सीधी-सादी, सुसंस्कृत नारियों से नाम चार को भी तुलना में लायी जा सकती हैं?"

सहसा एक और विचार बिजली की तरह मन में कौंध गया। पूछा, "बच्चे नहीं दिखाई दिये अभी तक मुझे। क्या—" ठहाका मारा उसने, "बच्चे। इन सौ बरसों में तो ऐसी किसी चीज़ का नाम नहीं सुना मैंने। वे भी कुछ ऊट-पटाँग से होते होंगे।" फिर ठठाया वह।

मुझे असह्य हो उठा था अब तक वह और उसकी प्रकृति पर मानवी विजय का वैज्ञानिक युग। "ऐस्बेस्टॅस।" मैंने तैश में कहा, "ऐस्बेस्टॅस, यही तुम्हारी सभ्यता है! उत्कर्ष का चरम बिन्दु। यह तो मरी लाश सी अप्रिय है। मुझे अपना वह संघर्ष, भय, मृत्यु का जीवन ही प्रिय है। उसमें जीवन है, वह जीवन है।" और मैं ज़ोर से चिल्लाया।

"हाँ भाई, वह जीवन है। पर आप को संघर्ष चाहिए, ठीक है, मगर औरों को सोने भी तो दो।" किसी की तेज़ आवाज़ ने मेरी नींद का भेदन किया। सकपका कर जो उठा तो देखा, होटल के अपने उसी कमरे में उसी पलँग पर हूँ और चारों ओर जीवन खिलखिला रहा है।

(पृष्ठ ४२ का शेषांश)

यही मालूम था कि कुछ देर बाद ही समुद्र फिर उग्र रूप में वापस लौटेगा। जब इस भूकम्प की लहरें ५ घण्टे बाद हवाई द्वीप में पहुँची, तब वे २५ फीट से अधिक ऊँची थीं। उन्होंने सैकड़ों मकानों को तोड़ डाला और हजारों आदमी पानी में डूबकर मर गये। ध्यान देने योग्य बात यह है कि एल्यूशियन द्वीपों के समीप, जहाँ से ये लहरें शुरू हुई थीं, ये केवल २ फीट ऊँची थीं और हवाई द्वीप तक पहुँचते-पहुँचते ये २५ फीट ऊँची हो गयी थीं। साथ ही यह भी कि इस २३०० मील की दूरी को पार करने में इन्हें केवल ५ घण्टे लगे अर्थात् ये लहरें औसतन प्रति घण्टे ४६० मील की चाल से चलती रहीं। समुद्र की लहरें ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती जाती हैं, त्यों-त्यों उनकी चाल तेज होती जाती है। इसलिए हवाई द्वीप के निकट पहुँचते समय इन लहरों की चाल इस औसत चाल की अपेक्षा कहीं अधिक तेज़ रही होगी।

७ अक्टूबर १७३७ का दिन बंगाल के निवासियों के लिए बड़ा भयानक दिन था। उस दिन बंगाल की खाड़ी में एक भयंकर तूफान उठा था और उसके कारण तूफ़ानी लहरें उठकर किनारों से आकर टकराई थीं, जिनके फलस्वरूप २० हजार नौकायें नष्ट हो गयी थीं और ३ लाख व्यक्ति समुद्र की भेंट चढ़ गये थे। ज्ञात इतिहास में समुद्री तूफान द्वारा इससे बड़ा विनाश आज तक संसार में कहीं नहीं हुआ। अभी छह-सात साल पहले भी मिदनापुर में समुद्री तूफान ने भयंकर विनाश किया था।

यह ठीक है कि समुद्र तल पर उठनेवाली लहरें बहुत बड़ी और प्रचण्ड होती हैं। परन्तु ये लहरें समुद्र की गहराई में उठने वाली लहरों की तुलना में बहुत ही छोटी होती हैं। समुद्र की गहराइयों में उठनेवाली लहरें तीन-तीन सौ फीट तक ऊँची होती हैं और ये पनडुब्बियों को उसी प्रकार झकझोरती हैं, जैसे समुद्र तल की लहरें जहाजों को हचकोले देती हैं। परन्तु ये दैत्याकार लहरें अधिकांशतः मनुष्यों की दृष्टि से दूर ही रहती हैं और कम नुकसान पहुँचाती हैं।

(पृष्ठ ४४ का शेषांश)

श्यामलाल—इसमें क्या शक। अब आज की ही देखिये न—

(इमरती देवी मुँह बिचकाती हैं। मनोज उजबक-सा कभी इनका कभी उनका मुँह निहारता है। पन्ना बाबू विजय को लेकर देख रहे हैं कि कहीं चोट तो नहीं लगी। सहसा सबकी मुँहलगी नीरजा बोलती है।)

नीरजा—वाह पण्डित चाचाजी, आजकल इसमें आता ही क्या है। दो घड़ी सीलोन सुन लेते हैं तो माताजी को वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी बुरा लगता है। कबाड़िये को देने से तो मेरे ही कमरे में रखा दिया जाय। **(शरारत से मुस्कुराती आँखों लीला की ओर देखती है।)**

मनोज—ज़रूर आपके कमरे में रखा दिया जाय कि दिन-रात बम्बई का पानी बिगड़ा करे। **(सब कोई हँसते हैं)** और नहीं तो क्या! **(जेठामलजी को लक्ष्य करके)** पिताजी, मैं कहता हूँ यह कॉलेज में पढ़ती हैं, कुछ तो टेस्ट होना चाहिए इनमें। जब देखो तब सफ़ाका, बिनाका, कॉलगेट! अरे, शौक़ है तो शास्त्रीय संगीत सुनो। माताजी, आप इसे मेरे कमरे में रखवा दीजिये। सुरेन्, मेरी वह फूलदार मेज़ तो भेज देना सवेरे।

पन्नालाल—**(विजय को गोद से उतारते हुए)** और मुझे तो लगता है तुम दोनों ही बौरा गये हो। अरे, गीत-बीत तो फ़ज़ूल के धन्धे हैं। यह तो तुम से होता नहीं कि देश-विदेश के समाचारों से ज्ञान—

सतीश—**(श्यामलालजी के पीछे से)** और बच्चों का प्रोग्राम? आप ही तो कहा करते हैं बच्चों की बुद्धि उससे खुलती है। पूछ लीजे माताजी से, परसों—

इमरती देवी—राम मेरे! इससे तो एक-एक सब अपने कमरों में लगवा लो। छुट्टी तो मिले, मरी यह भी बिना बात की—

नीरजा—ठीक कहा माताजी! मैं आज ही मँगाऊँगी अपना रेडियो। और मनोज तुमने उसे हाथ लगाया नहीं कि फिर देखना।

मनोज—**(उत्साह से)** मंजूर। मैं भी आज ही मँगाता हूँ। सुरेन्, जी० ई० सी० ठीक रहेगा। चाहे दिन-रात—

जेठामल—**(श्यामलालजी से)** देखो भई, कल से इसे दूकान पर रखो। एयरियल, जालीदार अन्दर ही लगवा लेना। वहीं सारे भाव सुन लिया करेंगे। यह घर तो—

श्यामलाल—हाँ, सब अपना-अपना अलग रेडियो बजायेंगे तो घर तो नुमाइश का बाज़ार हो जायगा। एक तरफ़ से खबरें, दूसरी तरफ़ से—

इमरती देवी—हाँ, सच, लालाजी; इससे तो अच्छा बाबा, इसे यहीं रखा रहने दो। कभी-कभी भजनों का सुख—

नीरजा—ठीक, माताजी, यही ठीक रहेगा। सीलोन सुनने से पहले मैं रोज़ आपको भजन सुनवा दूँगी।

मनोज—और तुम्हारा हमारा कॉम्प्रोमाइज़ रहा नीरू। दस मिनट सीलोन और दस मिनट शास्त्रीय-संगीत। चाचाजी—

पन्ना बाबू—मुझे क्या! दस-पाँच समाचार ही सुनकर बन्द कर दिया करूँगा।

सतीश—और बीबी मेंढकी तो सप्ताह में एक बार ही आती है।

इमरती देवी—**(झल्लाकर)** अच्छा बाबा, तुम सब बजाओ। खूब बजाओ। मैं हारी। **(जाती है)**

(रेडियो समाचार का प्रोग्राम बन्द करके ठुमरी की घोषणा करता है। तभी परदा गिर जाता है।)

(पृष्ठ ५६ का शेषांश)

तथा विदेशियों को भारत से भगाना, इनका लक्ष्य था। पराड़कर जी का इस समय के प्रमुख क्रान्तिकारियों से घनिष्ठ सम्पर्क था। कलकत्ते में राष्ट्रीय शिक्षा के निमित्त श्री अरविन्द घोष ने नेशनल कालेज की स्थापना की थी। श्री अरविन्द घोष स्वयं इस कालेज के प्रिन्सिपल थे। सर्वश्री विनयकुमार सरकार, राधाकमल मुखर्जी आदि चोटी के प्रख्यात विद्वान् एवं राष्ट्रप्रेमी इस कालेज में अध्ययन करते। पण्डित पराड़करजी भी इसी कालेज में हिन्दी तथा मराठी का अध्ययन करते थे। इस प्रकार यह कालेज भी एक प्रकार से तत्कालीन क्रान्तिकारियों का एक प्रधान केन्द्र सा बन गया था। प्रख्यात क्रान्तिकारी श्री रासबिहारी घोष भी उसी दल के सदस्य थे। ये पंजाब में प्रचार-कार्य करने गये। वहाँ इनके साथी ने लार्ड हार्डिज पर बम फेंका। लार्ड हार्डिज बम प्रहार से हत तो नहीं हुए पर उन्हें काफी चोट आयी। तब पुलिस ने आपका पीछा किया और श्री घोष बनारस भाग कर आये। ये यहाँ छिप कर बनारस के लक्ष्मीकुण्ड मुहल्ले के पास रहने लगे। केन्द्रीय कार्यालय तथा श्री घोष से सम्पर्क का कार्य पराड़करजी ही करते थे। बनारस इनका घर था। आप दो-तीन मास में कलकत्ते से काशी आते। जब श्री रासबिहारी घोष जापान चले गये तो पुलिस को सारी बातों का पता लगा।

कलकत्ते में जब डिपुटी-पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट की हत्या हुई तो पराड़करजी उसके खून के अभियोग में गिरफ्तार कर लिये गये। स्पष्ट प्रमाण के अभाव में आपको हत्या के अभियोग से तो मुक्त कर दिया गया, किन्तु १ जुलाई १९१६ से सन् १९२० के प्रारम्भ तक आप साढ़े तीन-चार वर्ष तक विभिन्न प्रान्तों, टापुओं में नजरबन्द रखे गये। सन् १९२० में प्रथम युद्ध की समाप्ति पर जब राजबन्दियों की आम रिहाई हुई तब आपको भी मुक्त किया गया।

'आज' का प्रकाशन-सम्पादन

जब पराड़करजी जेल से छूटकर बनारस आये तो प्रमुख राष्ट्रसेवी श्री शिवप्रसादजी गुप्त ने आपको 'आज' की रूपरेखा तथा संघटन बनाने का साग्रह अनुरोध किया। उधर कलकत्ते में पण्डित लक्ष्मण नारायणजी गर्दे ने घोषणा कर दी थी कि पराड़करजी अब 'भारतमित्र' का सम्पादन करेंगे। पर श्री शिवप्रसादजी गुप्त तथा श्री श्रीप्रकाशजी का आग्रह पराड़करजी टाल न सके। आप 'आज' की रूपरेखा तथा नीति-सम्बन्धी

(शेषांश पृष्ठ ६७ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशन सत्कार

० शल्य ०

चौलुक्य कुमारपाल

लेखक : लक्ष्मीशंकर व्यास, एम्. ए. ; प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ काशी ; पृष्ठ तीन सौ ; सजिल्द ; मूल्य चार रुपया।

प्रस्तुत पुस्तक इतिहास विषयक है। किन्तु रोचक शैली, सूचक सामग्री और सुघर सज्जा के कारण एक अपनापन और विशेषता रखती है। भाषा, शैली और दृष्टिकोण आदि तत्त्व ऐसी पुस्तकों में भी अपेक्षित हैं और उनकी उपयोगिता बढ़ाते हैं, यह तथ्य जाने या अजाने इस प्रकाशन द्वारा काफ़ी स्पष्ट हो जाता है।

लेखक ने विभिन्न शिलालेखों तथा अन्य साहित्य के आधार पर, निरन्तर हवाले देते हुए गुजरात के महान् कुमारपाल का इतिहास दिया है ; और यह मानना पड़ेगा कि तटस्थ इतिहासकार के रूप में वह काफ़ी सफल भी हुआ है। लेखक ने कारीगरी से इतिहास की उपलब्ध सामग्री को सजा कर स्पष्ट कर दिया है कि सिद्धराज जयसिंह की मृत्यु पर्यन्त कुमारपाल को क्यों देश भर में भटकना पड़ा और फिर कैसे मुनि हेमचन्द्र सूरि के व्यक्तित्व-बल के सहारे उसका राज्याभिषेक और अभ्युदय हुआ।

इतिहास के निर्माण में सामाजिक परिस्थितियाँ ही आधार और अवलम्ब का काम करती हैं। जिन परिस्थितियों के कारण सिद्धराज का बल निर्जीव हुआ और जो हेमचन्द्र का बल बन कर कुमारपाल को सिंहासन पर लायीं, लेखक ने उनका जहाँ-तहाँ संकेत तो किया है, पर अपेक्षित महत्त्व उन्हें नहीं दिया, यह अवश्य खटकता है। किन्तु यह प्रयास इतिहास के एक अधूरे कार्य्य को पूरा करने की दिशा में एक सफल और प्रशंसनीय चेष्टा है, यह स्वीकार करना ही पड़ेगा।

रूसी क्रान्ति के अग्रदूत

लेखक : राजेश्वर प्रसाद नारायण सिंह, सं. स. ; प्रकाशक : आत्माराम ऐण्ड सन्ज दिल्ली ; पृष्ठ पौने दो सौ ; सजिल्द ; मूल्य चार रुपया।

हिन्दी साहित्य अनेक दिशाओं और विषयों में मौन या मौन जैसा है। युग और उसकी आवश्यकताओं के तक़ाजे हैं, मगर उत्तर नहीं हैं। यह पुस्तक एक कमी को भरने आयी है, यह महत्त्व की बात है। और भी महत्त्व की बात यह है कि रोचक-प्रभावक ढंग से ही नहीं, संक्षेप में बहुत कुछ कह दिया गया है।

रूस की क्रान्ति इतिहास-काल की प्रमुखतम घटनाओं में से है और रहेगी। क्रान्ति एक प्रकार से देखते-देखते हो गयी। किन्तु उसके पीछे कितना-कितना विचार-चिन्तन था और कैसा कैसा त्याग-तप था! क्रान्ति के पूर्व का यही अध्याय, जिसे प्रायः सब कोई भूल जाते हैं या अपेक्षित मोल-मान नहीं देना चाहते, इस पुस्तक का विषय है। और विशेषता यह कि उस अध्याय से सम्बन्धित विचार, व्यक्तित्व और परिस्थितियाँ तीनों को ही अपनी परिधि में समेट लेने के कारण पुस्तक इतिहास, राजनीति, समाजशास्त्र और दर्शन की संगम-भूमि पर बनी खड़ी है।

कलकत्ते के हिन्दी कथाकार, कलकत्ते के उर्दू कथाकार

लेखक : बरुआ ; प्राप्ति स्थान : आत्माराम ऐण्ड सन्ज दिल्ली ; मूल्य ढाई रुपया प्रति।

इन पुस्तकों द्वारा लेखक ने कलकत्ते के हिन्दी और उर्दू कथाकारों को प्रकाश में लाने की कोशिश की है। इस दृष्टि से बहुत हद तक पुस्तकें सफल हैं।

किन्तु संकलन सुन्दर होते हुए भी उनकी उपयोगिता और बढ़ जाती यदि भाषा इतनी उलझी हुई न होती और विभिन्न व्यक्तियों के परिचय किसी अनुपात में रहते।

फिर भी प्रयास महत्वपूर्ण है क्योंकि इस प्रकार हिन्दी पाठक उर्दू कथाकारों का परिचय पा सके।

स्वर के दीप

कवि : जितेन्द्र कुमार ; अलक प्रकाशन, खगड़िया, मुंगेर ; मूल्य तीन रुपये।

पुस्तक कवि की रचनाओं का प्रथम संग्रह है और भाव तथा शैली की दृष्टि से छायावादी पद्धति का है।

रचनाओं में उतरने से यह स्पष्ट हो जाता है कि भाषा के प्रयोग में तो कवि ने प्रौढ़ता और कलात्मकता प्राप्त करली है मगर भावों की दृष्टि से अभी प्रथम चरण ही है। उनमें रिपिटीशन भी है और कल्पनाओं का अभाव भी। और प्रायः समूची ही पुस्तक का एक छन्द हो जाने से एक उदासीनता-सी आ गयी।

यह निर्विवाद है कि कवि में प्रतिभा है, आवश्यकता साधना-सिंचन की है।

सत्य दर्शन

प्रवचनकार : मुनि श्री अमरचन्द्रजी ; सम्पादक : शोभाचन्द्र भारिल्ल ; प्रकाशक : सन्मति ज्ञानपीठ आगरा ; पृष्ठ २३५ : मूल्य ढाई रुपये।

इस पुस्तक में सत्य को प्रगतिशील दृष्टिकोण से परख कर यह दिखाने का सफल प्रयास किया गया है कि मानव अपने जीवन को यदि सत्य की कसौटी पर परखे तो जीवन में जो अनेकों विषमतायें आज आ गयी हैं वे दूर हो जायें। प्रसंगवश जहाँ तहाँ लेखक ने सन्तवचन भी पिरो दिये हैं जिनसे समझने में और सुविधा हो जाती है। पुस्तक उपयोगी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमचन्द प्रौढ़ शिक्षामाला पुस्तकें

प्रकाशक : सरस्वती प्रेस बनारस ; पृष्ठ : प्रति पुस्तक २४ से ३२ तक ; मूल्य : अज्ञात।

माला की ये पहिली पाँच पुस्तिकायें हैं : अलग्योझा, घर-जमाई और पूस की रात, दो बैलों की कथा और बाबाजी का भोज, पंच परमेश्वर और सवा सेर गेहूँ, तथा शराब की दूकान। इस प्रकार ये सब आठ कहानियाँ हैं प्रेमचन्द की।

कहानियाँ प्रेमचन्द की हैं : चुनी-चुनी : क्या कहना उन पर ! पर प्रकाशन का रूप अवश्य एक विशेष और महत्त्वपूर्ण उद्देश्य की ओर संकेत करता है। माला के नामकरण और पुस्तिकाओं की भूमिका में वह स्पष्ट भी कर दिया गया है। सचमुच, इस दिशा में जितना भी किया जाय वह थोड़ा। यह साहित्य वर्तमान की आवश्यकता का उत्तर है और भविष्य के जन-मानव के ज्ञान-विकास का क ख ग।

(पृष्ठ ६४ का शेषांश)

परामर्श के निमित्त लोकमान्य तिलक से मिलने पूना गये। 'आज' के प्रथम अंक में जो नीति वक्तव्य प्रकाशित हुआ, वह कितना दूरदर्शी एवं क्रान्तिदर्शी रहा है, इसीसे स्पष्ट है कि उसमें भारत के लिए समाजवादी-व्यवस्था का स्पष्ट संकेत है। भारतीय गौरव की पुनः स्थापना, भारत तथा दक्षिण-पूर्वी एशिया का अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान प्रवासी भारतीयों के प्रश्न तथा सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक उन्नति के प्रयत्न का प्रबल समर्थन 'आज' की सम्पादकीय नीति की आधार शिला बना। सन् १९२० ईस्वी में ५ सितम्बर श्रीकृष्णाष्टमी के दिन 'आज' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ।

सन् १९२० में गान्धीजी के अहिंसा और असहयोग आन्दोलन का श्रीगणेश हो रहा था। पण्डित पराड़करजी कलकत्ते गये थे प्रमुखतः क्रान्तिकारी आन्दोलन के सूत्रधार बनने, पर जीविकोपार्जन के निमित्त पत्रकारिता को माध्यम बनाया। आगे चलकर क्रान्तिकारी पराड़कर परिस्थितियों के मोड़ों से गुजरता सम्पादकाचार्य पराड़कर बन गया। इस सम्बन्ध में पण्डितजी ने एक दिन चर्चा में मुझे बताया कि नजरबन्दी से छूटकर मैं जब काशी आया तो महात्मा गान्धी का उदय हो रहा था। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि पुलिस की नजरों से बच कर काम करना बड़ा मुश्किल है, इसीलिए मैंने पत्रकारिता द्वारा देश को स्वाधीन करने, राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रचार-प्रसार करना उचित समझा। यों नजरबन्दी के बाद भी क्रान्तिकारियों से मेरा सम्पर्क बना रहा और काशी में उनका आना-जाना बराबर होता।

आधी शताब्दी की साधना-तपस्या

पराड़करजी १९०६ में पत्रकारी के क्षेत्र में आये और सन् १९५५ तक अनवरत साधना-तपस्या करते रहे। देश के स्वाधीनता संग्राम में इस महापुरुष का योगदान, इतिहास की वस्तु है। पराड़करजी ने अपने अग्रलेख, टिप्पणी तथा 'आज' के समाचारों द्वारा देश में राष्ट्रीयता तथा सामाजिक नवजागरण का जो शंखनाद किया, विदेशियों के उससे पैर लड़खड़ाये। इसीलिए जब क्रिप्स-मिशन भारत आया, तो देश की वास्तविक भावना और विचारधारा के परिचय के लिए 'आज' के अग्रलेखों एवं टिप्पणियों का अंग्रेजी में अनुवाद प्रस्तुत कराने की व्यवस्था 'स्टेट्समैन' द्वारा की गयी। यही नहीं, अभी पिछले दिनों तक विदेशों के अखबारों में पराड़करजी के सम्पादकीय लेखों का उदाहरण एवं उद्धरण दिया जाता रहा है।

'आज' के विगत ३० वर्षों के सम्पादन द्वारा पण्डित पराड़करजी ने त्रिमुखी संघर्ष छेड़ा। प्रथम अंगरेजों के विरुद्ध, द्वितीय सामाजिक-आर्थिक उन्नति के निमित्त और तृतीय राष्ट्रभाषा हिन्दी के अभ्युदय एवं उत्कर्ष के लिए। कहना न होगा पण्डित पराड़करजी जिन प्रमुख प्रश्नों के लिए जीवन भर संघर्ष करते रहे उनमें प्रायः सभी की लक्ष्यसिद्धि वे अपने जीवनकाल मे देख गये। १९४७ में देश स्वतन्त्र हुआ, हिन्दी राष्ट्रभाषा के पद पर अभिषिक्त की गयी और १९५५ की आवड़ी कांग्रेस में देश की रचना का आदर्श समाजवादी व्यवस्था स्वीकृत कर लिया गया। संसार में ऐसे इने-गिने ही व्यक्ति होंगे जिन्होंने अपने जीवनकाल में ही उन लक्ष्यों की पूर्ति देखी हो, जिसके लिए वे जीवन भर जिये-मरे। विगत दस वर्षों से ऐसे महापुरुष और साहित्य महारथी के चरणों में बैठकर काम करने का सौभाग्य इन पंक्तियों के लेखक को रहा है। इस अवधि में इस महापुरुष एवं क्रान्तिदर्शी के व्यक्तित्व-शाली स्वभाव एवं कार्य-पद्धति को देखने-जानने का मुझे वर्षों अवसर मिला। पराड़करजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का वर्णन-विश्लेषण इस अल्प-काय निबन्ध की वस्तु नहीं अपितु स्वतन्त्र पुस्तक का विषय है।

सन् १९३८ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापति बनाकर तथा सन् १९५२ में वर्धा की राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति ने महात्मा-गान्धी पुरस्कार प्रदान कर आपकी सेवाओं का सम्मान किया। पर देश की स्वतन्त्रता, नवचेतना और राष्ट्रभाषा हिन्दी की समृद्धि के लिए अपने जीवन की बाजी लगानेवाले और उसीके निमित्त अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक मर-खप जानेवाले व्यक्ति के लिए क्या यह पर्याप्त है? यह एक प्रश्न है जिस पर हिन्दी संसार को गम्भीरता पूर्वक विचार करना चाहिये। हिन्दी पत्रकारी का भीष्मपितामह पराड़कर इस संसार से अपनी भौतिक काया छोड़कर चला गया, पर देश में जागृति की विचारधारा का प्रचार, शोषितों, पीड़ितों की आवाज को बुलन्द करने वाला, भारत और भारतीयता की गौरव स्थापना करनेवाला पराड़कर इतिहास में अमर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Aberdare Cables Ltd.

Many cables are made to specification but it is by their attention to unspecified details that Aberdare's reputation has been built.

Paper Insulated Cables up to 33KV, to BSS or special requirements.

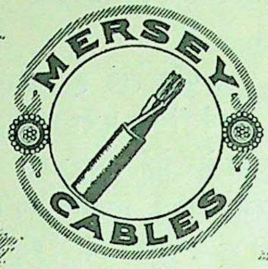

MERSEY CABLES LTD.

All sizes of rubber and PVC Insulated Cables and Flexibles. Established suppliers of Railway Track Feeder, Signalling and Control Cables to British and Overseas Railways.

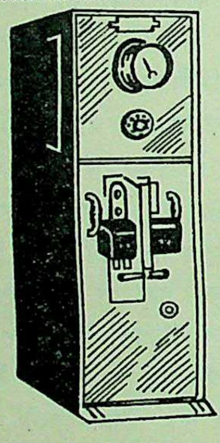

SWITCHGEAR & COWANS LIMITED.

Manufacturers of Air Insulated/ Compound or Oil Filled Industrial and Flameproof Switchgear for operating voltages up to 33KV.

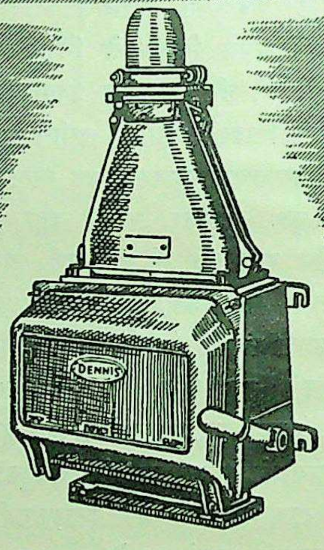

G. P. DENNIS LTD.

for
L. V. Switchgear
200/800 Amp Fuse Switch.

AGENTS FOR INDIA :

STEAM & MINING EQUIPMENT (INDIA) LTD.

101, Park Street, Calcutta 16.
Post Box 405. Phone : P.K. 4766 (2 Lines)

SM5AF

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

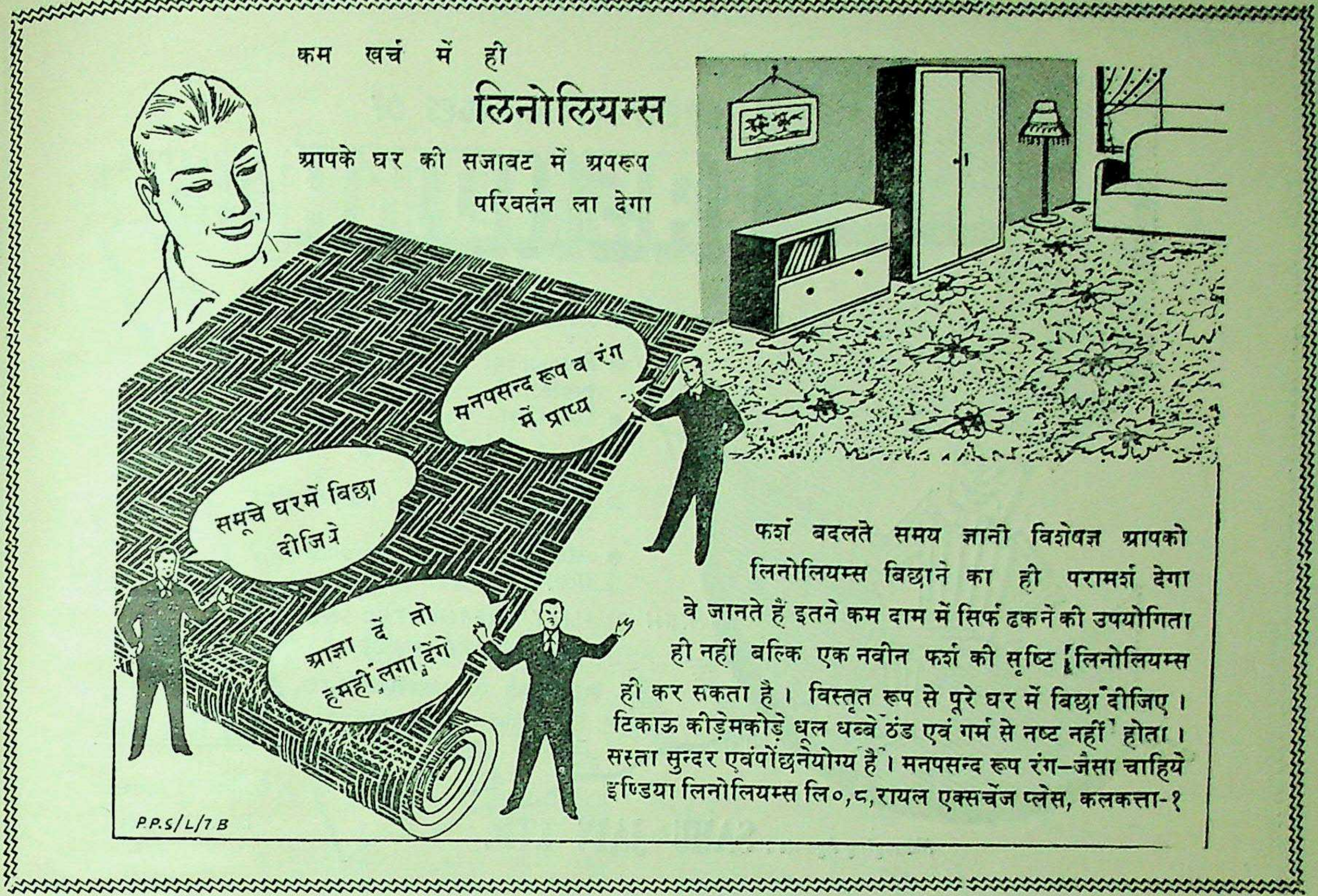

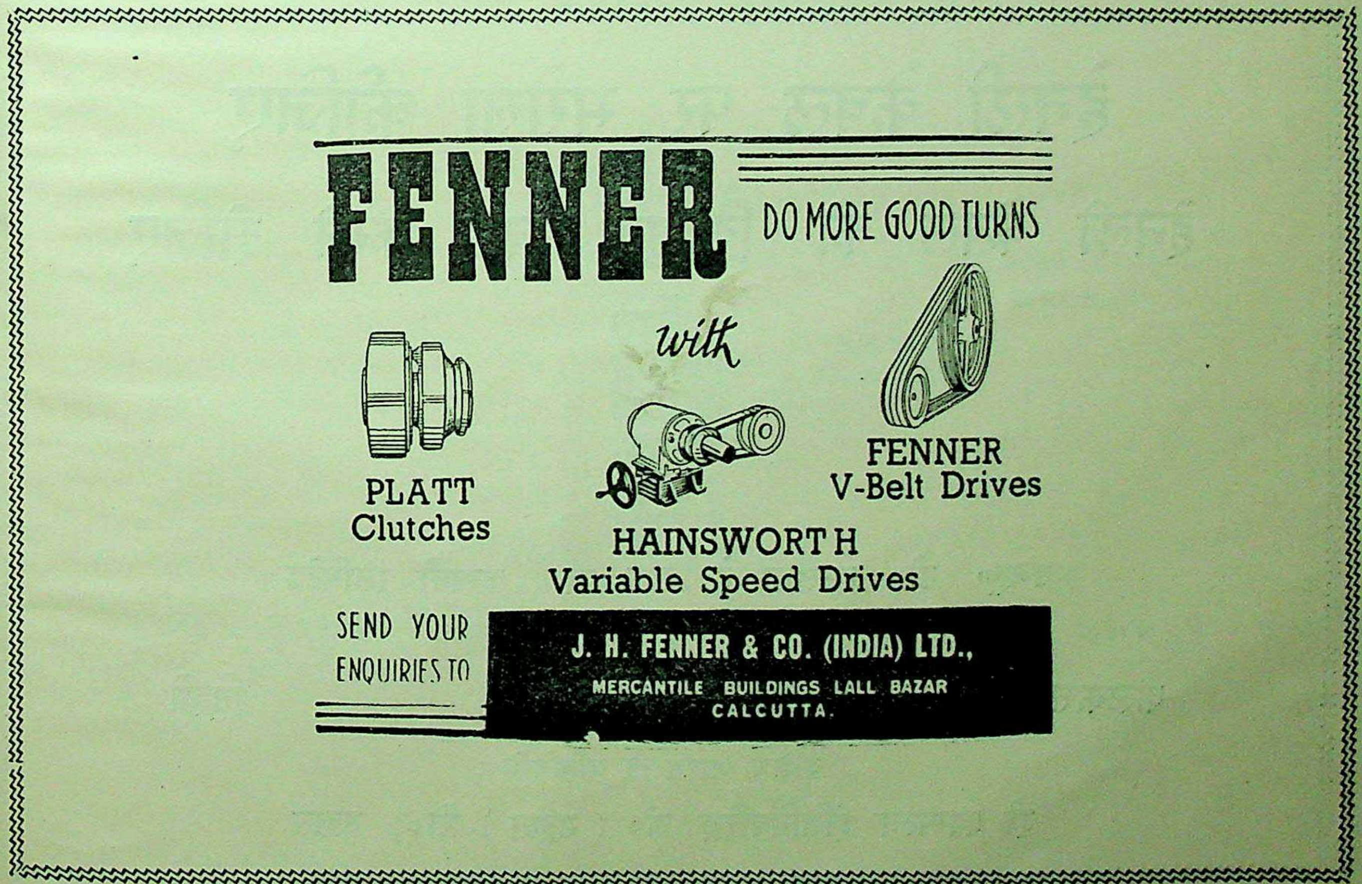

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

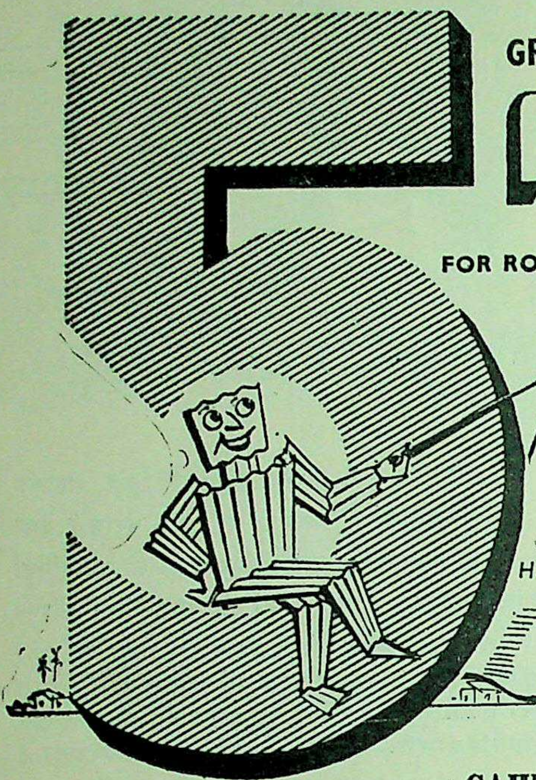

GREAT ADVANTAGES OF

ASHOKA

ASBESTOS CEMENT SHEETS

FOR ROOFING AND SIDE-CLADDING.

- *Permanent durable all-weather protection.*
- *Low Cost.*
- *Quick and easy fixing—no skill required.*
- *No maintenance — no painting — no corrosion.*
- *Attractive in appearance and line.*

HIGH QUALITY CORRUGATED SHEETS IN STANDARD SIZES

ROHTAS INDUSTRIES LTD.
Dalmianagar, Bihar.

Managing Agents: **SAHU JAIN LTD.**

9, Dalhousie Square,
East, Calcutta.

हेनली केबल पर भरोसा कीजिए

हेनली केबल को विद्युत् प्रवाह करने दीजिए

BY APPOINTMENT
ELECTRIC CABLE
MANUFACTURERS
TO THE LATE
KING GEORGE VI

डब्लू० टी० हेनलीज़ टेलीग्राफ़ वर्क्स कम्पनी लिमिटेड

(इग्लैंड में संगठित)

कलकत्ता　　बम्बई　　दिल्ली

दक्षिण भारत के प्रतिनिधि :

दी क्राम्पटन इंजिनियरिङ्ग कं० (मद्रास) लि०, मद्रास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

AMIN CHAND PAYARE LAL

TANDA ROAD, JULLUNDER CITY.

IMPORTERS OF

G. I. Black, Casing and A P I Line Pipes, Steam Pipes and Boiler Tubes, Malleable and W. I. Pipe Fittings, Steel Structurals, G. I. Black Wire & Spring Steel Wire from Continent, U. K., Japan, U. S. A., and Soviet Russia.

OFFICES AT

21A, Canning St., CALCUTTA

101, Narayan Dhuru St., BOMBAY 3

27, Sembudoss St., MADRAS

50, G. B. Road, DELHI

8, Scindia House, NEW DELHI

Manufacturers of

Well known "APEEJAY" Brass and Gun Metal Water Fittings.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Gram : "KANGROO" Cal. Phone : BANK 5834

F. M. Ahmed & Co.

40, NETAJI SUBHAS ROAD,
CALCUTTA-1.

●

GENERAL HARDWARE & MACHINERY MERCHANTS

Dealers in

TOOLS, MILL MINE & TEA GARDEN REQUISITES

●

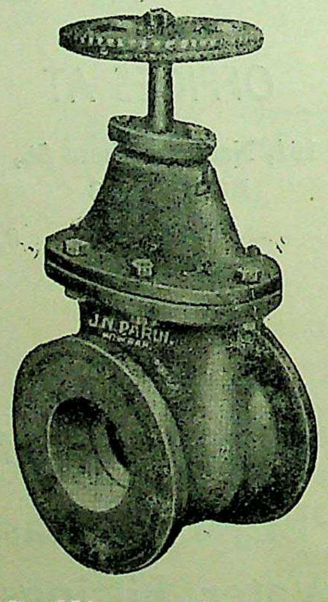

Selling Agents

"FOUNTAIN" BRAND VALVES & COCKS.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा पुरस्कृत ग्रन्थ

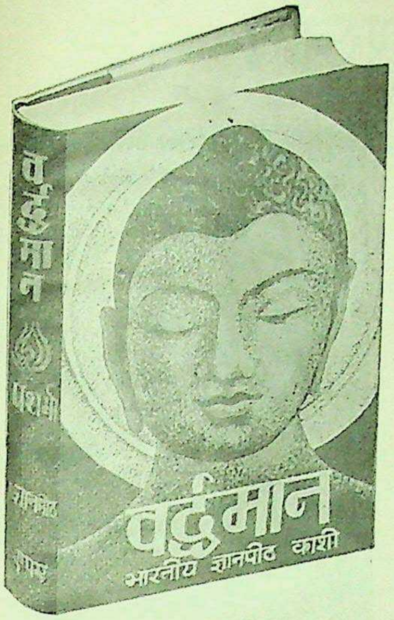

[illegible] —श्री अनूप शर्मा

आर्यावर्त पटना——

"यह महाकाव्य 'प्रियप्रवास' जैसा ही बहुत उच्च कोटि का है। भाव-चित्रण में कवि को पर्याप्त सफलता मिली है। छपाई सुन्दर और जिल्द नयनाभिराम है।"

मूल्य छह रुपये

❀

साहित्य-सन्देश : "डा० रामकुमार वर्मा के एकांकी 'कला' के जड़े हुए नगीने होते हैं और उनमें उदार उदात्त भावनाओं की जगमगाहट होती है। प्रत्येक एकांकी ऊँची मानवीय भावनाओं से ओत-प्रोत है पर सभी की पृष्ठभूमि भारतीय संस्कृति है।"

मूल्य ढाई रुपये

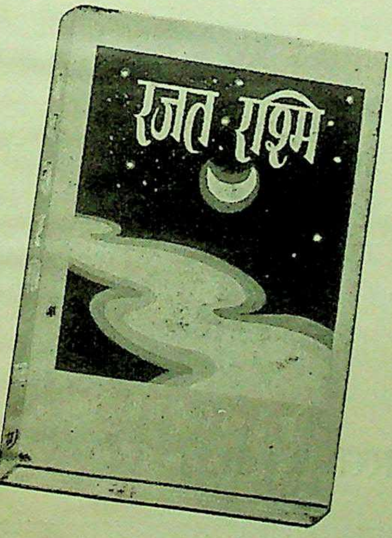

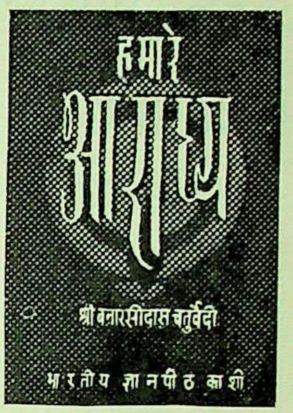

प्रदीप——

"ज्ञान के पिपासुओं, देश के भावी निर्माताओं और पथ-प्रदर्शकों के लिए 'हमारे-आराध्य' वास्तव में ही आराध्य है। देशप्रेम के प्रच्छन्न आवरण में रत मानवों को ये चरित्र विश्व-मानवता का पथ दिखायेंगे, ऐसा हमारा विश्वास है।"

मूल्य तीन रुपये

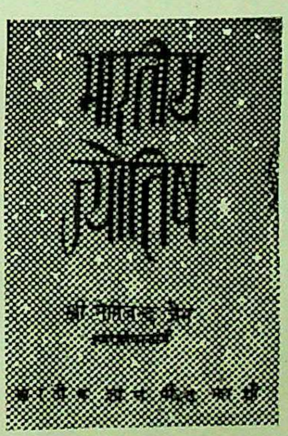

विश्ववाणी इलाहाबाद——

"पुस्तक में भारतीय ज्योतिष की विस्तृत विवेचना की गयी है। ज्योतिष में दिलचस्पी लेने वाले प्रत्येक विद्वान को इस पुस्तक में काम की सामग्री प्राप्त होगी।"

मूल्य छः रुपये

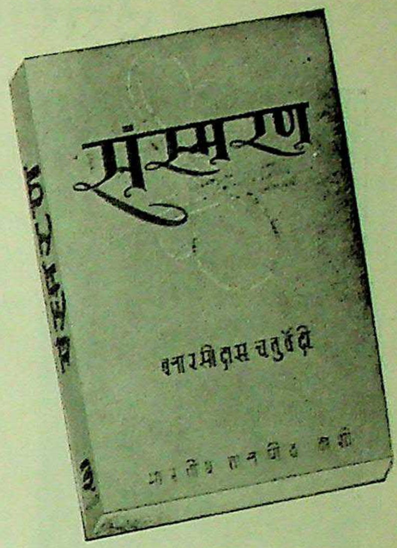

आल इण्डिया रेडियो दिल्ली——

"चतुर्वेदीजी ने इन संस्मरणों के द्वारा जहाँ जीवन चरित्र लिखने की नवीन शैली का आविष्कार किया है वहाँ इन संस्मरणों द्वारा देश के उन सपूतों को वे प्रकाश में लाये हैं जो अपने जीवन की छोटी-छोटी बातों से महान् बने।"

मूल्य तीन रुपये

सन्मार्ग, कलकत्ता : "इन रचनाओं में बच्चनजी के हृदय से पाठक मिलेंगे और उनके अन्तर्द्वन्द्व, उनकी अनुभूति, कल्पना, सौन्दर्य, प्रेम का परिचय पर्याप्त और निकट से मिलेगा।"

मूल्य चार रुपये

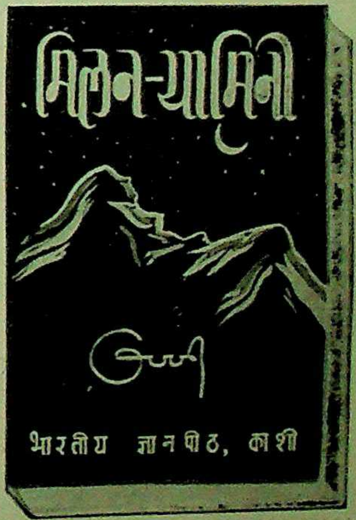

भारतीय ज्ञानपीठ,
दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा पुरस्कृत

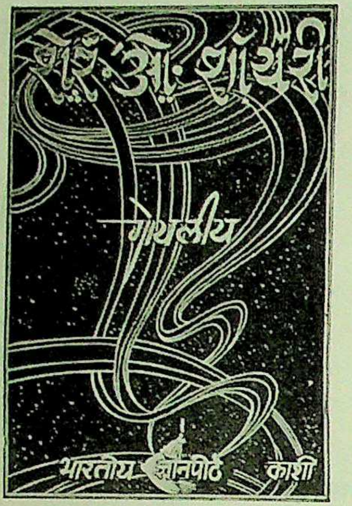

उर्दू साहित्य का प्रामाणिक इतिहास

--लेखक--

श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय

(सर्वोत्तम १५०० शेर १६० नज़्में)

प्राचीन और वर्त्तमान कवियों में सर्वप्रधान लोकप्रिय ३१ कलाकारों के मर्मस्पर्शी पद्यों का संकलन और उर्दू-कविता की गति-विधि का आलोचनात्मक परिचय।

कपड़े की जिल्द पृष्ठ सं० ६४०

मूल्य आठ रुपया

भाग १

प्रारंभ से ई० सन् १९०० तक की उर्दू-शायरी का प्रामाणिक इतिहास, निष्पक्ष आलोचना और इस अवधि के प्रायः सभी शायरों की श्रेष्ठतम रचनाओं का संकलन और परिचय।

कपड़े की जिल्द पृष्ठ सं० ७८४

मूल्य आठ रुपया

शेर-ओ-सुख़न भाग २

अर्वाचीन उस्ताद-शायरों के वर्त्तमान युगीन ख्यातिप्राप्त, प्रतिष्ठित, योग्य उत्तराधिकारी लखनवी शायरों का जीवन-परिचय एवं कलाम, साहित्यिक विवेचन तथा प्राचीन और वर्तमान शायरी की गतिविधि और परिवर्त्तन का तुलनात्मक अध्ययन।

मूल्य तीन रुपया

शेर-ओ-सुख़न भाग ३

पुरातन शायरी का कायाकल्प और लोकोपयोगी भावों का समावेश, पवित्र प्रेम की आराधना, नारी का सम्मान और १९०१ से १९५३ तक की घटनाओं का ग़ज़ल पर प्रभाव।

मूल्य तीन रुपया

❀ नयनाभिराम मुद्रण
❀ बढ़िया जिल्द
❀ कलापूर्ण कवर

शेर-ओ-सुख़न भाग ४

प्राचीन एवं नवीन ग़ज़लगोई, भारत-विभाजन, स्वराज्य - प्राप्ति, राष्ट्र-पिता की शहादत आदि प्रेरणात्मक, लोकोपयोगी भावनाओं का समावेश।

मूल्य तीन रुपया

अर्वाचीन और वर्तमान ग़ज़लगोई पर तुलनात्मक अध्ययन, हरजाई, बेवफ़ा, ज़ालिम माशूक़के एवज नेक और पाक हबीब का तसव्वुर, रोने-विसूरने की प्रभावक, रंजोग़म का मुसकान भरा स्वागत, निराशावाद का अन्त।

मूल्य तीन रुपया

● भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस ५ ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९५४ के नवीन प्रकाशन

मूल्य चार रुपये

नवभारत टाइम्स, बम्बई—

दस अध्यायों में विभक्त इस पुस्तक में महाराजाधिराज कुमारपाल के प्रारम्भिक जीवन की शिक्षा-दीक्षा से लेकर उनकी शासन-व्यवस्था एवं उनके राज्य की आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक और कला विषयक स्थिति पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

पुस्तक की छपाई, सफाई एवं उसका आवरण काफी चित्ताकर्षक है।

साहित्य सन्देश—

इन अध्यात्म मूलक पदों में सरस साहित्यिकता सर्वत्र विद्यमान है। अतः इस पदावली का साहित्यिक मूल्य भी बहुत है। पुस्तक पठनीय संग्रहणीय है।

मूल्य साढ़े चार रुपये

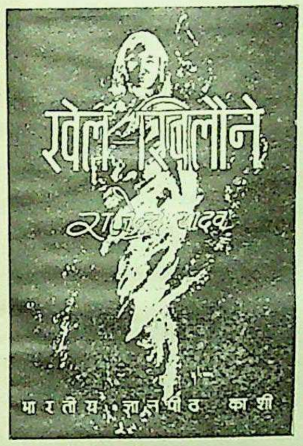

मूल्य दो रुपये

लोकवाणी—

"सभी कहानियों में चुटीलापन है जो पाठक का मन बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेती है और पाठक अन्त में उसे खतम करके ही दम लेता है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हमारे जो अनुभव होते हैं उन्हें लेखकने कहानियों का रूप प्रदान कर दिया है और इसलिए ये कहानियाँ हमारे ऊपर काफ़ी असर छोड़ गयी हैं।"

प्रस्तुत 'द्विवेदी-पत्रावली हिन्दी का प्रथम पत्र-साहित्य है। काल की दृष्टि से यह पूर्ण है। जिस समय स्व० आचार्य महावीरप्रसाद जी द्विवेदी हिन्दी जगत में आये और जब तक वे कुछ करने लायक थे, तबतक के उनके चुने हुए पत्रों का संकलन प्रस्तुत संग्रह में है। विषय की दृष्टि से भी यह संकलन पूर्ण है। द्विवेदीजी की सम्पूर्ण साहित्यिक प्रवृत्तियों से सम्बन्धित कुछ न कुछ पत्र इस संग्रह में हैं।

मूल्य ढाई रुपये

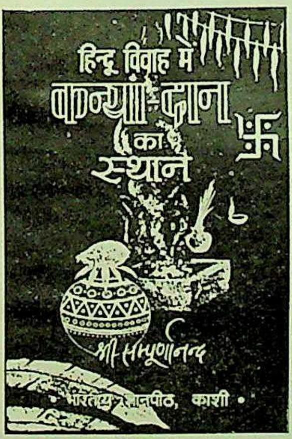

मूल्य एक रुपये

सम्मेलन-पत्रिका—

"प्रस्तुत पुस्तक में चार अध्याय हैं—पहले अध्याय में समाज में स्त्रियों का स्थान, दूसरे में कन्यादान और हिन्दू विवाह में उसका महत्त्व, तीसरे में कन्यादान की वैधता और चौथे में कन्यादान का वास्तविक भाव।

पुस्तक सर्वांग सुन्दर है। इसे हम युग की माँग और सामाजिक निर्माण एवं उन्नति की विधायिका कह सकते हैं।"

प्रस्तुत पुस्तक में चुनी हुई—पत्थर की आँखें, परिणाम, हिंसक, चन्द्रगुप्त की मोहर, शतरंज के मोहरें, पीले हाथ, स्नेह की शर्त, हाथियों की चोरी, शतरंज की बाज़ी, उलझन, पान का गुलाम—इन ऐतिहासिक कहानियों का अनूठा संग्रह किया गया है।

मूल्य तीन रुपये

● भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ के तीन महत्वपूर्ण प्रकाशन

श्री जैनेन्द्रकुमार--

"कथा अत्यन्त करुण है। लिखा भी उसे उतनी ही आस्था और आर्द्रता से गया है। इसकी भाषा और वर्णन का वैभव मुग्ध कर देता है। इतना सचित्र और मनोरम वर्णन हिन्दी में मैंने अन्यत्र देखा है, ऐसा याद नहीं पड़ता। मोतियों की लड़ी से वाक्य जहाँ-तहाँ मिलते हैं। मन उनकी मोहकता और कोमलता पर गल-सा जाता है। प्रसादजी के बाद यह शोभा और श्री गद्य में मैंने वीरेन्द्र में ही पायी। मृदुता और ऋजुता बल्कि चाहे कुछ विशेष ही हो।"

आल इण्डिया रेडियो दिल्ली--

"प्रेमचन्द्र के उपन्यासों की भाँति इसमें दार्शनिक सूक्तियाँ भरी पड़ी है।"

---मूल्य पाँच रुपया

कर्मवीर खण्डवा--

"मुनि कान्तिसागरजी एक बड़े ऊँचे दर्जे के पुरातत्त्ववेत्ता हैं। इस विद्या के वे अच्छे कलाकार हैं। आपने अथक परिश्रम तथा यात्रा कर 'खण्डहरों का वैभव' का निर्माण कर जनता को कृतार्थ किया है; इसमें ऐसे रत्न हैं जिनकी क़ीमत नहीं आँकी जा सकती।

"ग्रन्थ सब दृष्टियों से अच्छा है। विषय तो बड़ा दिलचस्प है ही किन्तु मुनिजी द्वारा किया गया विवेचन बड़ा ही कलापूर्ण है।....भारत के इतिहास-प्रेमी तथा पुरातत्त्व-प्रेमी लोग इस ग्रन्थ से लाभ उठायेंगे। ग्रन्थ की छपाई, बाह्यांग तथा मुखपृष्ठ भी आकर्षक है।"

मूल्य छह रुपये

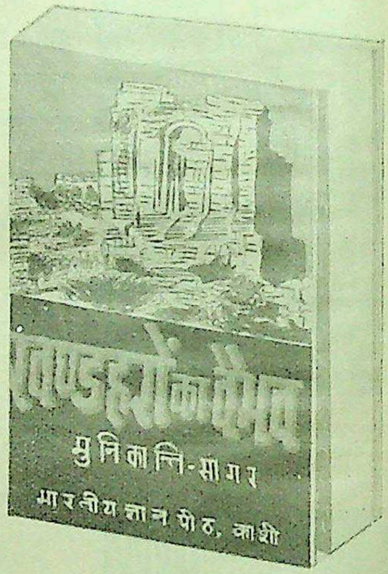

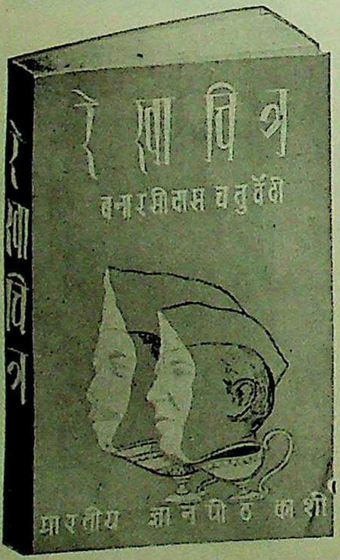

स्वतन्त्र भारत--

"साहित्य के भावी इतिहासकारों को इससे प्रमाणिक सामग्री मिलेगी। इसीके साथ नवोदित पत्रकारों और साहित्यकारों को अपने पूर्वगामियों का निकट से परिचय मिलेगा तथा वे प्रेरणा ले सकेंगे।"

लोकवाणी--

"पुस्तक उपन्यास की तरह आकर्षक, कहानी की तरह रोचक, जीवन-परिचय की तरह प्रेरणादायक और नीति-ग्रन्थ की तरह मार्ग-दर्शक है। छपाई, सफाई ज्ञानपीठ के स्तर के अनुरूप है।"

• भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस •

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ के कुछ अनुपम प्रकाशन

डॉ॰ रामकुमार वर्मा—

"श्री शान्ति एम्॰ ए॰ का 'पंच प्रदीप' अपने सहज आलोक से काव्य में एक नयी दिशा का संकेत करता है। गम्भीर भावों की अभिव्यक्ति सरलतम चित्रों और अनुभूति की रेखाओं से स्पष्ट करने की अद्भुत क्षमता कवयित्री में है। आशा-निराशा, सुख-दुख, विश्वास और क्रान्ति की भावनायें अपने स्वाभाविक आवेग में चित्रित हैं।"

मूल्य दो रुपये

'जैन-जागरण के अग्रदूत' अर्थात् १६०१ से १६५२ तक के दिवंगत और ८ वयोवृद्ध प्रमुख दिगम्बर जैन कार्यकर्त्ताओं के संस्मरण एवं सचित्र परिचय।

आर्यावर्त पटना—

"इतिहास को सुरक्षित रखने का यह ढंग प्रशंसनीय है।"

लोकवाणी जयपुर—

"श्री गोयलीयजी की शैली में स्वर्गीय पद्मसिंह शर्मा की भाँति, प्रवाह, सजीवता, सरलता और हिन्दुस्तानी का पुट है।"

मूल्य पाँच रुपये

आज दैनिक—

"हिन्दी भाषा में स्फूर्तिमय तथा प्रेरणा-प्रधान निबन्धों का एकदम अभाव है। इस पुस्तक के कथात्मक शैली के निबन्ध जीवन में ओज, उत्साह, साहस एवं शक्ति भरते हैं। शास्त्र, ज्ञान और विज्ञान के तथ्य एवं आँकड़ों को पढ़ते-सुनते जो थकावट और रूक्षता आ जाती है, वह इन संस्मरणात्मक निबन्धों से सरसता में परिवर्तित होती है। इन निबन्धों की भाषा और शैली निराली है। इन्हें निबन्ध कहने की अपेक्षा संस्मरणात्मक कहानियाँ ही कहना ठीक होगा।

मूल्य चार रुपये

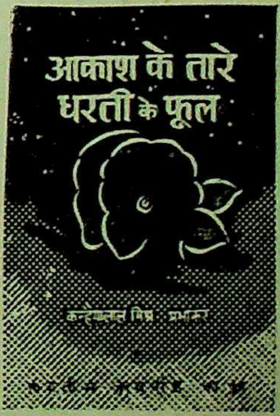

नवभारत टाइम्स—

"कथाओं की रेखाओं में गहराई है, लोच है, थिरकन है, बहाव है। व्यर्थ नहीं: विशिष्ट भावना में सजग होने के मर्मस्थल पर केन्द्रीकरण का सबल आग्रह इनमें है।"

धर्मयुग—

"वास्तव में चुने हुए शब्दों में जीवन की महती अनुभूति और अनुपम सत्य को उन्होंने खूबी से रखा है।"

मूल्य दो रुपये

• भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस •

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाबन्ध (भाग १) मूल्य १२)

सम्पादक––पं० सुमेरचन्द दिवाकर

महाबन्ध भाग २ मूल्य ११)

महाबन्ध भाग ३ मूल्य १३)

सम्पादक––पं० फूलचन्द शास्त्री

यह वही ग्रन्थराज है, जिसके दर्शन करने के लिए ही सदियों से श्रद्धालु जनता मूडबिद्री की यात्रा करती थी। जिसका भगवान् महावीर की द्वादशांग वाणी से साक्षात् सम्बन्ध है। यह कर्म सिद्धान्त का आगम प्रणाली से निरूपण करने वाला सर्व प्रथम सिद्धान्त ग्रन्थ है।

तत्वार्थवार्तिक भाग १ मूल्य १२)

सम्पादक––पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य

अकलंकदेव कृत राजवार्तिक के अशुद्धिपुंज संस्करण का अनेक ताड़-पत्रीय और कागज़ की प्राचीन प्रतियों के आधार से संशोधन और सम्पादन। विषय-परिचय के लिए ग्रन्थ का हिन्दी सार भी लिखा गया है।

तत्वार्थवृत्ति मूल्य १२)

सम्पादक––पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य

हिन्दी सार और विस्तृत प्रस्तावना सहित। अनेक ताड़पत्रीय प्रतियों के आधार से सुसम्पादित। प्रस्तावना का प्रत्येक प्रकरण जीवन में समाये हुए अनेक विध मिथ्यात्व का पर्दाफ़ाश करता है।

महापुराण (आदिपुराण) भाग १ और २

सम्पादक––साहित्याचार्य पं०पन्नालाल वसंत

इस पुराण में न केवल चरित्र ही है, किन्तु जैनाचार, जैन संस्कार आदि का सांगोपांग विस्तृत विवेचन है। आरम्भ में ८० पृष्ठ की महत्वपूर्ण विस्तृत प्रस्तावना लिखी गई है।

दोनो भागों का मू० २०)

(१९५० में प्रकाशित)

महापुराण उत्तरपुराण भाग ३ मूल्य १०)

प्रस्तुत पुराण में भ० आदिनाथ के सिवाय अन्य २३ तीर्थंकरों का चरित्र अंकित किया गया है।

वसुनन्दि श्रावकाचार मूल्य ५)

सम्पादक––पं० हीरालाल शास्त्री

प्रस्तुत पुस्तक में ६४ पृष्ठ की प्रस्तावना तथा हिन्दी अनुवाद के साथ में मूल गाथायें दी हैं। परिशिष्ट में मूल ग्रन्थ में आगत कुछ बातों पर विशेष टिप्पण दिये हैं।

मदन पराजय मूल्य ८)

––प्रो० राजकुमार साहित्याचार्य

"मदन-पराजय की भूमिका मैंने पढ़ी, बड़ी योग्यता से लिखी गई है और इससे कई नई बातों का ज्ञान होता है।" ––डा० अमरनाथ झा

न्यायविनिश्चयविवरण [१] १५)

भट्टअकलंक देव विरचित न्यायविनिश्चयग्रन्थ पर वादिराजसूरि कृत विस्तृत टीका

सम्पादक––महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य

जैन दर्शन के इस एक ही मौलिक ग्रन्थ से जैन न्याय के मूलतत्वों का विस्तृत परिचय हो जाता है। प्रस्तावना में इस भाग के ज्ञातव्य विषयों का हिन्दी में परिचय है।

सभाष्यरत्नमंजूषा मूल्य २)

सम्पादक––हरि दामोदर वेलणकर

संस्कृत छन्दों का संक्षेप में ज्ञान करने के लिए यह अत्यन्त उपयोगी है।

नाममाला सभाष्य मूल्य ३।।)

सम्पादक––पं० शम्भूनाथ त्रिपाठी

कविवर धनंजय कृत नाममाला कोष पर अमर कीर्ति कृत भाष्य। इस भाष्य में प्रत्येक शब्द की व्युत्पत्ति दी गई है। जो भाषा शास्त्र के प्रेमियों तथा छात्रों के लिए बहुत उपयोगी है।

समयसार मूल्य ८)

सम्पादक––रायबहादुर ए० चक्रवर्ती

भगवान् कुन्द-कुन्द के प्रसिद्ध अध्यात्म ग्रन्थ समयसार का अंग्रेजी भाषा में प्रामाणिक अनुवाद। विस्तृत व्याख्या, महत्वपूर्ण प्रस्तावना।

भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस ५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

०२४००२

केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि मूल्य ४)

सम्पादक——ज्योतिषाचार्य श्री नेमिचन्द शास्त्री

प्रस्तुत ग्रन्थ में भारत के सभी चन्द्रोन्मीलन, केरल, प्रश्न कुतूहल आदि प्रश्न शास्त्रों के तुलनात्मक विवेचन। सामान्य पाठक भी इसके द्वारा अपने भावी इष्टानिष्ट का परिज्ञान कर सकता है।

करलक्खण मूल्य १।।)

हस्तरेखा विज्ञान का अभूतपूर्व ग्रन्थ।

(१९५४ में प्रकाशित)

जिनसहस्रनाम मूल्य ४)

सं०——पं० हीरालालजी शास्त्री

(जिन भगवान की सहस्रनामात्मक स्तुति)

प्रस्तुत ग्रन्थ में चालीस पृष्ठों की विस्तृत प्रस्तावना के साथ मूल सहस्रनाम पाठ और स्वोपज्ञवृत्ति टीका हिन्दी अनुवाद के साथ दी गई है। अन्त में परिशिष्ट के रूप में श्रुतसागरी टीका को भी दे दिया है जिससे यह ग्रन्थ सर्वांग सुन्दर बन पड़ा है।

जैन शासन मूल्य ३)

पं० सुमेरचन्द दिवाकर न्यायतीर्थ

वीरवाणी जयपुर—"जैनशासन में जैनधर्म के सिद्धान्तों का विवेचन है। पुस्तक काफ़ी परिश्रम से लिखी गई है। भाषा परिमार्जित और आकर्षक है। पुस्तक उपादेय है और इससे एक आंशिक अभाव की पूर्ति हुई है।"

आधुनिक जैन कवि मूल्य ३।।।)

श्रीमती रमारानी जैन

"इसमें चुने हुए ९२ कवियों-कवयित्रियों की ख़ास-ख़ास रचनाओं का संकलन किया गया है। कवियों का परिचय तथा उनकी रचनाशैली आदि की आलोचना भी की गई है।

हिन्दी जैन साहित्यका इतिहास मू० २।।।=)

श्री कामता प्रसाद जैन

विश्वभारती पत्रिका

"हिन्दी जैन-साहित्य का क्रमबद्ध इतिहास लिखकर श्री कामताप्रसादजी ने एक बड़े अभाव की पूर्ति की है। छपाई आदि आदर्श है।"

(१९५० में प्रकाशित)

पुराणसार संग्रह भाग १ मूल्य २)

सं०——पं० गुलाबचन्द्र चौधरी, व्याकरणाचार्य

जैन भारती प्रस्तुत ग्रन्थ में आदिनाथ, चन्द्रप्रभ और शान्तिनाथ का चरित्र दिया है। अनुवाद बहुत ही सुन्दर और पाण्डित्यपूर्ण है। भाषा निर्दोष है और शैली-प्राञ्जलतापूर्ण है। पुस्तक संग्राह्य है।

(१९५४ में प्रकाशित)

धर्मशर्माभ्युदय मूल्य ३)

जैन काव्य ग्रन्थों में धर्मशर्माभ्युदय का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें काव्यमयी भारती के द्वारा पन्द्रहवें तीर्थंकर धर्मनाथ भगवान् का जीवन-चरित अंकित किया गया है।

कुन्दकुन्दाचार्य के तीन रत्न मूल्य २)

भगवान् कुन्दकुन्द के पंचास्तिकाय, प्रवचनसार और समयसार—जैसे तीन महान् आध्यात्मिक ग्रन्थों का संक्षिप्त और सरल भाव देकर सागर को गागर में भरने का सफल प्रयत्न किया गया है। इससे सर्वसाधारण को भगवान् कुन्दकुन्दाचार्य के गूढ़ और गहन तत्त्वामृत-पान करने का अनायास ही अवसर मिल रहा है।

जातकट्ठ कथा (पाली) मूल्य ८)

"जातक में बुद्ध-जन्म से सम्बन्ध रखनेवाली घटनाएँ हैं। यह कथा-साहित्य अत्यन्त प्राचीन है। भारतीय संस्कृति पर अनुसंधान करनेवालों को देवनागराक्षरों में पाठ-पाठान्तरों सहित यह संस्करण बड़ा ही हितकारी है।

भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस ५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• हमारे सुरुचिपूर्ण प्रकाशन •

दार्शनिक, आध्यात्मिक, धार्मिक

भारतीय विचारधारा	श्री मधुकर एम. ए.	२)
अध्यात्म-पदावली	श्री राजकुमार जैन एम. ए	४॥)
कुन्दकुन्दाचार्य के तीन रत्न	श्री शोभाचन्द्र भारिल्ल	२)
वैदिक साहित्य	पं० रामगोविन्द त्रिवेदी	६)
जैन शासन	पं० सुमेरचन्द्र दिवाकर	३)

उपन्यास, कहानियाँ

मुक्ति-दूत (उपन्यास)	श्री वीरेन्द्रकुमार जैन एम. ए.	५)
संघर्ष के बाद	श्री विष्णु प्रभाकर	३)
गहरे पानी पैठ	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२॥)
आकाश के तारे : धरती के फूल	श्रीकन्हैयालालमिश्र 'प्रभाकर'	२)
पहला कहानीकार	श्री रावी	२॥)
खेल-खिलौने	श्री राजेन्द्र यादव	२)
अतीत के कंपन	श्री आनन्दप्रकाश जैन	३)

उर्दू-शायरी

शेरो-शायरी	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८)
शेरो-सुखन (पाँचों भाग)	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२०)

कविता

वर्द्धमान (महाकाव्य)	श्री अनूप शर्मा	६)
मिलनयामिनी	श्री हरिवंशराय बच्चन	४)
धूप के धान	श्री गिरिजाकुमार माथुर	३)
मेरे बापू	श्री हुकुमचंद्र 'बुखारिया'	२॥)
पंचप्रदीप	श्रीमती शान्ति एम. ए.	२)
आधुनिक जैन कवि	श्रीमती रमारानी जैन	३॥।)

ऐतिहासिक

खण्डहरों का वैभव	श्री मुनि कान्तिसागर	६)
खोज की पगडण्डियाँ	श्री मुनि कान्तिसागर	४)
चौलुक्य कुमारपाल	श्री लक्ष्मीशंकर व्यास एम. ए.	४)
कालिदास का भारत (१)	श्री भगवतशरण 'उपाध्याय'	४)
हिंदी जैन साहित्यका सं० इतिहास	श्री कामताप्रसाद जैन	२॥।=)

संस्मरण रेखाचित्र

हमारे आराध्य	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	३)
संस्मरण	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	३)
रेखाचित्र	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	४)
जैन जागरण के अग्रदूत	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५)

ज्योतिष

भारतीय ज्योतिष	श्री नेमीचंद्रजैन ज्योतिषाचार्य	६)
केवल ज्ञानप्रश्न चूड़ामणि	श्री नेमिचंद्र जैन ज्योतिषाचार्य	४)
करलक्खण	प्रो० प्रफुल्ल कुमार मोदी	।॥)

विविध

द्विवेदी पत्रावली	श्री बैजनाथसिंह विनोद	२)
जिन्दगी मुसकराई	श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	४)
रजतरश्मि (एकांकी)	डा० रामकुमार वर्मा	२॥)
ध्वनि और संगीत	प्रो० ललितकिशोर सिंह	४)
हिंदूविवाहमें कन्यादानका स्थान	श्री सम्पूर्णानन्दजी	१)
ज्ञानगंगा (सूक्तियाँ)	श्री नारायणप्रसाद जैन	६)

सिद्धान्तशास्त्र

महाबन्ध (१)	पं. सुमेरचंद्र दिवाकरन्यायतीर्थ	१२)
महाबन्ध (२-३)	पं. फूलचन्द्र शास्त्री	२२)
तत्त्वार्थवृत्ति	पं. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य	१६)
तत्त्वार्थ राजवार्तिक (१)	पं. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य	१२)
समयसार (अंग्रेजी)	प्रो. ए. चक्रवर्ती एम. ए.	८)

चरित्र

महापुराण (१-२)	पं. पन्नालाल जैन साहित्याचार्य	२०)
उत्तरपुराण (३)	पं. पन्नालाल जैन साहित्याचार्य	१०)
पुराणसारसंग्रह (१)	पं. गुलाबचन्दजैन व्याकरणाचार्य	२)
धर्मशर्माभ्युदय	पं. पन्नालाल साहित्याचार्य	३)
जातकट्ठकथा (पाली)	भिक्षु धर्मरक्षित	६)

स्तोत्र आचार

वसुनन्दिश्रावकाचार	पं. हीरालाल जैन न्यायतीर्थ	५)
जिनसहस्रनाम (स्तोत्र)	पं. हीरालाल जैन न्यायतीर्थ	४)

काव्य, न्याय

न्यायविनिश्चयविवरण (१-२)	पं. महेंद्रकुमार जैन न्यायाचार्य	३०)
मदनपराजय (काव्य)	पं. राजकुमार जैन, एम. ए.	८)

कोष छन्दशास्त्र

नाममाला सभाष्य	पं. शम्भुनाथ त्रिपाठी	३॥)
सभाष्यरत्नमंजूषा (छंदशास्त्र)	प्रो. एच. डी. वेलणकर	२)

• भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस •

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000